ब्रजसाहित्य माला

संपादक :

प्रभुदयाल मीतल

ब्रजभाषा-काव्य के प्रेमियों
तथा
उच्च हिंदी कक्षाओं के विद्यार्थियों
के लाभार्थ—

ब्रज-साहित्य-माला की पुस्तकें

[लेखक—प्रभुदयाल मीतल]

★

1. अष्टछाप-परिचय ... ... ४)
2. ब्रजभाषा साहित्य का ... ... नायिकाभेद ... ६)
3. सूर-निर्णय ... ... ५)
4. ब्रजभाषा साहित्य का ऋतु सौन्दर्य ... ३)

प्राप्तव्य स्थान :

अग्रवाल प्रेस, मथुरा।

परिचय



हिंदी प्रेमी पाठकों को सुयोग्य लेखक द्वय का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। ब्रजभाषा साहित्य से संबंध रखने वाले आप लोगो के अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जो आप लोगो की विद्वत्ता के परिचायक हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ मे लेखकों ने महाकवि सूरदास से संबंध रखने वाली समस्त प्रमुख समस्याओं पर अपने विचार प्रकट किये हैं। पाँच परिच्छेदों में क्रम से सामग्री, चरित्र, ग्रंथ, सिद्धांत तथा काव्य का विवेचन दिया गया है। ग्रंथ मे अनेक स्थलों पर कुछ नवीन सामग्री का उल्लेख किया गया है। इस विषय के विशेषज्ञों द्वारा इसकी पूर्ण परीक्षा होनी चाहिए। स्वतंत्रता पूर्वक उद्धरण देने से पुस्तक विशेष रोचक और उपयोगी हो गयी है; यद्यपि साथ ही आलोचनात्मक अंश मे कमी करनी पड़ी है।

सूरदास तथा वल्लभ संप्रदाय का अध्ययन हिंदी विद्वानों के द्वारा देर मे प्रारंभ हुआ, किंतु यह हर्ष का विषय है कि इस कमी की पूर्त्ति अब शीघ्रता से हो रही है। इस आलोचनात्मक अध्ययन की माला मे सूर-निर्णय इस समय अंतिम कड़ी है। आशा है कि यह महत्वपूर्ण ग्रंथ सूर के अध्ययन को अग्रसर करने में सहायक होगा।

धीरेन्द्र वर्मा
१४ अगस्त १९४९

(डा० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०, डी० लिट्०)
अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,
विश्वविद्यालय, प्रयाग

प्राक्कथन



हिंदी साहित्यिक समालोचना के आरंभिक काल से अब तक हिंदी कवियों मे सूरदास का सर्वोपरि महत्व माना गया है, किंतु उनके काव्य का वास्तविक अध्ययन अब से कुछ समय पूर्व ही आरंभ हुआ है। किसी कवि के अध्ययन के लिए उसकी कृतियों के सुसंपादित संस्करण की सबसे पहले आवश्यकता होती है। पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है कि सूरदास के जीवन-काल में ही उनकी रचनाओं के हस्त लिखित संग्रह होने लगे थे, जो लिपि-प्रतिलिपि के क्रम से बाद मे भी बराबर होते रहे। इस समय जो संग्रह उपलब्ध हैं, वे सूरदास के कुछ समय बाद से लेकर अब तक के भिन्न-भिन्न संवतों मे लिपिबद्ध किये गये है। वे लिपिकर्ताओं की रुचि और उनके ज्ञान के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, किंतु उनमे कोई संग्रह ऐसा नहीं है, जिसे सूरदास की समस्त रचनाओं का सर्वांगपूर्ण संकलन कहा जा सके!

यह तो हुई हस्त लिखित प्रतियों की बात; अब सूरदास की मुद्रित रचनाओं पर विचार कीजिए। आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी की बहुमुखी प्रवृत्तियो मे सूरदास की रचनाओं को भी स्थान मिला था, किंतु उनके असामयिक निधन के कारण इनके संबंध मे कोई विशेष कार्य नहीं हो सका। भारतेन्दुजी के कार्य को उनके आत्मीय श्री राधाकृष्ण दास ने आगे बढ़ाया। उन्होंने सूरसागर का संपादन किया और इसके आरंभ मे सूरदास के जीवन-वृत्तांत पर भी व्यापक प्रकाश डाला। सूरसागर का यह संस्करण बंबई से प्रकाशित हुआ है। उस समय की उपलब्ध सामग्री को देखते हुए राधाकृष्ण दास जी का कार्य निस्संदेह बड़ा महत्वपूर्ण था, किंतु आजकल के अनुसंधान प्रिय पाठकों को इससे संतोष नहीं होता है। फिर भी सूरसागर के अन्य मुद्रित संस्करण के अभाव में इसी का अनिवार्य रूप से उपयोग किया जाता है। दुर्भाग्य की बात है कि सूरसागर का सुसंपादित अन्य संस्करण अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है और बंबई वाला उक्त संस्करण भी आजकल दुष्प्राप्य हो रहा है!

ब्रजभाषा साहित्य के धुरंधर विद्वान श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने भी सूरसागर के एक सर्वांगपूर्ण संस्करण का संपादन-कार्य आरंभ किया था, जो उनके आकस्मिक देहावसान के कारण पूर्ण न हो सका। काशी की

नागरी प्रचारिणी सभा ने रत्नाकर जी के संपादित ग्रंथ का कुछ भाग प्रकाशित किया है। यद्यपि रत्नाकर जी की संपादन-शैली से कुछ लोगों को पूर्णतया संतोष नहीं है, तथापि सभा द्वारा यदि यह ग्रंथ भी पूरा प्रकाशित कर दिया जाता, तो एक बहुत बड़ा कार्य हो जाता और उससे सूरदास के पाठकों का भी भारी उपकार होता। सूरसागर के अभाव मे सूरसागरोक्त पदों के कई छोटे-बड़े संग्रह प्रकाशित हुए हैं; किंतु जब तक सूरसागर और सूरदास की अन्य रचनाओं के प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित नहीं होते, तब तक यह कार्य अधूरा ही रहेगा।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात हुआ कि हस्त लिखित अथवा मुद्रित रूप मे सूरदास की समस्त रचनाओं का कोई सर्वांगपूर्ण संकलन इस समय उपलब्ध नही है। इस अभाव के कारण सूर संबंधी अध्ययन के कार्य में सदैव बाधा रही है, और जब तक इस की पूर्ति नही होती, तब तक आगे भी रहेगी ही। किंतु सूरदास का जितना साहित्य अब तक प्रकाश में आया है, उससे ही उनके काव्योत्कर्ष के मूल्यांकन करने मे कोई बाधा नही आयी है। यही कारण है कि सूर-काव्य की आलोचना संबंधी साहित्य की हमारे यहाँ कमी नहीं है।

सूर-काव्य के रसिकों और हिंदी की उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों में सूर-काव्यालोचना की सदैव माँग रही है, जिसके कारण हिंदी के सर्वोच्च श्रेणी के विद्वान साहित्यकार भी सूरदास की ओर आकर्षित हुए हैं। आदरणीय मिश्रबंधु, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, ला० भगवानदीन, डा० जनार्दन मिश्र, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रो० मुंशीराम शर्मा, तथा दूसरे धुरंधर लेखकों ने सूरदास के काव्य की समालोचना की है, जिसके कारण इस प्रकार का साहित्य हमारे यहाँ प्रचुर परिमाण मे प्रस्तुत हो गया है।

जैसे-जैसे सूरदास के काव्य की आलोचना होती जाती है, वैसे-वैसे ही उनका महत्व बढ़ता जाता है। सूर-काव्य के विविध पहलुओं पर गंभीरता-पूर्वक विचार करने से हमारे विद्वान आलोचकों को ज्ञात हुआ कि कवि के रूप में सूरदास निस्संदेह महान् हैं। वे हिंदी ही नहीं, वरन् संसार की समस्त भाषाओं के सर्वोत्तम कवियों में भी आदरपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। किंतु सूरदास केवल कवि ही तो नही हैं। वे परम भक्त, सुप्रसिद्ध गायक, धुरंधर सांप्रदायिक विद्वान और नाना प्रकार की विद्याओं एवं कलाओं के अपूर्व ज्ञाता भी हैं। उनके विविध रूपों का वैज्ञानिक अध्ययन किये बिना इनकी वास्तविक समालोचना नहीं की जा सकती।

जब से विश्वविद्यालयों के अध्यापकों और छात्रों का ध्यान सूरदास की ओर गया है, तब से उनके वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता का और भी अधिक अनुभव होने लगा है। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष विद्वद्वर डा० धीरेन्द्र वर्मा का प्रयत्न सूरदास के वैज्ञानिक अध्ययन के कार्य में सब से अधिक प्रशंसनीय है। उन्होंने इस ओर स्वयं प्रवृत्त होकर और अपने छात्रों को प्रेरित कर सूर के वैज्ञानिक अध्ययन को बहुत-कुछ आगे बढ़ाया है। उनके प्रयत्न से आज विश्वविद्यालय के क्षेत्र में विविध दृष्टि-बिंदुओं से सूरदास का व्यापक अध्ययन हो रहा है। इस प्रयत्न का शुभ परिणाम डा० दीनदयाल गुप्त और डा० ब्रजेश्वर वर्मा की थीसिसों के रूप में हम लोगों के सन्मुख आ भी चुका है। विश्वविद्यालय के क्षेत्र में साहित्यिक शोध का कार्य करने वालों को उपयुक्त वातावरण, संचित सामग्री और उच्च श्रेणी के विद्वानों के सामूहिक सहयोग के रूप में जो सहज सुविधाएँ प्राप्त है, उनके कारण इस प्रकार का बहुमूल्य कार्य होना स्वाभाविक है। किंतु यह आवश्यक नहीं है कि साहित्य की शोध के लिए विश्वविद्यालय का क्षेत्र ही एक मात्र स्थान है और वहाँ पर किया हुआ कार्य ही सदैव निर्भ्रांत, त्रुटिरहित एवं अपरिवर्तनीय होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि एक ही स्रोत से उद्भूत डा० दीनदयाल गुप्त और डा० ब्रजेश्वर वर्मा की थीसिसों की विचार-धाराएँ विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित होती हुई दिखलायी दे रही है।

विश्वविद्यालयों से बाहर के क्षेत्र में भी अनेक विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है और वे अब भी कर रहे हैं। इस क्षेत्र में साहित्यिक शोध का कार्य करने वाले व्यक्तियों में हमारा भी एक छोटा सा स्थान है। सूर संबंधी प्रकाशित साहित्य के अनुशीलन और अप्रकाशित विशाल साहित्य के शोधपूर्ण अध्ययन के उपरांत हमारा विनम्र मत है कि अब तक का कार्य निश्चित रूप से महत्वपूर्ण होते हुए भी सर्वांगपूर्ण और त्रुटिरहित नहीं है। जहाँ तक सूरदास के काव्य की आलोचना का संबंध है, वहाँ तक यह कार्य बहुत-कुछ पूर्ण है और इसमें परिवर्तन की बहुत कम गुंजायश है; किंतु सूरदास के जीवन-वृत्तांत, उनकी प्रामाणिक रचनाएँ और उनके सांप्रदायिक सिद्धांत संबंधी अब तक का कार्य अपूर्ण एवं कुछ अंशों में त्रुटिपूर्ण भी है, अतः इसमें परिवर्द्धन एवं परिवर्तन की शीघ्र आवश्यकता है। यह अपूर्णता एवं त्रुटि उन ग्रंथों में अधिक है, जिनमें सूर काव्य की साहित्यिक समालोचना करते हुए सूरदास के जीवन-वृत्तांत पर भी विचार किया गया है। सूरदास का विस्तृत अध्ययन उपस्थित करने वाले शोधपूर्ण ग्रंथों में भी

निर्णयात्मक समालोचना का अभाव है‡, और उनमे जो निर्णय किये भी गये हैं, वे कहीं-कहीं पर त्रुटिपूर्ण है। हमने प्रस्तुत पुस्तक मे उक्त निर्णयो की अपूर्णता एवं त्रुटि के संबंध में स्थान-स्थान पर अपना मत उपस्थित किया है। इस प्रकार का मत प्रकट करने से उन आदरणीय विद्वानो की अवज्ञा अथवा उनके महत्व को कम करने का हमारा अभिप्राय कदापि नहीं है, बल्कि सत्य-शोधक के आवश्यक कर्त्तव्य वश हमको ऐसा करने के लिए बाध्य होना पड़ा है। इसके लिए हम उन आदरणीय विद्वानों से विनम्रता पूर्वक क्षमा-याचना करते है।

हमारे मतानुसार सूरदास संबंधी शोध में अपूर्णता और त्रुटि रह जाने का प्रधान कारण यह है कि यह शोध उपयुक्त स्थानो मे संचित उपयुक्त सामग्री की नही की गयी। यदि किसी शोधक ने उक्त सामग्री के कुछ भाग की कभी शोध भी की, तो उनका मत उसके प्रति सद्भावना का नही रहा, बल्कि पहले से बनी हुई भ्रांत धारणा के कारण उदासीन, और कभी-कभी विरोधपूर्ण भी रहा। निम्न लिखित पंक्तियो मे हम अपना अभिप्राय और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त करेंगे।

यह बतलाने की आवश्यकता नही है कि पुष्टि संप्रदाय के कवि होने के कारण सूरदास संबंधी प्रचुर सामग्री उक्त संप्रदाय के वार्ता साहित्य एवं सांप्रदायिक साहित्य में सुरक्षित है। इस सामग्री का केवल अल्प भाग ही अभी तक प्रकाश मे आ सका है, अतः हिंदी साहित्य के अनेक गण्यमान्य विद्वानो को भी इसका यथेष्ट परिचय नही है। जिस सामग्री से वे परिचित है, उसका भी उन्होने गंभीरता पूर्वक अध्ययन नहीं किया है और पूर्व धारणा के कारण उन्होने उसके विरुद्ध मत प्रकट किया है। दुर्भाग्य से हिंदी साहित्य के कतिपय विद्वानो की कुछ समय से यह धारणा बन गयी है कि पुष्टि संप्रदाय का वार्ता साहित्य अप्रामाणिक एवं अविश्वसनीय है, अतः वे प्रमाण रूप मे इसे स्वीकार नही करते हैं, जिसके कारण पुष्टि संप्रदायी कवियों के संबंध मे उनके निर्णय अपूर्ण एवं त्रुटिपूर्ण रह जाते है। हिंदी साहित्य के शोधकों मे डा० दीनदयाल गुप्त ने उक्त साहित्य का अपेक्षाकृत अधिक अध्ययन किया है और उनका दृष्टिकोण भी सद्भावनापूर्ण है, अत वे अन्य विद्वानों की अपेक्षा पुष्टि संप्रदायी कवियों का विस्तृत एवं विश्वसनीय विवरण उपस्थित कर सके है।

‡ देखिए डा० ब्रजेश्वर वर्मा कृत 'सूरदास'' की प्रस्तावना पृष्ठ ३

हम पिछले कई वर्षों से पुष्टि संप्रदाय के अप्रकाशित वार्ता साहित्य एवं सांप्रदायिक साहित्य की शोध कर रहे है। हमने पुष्टि सम्प्रदायी पुस्कालयों एवं प्राचीन "हवेलियों" मे संगृहीत प्रचुर सामग्री का विस्तृत अध्ययन किया है। हमने पुष्टि संप्रदायी मंदिरो की सेवा-विधि और कीर्तन-प्रणाली का व्यक्तिगत रूप से अनुभव और मनन किया है तथा पुष्टि संप्रदायी विद्वानो के सत्संग का लाभ उठाया है। इस प्रकार अपनी शोध के फल स्वरूप समय-समय पर हमने जो सूचनाएँ, निबंध एवं ग्रंथ प्रकाशित किये है, उनका हिंदी के गण्यमान्य विद्वानों ने भी सम्मान किया है। कई वर्षो के परिश्रम के उपरांत अब हमारी शोध इस स्थिति पर पहुँच गयी है कि हम निर्णयात्मक रूप मे कुछ कह सकें। हम अनुभव करते है कि हमारी पूर्व कृतियाँ भी सर्वथा त्रुटि रहित नहीं है, क्यो कि प्रस्तुत ग्रंथ में कहीं-कहीं पर स्वयं हमने अपने पूर्व मत के विरुद्ध भी कथन किया है। अपनी पूर्व कृतियो के नवीन संस्करणो मे हम उनका परिष्कार कर रहे है।

अपने शोध कार्य मे हमने सूरदास संबधी सामग्री का विशेष रूप से अवलोकन किया है। इस सामग्री का वैज्ञानिक ढंग से अनुशीलन एवं परीक्षण करने के उपरांत हमने सूरदास के जीवन, ग्रंथ और सिद्धांतो पर नवीन पद्धति से निर्णयात्मक रूप मे कुछ कहने का साहस किया है। हमारे निर्णय विश्वसनीय अंत:साक्ष्य एवं माननीय वहिःसाक्ष्य पर आधारित है, अतः वे ठोस और प्रामाणिक कहे जा सकते है। संभव है अन्य विश्वस्त नवीन सामग्री के प्राप्त होने पर हमको इनमे भी कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता ज्ञात हो, किंतु अब तक की उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम नम्रतापूर्वक कह सकते हैं कि हमारे निर्णय अपरिवर्तनीय है। ये निर्णय पाँच वर्गो मे विभाजित है, जिनको हमने प्रस्तुत पुस्तक के १ सामग्री-निर्णय, २ चरित्र-निर्णय, ३. ग्रंथ-निर्णय, ४. सिद्धांत-निर्णय, ५. काव्य निर्णय नामक पाँच परिच्छेदों मे समाविष्ट किया है।

प्रथम परिच्छेद सामग्री-निर्णय मे हमने प्रकाशित एवं अप्रकाशित उस सामग्री की समीक्षा की है, जिस पर हमारा सूरदास विषयक निर्णय आधारित है। यह सामग्री अंतःसाक्ष्य, वहिःसाक्ष्य और आधुनिक सामग्री के रूप मे तीन श्रेणियो मे विभाजित की गयी है। अतःसाक्ष्य मे सूरदास के आत्म विषयक कथनों पर विचार किया गया है। यद्यपि इस प्रकार के कथनों की संख्या अधिक नहीं है, तथापि विशाल-काय सूर-काव्य मे खोजने पर ऐसे कतिपय कथन मिल जाते है, जिनसे सूरदास के जीवन-वृत्तांत के निर्णय करने मे

महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। हमने ये आत्म कथन सूर-सारावली, साहित्य-लहरी और सूरसागर से संगृहीत किये हैं। हिंदी साहित्य के कुछ विद्वान सूर-सारावली और साहित्य-लहरी को सूरदास की रचनाएँ मानने मे संदेह करते हैं। इन दोनो ग्रंथों के गंभीर अध्ययन के अनंतर हमारा मत है कि सूर-सारावली और साहित्य-लहरी (वंश-परिचय वाले ११८ वें पद के अतिरिक्त) सूरदास की प्रामाणिक रचनाएँ हैं। यद्यपि इन दोनो ग्रंथों में से भी हमने कुछ आत्म कथनों का संकलन किया है, फिर भी अंत.साक्ष्य के संबंध में हमारा मुख्य आधार सूरसागर है, जिसके सूरदास कृत होने मे किसी को भी संदेह नही है। वहि:साक्ष्य मे पुष्टि संप्रदाय का वार्ता साहित्य मुख्य है। हिंदी साहित्य के कुछ विद्वान इस साहित्य को अप्रामाणिक मानते हैं,अत. हमने श्रावण शु० ७ शुक्रवार स० १७४६ के प्राचीन उद्धरण से वार्ता साहित्य के प्रारंभ और विकास का इतिहास बतलाया है। यह एक नवीन खोज है, जिससे वार्ता साहित्य की प्रामाणिकता पर निर्णयात्मक रूप से प्रकाश पड़ता है। पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य मे चौरासी वैष्णवन की वार्ता, निज वार्ता एवं भावप्रकाश तथा सांप्रदायिक साहित्य मे वल्लभदिग्विजय, वार्तामणिमाला, अष्टसखामृत, संप्रदायकल्पद्रुम, भावसंग्रह आदि प्राचीन ग्रंथों के सूरदास संबंधी उल्लेख वहि:साक्ष्य के रूप मे लिये गये हैं। चौरासी वैष्णवन की वार्ता पर हरिराय जी कृत भावप्रकाश प्राचीन एवं विश्वस्त वहि:साक्ष्य है। यह ग्रंथ अप्रकाशित होने के कारण दुष्प्राप्य था। अग्रवाल प्रेस, मथुरा ने इसे प्रथम बार अभी प्रकाशित किया है। इसकी भूमिका से इसकी प्रामाणिकता सिद्ध है। अन्य प्राचीन वहि:साक्ष्यों मे भक्तमाल और इसकी टीकाओं के उल्लेखों पर विचार किया गया है। वहि साक्ष्य मे हमने वही उल्लेख स्वीकार किये हैं, जिनकी पुष्टि अंत:साक्ष्य से भी हो गयी है। सूरदास संबंधी आधुनिक सामग्री तीन श्रेणियों मे इस प्रकार विभाजित की गयी है—१. सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री, २. खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों मे सूर संबंधी सामग्री, ३. सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री। आधुनिक सामग्री मे सूर-काव्य की आलोचना महत्वपूर्ण है, किंतु सूरदास का जीवन-वृतांत विषयक विवरण अपर्याप्त एवं त्रुटिपूर्ण है। केवल 'अष्टसखामृत' के अतिरिक्त इस परिच्छेद मे वर्णित समस्त सामग्री का हमने भली भाँति अध्ययन एवं परीक्षण किया है। इसके उपरांत हमने यह निर्णय किया है कि सूरदास के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए कौन सी सामग्री उपयोगी है और कौन सी अनुपयोगी। हमने अपने निर्णय की पुष्टि मे युक्तियुक्त कारण एवं प्रमाण भी देने की चेष्टा की है।

द्वितीय परिच्छेद चरित्र-निर्णय मे अपनी शोध के आधार पर हमने सूरदास का प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत उपस्थित किया है। हिंदी साहित्य स बधी ग्रथो मे अब तक सूरदास की जीवन-घटनाओ एव उनके काल निर्णय के विषय मे बहुत कम लिखा गया है। जो कुछ लिखा भी गया है, वह विवाद-ग्रस्त एव त्रुटिपूर्ण है। सूरदास जैसे महाकवि के जीवन-वृतांत की अपूर्णता एव त्रुटि हिंदी साहित्य के गौरव को क्षति पहुँचाने वाली बात है। विभिन्न क्षेत्रों मे सूरदास संबधी वर्षों के अध्ययन एव अन्वेषण के अनंतर अब वह समय आ गया है कि उनका प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत उपस्थित किया जा सके। हमको हर्ष है कि इस परिच्छेद द्वारा हमने इस दिशा में ठोस कदम बढ़ाने की चेष्टा की है। हमने सूरदास की जन्म-तिथि, जाति, उनके जन्मांधत्व, शरण-काल, उपस्थिति-काल और देहावसान-काल पर प्रामाणिक रूप से विचार किया है और तत्स बधी अपने निर्णय उपस्थित किये हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नही है कि ये सभी विषय अभी तक विवादास्पद थे। जाति, जन्मांधत्व और अतिम काल के निर्णय हमने अत·साक्ष्यों के आधार पर किये है, अत· इनमे परिवर्तन हो सकने की स भावना कम है। जन्म-स्थान के स बध मे हमारे पास 'अष्टसखामृत" और "भावप्रकाश" के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण नही है। इस विषय का अत·साक्ष्य भी अप्राप्य है। सूरदास के अंधत्व के विषय मे हमने विस्तार पूर्वक लिखा है। सूरदास के काव्य की पूर्णता और उनके द्वारा किये गये दृश्य जगत् के यथार्थ वर्णनो से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य के प्राय: सभी आधुनिक विद्वान उनकी जन्मांधता मे विश्वास नहीं करते है, किंतु हमने विश्वस्त अतःसाक्ष्य एवं बहि.साक्ष्यों के आधार पर सूरदास को जन्मांध सिद्ध किया है। इस परिच्छेद में हमने जो कुछ लिखा है, आशा है हिंदी साहित्य के विद्वान इस पर गभीरतापूर्वक विचार करेंगे। यदि उनको हमारा कथन युक्तियुक्त एव प्रामाणिक ज्ञात हो, तो वे अपने सूर स बधी ग्र थो मे आवश्यक परिवर्तन एवं स शोधन करेंगे।

तृतीय परिच्छेद ग्र थ-निर्णय मे सूरदास की रचनाओ के सबध मे निर्णय किया गया है। सूरदास के नाम से प्रसिद्ध २५ ग्रथों मे से हमने उनके ७ ग्र थ स्वतत्र एवं प्रामाणिक माने है, जिनमे सूर-सारावली, साहित्य-लहरी और सूरसागर मुख्य हैं। अब तक अधिकांश लेखको ने सूर-सारावली को सूरसागर का सूचीपत्र बतलाया है। अब कुछ विद्वान इसे सूरदास की रचना मानने मे भी सदेह करते है, किंतु हमारे मतानुसार यह श्री वल्लभाचार्य जी कृत 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर रची हुई सूरदास की स्वतत्र एव प्रामाणिक

सैद्धांतिक रचना है । डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने सूरसागर और सारावली मे २७ अतर स्थापित कर सारावली को अप्रामाणिक बतलाने की चेष्टा की है, किंतु हमने उनके तर्कों पर विस्तार पूर्वक विचार करते हुए "कथा वस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण" से ही इसे सूरदास की प्रामाणिक रचना सिद्ध किया है । आजकल 'साहित्य-लहरी' के सूरदास कृत होने मे भी सदेह किया जाता है, किन्तु हमारे मतानुसार सख्या ११८ के वश-परिचय वाले पद के अतिरिक्त यह भी सूरदास की प्रामाणिक रचना है । हमारे अनुसधान से ज्ञात होता है कि सूरदास ने इसकी रचना अष्टछाप के अन्य प्रमुख कवि नददास के लिए स० १६०७ के लगभग की थी, और इसकी पूर्ति उन्होने स० १६१७ मे की । इन दोनो ग्रथो के सबध मे हमारा विवेचन हिंदी साहित्य शोध के क्षेत्र मे कुछ नवीनता उत्पन्न करेगा । सूरसागर सूरदास की प्रमुख रचना है और इसके सूरदास कृत होने मे सदेह भी नही किया जाता है, किंतु इसके स्वरूप के सबध मे अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ है । सूरसागर के सुसपादित सस्करण का अभाव सभी अनुभव करते है, किंतु इसके यथार्थ स्वरूप का निश्चय किये बिना इसका प्रामाणिक सपादन हो भी किस प्रकार सकता है ! हमने इस संबध में अपना निर्णय और सुझाव देकर सूरसागर के संपादन कार्य की एक रूप-रेखा प्रस्तुत की है। हमारे मतानुसार इसका एक रूप 'कथात्मक' है, जिसकी रचना सूरदास ने वल्लभाचार्य जी के उपदेशानुसार श्रीमद्भागवत के आधार पर की थी । इसका दूसरा रूप 'लीलात्मक' है, जो दैनिक कीर्तन के रूप मे श्रीनाथ जी के सन्मुख गाया गया था । पहले रूप मे वर्णनात्मक और दूसरे रूप मे सेवात्मक पदो की अधिकता थी । इन दोनो प्रकार से रचे हुए पद इतने अधिक थे कि उन सबका सग्रह करना सब के लिए कठिन था, अत सग्रहकर्ताओ ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उनका सकलन कर लिया और बाद मे लिपिकर्ताओ की रुचि के अनुसार भी उनमे पदो का न्यूनाधिक्य होता रहा । सूरसागर की उपलब्ध प्रतियो मे क्रम-भेद होने का यही कारण ज्ञात होता है । सूरसागर का सपादन होने के पूर्व उनके अधिक से अधिक पदों का सकलन होना चाहिए । फिर भागवत के क्रमानुसार उनका संपादन होना चाहिए, तब कही हम सूरसागर के सपादन करने की स्थिति मे होगे । इस पुस्तक मे उद्धृत सूरदास के पदो मे से २३५ पूरे पदो की सूची हमने अनुक्रमणिका में देदी है । इस सूची के अतिरिक्त स्थानाभाव से लगभग इतने ही पदों की कुछ पंक्तियाँ ही उद्धृत की गयी है । इस प्रकार इस पुस्तक मे लगभग ५०० पदो का उपयोग किया गया है । इन पदो मे से बहुत से पद

सूरसागर की मुद्रित प्रतियो मे नही मिलेगे। इनको हमने कीतन सग्रहो मे से सकलित किया है। सूरदास के अप्रचलित पदो का सग्रह करते समय इनका भी कुछ उपयोग हो सकेगा। सूरसागर का स्वरूप निश्चित कर हमने उन रचनाओ पर भी विचार किया है, जो सूरदास की स्वतत्र कृतियाँ मानी जाती है, किंतु वास्तव मे वे सूरसागर के ही अतर्गत है। सूरसागर का सपादन करते समय इन रचनाओ को उसमे यथास्थान सम्मिलित करना चाहिए। सूरदास की प्रमुख ३ रचनाओ के अतिरिक्त उनकी ४ छोटी किंतु स्वतत्र रचनाओ पर भी सक्षिप्त रूप से विचार किया गया है। सूरदास के पदो मे इसी नाम के कुछ अन्य कवियो के पद भी मिल गये है, जिनको पृथक् करने की अत्यत आवश्यकता है। हमने सूरदास के प्रामाणिक पदो की परीक्षा के सबंध मे भी कुछ संकेत किया है, जो प्रक्षिप्त पदों के पहचानने मे सहायक हो सकता है। इस परिच्छेद के अत मे हमने सूरदास कृत लाख—सवालाख पद-रचना की किंवदती पर भी विचार किया है। सूरदास के रचना-काल और रचना-क्रम की गणना द्वारा हमने निर्णय किया है कि यह किंवदंती सत्य हो सकती है।

चतुर्थ परिच्छेद सिद्धात-निर्णय मे हिंदी पाठकों के लिए कुछ नवीन सामग्री प्रस्तुत की गयी है। पुष्टि संप्रदायी कवि होने के कारण सूर-काव्य मे वल्लभाचार्य जी के सिद्धांत, उनकी भक्ति-भावना और सेवा-प्रणाली के तत्वो का समावेश होना स्वाभाविक है, किंतु उनका स्पष्ट दिग्दर्शन कराने की अभी तक बहुत कम चेष्टा हुई है। हमने शुद्धाद्वैत सिद्धांत के कतिपय प्रमुख तत्वो का विवेचन करते हुए यह बतलाया है कि इनका सूरदास की रचनाओ मे किस प्रकार उल्लेख हुआ है। इसके अनतर पुष्टिमार्गीय भक्ति और सेवा-विधि का विवेचन किया गया है। वल्लभाचार्य जी की भक्ति-भावना को न समझने के कारण सूरदास की शृंगार-भक्ति पूर्ण रचनाओ पर कभी-कभी अन्य सप्रदायो का प्रभाव बतलाया जाता है, किंतु मूल ग्रथो के उद्धरणो से हमने सिद्ध किया है कि वल्लभाचार्य जी को माधुर्य भक्ति भी ग्राह्य थी, जिसका प्रभाव सूरदास की शृंगारिक रचनाओ पर पड़ा है। हमने अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर पुष्टि सप्रदाय की सेवा-प्रणाली पर प्रकाश डाला है और सूरदास के तत्सबधी प्रचलित पदो के अतिरिक्त बहुत से बहुमूल्य अप्रचलित पदो को भी एकत्रित किया है। इस प्रकार हमारा विश्वास है कि यह परिच्छेद पुष्टि संप्रदाय का ज्ञान प्राप्त करने वाले पाठकों को उपयोगी और रोचक ज्ञात होगा।

पंचम परिच्छेद काव्य-निर्णय में सूरदास के काव्य की आलोचना की गयी है। इस संबंध मे अब तक जितना और जैसा लिखा जा चुका है, उससे अधिक और उत्तम लिखने की हममे योग्यता भी नहीं है। हमारा विचार पहले इस परिच्छेद को लिखने का नहीं था, किंतु हमारे कुछ मित्रो का सुझाव था कि विषय की पूर्णता के लिए इस परिच्छेद को लिखना भी आवश्यक है। जब लिखना आरंभ किया, तब इस विषय की सामग्री इतनी बढ गयी कि उसका समावेश इस पुस्तक मे संभव ज्ञात नहीं हुआ। इसलिए इस परिच्छेद मे सूर-काव्य संबंधी कुछ आवश्यक विषयो पर ही विचार किया गया है। संभव है पाठकों को इसमे भी कुछ काम की बाते मिल जावे। सूर-काव्य की विशेषताओं का विवेचन करते हुए हमने गो० तुलसीदास की कुछ रचनाओ पर सूरदास का प्रभाव बतलाया है। इस संबध मे हमने दोनो महाकवियो की रचनाओ के आवश्यक उद्धरण भी दिये हैं। इस परिच्छेद मे हम सूर-संगीत पर भी विस्तार पूर्वक लिखना चाहते थे। इसके लिए हमने संप्रदाय के प्रमुख कीर्तनकारो से परामर्श किया और सूरदास के अनेक पदों को राग-रागनियो के अनुसार क्रमबद्ध किया। हमको ज्ञात हुआ कि यह कार्य अत्यत श्रमसाध्य एव समयसाध्य है, जिसकी पूर्ति होने तक इस पुस्तक का प्रकाशन रोकना उचित नही है। वास्तव में यह एक स्वतंत्र कार्य है, जिसे संगीत शास्त्र का कोई अनुभवी विद्वान ही कर सकता है। हमने इस विषय का संकेत मात्र कर दिया है। इसके अतिरिक्त अन्य विषयो पर भी संक्षिप्त रूप से लिख कर हमने यह परिच्छेद समाप्त किया है।

पुस्तक के अंत मे तीन अनुक्रमणिकाएँ दी गयी है। प्रथम अनुक्रमणिका मे इस पुस्तक के पूरे पदो की अकारादि क्रम से सूची है। दूसरी नामानुक्रमणिका और तीसरी ग्रंथानुक्रमणिका मे इस पुस्तक में उल्लिखित व्यक्तियो एवं ग्रंथों के नामो की अकारादि क्रम से सूचियाँ हैं। इसके अनंतर कुछ ऐसे पूरे पदों का संकलन है, जिनकी कुछ पंक्तियाँ पुस्तक में प्रसगानुसार छापी गयी हैं।

अंत मे इस पुस्तक की लेखन-कथा और लेखन-शैली के संबध में भी कुछ कहना आवश्यक है। हम दोनों लेखको मे से एक गुजराती भाषा-भाषी और दूसरे हिंदी भाषा-भाषी है। एक का संबंध कांकरोली से और दूसरे का मथुरा से रहा है। हम दोनो ने विगत कई वर्षों से पृथक् क्षेत्रो में अष्टछाप के कवियो का अनुसंधान एवं अध्ययन किया है और तत्संबंधी अपनी रचनाएँ

प्रकाशित की हैं। साक्षात्कार का सुयोग मिलने के पूर्व ही हम उक्त रचनाओं के कारण एक दूसरे से परिचित हो गये और पत्र-व्यवहार द्वारा अपने विचारो का आदान-प्रदान करते रहे। अंत मे हमने मथुरा मे अपने सूर संबंधी अध्ययन-कार्य का सामंजस्य कर पारस्परिक सहयोग से यह पुस्तक प्रस्तुत की है। अपनी शोध के निष्कर्षों की तरह हमने इस पुस्तक की लेखन-शैली मे भी सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है। ऐसा करने पर भी यदि कहीं पर लेखन-शैली की एक-रूपता और भाषा का समान प्रवाह ज्ञात न हो तो इसका कारण दो भिन्न भाषा-भाषी लेखकों की रचना समझ कर पाठक हमको क्षमा कर सकते है। यहाँ पर हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते है कि इस ग्रंथ के निर्णय शुद्ध साहित्यिक शोध के आधार पर किये गये है। इनमे सांप्रदायिक आग्रह की गंध भी नहीं है। विद्वान आलोचको से निवेदन है कि वे इसी दृष्टि से हमारे निर्णयो पर विचार करेंगे। प्रस्तुत पुस्तक के संपादन और मुद्रण के समय एक लेखक के बार-बार अनुपस्थित और दूसरे के अस्वस्थ हो जाने के कारण इसके प्रकाशन मे आशातीत विलंब हो गया है और इसी कारण इसमे कुछ छापे की भूलें भी रह गयी हैं, जिनको विद्वान पाठक स्वयं सुधारने की कृपा करेंगे।

इस पुस्तक की रचना मे जिन प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रंथो से सहायता ली गयी है, उनमे से प्रमुख सहायक ग्रंथों की सूची पुस्तक के आरंभ मे दे दी गयी है। इसके अतिरिक्त और भी कुछ ग्रंथो तथा लेखो का उपयोग किया गया है। हस्त लिखित सामग्री के लिए पुष्टि संप्रदायी प्राचीन पुस्तकालयो एवं मंदिरो से तथा कतिपय अप्रचलित पदों के लिए संप्रदाय के प्रमुख कीर्तनकारो से बहुमूल्य सहायता मिली है। इन सब सज्जनो के हम अत्यन्त अनुगृहीत हैं और उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हम अपने आदरणीय डा० धीरेन्द्र वर्मा महोदय के भी अत्यंत आभारी हैं, जिन्होंने इस पुस्तक का परिचय लिखने की कृपा की है।

अग्रवाल भवन, मथुरा
श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी सं० २००६

द्वारिकादास परीख
प्रभुदयाल मीतल

सूर-काव्य की प्राचीन समालोचना

किधौं सूर कौ सर लग्यौ, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर कौ पद सुन्यौं, तन मन धुनत सरीर ॥

—तानसेन

★

सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केसवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकास ॥

★

तत्व-तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी।
बची-खुची कबिरा कही, और कही सब झूठी ॥

उक्ति, चोज, अनुप्रास, बरन अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निरवाह अर्थ, अदभुत तुक धारी ॥
प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि, हृदय हरि-लीला भासी।
जनम, करम, गुन, रूप, सबै रसना परकासी ॥
विमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन स्रवननि करै।
सूर-कवित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर-चालन करै ॥

—नाभाजी

कविता-करता तीनि है, तुलसी केसव सूर।
कविता-खेती इन लुनी, सीला बिनत मजूर ॥

★

उत्तम पद कवि गंग के, उपमा को बलबीर।
केसव अर्थ-गँभीरता, सूर तीन गुन बीर ॥

★

महा मोह मद छाइ, अंधकार सब जग कियौ।
हरि-जस सुभ फैलाइ, सूर सूर सम तम हर्यौ ॥

विषय-सूची



प्रथम परिच्छेद

सामग्री-निर्णय

विषय	पृष्ठ संख्या
(१) अंतः साक्ष्य	२
१. सारावली	२
२. साहित्य-लहरी	३
३. सूरसागर एवं स्फुट पद	७
(२) बाह्य साक्ष्य	१६
१. वार्ता साहित्य का प्रारंभ और विकास	१६
२. चौरासी वैष्णवन की वार्ता	२०
३. निज वार्ता	२२
४. भाव प्रकाश	२३
५. वल्लभ दिग्विजय	२५
६. संस्कृत वार्ता मणिमाला	२५
७. भक्तमाल	२६
८. भक्तमाल की टीकाएँ एवं अन्य रचनाएँ	२८
९. अष्टसखामृत	२९
१०. संप्रदाय कल्पद्रुम	३०
११. जमुनादास कृत धौल	३०
१२. भाव संग्रह	३२
१३. वैष्णवाह्निक पद	३२
१४. जन श्रुतियाँ	३२
(३) आधुनिक सामग्री	३२
१—सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री	३३
१. सूरसागर	३३
२. सूर-संकलन	३४
३. साहित्य-लहरी	३४

विषय	पृष्ठ संख्या
२-खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों मे सूर सबंधी सामग्री...	३७
१. मिश्रबंधु विनोद और हिंदी साहित्य का इतिहास ...	३७
२. हिंदी साहित्य का इतिहास	३७
३. हिंदी भाषा और साहित्य	३७
४ हिंदी साहित्य का इतिहास (डा० रमाल) ...	३८
५. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास .	३८
३—सूर सबंधी अध्ययनात्मक एव आलोचनात्मक सामग्री ...	४१
१ हिंदी नवरत्न	४१
२. सूरदास	४१
३. सूर-साहित्य	४१
४. भक्त-शिरोमणि महाकवि सूरदास	४१
५. सूरः एक अध्ययन	४१
६. सूर-साहित्य की भूमिका	४२
७ सूर : जीवनी और ग्रंथ	४३
८ सूर-सौरभ	४३
९. सूरदास (डा० ब्रजेश्वर वर्मा)...	४४
१०. सूरदास : एक अध्ययन	४४
११. अष्टछाप-परिचय	४५
१२. अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय	४५

★

द्वितीय परिच्छेद

चरित्र-निर्णय

१. नाम	४७
२. जन्म-भूमि और निवास-स्थान	४८
३. जन्म-तिथि	५१
४. वंश परिचय	५४
५. जाति	५६
६. अंधत्व	६१
७ आरंभिक जीवन और गृह-त्याग	७७

विषय | पृष्ठ संख्या

८ शरणागति एव शरणागति-काल ८१
९. ब्रजवास और कीर्तन-सेवा ८५
१०. श्रीनाथजी के प्रति आसक्ति ८७
११. "सूरसागर" नाम की प्रसिद्धि ८८
१२. अष्टछाप की स्थापना ८८
१३. अष्टछाप के कवियों का पारम्परिक सबध ९०
१४ अकबर से भेंट ९१
१५. सूर-तुलसी मिलन ९३
१६. गुरु-निष्ठा ९५
१७. लोक-कल्याण की भावना ९६
१८. उपस्थिति-काल ९६
१९. देहावसान १०२

★

तृतीय परिच्छेद

ग्रंथ-निर्णय

१. सूरदास के नाम से प्रसिद्ध ग्रथ १०५
२ सूरदास की प्रामाणिक रचनाएँ १०७
३. सूर-सारावली १०७
४. साहित्य-लहरी १४३
५ सूरसागर १६०
६. सूरसागर के अतर्गत रचनाएँ १६६
७. सूर साठी १६९
८. सूर पच्चीसी १६९
९ सेवा फल १६९
१०. सूरदास के पद १६९
११ प्रामाणिकता की परीक्षा १७०
१२. रचना परिमाण १७०
१३. अष्टछाप कृत सेवा विषयक वर्षोत्सव के पद ... १७४

चतुर्थ परिच्छेद

सिद्धांत-निर्णय

विषय	पृष्ठ संख्या
(१) सूरदास और शुद्धाद्वैत सिद्धांत... ..	१८३
१-परब्रह्म	१८३
१. परब्रह्म का निर्गुण-सगुणत्व . .	१८३
२. परब्रह्म अर्थात् कृष्ण	१८४
३ परब्रह्म का विरुद्ध धर्माश्रयत्व . . .	१८४
४. परब्रह्म की शुद्ध अद्वैतता	१८८
५ पुरुषोत्तम	१८९
६ पुरुषोत्तम की लीला	१८९
२-अक्षर ब्रह्म	१९४
३-जगत्	१९५
४-जीव	१०९
५-आत्म माया	२०१
(२) सूरदास और पुष्टिमार्गीय भक्ति	२०३
१ सूरदास और माधुर्य-भक्ति . ..	२०८
(३) सूरदास और पुष्टिमार्गीय सेवा	२१५
१ गुरु का आश्रय	२१६
२. नित्य की सेवा-विधि	२१९
३. वर्षोत्सव विधि	२२७
४ अन्य अवतारों की जयतियाँ	२४३
५. सेवा के विविध अग	२४५
६. सेवा मार्ग का शरण-तत्व	२५२
७. सेवा मार्ग का आचार-तत्व	२५६
सूरदास और पुष्टिमार्गीय तत्व.	२६६
१. पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरूप	२६६
२. अन्य अवतार और देवी-देवता... .. .	२७०
३. सूरदास के राम विषयक पद	२७०
४ पुष्टि भक्ति का स्वरूप .	२७१
५. बाल भाव मे किशोर भाव .	२७४
६. श्री वल्लभाचार्य जी के वचनो का अनुसरण ...	२७५

पंचम परिच्छेद
काव्य निर्णय

विषय				पृष्ठ संख्या
(१) सूर-काव्य की भाषा		..		२७६
१. काव्य का कलेवर	.		.	२७६
२ सूरदास से पहले की ब्रजभाषा		..	.	२७६
३. सूरदास की ब्रजभाषा	...	.		२८०
४. सूरदास की भाषा विषयक विशेषताऍं			...	२८१
५. सूरदास की मिश्रित भाषा	.	.	...	२८१
(२) सूर-काव्य की सरसता	.	.	..	२८३
१. काव्य की आत्मा	..	..	...	२८३
२. सूरदास के काव्य मे रस-परिपाक			.	२८३
३. शृंगार रस (संयोग शृंगार, विप्रलंभ शृंगार)			...	२८४
४ वियोग की दस दशाऍं	.	.	.	२८५
५ वात्सल्य (सयोग, वियोग)		..	. .	२८७
६. हास्य रस	...		...	२८६
७ वीर रस			..	२६०
८. करुण रस			..	२६१
६ वीभत्स रस	.	..	...	२६१
१० अद्भुत रस		...	.	२६२
११. भयानक रस	...	.	...	२६३
१२. रौद्र रस	..	..		२६३
१३ शांत रस	..	..		२६४
१४ सूर-काव्य का नायिकाभेद	..			२६५
(३) सूर-काव्य की कलात्मकता		...		३०१
१ भक्ति और कला का मिश्रण		.		३०१
२. काव्य कला और अलंकार	...	.		३०२
३ दृष्टकूट पदो की कलात्मकता		...		३०२
४. सूर-काव्य के अलंकार	.	...	...	३०३
५. नख शिख वर्णन	.		.	३१२
६ छंद विधान	...	...	...	३१२
७. कला पक्ष की अन्य बाते		...		३१२

विषय — पृष्ठ संख्या

(४) सूर-काव्य की कुछ विशेषताएँ ... ३१३
१ ब्रजभाषा के वाल्मीकि ३१३
२. परंपरा के निर्माता ३१३
३. सूर का गीति-काव्य ३१४
४. सूर और तुलसी ... ३१५
५ रूप-वर्णन ३२२
६. प्रकृति-निरीक्षण ३२५
७. चरित्र-चित्रण ३२७
८. कवि की बहुज्ञता ३३७

★

अनुक्रमणिका

१. पदानुक्रमणिका ३३६
२. नामानुक्रमणिका ३४७
३. ग्रंथानुक्रमणिका ३४६

सहायक ग्रंथों की सूची



संख्या	ग्रंथ	विवरण	रचयिता
१.	अणु भाष्य (संस्कृत) ...	ब्रह्मसूत्र भाष्य ...	वल्लभाचार्य जी
२.	सुबोधिनी (,,) ...	भागवत टीका ...	,,
३	पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम (संस्कृत)	,, ...	,,
४.	तत्वदीप निबंध (संस्कृत)	,, ...	,,
५	षोड़श ग्रंथ (,,)	(सिद्धांत मुक्तावली, पुष्टि प्रवाह मर्यादा, संन्यास निर्णय, विवेक धैर्याश्रय, सेवाफल, कृष्णाश्रय, अंतःकरणप्रबोध),	,,
६	विद्वन्मंडन (,,) ...	... ...	विट्ठलनाथ जी
७.	श्रृंगाररस मंडन(,,) ...	... ...	,,
८.	वल्लभ दिग्विजय(,,) ...	... ...	यदुनाथ जी
९.	शिक्षा पत्र (,,) ...	... ...	हरिराय जी
१०.	वार्ता मणिमाला(,,) ...	... ...	श्रीनाथ भट्ट
११.	हस्तलिखित वार्ता पुस्तक	सं० १७५६ में लिपिबद्ध एवं सरस्वती भंडार, कांकरोली में सुरक्षित	
१२.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	हस्त लिखित एवं मुद्रित...	गोकुलनाथ जी
१३.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता (लीला भावना वाली)	अग्रवाल प्रेस, मथुरा ...	हरिराय जी
१४.	निज वार्ता, घरू वार्ता तथा चौरासी बैठकन के चरित्र	लल्लूभाई छगनलाल ...	,,
१५.	संप्रदाय कल्पद्रुम ...	... ...	विट्ठलनाथ जी
१६	भाव संग्रह ...	... ...	द्वारिकेश जी
१७.	प्राचीन वार्ता रहस्य(द्वि.भा.)	विद्याविभाग,कांकरोली...	द्वारिकादास परीख
१८.	खट ऋतु वार्ता	चतुर्भुजदास कथित ...	,,
१९.	वार्ता साहित्य मीमांसा (गुजराती)	... ...	,,
२०.	श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता	... ...	सं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या
२१.	सूरसागर	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ...	सं० राधाकृष्णदास
२२.	सूरसागर	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	
२३.	सूरसागर	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	जगन्नादास 'रत्नाकर'
२४.	संक्षिप्त सूरसागर	... .	सं० बेनीप्रसाद

संख्या	ग्रंथ	विवरण	रचयिता
२५	सूरदास के पद	हस्त लिखित .	निजी संग्रह
२६.	कीर्तन संग्रह	प्रकाशित एवं हस्त लिखित	,,
२७	साहित्य-लहरी	पुस्तक भंडार, लोहरियासराय	सं० महादेव प्रसाद
२८	पंचमंजरी	(रसमंजरी, रूपमंजरी)	नंददास
२९.	भक्तमाल—भक्ति-रस-बोधिनी	.	नाभादास, प्रियादास
३०.	भक्तमाल—भक्तविनोद	.. ..	मियाँसिंह
३१.	रामरसिकावली	.. ..	रघुराजसिंह
३२.	भक्तनामावली	.. ...	ध्रुवदास
३३.	नागर समुच्चय	.. ..	नागरीदास
३४.	मूल गोसांई चरित्र		वेणीमाधव दास
३५	तुलसी ग्रंथावली, द्वितीय खंड	कवितावली, गीतावली श्री कृष्ण-गीतावली .	रामचंद्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास
३६	तुलसीदास	. . ..	माताप्रसाद गुप्त
३७.	भ्रमरगीत-सार	.. ..	रामचंद्र शुक्ल
३८.	सूर-पंचरत्न	. ...	भगवानदीन, मोहनवल्लभ पंत
३९.	सूर-समीक्षा	... .. .	नरोत्तमदास स्वामी
४०	सूर-मुक्तावली	.. . .	हरदयालुसिंह
४१	हिंदी साहित्य का इतिहास	... ..	रामचंद्र शुक्ल
४२.	हिंदी साहित्य	.	श्यामसुंदर दास
४३.	हिंदी साहित्य का इतिहास	..	रामशंकर शुक्ल 'रसाल'
४४.	हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास		रामकुमार वर्मा
४५.	हिंदी नवरत्न	...गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ	मिश्रबंधु
४६.	सूरदास (अंग्रेजी)	.. .	जनार्दन मिश्र
४७.	सूर-साहित्य	... .	हजारीप्रसाद द्विवेदी
४८.	भक्तशिरोमणि महाकवि सूरदास	.. .	नलिनीमोहन सान्याल
४९.	सूर-साहित्य की भूमिका		रामरतन भटनागर, वाचस्पति त्रिपाठी
५०.	सूरदासः एक अध्ययन	. . ... .	रामरतन भटनागर
५१.	सूर-सौरभ (भाग १,२)	. . ...	मुंशीराम शर्मा
५२	सूरदास	... ...	ब्रजेश्वर वर्मा
५३	अष्टछाप-परिचय	. ...	प्रभुदयाल मीतल
५४.	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	...	दीनदयालु गुप्त
५५.	सामयिक पत्र	(दिव्यादर्श, ब्रजभारती, सम्मेलन पत्रिका, नवीन भारत आदि)	

सूर-निर्णय



सूर-निर्णय



प्रथम परिच्छेद

सामग्री-निर्णय



हिंदी के अमर महाकवि एवं परम भक्त महात्मा सूरदास अपनी काव्य-रचनाओं के कारण जग-विख्यात् है, किंतु अन्य प्राचीन महाकवियों की तरह उनका भी क्रमबद्ध जीवन-वृत्तांत उपलब्ध नहीं है। इसका कारण यह है कि सांसारिक बातों के प्रति उदासीन होने के कारण उन प्राचीन भक्त कवियों ने अपने भौतिक जीवन के संबंध मे स्पष्ट एवं विस्तृत रूप से कुछ भी नहीं लिखा है।

जब से उन महाकवियों के काव्य का विशेष अध्ययन आरंभ हुआ है, तब से उनके विश्वसनीय और क्रमबद्ध जीवन-वृत्तांत की वैज्ञानिक शोध का आरंभ भी हो गया है। किसी कवि की रचनाओं के अंत साक्ष्य और उसके समकालीन एवं परवर्ती लेखकों की रचनाओं के वहिःसाक्ष्य उसके जीवन-वृत्तांत की शोध के प्रमुख साधन माने जाते है। सूरदास की क्रमबद्ध जीवन-घटनाएँ प्रस्तुत करने के लिए भी इन्हीं साधनों का अनिवार्य रूप से उपयोग किया जाता है।

सूरदास संबंधी आधार-सामग्री का इस प्रकार विभाग किया जा सकता है—

१. अंतःसाक्ष्य—सूरदास के आत्म-विषयक कथन, जो सारावली, साहित्यलहरी, सूरसागर एवं कवि कृत अन्य स्फुट पदो मे उपलब्ध है।

२. वाह्यसाक्ष्य—समकालीन एवं परवर्ती प्राचीन लेखकों की रचनाओं—जैसे वार्ता साहित्य, वल्लभ दिग्विजय, संस्कृत वार्त्ता-मणिमाला, भक्तमाल आदि—मे सूरदास संबंधी उल्लेख।

३. आधुनिक सामग्री—उपर्युक्त साधनो द्वारा प्राप्त सामग्री की आधुनिक विद्वानों द्वारा आलोचना।

उपर्युक्त सामग्री की सहायता से सूरदास का क्रमबद्ध एवं प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत उपस्थित करने के पूर्व हम इस आधार-सामग्री का विश्लेषण करना चाहते हैं, ताकि यह ज्ञात हो सके कि सूरदास की निर्णयात्मक समीक्षा के लिए यह सामग्री किस प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

१. अंतःसाक्ष्य

यद्यपि सूरदास ने अपनी विशालकाय रचनाओ मे अपने संबंध मे व्यवस्थित रूप से कुछ भी नही लिखा है, तथापि उनकी रचनाओ मे कही-कहीं पर ऐसे कथन अवश्य आ जाते है, जिनको हम उनके आत्म-विषयक उल्लेखो के रूप मे ग्रहण कर सकते है। इस प्रकार के कथनो के लिए सूरदास कृत सारावली, साहित्य-लहरी, सूरसागर एवं अन्य स्फुट पद उल्लेखनीय है।

सारावली—यह होली के वृहद गान के रूप मे एक बडी रचना है, जो ११०७ छंदो मे समाप्त हुई है। इसको प्रायः सूरसागर का सूचीपत्र कहा जाता है, किंतु यह सूरसागर से पृथक् एक स्वतंत्र रचना है। आजकल के कुछ विद्वान इसको सूरदास की कृति नही मानते है, किंतु हम इसे सूरदास की ही रचना स्वीकार करते है। इस संबंध मे हम अपना मत विस्तार पूर्वक आगामी पृष्ठो मे सूरदास के ग्रथ प्रकरण मे लिखेंगे। यहाँ पर हमको केवल यह बतलाना है कि इससे क्या-क्या अंतःसाक्ष्य उपलब्ध होते है।

महाप्रभु बल्लभाचार्य की शरण में आने के पूर्व सूरदास की मानसिक स्थिति का उल्लेख—

करम योग पुनि ज्ञान उपासन, सबही भ्रम भरमायौ।
श्री बल्लभ गुरु तत्त्व सुनायौ, लीला-भेद बतायौ ॥११०२॥

श्रीबल्लभाचार्य जी की शरण मे आने के पश्चात् ही उन्होने लीला विषयक पदो का गायन किया था, इसका उल्लेख—

ता दिन ते हरि लीला गाई, एक लक्ष पद बंद। ११०३।

उन्होने जिन लीलाओं का गायन किया था, उन्ही के सार रूप में सारावली की रचना की थी, इसका उल्लेख—

ताकौ सार सूर सारावलि, गावत अति आनंद ॥ ११०३ ॥
सरस संवतसर लीला गावै, जुगल चरन चित लावै। ११०७।

उन्होने अपनी ६७ वर्ष की आयु मे सारावली की रचना की थी, इसका उल्लेख—

गुरु-प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरष प्रबीन। ११०२।

साहित्य लहरी—यह दृष्टिकूट पदो का एक अत्यत जटिल एवं क्लिष्ट काव्य ग्रंथ है। इसके विषय मे भी प्रायः ऐसा समझा जाता है कि इसके पद सूरसागर से ही संकलित किये गये है, किंतु वास्तव मे यह भी एक स्वतत्र रचना है। इसके विषय मे भी कुछ विद्वानो की सम्मति है कि यह सूरदास की कृति नहीं है, किंतु हम इसे भी सूरदास की ही रचना मानते है। इस संबंध मे अपना विस्तृत कथन हम आगामी पृष्ठो मे सूरदास के ग्रंथो का विवरण लिखते हुए उपस्थित करेंगे। यहाँ पर हम केवल यह बतलाना चाहते है कि इसके कौन-कौन से कथन हम सूरदास की जीवन घटनाओ के अंतःसाक्ष्य रूप मे ग्रहण कर सकते है।

'साहित्य-लहरी' का रचना-काल और उसकी रचना के हेतु का उल्लेख—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनद कौ लिखि, सुबल संबत पेख॥
नंदनदन मास, छै तें हीन त्रितिया, बार—
नंदनंदन जनम ते है बान, सुख-आगार॥
त्रितिय रीछ, सुकर्म जोग, विचारि 'सूर' नवीन।
नदनंदन दास हित 'साहित्य-लहरी' कीन॥ १०९॥

'साहित्य-लहरी' के ११८ वे पद मे सूरदास की वंश-परंपरा का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। सूरदास की रचनाओ के अत साक्ष्य मे उनके स बध मे इतना इतिवृत्त और कहीं नहीं मिलता है, इसलिए 'साहित्य-लहरी' एव इसके उक्त पद को प्रामाणिक एवं अप्रामाणिक मानने वाले प्रायः प्रत्येक लेखक ने इसका उल्लेख किया है। साहित्य-लहरी की समाप्ति इसी पद स० ११८ पर हुई है, किंतु इससे पूर्व १०९ वे पद में ग्रंथ-समाप्ति की तिथि एवं उसकी रचना का उद्देश्य बतलाया जा चुका है। पद स० ११८ के पश्चात् दो उप-संहारो मे ४३ पद और दिये गये है*। 'साहित्य-लहरी' के ११८ पद सूरसागर मे नहीं मिलते है, किंतु उपसंहार के ४३ पद सूरसागर से ही संकलित किये गये हैं।

'साहित्य-लहरी' के ११८ वे पद का मुख्यांश इस प्रकार है—

प्रथम ही प्रथ जाग तें भे प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखि नाम अनूप॥
× ×
तासु बंस प्रसंस मे भौ चंद चारु नवीन॥

* पुस्तक भडार, लहेरिया सराय द्वारा स० १९९६ मे प्रकाशित प्रति।

तासु बंस अनूप भौ हरचंद अति विख्यात ॥
आगरे रहि गोपचल मे रह्यौ ता सुत बीर।
पुत्र जनमे सात वाके महा भट गंभीर ॥
× ×
भयौ सातौ नाम सूरजचंद मंद निकाम ॥
सो समर करि साहि सो सब गये विधि के लोक।
रह्यौ सूरजचद दृग ते हीन भरि-भरि सोक ॥
× ×
प्रवल दच्छिन विप्र कुल ते शत्रु ह्वै है नास।
× ×
माहि मनसा इहै ब्रज की बसी सुख चित थाप।
श्री गुसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप ॥
विप्र प्रथ के याग को हौं भाव भूर निकाम।
'सूर' है नँदनद जू कौ लियौ मोल गुलाम ॥११८॥

इस पद का सारांश इस प्रकार है—

'आरंभ मे पृथु के यज्ञ से एक अद्भुत पुरुष प्रकट हुआ। ब्रह्मा ने विचार कर उसका नाम ब्रह्मराव रखा। उसके प्रशंसनीय वंश में चंद हुआ। उसके वंश में हरचंद विख्यात व्यक्ति हुआ। उसके वीर पुत्र ने आगरे मे रह कर गोपाचल मे निवास किया। उसके सात महावीर पुत्र हुए। सातवें का नाम सूरजचद है। उसके छै पुत्र बादशाह से युद्ध करते हुए परलोक वासी हो गये। मैं सातवाँ नेत्रहीन होने के कारण रह गया। भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझे वरदान दिया कि दक्षिण के प्रबल विप्र कुल से तेरे शत्रुओं का नाश होगा। मेरे मन मे ब्रजवास की इच्छा हुई और गोस्वामी विट्ठलनाथ ने मेरी अष्टछाप मे स्थापना की। मै पृथु के यज्ञ का ब्राह्मण हूँ। 'सूर' नंदनंदन जी का मोल लिया गुलाम है।'

यदि यह पद सूरदास रचित है, तो उनके वंश-परिचय आदि के लिए यह निःसंदेह बड़ा महत्वपूर्ण है, किन्तु इस पद में जहाँ इतिहास विरुद्ध कथन एवं कई शंकाएँ उपलब्ध है, वहाँ इसकी पुष्टि अन्य अंतःसाक्ष्यों एवं बहिःसाक्ष्यो से भी नहीं होती है, बल्कि विश्वसनीय बाह्यसाक्ष्य इसके विरुद्ध ही प्राप्त होते हैं। हमारे मतानुसार 'साहित्य-लहरी' सूरदास की रचना होते हुए भी इसका यह पद सूरदास रचित नही है। किसी अन्य कवि ने इसकी रचना की है, अतः यह प्रक्षिप्त एवं अप्रामाणिक है। हमारा मत निम्न कारणों पर आधारित है—

(१) सूरदास ने छोटी-बड़ी कई रचनाएँ की हैं, किंतु उन्होंने अपने संबंध में इतना विस्तृत और स्पष्ट रूप से कहीं भी नहीं लिखा है। उन्होंने अपनी वंश-परंपरा और जाति आदि के प्रति उदासीनता ही प्रकट नहीं की है, बल्कि एक पद में उन्होंने भगवद्भक्ति के लिए अपनी जाति को छोड़ देने का भी कथन किया है†। ऐसी दशा में अपने वंश का ऐसा वि तृत वर्णन कर 'विप्र प्रथ के याग कौ हौ भाव भूर निकाम' द्वारा गर्व पूर्वक अपने को ब्राह्मण कहना सूरदास द्वारा संभव नहीं है।

(२) इस पद में प्रयुक्त 'दक्षिण के प्रबल विप्रकुल' का अभिप्राय निश्चय पूर्वक पेशवाओं है, जो सूरदास से प्रायः दोसौ वर्ष पश्चात् हुए थे। इस कथन के कारण 'मिश्रबंधु' और शुक्लजी आदि हिंदी के प्रायः सभी इतिहास-कारों ने इस पद को प्रक्षिप्त माना है। जो विद्वान 'दक्षिण के विप्रकुल' का अभिप्राय पेशवाओं की अपेक्षा महाप्रभु बल्लभाचार्य से, और 'शत्रुओं' का अभिप्राय मुसलमानों की अपेक्षा भक्ति में बाधा डालने वाले काम-क्रोधादि से बतलाते हैं‡, वे अर्थ की खींचातानी करते हैं। पद के आद्योपांत पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह अर्थ संगत नहीं है। अपने छै भाइयों की मृत्यु के कारण उनके शत्रु मुसलमान थे, जिनके नाश की वे कामना करते थे। यह समस्त पद सूरदास के भौतिक जीवन से संबध रखता है, अतः इसकी समस्त पंक्तियों का अर्थ भी भौतिक ही करना चाहिए। समस्त पद का भौतिक और केवल एक पंक्ति का आध्यात्मिक अर्थ करना असंगत है।

(३) इस पद में बतलाया गया है कि फिर सूरदास की इच्छा ब्रजवास करने की हुई। वहाँ जाने पर गोसाईं विट्ठलनाथ ने उनकी अष्टछाप में स्थापना की। 'चौरासी वार्ता' से ज्ञात होता है कि ब्रजवास करने के पूर्व उन्होंने अपना निवास स्थान मथुरा–आगरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान को बनाया था। वहीं पर श्री बल्लभाचार्य जी से उन्होंने दीक्षा ली थी। इस पद में सूरदास के गुरु बल्लभाचार्य जी का उल्लेख न होकर गो० विट्ठलनाथ का उल्लेख होने वह से इसे निश्चित रूप से किसी अन्य व्यक्ति की रचना सिद्ध करता है। सूरदास के शरणागत होने के समय तो गोस्वामी विट्ठलनाथ का जन्म भी नहीं हुआ था। इस घटना के लगभग ३५ वर्ष पश्चात् गो० विट्ठल-नाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की थी।

† मन, बच, क्रम सत भाउ कहत हौं, मेरे स्याम धनी।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरी भक्ति लगि, तजी जाति अपनी॥
—सूरसागर पद १०७ (वें० प्रे०)

‡ सूर सौरभ, प्रथम भाग पृ० २०

(४) ग्रंथ के अंत मे उसके समाप्त होने की तिथि और उसकी रचना का उद्देश्य लिखा जाता है, किंतु 'साहित्य लहरी' के पद सं० १०९ में ग्रंथ-समाप्ति की तिथि और उसकी रचना का हेतु वर्णित होने पर भी उसके बाद के ११८ वें पद मे इस प्रकार का कथन संगत ज्ञात नहीं होता।

(५) इस पद को अप्रामाणिक सिद्ध करने का एक और भी कारण है, जिस पर अभी तक किसी भी विद्वान आलोचक का ध्यान नही गया है। 'साहित्य लहरी' के पूर्वोक्त १०९ वें पद में इसका रचना-काल बतलाया गया है। इस पद मे प्रयुक्त 'रसन' शब्द का अर्थ लगाने में विद्वानो में मतभेद है। कुछ विद्वान इसका अर्थ शून्य (०), कुछ एक (१) और कुछ दो (२) लगाते हैं। इस प्रकार 'साहित्य लहरी' का रचना-काल भिन्न-भिन्न विद्वानो के मतानुसार सं० १६०७, १६१७ और १६२७ बतलाया जाता है। उपर्युक्त पद में प्रयुक्त 'गोसाई' शब्द साहित्य-लहरी के रचना-काल के विरुद्ध पड़ता है। बल्लभ सम्प्रदाय के इतिहास से सिद्ध है कि सं० १६३४ के पश्चात् ही विट्ठलनाथजी 'गोसाईं' कहलाने लगे थे, इससे पूर्व वे 'दीक्षित' अथवा 'प्रभुचरण' संज्ञाओं से प्रसिद्ध थे। विट्ठलनाथ जी को 'गोसाईं' उपाधि संभवतः अकबर बादशाह द्वारा प्रदान की गयी थी। ऐसी दशा में अधिक से अधिक सं० १६२७ पर्यंत रची हुई 'साहित्य-लहरी' का गोसाईं शब्द निश्चित रूप से उक्त पद को अप्रामाणिक सिद्ध कर देता है।

(६) इस पद मे दी हुई सूरदास की वंशावली और उनकी जीवन घटनाओं का उल्लेख इसी रूप मे श्री हरिराय जी कृत भावना युक्त 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे नहीं है। श्री हरिरायजी की यह भावना सं० १७५२ मे लिखित 'अष्टसखान की वार्ता' के नाम से 'प्राचीन वार्ता रहस्य' द्वितीय भाग मे कॉकरौली विद्या विभाग द्वारा छापी जा चुकी है और अब वह संपूर्ण रूप मे तीन जन्म की लीला भावना वाली 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के नाम से प्रथम बार अग्रवाल प्रेस, मथुरा द्वारा प्रकाशित हुई है। यदि इस पद मे दी हुई वंशावली प्रामाणिक होती और वह श्री हरिराय जी के पूर्व स्वयं सूरदास द्वारा लिखी जा चुकी थी, तो श्री हरिराय जी को बाद मे उसके विरुद्ध कथन करने का कोई कारण नहीं था।

(७) इस पद की अप्रामाणिकता का सबसे मुख्य कारण यह है कि यह पद दृष्टिकूट शैली का नहीं है। 'साहित्य-लहरी' का प्रत्येक पद दृष्टिकूट है, यहाँ तक कि उसका रचना-काल विषयक सं० १०९ का पद भी इसी शैली का है, फिर समस्त ग्रंथ की शैली के विरुद्ध इस पद की अप्रामाणिकता निश्चित है।

उपर्युक्त कारणो से 'साहित्य-लहरी' का यह पद अप्रामाणिक सिद्ध हो जाता है, अतः इसे अंतःसाक्ष्य के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता है। यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह पद 'साहित्य-लहरी' की प्रति मे किस प्रकार सम्मिलित हो गया। इसके उत्तर मे हम भी डा० दीनदयाल गुप्त के इस अनुमान का समर्थन करते है—

'ज्ञात होता है कि यह पद सरदार कवि तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चद्र जी से पहले 'साहित्य-लहरी' के किसी टीकाकार अथवा लिपिकार ने मिलाया था *।'

सूरसागर एवं स्फुट पद—सूरदास की सबसे प्रमुख रचना सूरसागर है। सारावली, साहित्य-लहरी तथा कतिपय अन्य छोटी रचनाओ के अतिरिक्त सूरदास द्वारा रचित समस्त पद साहित्य सूरसागर के अंतर्गत मान लिया जाता है। हम सूरसागर की रचना-प्रणाली और उसके निश्चित स्वरूप के सबंध मे आगामी पृष्ठो में सूरदास के ग्रंथ प्रकरण मे लिखेगे। यहाँ पर उसकी मुद्रित प्रतियो के आधार पर हम अंतःसाक्ष्य के उल्लेखों पर विचार करना चाहते हैं। जो पद वर्तमान छपी हुई प्रतियों मे प्राप्त नहीं होते, उनको यहाँ पर स्फुट पद मान लिया गया है। इन स्फुट पदो की प्रामाणिकता की परीक्षा भी आगामी पृष्ठों मे सूरसागर के साथ की जावेगी।

अंतःसाक्ष्य के रूप में निम्न लिखित पद उल्लेखनीय है—

उच्च जातीयता सूचक उल्लेख—

१. मेरे जिय ऐसी आय बनी।
'सूरदास' भगवंत भजन लगि तजी जाति अपनी ॥

२. बिकानी हौं हरि-मुख की मुसकानि।
गई ज्ञाति, अभिमान, मोह, मद, पति, हरिजन पहिचानि ॥

जन्मांधता सूचक उल्लेख—

१. जिन तेरौ गोविंद नाम धरयौ।
'सूर' की बिरियाँ निठुर ह्वै बैठे, जन्म अंध करयौ ॥

२. नाथ मोहिं अब की बेर उबारौ।
करम हीन, जनम कौ अंधौ, मोतें कौन नकारौ ॥

३. हरि बिन संकट मे को का कौ।
रह्यौ जात एक पतित, जनम कौ आँधरौ 'सूर' सदा कौ ॥

* 'अष्टछाप और बल्लभसंप्रदाय' पृष्ठ ६२

गृह-त्याग का समय निर्देश और आरंभिक जीवन सबंधी उल्लेख—

१. प्रभु मैं सब पतितन कौ राजा।
आयौ अबेरौ, चलौ सबेरौ, लेकर अपने साजा॥

२. मन! तू मूरख क्यों कर रह्यौ।
पहलौ पन खेलन मे खोयौ, वृथा जनम गयौ॥

स्वामित्व सूचक उल्लेख—

१. हौं हरि सब पतितन कौ नायक।
सिमिट जहाँ-तहाँ ते सब कोऊ, आय जुरे इक ठौर॥

२. प्रभु मैं सब पतितन कौ टीकौ।
मरियत लाज 'सूर' पतितन में, कहत सबै मोहि नीकौ॥

शरण मे आने से पूर्व की रचना का आभास—

१. जियरा कौन नींद करि सोयौ।
'सूर' हरी कौ सुमिरन करिलै, मिलिजा जाते (भयौ) बिछोयौ॥

शरणागति सूचक उल्लेख—

१. श्री बल्लभ अब की बेर उगारौ।
'सूर' अधम को कहूँ ठौर नहीं, बिनु एक सरन तुम्हारौ॥

२. मन रे! तू भूल्यौ जनम गँवावै।
'सूरदास' बल्लभ उर अपने चरन कमल चित लावै॥

३. मन रे! तै आयुप वृथा गँवाई।
अजहू चेत कृपाल सदा हरि, श्री बल्लभ सुखदाई।
'सूरदास' सरनागत हरि की, और न कछू उपाई॥

शरण-काल सूचक उल्लेख—

श्री बल्लभ दीजै मोहि बधाई।
चिरजीवो अक्का जी कौ सुत श्री बिट्ठल सुखदाई।

नाममंत्र-प्राप्ति सूचक उल्लेख—

अजहू सावधान किन होहि।
कृष्ण नाम सो मंत्र संजीवनि, जिन जग मरत जिवायौ।
बार-बार है स्रवन निकट, तोहि गुरु गारुडी सुनायौ॥

समर्पण सूचक उल्लेख—

यामैं कहा घटैगौ तेरौ ।
नंदनँदन कर घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहै चेरौ ।
सबै समर्पन 'सूर' स्याम कों यहै साँचौ मत मेरौ ॥

पुष्टि मार्ग का स्पष्ट उल्लेख—

१. हरि मैं तुम सों कहा दुराऊँ ।
जानत को पुष्टि-पथ मोसो, कहि-कहि जस प्रगटाऊँ ॥
मारग-रीति उदर के काजै, सीख सकल भरमाऊँ ।
अति आचार चारु सेवा करि, नीके करि-करि पंच रिझाऊँ ॥

२. नाम-महिमा ऐसी जो जानो ।
मर्यादादिक कहे, लौकिक सुख लहे,
पुष्टि को पुष्टि-पथ निश्चय जो मानो ॥

मार्ग की उच्चता का उल्लेख—

हौं पतित सिरोमनि सरन परयौ ।
यह ऊँचो संतन कौ मारग, ता मारग मे पैंड धरयौ ॥

ब्रज-बास एवं माता-पिता की विमुखता—

ब्रज बसि का के बोल सहौं ।
तुम बिन स्याम और नहिं जानौं, सकुचति तुमहिं रहो ॥
धृग माता, धृग पिता, विमुख तुव भावै तहाँ बहो ॥

गोकुल, वृंदावन, मथुरा-गमन सूचक उल्लेख—

१. ब्रजभूमि मोहिनी मैं जानी ।
मोहन नारि गोकुल की ठाढ़ी बोलत अमृत बानी ॥

२. वृंदाबन एक पलक जो रहियै ।
'सूरदास' बैकुंठ मधुपुरी, भाग्य बिना कहाँ तें पइयै ॥

श्रीनाथ जी का इष्ट विषयक उल्लेख—

१. अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी ।
श्रीनाथ सारंगधर कृपा कर मोहि,
सकल अघ हरन हरि, गरुड़गामी ॥

२. श्री गोवर्धनधर प्रभु, परम मंगल कारी ।
उधरे जन 'सूरदास' ताकी बलिहारी ॥

श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन करने का उल्लेख—

मेरी तौ गति-पति तुम, अनतहि दुख पाऊँ ।
'सूर' कूर आँधरौ, मै द्वार परयौ गाऊँ ॥

निवास-स्थान और ढाढी विषयक उल्लेख—

नंद जू ! मेरे मन आनंद भयौ सुनि गोवरधन तें आयौ ।
हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी 'सूरदास' मेरौ नाँउ ॥

सख्यता सूचक उल्लेख—

१. तुम ही मोको ढीट कियौ ।
प्रभु तुम मेरी सकुचि मिटाई, जोई-जोई माँगत पेलि ।
२. आज हौं एक-एक करि टरि हौं ।
मोहि कहा डरपावत हौ प्रभु, अपने पूरे पर लरि हौं ॥

प्रकृति सूचक उल्लेख—

(दीनता) १. हरि ! मै तुम सो कहा दुराऊँ ।
तुम जानत अंतर की बाते, जो-जो उर उपजाऊँ ॥
२. हरि-भक्तन को गर्व न करनो ।
यह अपराध परम पद हू ते उतर नरक में परनो ।
हौं धनवंत, ये भिक्षुक, यह कबहू चित्त न धरनो ॥
(सत्संग) करहु मन हरि-भक्तन कौ संग ।

गुरु-निष्ठा सूचक उल्लेख—

१. भरोसौ दृढ़ इन चरनन केरौ ।
'सूर' कहा कहै द्विविध आँधरौ, बिना मोल कौ चेरौ ॥
२. हरि हरि-हरि हरि सुमिरन करो । हरि-चरनारविंद उर धरो ॥
हरि गुरु एक रूप नृप जान । तामे कछु संदेह न आन ॥
गुरुप्रसन्न हरि प्रसन्न जोई । गुरु के दुखित दुखित हरि होई ॥
३. हरि-हरि-हरि सुमिरन करो । हरि चरनारविंद उर धरो ॥
श्रीमद् बल्लभ प्रभु के चरन । तिनकों गहो सुदृढ़ करि सरन ॥
विट्ठलनाथ कृष्ण सुत जाके । सरन गहे दुख नासहि ताके ॥

'सूरसागर' का नामोल्लेख—

है प्रभु मोहू तें अति पापी ।
सागर सूर बिकार जल भरयौ, बधिक अजामिल बापी ॥

उपस्थिति सूचक उल्लेख—

१ बिनती करत मरत हौ लाज ।
तीनो पन भरि बहोरि निबाह्यौ, तोऊ न आयौ बाज ॥

२. मोसो बात सकुच तजि कहि हैं ।
तीनौं पन मैं ओर निबाही, इहै स्वांग को काछै ॥

सिद्धांत विषयक उल्लेख—

१. कृष्ण भक्ति करि कृष्णहि पावै ।
कृष्णहि ते यह जगत प्रगट है, हरि मे लय ह्वै जावै ॥
यह दृढ़ ज्ञान होय जासो ही, हरि-लीला जग देखे ।
तौ तिहि दुख-सुख निकट न आवै, ब्रह्म रूप करि लेखें ॥
हरि है तिहूँ लोक के नायक, सकल भली सो करि हैं ।
'सूरदास' यह ज्ञान होय जब, तब सुख सो नर तरि हैं ॥

२. राधिका गेह हरि देह बासी, और त्रियन घर तनु प्रकासी ।

३. सुनत सुत मन अति हरषायौ ।
जग प्रपंच हरि रूप लहै जब, दोष भाव मिट जैहै ॥

४. अरे मन मूरख जनम गँवायौ ।
यह संसार सुआ सेमर ज्यो सुंदर देखि लुभायौ ।
चाखन लाग्यौ रूई उडि गई, हाथ कछू नहीं आयौ ॥

५. ब्रज ही मे बसै आपुनहि बिसरायौ ।
प्रकृति पुरुष एक करि जानहु, वा तन भेद करायौ ॥
द्वैत न जीव एक हम तुम दोउ, सुख कारन उपजायौ ॥

राम-कृष्ण की अभेदता सूचक उल्लेख—

जै गोविद माधौ मुकुंद हरि, कृपासिधु कल्यान कंस अरि ।
रामचंद्र राजीवनयन वर, सरन साधु श्रीपति सारंगधर ॥

ज्योतिष ज्ञान विषयक उल्लेख—

नंद जू ! मेरे मन आनँद भयौ सुनि मथुरा ते आयौ ।
लगन सोधि ज्योतिष कों गिनिकै चाहत तुम्हे सुनायौ ॥

शकुन ज्ञान विषयक उल्लेख—

मिलै गोपाल सोई दिन नीकौ ।
भद्रा भली भरणी भय हरणी, चलत मेघ अरु छींकौ ॥

भागवत स्वरूप सूचक उल्लेख—

१. निगम कल्पतरु पक्व फल, सुक मुख तें जु दयो ।

२. निगम कल्पतरु, सीतल छाया ।
द्वादस पेड़, पुष्टि घन पल्लव, त्रिगुण तत्व व्यापै नहि माया ॥

३. श्री भागवत सकल गुन खानि ।
सर्ग, विसर्ग, स्थान रु पोषण, उति, मन्वंतर जानि ।
ईश, प्रलय, मुक्ति, आश्रय पुनि ये दस लच्छन होय ॥

सुबोधिनी का उल्लेख—

कहा चाकरी अटकी जन की ।
करम ज्ञान आसय सब देखे, वहाँ ठौर नहि पाँव धरन की ।
श्री सुकदेव वचन आसय, सुनो सुबोधिनी टीका जिनकी ॥

गुरू प्रसाद से भागवत ज्ञान की प्राप्ति—

१. धन्य सुक मुनि भागवत बखान्यौ ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना कहि गान्यौ ।

२. गुरु बिनु ऐसी कौन करैं ।
भवसागर तें बूढ़त राखे दीपक हाथ धरे ॥

खडी बोली की रचना-शैली—

१. मैं योगी यस गाया रे बाला ।
तेरे सुत के दरसन कारन मैं कासी से धाया रे बाला ॥

२. बरजो जसोदा जी कहाना ।
ये क्या जानें रस की बतियाँ क्या जाने खेल जहाना ॥

३. हे दैया मतवाला योगी द्वारे मेरे आया है ।
देखो मैया तेरा बालक जिन म्योय चटक लगाया है ॥

सूरसागर की मुद्रित एवं अमुद्रित प्रतियों मे कुछ ऐसे भी पद प्राप्त होते हैं, जो सूर विषयक इतिहास के परिचायक होते हुए भी प्रक्षिप्त एवं अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं। ऐसे पदों के अंतःसाक्ष्य से सूरदास के अनुसंधान में भ्रमात्मक मत बनाया जा सकता है, अतः उनके संबंध में विशेष सावधानी की आवश्यकता है ।

निम्न लिखित पद के अंतःसाक्ष्य से सूरदास के जाट जातीय होने की कल्पना की जा सकती है—

हरि जू ! हौ यातें दुख पात्र ।
श्री गिरिधरन चरन रति ना भई, तजि विषया रस मात्र ।।
हुतौ आढय तब कियौ असद् व्यय, करी न ब्रज बन-यात्र ।।
पोषे नहि तुव दास प्रेम सो, पोष्यौ अपनौ गात्र ।
भवन सँवारि नारि रस लोभ्यौ सुत बाहन जन भ्रात्र ।।
महानुभाव पद निकट न परसे, जान्यौ न कृत विधात्र ।
छल-बल करि जित तित हरि पर धन धायौ सब दिन रात ।।
सुद्धासुद्ध बहु बोझ बहेउ सिर कृषि जो करेउ ले दात्र ।
हृदय कुचील काम भू तृषना जल कलिमल है पात्र ।
ऐसे कुमति जाट सूरज को, प्रभु बिन कौन उधात्र ।।

यह पद सूरसागर की मुद्रित प्रति मे है, किंतु कांकरोली सरस्वती भंडार की हस्त लिखित प्रति मे नहीं है। सूरदास के प्रामाणिक पदो के आधार पर जब इस पद की परीक्षा की जाती है, तब निम्न बातें ज्ञात होती है—

(१) सूरदास के किसी भी पद के अंतिम शब्द 'पात्र' 'मात्र' 'धात्र' जैसे कठोर उच्चारण वाले हमारे देखने मे नहीं आये ।

(२) सूरदास के किसी भी पद से उनकी धनाढयता तथा नारी, पुत्र, भवन, वाहन आदि की विद्यमानता सिद्ध नही होती है ।

(३) सूरदास के पदों मे खेती का दृष्टांत होते हुए भी स्वय उनके द्वारा खेती करने की बात ज्ञात नही होती है ।

(४) सूरदास की सार्थक शब्द-योजना की शैली को देखते हुए इस पद की आरंभिक टेक के 'हरि' और 'दुख पात्र' शब्द परस्पर विरुद्ध है ।

• •

उपर्युक्त कारणों से यह निश्चय पूर्वक कहा जासकता है कि यह पद सूरदास रचित नही है, अतः प्रक्षिप्त एवं अप्रमाणिक है । सूरदास की छाप के कुछ पद ऐसे भी मिलते है, जिनसे बल्लभ संप्रदाय के अतिरिक्त उनके अन्य संप्रदाय के अनुयायी होने की भी कल्पना की जा सकती है । सूरदास की रचना-शैली से उन पदो की तुलना करने पर वे भी प्रक्षिप्त एव अप्रामाणिक सिद्ध होते है।

हम इस प्रकार के दो पद देकर यह बतलाना चाहते है कि आवश्यक सावधानी बिना अंत.साक्ष्य द्वारा भी किस प्रकार भ्रमात्मक धारणा की पुष्टि हो सकती है।

निम्न लिखित पद से सूरदास के विट्ठलविपुल के सेवक होने की कल्पना की जा सकती है—

मथुरा दिन-दिन अधिक ,बिराजै।
तेज प्रताप राय केशौ कौ, तीन लोक मे गाजै ।।
कोटिक तीरथ जहँ चलि आवै, मधि विश्रांत विराजै।
करि अस्नान प्रात जमुना कौ. जियत मरत भै भाजै ॥
श्री विट्ठलविपुल विनोद विहारिन ब्रज कौ बसिवौ छाजै।
'सूरदास' सेवक तिनही के, कहत सुनत गिरिराजै ।।

सार्थक शब्द-योजना सूरदास के काव्य का प्रमुख गुण है, अतः उनके प्रामाणिक पदों का प्रत्येक शब्द महत्वपूर्ण अर्थ का सूचक है। उनके पदों में निरर्थक अथवा भरती के शब्द ढूँढने पर भी नहीं मिलते। उपर्युक्त पद की जाँच जब हम इस दृष्टि से करते है, तब निम्न बातें ज्ञात होती है—

(१) इस पद की अंतिम आधी पंक्ति 'कहत सुनत गिरिराजै' निरर्थक शब्द-योजना है, क्यो कि इसका कोई संगत अर्थ नही है। इसलिए सूरदास की शैली के विरुद्ध होने के कारण यह पद अप्रामाणिक है।

(२) इसी प्रकार 'सूरदास सेवक तिनही के' वाली पंक्ति भी सूरदास की रचना-प्रणाली से मेल नही खाती है। सूरदास ने अपनी किसी भी रचना मे इस प्रकार का स्पष्ट कथन नही किया है। स्वयं वल्लभाचार्य जी के लिए भी उन्होने इस प्रकार का उल्लेख नही किया है, यद्यपि उनके लिए उन्होने गुरु सूचक शब्दो का प्रयोग किया है।

(३) विट्ठलविपुल निंबार्क संप्रदाय की शाखा टट्टी संप्रदाय के प्रवर्त्तक सुप्रसिद्ध संगीताचार्य श्री हरिदास जी के शिष्य और उनके उत्तराधिकारी थे। यदि सूरदास को वल्लभाचार्य जी की शरण मे आने के पूर्व विट्ठलविपुल का शिष्य माना जाता है, तब यह ऐतिहासिक काल-क्रम और उनके स्वामित्व के बाह्य साक्ष्य के विरुद्ध पड़ता है।

(४) बल्लभ संप्रदाय में आने के पूर्व यदि उनको हरिदासी संप्रदाय का शिष्य माना जाय, तो हमको ऐसा प्रबल कारण ढूँढना होगा, जिससे उनको एक वैष्णव संप्रदाय का त्याग कर दूसरे वैष्णव संप्रदाय मे आने को वाध्य होना पड़ा। जहाँ तक हमारा सूर विषयक अध्ययन है, हमको उनके पदों के अंतःसाक्ष्य से ऐसा कोई कारण दिखलायी नहीं देता है।

(५) इस प्रकार संप्रदाय-परिवर्तन से सूरदासो के विचारो की अस्थिरता प्रकट होती है, जो उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। सूरदास को जीवन-घटनाओ पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि वे स्थिर विचार और दृढ आग्रह के व्यक्ति थे। उनकी रचनाओं के अंतःसाक्ष्य—"मारग रोक परयौ हठ द्वारे पतित-सिरोमनि सूर"—से भी यही सिद्ध होता है।

इसी प्रकार निम्न लिखित पद भी प्रक्षिप्त एवं अप्रमाणिक सिद्ध होता है—

कह्यौ भागवत सुक अनुराग। कैसै समुझै बिनु बड भाग।
श्री गुरु सकल कृपा करी ॥
"सूर" आस करि बरण्यौ रास। चाहत हौ वृंदाबन बास।
श्रीराधावर इतनी कर कृपा ॥
निस-दिन स्याम सेउँ मै तोहिं। इहै कृपा करि दीजै मोहि।
नव निकुंज सुख पुंज मे ॥
हरिवंसी हरिदासी जहाँ। हरि करुणा करि राखहु तहाँ।
नित विहार आभार है ॥
कहत सुनत बाढ़त रस रीति। वक्ता स्रोता हरिपद प्रीति।
रास रसिक गुन गाइ हौ † ॥

इस पद की अप्रामाणिकता के निम्नलिखित कारण हैं—

(१) सूरदास के किसी भी पद मे उनके नाम की छाप आ जाने के पश्चात् इतनी पंक्तियाँ लिखी हुई नही मिलती है।

(२) हरिवंशी और हरिदासी दोनो भिन्न-भिन्न मत है और दोनो की लीला भावनाओ मे भी अंतर है, अतः दोनों का एकीकरण असंगत है।

(३) सूरदास के पुष्टिमार्ग की रास विषयक भावना उक्त दोनो संप्रदायो से भिन्न है,अतःउनके साथ रहने की अभिलाषा असंगत ज्ञातहोती है।

(४) यदि यहाँ भूतल के वृंदावन से तात्पर्य लिया जाय तो पुष्टिमार्ग की मान्यता के अनुसार चंद्रसरोवर ही सारस्वत कल्प का वृंदाबन है, जहाँ उस समय रास हुआ था। सूरदास इसी कारण वहाँ रहते थे, अतः श्वेतवाराह कल्पीय वृंदावन और उसकी लीला से उनको कोई प्रयोजन नहीं था। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकारसे भी अपने परम इष्ट श्रीनाथजी की सेवा छोडकर सूरदास इस वृंदावन में हरिवंशी और हरिदासी संप्रदाय वालों के साथ मे रहने की अभिलाषा किस प्रकार कर सकते थे !

† सूरसागर (वें० प्रे० बंबई) पृ० ३६३

२. बाह्य साक्ष्य

बाह्य साक्ष्य के रूप मे सूरदास सबंधी उल्लेखों का सब से अधिक संग्रह बल्लभ संप्रदाय के वार्ता साहित्य मे उपलब्ध होता है। इस साहित्य मे 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'निज वार्ता' और उन पर श्री हरिराय जी कृत 'भाव प्रकाश' मुख्य रचनाएँ है। इनके द्वारा सूरदास के जीवन-वृत्तांत की जितनी सामग्री प्राप्त होती है, उतनी अन्य समस्त साधनो के सम्मिलित कर देने से भी नहीं होती है। इसलिए वार्ता साहित्य के पक्ष एवं विपक्ष मे लिखने वाले सभी साहित्यिक विद्वानों ने सूरदास के चारित्रिक अनुसंधान के लिए उक्त सामग्री का अनिवार्य रूप से उपयोग किया है। हमने भी सूरदास के चरित्र-निर्माण के लिए उक्त सामग्री को प्रधान माध्यम के रूप मे स्वीकार किया है, अतः उसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता के संबंध मे यहाँ पर कुछ विवेचन करना आवश्यक है।

वास्तविक बात यह है कि हिंदी साहित्य के विद्वानों ने बल्लभ संप्रदाय के वार्ता साहित्य का अभी तक अनुसंधान पूर्वक गंभीर अध्ययन नहीं किया है। यही कारण है कि अपने अपर्याप्त ज्ञान के कारण कुछ विद्वान वार्ता साहित्य को अनुपयोगी एवं अप्रामाणिक सिद्ध करने लगते है। हमने कई वर्षो से इस साहित्य की परिश्रम पूर्वक शोध की है और तत्संबंधी अल्प ज्ञान के आधार पर हम दृढ़ता पूर्वक कह सकते है कि इसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता मे संदेह करना व्यर्थ है। इस साहित्य की यथार्थ शोध करने पर ऐसी बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है, जो प्राचीन हिंदी साहित्य के इतिहास के संशोधन एव उसके नव निर्माण में अत्यंत सहायक सिद्ध होती है। वार्ता साहित्य संबंधी भ्रम के निराकरण के लिए हम उसके आरंभ का इतिहास बतलाना चाहते है।

वार्ता साहित्य का प्रारंभ और विकास

कांकरोली सरस्वती भडार के हस्त लिखित ग्रंथों मे हिंदी बध संख्या १०१×१ मे १२८ प्रसंगों वाली एक वार्ता पुस्तक सुरक्षित है, जिसकी अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है—

'सं० १७४६ वर्षे श्रावण सुदी ७ शुक्रे पोथी लिखी छे, प्रती गोविंददास ब्राह्मण नी पोथी थी लख्युं छे"

इस पुष्पिका से सिद्ध है कि यह वार्ता पुस्तक सं० १७४६ मे गोविंददास ब्राह्मण की प्रति से लिपिबद्ध की गयी थी। इस पुस्तक के एक उल्लेख से

यह सिद्ध होता है, कि गोविंददास ब्राह्मण की प्रति श्री गोकुलनाथ जी के समय मे लिखी गयी थी। वह उल्लेख इस प्रकार है—

'श्री आचार्यजी के सुसरके घर ते श्रीनाथ †जी पधारे। श्रीअक्काजी के साथ पॉव धारे सो प्रथम सेवा श्रीनाथजू की श्रीआचार्यजू करते सो श्रीगुसाईं जी ने करी। सो श्री गोकुलनाथजू माथे सेवा श्रीनाथजू बिराजत है। बात अनिर्वचनीय है।"

इस उद्धरण की वर्तमान काल की क्रिया 'विराजत है' से ज्ञात होता है कि पुस्तक लिखते समय श्री गोकुलनाथ जी विद्यमान थे। श्री गोकुलनाथ जी का समय सं० १६०८ से १६६७ तक है। इस प्रति के एक प्रसंग से वार्ता साहित्य के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पडता है, अत. उसका आवश्यक अंश यहॉ पर दिया जाता है—

'एक समे गोवर्द्धनदास परम भागवतोत्तम उज्जैन में कृष्णभट्ट के घर आए। सो कृष्णभट्ट ने आगो भलो कीनो। भोजन करवायो। भोजन करि बैठे तब भट्ट जी ने कह्यो कछु सुनावो" रात्रि दिवस वैष्णवन की वार्ता करे। सो करते करते तीन दिन तीन रात बितीत भई। चोथे दिवस देह की सुधि भई तब भट्टानी ने उनको स्नान करवायो महा प्रसाद लिवायो। सो आज्ञा मांगि कें अपने देश को चले। तब कृष्णभट्ट ने ए बातै लिखी। सो प्रति दिन इन को पाठ करे। और कोऊ भगवदी वैष्णव आवे तासो कहे। यों करते भट्ट जी को सरीर थक्यो तब गोविंद भट्ट बेटा सो कह्यो बाबा ए पोथी अरु घर की सोज सब गोकुल पठइओ। तदुउपरांत गोविन्द भट्ट श्री गोकुलनाथजू के सेवक...... *

सो एसे करत बहुत वर्ष बीते तब नेत्र बल घस्यो। तब बिचार कियो "श्री भागवत श्रीसुबोधिनी टीका टिप्पनी सब पोथी अरु भेट वैष्णव जब चले तब उनको सोपी, कही श्रीवल्लभ (श्रीगोकुलनाथजी का नाम है) के आगे धरियो। अरु कही बाप की वस्तु बेटा पावे। वे वैष्णव चले सो श्री गोकुल आये श्री गोकुलनाथजु के आगे राखी भेट अरु पोथी। पत्र श्री महाप्रभु (गोकुलनाथ जी) ने बांच्यो। तब हृदो भरि आयो। अरु कही' यह निवेदन। इतनी कही तब पोथी श्री

† यहॉ पर श्रीनाथजी से अभिप्राय ठाकुर गोकुलनाथ जी से है।

* इस उद्धरण की पूर्ति के लिये कॉकरौली से प्रकाशित 'दिव्यादर्श' मासिक की फाइलें देखनी चाहिए।

हस्त सों खोली। तब बीच छोटी चोपरी निकसी तब बांची। बांचि के आंखि सो लगाई अरु हृदो भरि आयो। सो नित ग्रन्थ पाठ करते। एक वार्ता अरु दोई। बांधि के पेटी मे धरिके तारो मारिके भोजन को पधारे।

यो करत बहुत बरस बीते। तब नेत्र को प्रकार भयो। तब श्रीरायजू सो कही जो पोथी पेटी में है सो लावो। तब श्री रायजु ने पेटी खोलिके पोथी हाथ मे दीनी। लेकर नेत्र सो लगाई। फेरि रायजू को दीनी रायजू ने पेटी मे धरी सो नित्य यो करे।

सो एक दिवस रायजू ने देखी सो नीकी लागी तब इनके प्रिय श्रीगोपालजू हते सो बात रायजूने कही हमारे वैष्णवन की बात है। तब गोपालजू ने कही जो देखिए तब इन नांही कही। वह देखी न जाय अन्नाजी बहुत जतन करि राखत है। तारे मे है। और मो पास मांगत है तब आनि देतहूँ। फिरि कहत है जो धरी, तब कहूँ जो हांजू। तब भोजनको पांउ धारत है। तब फिरि गोपालजू ने कही कि तुम एक बात करो। जब उनको देत हो तब तुमको वे फिरि देत हैं तब इतनी करो जो और मे धरिके पेटी को तारा दीजो। अरु वे पूछे तारो दीयो तब कहि जो दीयो। तब कही जो भले। फिरि जब दूसरे दिन श्रीगोकुलनाथजी मांगी तब रायजू ने आय दीनी। तब श्रीजू नेत्र सों लगाय के फेरि दीनी तब रायजू और मे धरि भोजन को पधारे। श्रीजू तो भोजन करिके पोढ़े। पाछे रायजू तो गोपालजू के घर पधारे। तब पोथी गोपालजू कों दीनी। तब पोथी बांचि बांचि के गदगद कठ भए। पाछे नारायणदास लेखक कों बुलायो। तब पोथी लिखवाई। सो उनने दो प्रति कीनी। एक उसको दीनी दूसरी लेखक पास रही। सो गोपालजू रायजू ने जानी नांही। सनेहीजी के आगे कहे। सो वाके एक ओर सनेही रहे सो वाने उनको कही। तब उन कह्यो यह सिखाय देहु। तब उनने लिख दीनी। एसे पांच सात प्रति भई। तब एक प्रति धनजी भाई चोपरा के तिन देखी। तब श्रीजू के आगे बात करी। तब श्रीजू चोंके खोज कियो। वे सब बुलाए। परस्पर पूछे पाछे जानी जो रायजू को काम है। तब कह्यो गोप्य वस्तु प्रगट भई भगवत इच्छा मानी।"

इस उद्धरण से वार्ता साहित्य का आरंभिक इतिहास ज्ञात होता है और इससे तत्संबंधी कई शंकाओं का समाधान भी हो जाता है। इससे निम्न लिखित महत्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं—

(१) गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक उज्जैन निवासी परम विद्वान कृष्णभट्ट ने संप्रदाय मे उस समय तक प्रचलित वार्ताओं को सर्व प्रथम लेखबद्ध किया था। वे उन वार्ताओ का स्वयं पाठ करते थे और आगत भगवदीय वैष्णवो मे उनकी चर्चा करते थे। उपर्युक्त उल्लेख से स्पष्ट है कि गोवर्धनदास और कृष्णभट्ट जैसे उद्भट विद्वानो में जिन वार्ताओं की चर्चा निरंतर तीन दिन और तीन रात्रि तक हुई, वे वार्ताएँ यथेष्ट संख्याओ मे होनी चाहिएँ और उनका संबंध किन्ही परमादरणीय व्यक्तियो से होना चाहिए। इससे ज्ञात होता है कि वे वार्ताएँ महाप्रभु बल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी के सेवकों की थी, जिनका ज्ञान उनको किसी विश्वस्त सूत्र से अथवा स्वयं अपने अनुभव से हुआ होगा। वार्ताओ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महाप्रभु जी के अनेक सेवक गो० विट्ठलनाथ जी के समय मे भी विद्यमान थे और गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक तो उक्त दोनो भगवदीय वैष्णवों—गोवर्धनदास और कृष्णभट्ट—के समकालीन ही थे।

(२) कृष्णभट्ट द्वारा लेखबद्ध की गयी वार्ताओ की पोथी उनके अनतर उनके पुत्र गोविंदभट्ट द्वारा श्री गोकुलनाथ जी को अर्पित की गयी। श्री गोकुलनाथ जी अपने अतरंग सेवकों मे उन वार्ताओं के दो-एक प्रसंगों की चर्चा प्रति दिन किया करते थे। इसके उपरांत वे उस प्रति को बडी सावधानी से ताले मे बद कर रख देते थे। उपर्युक्त उल्लेख मे वार्ताओ की उस प्रति को 'छोटी चोपरी' लिखा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि वह प्रति श्री मद्-भागवत अथवा सुबोधिनी जैसे ग्रंथो की अपेक्षा छोटी थी। उसे १०-२० पन्नो की छोटी पुस्तक नही समझनी चाहिए। यदि वह इतनी छोटी होती, तो उसके प्रसंगो की चर्चा अहर्निश तीन दिनो तक निरंतर कैसे होती रहती!

(३) श्री गोकुलनाथ जी के पुत्र श्री विट्ठलेशराय ने अपने पिता से छिपा कर उक्त पोथी की प्रतिलिपि करवायी और उस प्रति के आधार पर फिर अनेक प्रतियाँ तैयार हुईं। इस प्रकार जिन वार्ताओ की चर्चा पहले संप्रदाय के अंतरंग व्यक्तियो तक ही सीमित थी, वह बाद मे संप्रदाय के सामान्य भक्तों मे भी प्रचलित हुई। नाभा जी कृत भक्तमाल एवं उस समय की अन्य रचनाओ मे उक्त वार्ता पुस्तकों का नामोल्लेख न देखकर जो विद्वान उनकी प्राचीनता मे संदेह करने लगते हैं, उनको यह ज्ञात होना चाहिए कि तब तक उन वार्ताओ का ज्ञान संप्रदाय के भी कुछ अंतरग व्यक्तियों को ही था, संप्रदायेतर अन्य व्यक्तियो को उनका ज्ञान न होना कोई आश्चर्य की बात नही थी।

कृष्णभट्ट द्वारा लेखबद्ध वार्ताओं की जिस प्रति का ऊपर उल्लेख हुआ है, उसमे 'चौरासी' अथवा 'दोसौ बावन' का क्रम नहीं था। श्री गोकुलनाथ जी ने उन क्रमरहित वार्ताओं को श्री आचार्य जी और श्री गोसाई जी के सेवकों के अनुसार क्रमबद्ध किया था। वे सुबोधिनी की कथा के अनन्तर कृष्णभट्ट की पोथी के आधार पर उक्त वार्ताओं का विस्तार पूर्वक कथन किया करते थे।

श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित एव 'चौरासी' और 'दोसौ बावन' के रूप मे विभाजित वार्ताओं को बाद मे श्री हरिराय जी ने सकलित किया। श्री हरिराय जी ने गोकुलनाथजी द्वारा कही हुई वार्ताओं का और भी विस्तार किया। गोकुलनाथ जी द्वारा कहे हुए प्रसंगो मे जहाँ कुछ न्यूनता अथवा अपूर्णता दिखलाई दी, वहाँ पर श्री हरिराय जी ने अपनी भावना नामक टिप्पणी लिख कर पूर्ति की। इस प्रकार आचार्य जी एव गोसाई जी के समय में जो वार्ताएँ प्रचलित थीं, वे कृष्णभट्ट द्वारा लेखबद्ध होकर गोकुलनाथ जी के समय में प्रसिद्ध हुई। बाद मे श्री हरिराय जी द्वारा विस्तृत होकर उनका लोक मे प्रचार हुआ।

यह वार्ता साहित्य के आरंभ और उसके विकास का इतिहास है, जिसे जान लेने पर उसकी प्राचीनता एव प्रामाणिकता के संबंध मे सदेह नहीं किया जा सकता है। इस वार्ता साहित्य मे सूरदास सबधी बाह्य साक्ष्य के लिए चौरासी वैष्णवन की वार्ता, निज वार्ता और उन पर हरिराय जी कृत भावप्रकाश प्रमुख है। अब क्रमशः उक्त रचनाओ पर विचार किया जाता है—

चौरासी वैष्णवन की वार्ता—वार्ता साहित्य में सूरदास सबंधी उल्लेखो के लिए 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' प्रमुख है, जो आचार्य जी के सेवकों का आदर्श उपस्थित करने के लिए श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित हुई है। इसकी प्राचीनता की पुष्टि श्री गोकुलनाथ जी रचित चौरासी वैष्णवों की संस्कृत नामावली, श्री यदुनाथ जी कृत 'बल्लभ दिग्विजय' (स० १६५८ मे रचित) और श्री गोसाई जी के सेवक अलीखान पठान कृत ८४ वैष्णवों के नामो वाले पद आदि अनेक प्रमाणो से होती है।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता एवं अन्य मूल वार्ताओं में भक्तो के प्रासगिक चरित्रो का कथन किया गया है, जिनका विशदीकरण और जिनकी पूर्ति श्री हरिरायजी ने अपने भावप्रकाश द्वारा की है। मूल चौरासी वार्ता में सूरदास संबंधी उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

निवास स्थान का उल्लेख—

'सो गऊघाट आगरे और मथुरा के बीचो बीच है। सो गऊघाट ऊपर सूरदास जी कौ स्थल हुतौ।'

स्वामी होने का उल्लेख—

'सो सूरदास जी स्वामी आप सेवक करते। सूरदासजी भगवदीय है···ताते बहुत लोग सूरदास जी के सेवक भये हुते।'

शरण-काल सूचक उल्लेख—

'सो श्री आचार्य जी महाप्रभु गऊघाट ऊपर उतरे। सो सूरदासजी के सेवक देखि के सूरदास जी सो जाय कही जो आज श्री आचार्यजी महाप्रभु आप पधारे है, जिनने दक्षिण मे दिग्विजय कीयो है, सब पंडितन को जीते है, भक्तिमार्ग स्थापन कीयौ है।'

'पाछे समयानुसार भोग सराय अनोसरि करिके महाप्रसाद लेके, श्री आचार्य जी महाप्रभु गादी ऊपर विराजे।'

सम्प्रदाय प्रवेश सूचक उल्लेख—

'तब श्री महाप्रभुजी ने प्रथम सूरदास जी को नाम सुनायौ, पाछे समर्पण करवायौ और फिर दशम स्कंध की अनुक्रमणिका कही··'

लीला-गायन और भागवत के अनुसार पद-रचना का उल्लेख—

'तब सूरदास जी ने भगवल्लीला वर्णन करी। पाछे सूरदासजी ने बहुत पद कीये।···पाछे जो पद कीयै सो श्री भागवत प्रथम स्कंध ते द्वादश स्कंध तांई कीये।'

अंधत्व का उल्लेख—

'तब श्री आचार्य जी महाप्रभून ने अपने श्री मुख सो कह्यो जो सूरदास श्री गोकुल को दर्शन करौ। सो सूरदास जी ने श्री गोकुल को दडवत करी।'

'तब सूरदास जी सों कह्यौ, 'जो सूरदास ऊपर आउ स्नान करिके श्रीनाथ जी कौ दर्शन करि।'

'देशाधिपति ने पूछ्यौ जो सूरदास जी तुम्हारे लोचन तो देखियत नाही। सो प्यासे कैसें मरत है और बिन देखें तुम उपमा को देत हौ, सो तुम कैसें देत हौ।

श्रीनाथजी के कीर्तन का आदेश विषयक उल्लेख—

'तब श्री महाप्रभू जी अपने मन मे विचारे जो श्रीनाथजी के यहाँ और तो सब सेवा मंडान भयौ और कीर्तन को मंडान नाही कियौ है ताते सूरदास जी को दीजियै'

सहस्त्रावधि पद-रचना और सूरसागर का उल्लेख—

'सूरदास जी ने सहस्त्रावधि पद कीये है ताको सागर कहियै सो जगत मे प्रसिद्ध भये।'

अकबर भेंट का उल्लेख—

'सो सूरदास जी के पद देशाधिपति ने सुने सो सुनिकें यह विचारो जो सूरदास जी काहू विधि सो मिले तो भलौ। सो भगवदिच्छा ते सूरदासजी मिले। तब सूरदासजी ने देशाधिपति के आगे कीर्तन गायौ।'

उपस्थिति सूचक उल्लेख—

'बहुर सूरदास जी श्रीनाथजीद्वार आयकें बहुत दिन ताईं श्रीनाथ जी की सेवा कीनी। बीच-बीच में श्री गोकुल श्रीनवनीत प्रिया जी के दर्शन को आवते।'

गुरु और ईश्वर मे अभेदता सूचक उल्लेख—

'सूरदास जी बोले जो मै तो सब श्री आचार्य जी महाप्रभून को ही जस वर्णन कियौ है कछू न्यारौ देखूं तौ न्यारौ करूँ।'

देहावसान काल सूचक उल्लेख—

'सो राजभोग आरती करिके श्रीगुसाईं जी श्री गिरिराज ते नीचे उतरे सो आप परासोली पधारे। भीतरिया सेवक रामदास जी प्रभृत और कुंभनदास जी और श्री गुसाईं जी के सेवक गोविंदस्वामी चत्रभुजदास प्रभृत और सब श्री गुसाईं जी के साथ आये।....तब श्री गुसाईं जी ने पूछौ जो सूरदास जी नेत्र की वृति कहाँ है। तब सूरदास जी ने एक पद और कह्यौ। इतनों कहत ही सूरदास जी ने या शरीर को त्याग कीयौ।'

निज वार्ता—यह वार्ता श्री गोकुलनाथ जी कथित है और उस पर श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश भी उपलब्ध है। इसके एक उल्लेख से सूरदास जी की जन्म-तिथि इस प्रकार ज्ञात होती है—

'सो सूरदास जी जब श्रीआचार्य जी महाप्रभु को प्राकट्य भयो है तब इनको जन्म भयो है। सो श्रीआचार्य जी सो ये दिन दस छोटे हुते।'

भावप्रकाश—श्री गोकुलनाथ जी कथित वार्ताओं की पूर्ति श्री हरिराय जी ने अपने भावप्रकाश की रचना द्वारा की है। जिस प्रकार प्रियादास ने अपनी टीका द्वारा नाभाजी कृत भक्तमाल का विस्तार किया है, उसी प्रकार श्री हरिराय जी ने गोकुलनाथ जी कथित वार्ताओं का विशदीकरण किया है।

श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश में उनकी संस्कृत रचना 'शिक्षापत्र' के कई उद्धरण उपलब्ध होते हैं। इससे जाना जा सकता है कि भावप्रकाश की रचना शिक्षापत्र की रचना के पश्चात् हुई है। शिक्षापत्र के आंतर उल्लेखों से उसकी रचना का समय सं० १७०० से १७२८ तक सिद्ध होता है, अतः भावप्रकाश का समय इसके पश्चात् का हो सकता है। श्री हरिराय जी का समय सं० १६४७ से १७७२ तक है, अतः भावप्रकाश का रचनाकाल सं० १७२८ से १७७२ तक होना चाहिए। सं० १७५२ की लिखी हुई भावप्रकाश की प्रति संप्रदाय में उपलब्ध है। उससे भी उक्त समय की पुष्टि होती है। भावप्रकाश की भाषा शैली और उसके सैद्धांतिक उल्लेखों से उसके रचयिता श्री हरिराय जी सिद्ध होते हैं। इसकी वाह्य पुष्टि हरिराय जी के संबंधी, सेवक और समकालीन काका बल्लभ जी (जन्म स० १७०३) रचित चौरासी वैष्णवों के लीलात्मक नाम वाले बृहद् गुर्जर धोल से होती है।

मूल चौरासी वार्ता मे सूरदास का उल्लेख तब से आरंभ होता है, जब वे गऊघाट पर रहा करते थे। वहाँ पर रहते हुए वे महाप्रभु बल्लभाचार्य के शिष्य थे। इसके पूर्ववर्ती प्रसङ्गो की शृङ्खला श्रीहरिराय जी ने अपने भावप्रकाश मे मिलायी है। श्री हरिराय जी के कथन से सूरदास संबंधी उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होते हैं--

जन्म स्थान और जाति विषयक उल्लेख--

'सो सूरदास जी दिल्ली के पास चारि कोस ऊरे में एक सीही गाम है,…सो ता गाम मे एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ प्रकटे।'

जन्मांधता का उल्लेख—

'सो सूरदास जी के जन्मत ही सो नेत्र नांही हैं।'

शकुन विषयक उल्लेख—

'सो जो कोई पूछे तिनकों सगुन बतावे, सो होइ।

स्वामी विषयक उल्लेख—

'सो सूरदास स्वामी कहवाये, बहोत मनुष्य इनके सेवक भये।

गायन कला के ज्ञान का उल्लेख–

'सो सूरदास विरह के पद सेवकन को सुनावते। सो सब गायबे के बाजे को सरजाम सब भेलो होय गयो।'

'सूरदास को कंठ बहोत सुंदर हतो। सो गान विद्या मे चतुर ''।'

ग्राम त्याग और गऊघाट निवास का उल्लेख –

'या प्रकार सूरदास तलाब पे पीपर के वृक्ष नीचे बरस अठारे के भये। तब सूरदास उहां ते चले ''सो यह विचारि के सूरदास मथुरा और आगरे के बीचो बीच गऊ घाट है, तहाँ आयके '' रहे।'

आचार्य जी द्वारा दीक्षा एवं ज्ञान-प्राप्ति का उल्लेख –

'तब श्री आचार्य जो ने कृपा करिके सूरदास को नाम सुनायो। ता पाछे समर्पन करवायो। पाछे आप दसम स्कंध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास को सुनाये। ' सो सगरी श्री सुबोधिनी जी को ज्ञान श्री आचार्य जी ने सूरदास के हृदय मे स्थापन कियो। तब भगवल्लीला जस वर्णन करिबे को सामर्थ्य भयो। '' ता पाछे श्रीआचार्य जी ने सूरदास कूं 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनायो।'

भागवत के अनुसार पद रचना करने का उल्लेख—

'तब सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय मे स्फुरी। सो सूरदास ने प्रथम स्कध श्री भागवत सो द्वादश स्कंध पर्यंत कीर्तन वर्णन किये।'

सूरसागर का उल्लेख –

'और सूरदास को जब श्री आचार्य जी देखते तब कहते जो आवो सूरसागर।'' '

उपस्थिति सूचक उल्लेख—

'अब श्री आचार्य जी आप अंतर्ध्यान लीला किये और श्री गुसाईं जी को करनो है। सो पहले भगवदीयन कूं नित्य लीला मे स्थापन करिके आपु पधारेंगे।'

नामों का उल्लेख –

'सो इन सूरदास जी के चारि नाम हैं। श्री आचार्य जी आप तो 'सूर' कहते। ''और श्री गुसांई जी आप 'सूरदास' कहते।'''और तीसरो इनको नाम 'सूरजदास' है। श्री गोवर्द्धननाथ जी ने पचीस हजार कीर्तन आपु सूरदास जी कों करि दिये। तामे 'सूरश्याम' नाम धरे। सो या प्रकार सूरदास जी के चारि नाम प्रकट भये। सो सूरदास जी के कीर्तन मे चारों 'भोग' कहे हैं।'

वल्लभ दिग्विजय—इस ग्रंथ की रचना गो० विट्ठलनाथ जी के छठे पुत्र श्री यदुनाथ जी ने सं० १६५८ मे की थी। यदुनाथ जी का जन्म सं० १६१५† मे हुआ था, इसलिए वे सूरदास के देहावसान के समय प्रायः २५ वर्ष के थे। सूरदास के समकालीन होने के कारण उनका उल्लेख विशेष प्रामाणिक है। श्री ब्रजेश्वर वर्मा ने इसे स्वीकार करते हुए भी किंचित अनिश्चितता इस प्रकार प्रकट की है—

"इस ग्रंथ का रचना-काल देखते हुए इसकी प्रामाणिकता मे संदेह का स्थान कम है, यदि वास्तव मे यह ग्रंथ इसी संवत् का तथा श्री यदुनाथ का ही रचा हुआ है§।"

इस ग्रंथ की प्रामाणिकता निश्चित है। इसके रचना-काल का उल्लेख इसकी पुष्पिका* में हुआ है और इसके यदुनाथ जी कृत होने की स्पष्ट सूचना इसके ७१ वर्ष बाद रचे गये 'संप्रदाय कल्पद्रुम'‡ से प्राप्त होती है।

इस ग्रंथ के एक उल्लेख से सूरदास के शरण-काल और उनकी जाति विषयक महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। उसमे कहा गया है कि अडैल से ब्रज जाते हुए महाप्रभु वल्लभाचार्य ने एक सारस्वत ब्राह्मण सूरदास पर कृपा की थी। वह उल्लेख इस प्रकार है—

"ततोऽलर्कपुरे समागताः। तत्राऽऽवासः कृतः। ततो ब्रज-समागमने सारस्वत सूरदासोऽनुगृहीतः‡‡।"

संस्कृत वार्ता मणिमाला—इस ग्रंथ के रचयिता श्रीनाथ भट्ट मठपति तैलंग ब्राह्मण थे। उनके रचे हुए संस्कृत भाषा के अनेक ग्रंथ संप्रदाय मे प्राप्त है। उनकी ब्रजभाषा की पद रचनाएँ भी अब उपलब्ध हुई है।

---

† श्री वल्लभ-वंशवृक्ष

§ सूरदास पृ० ३३

* वसुबाणरसेन्द्वब्दे तपस्य सितके रवौ।
चमत्कारिपूरे पूर्णो ग्रन्थोऽभूत सोमजा तटे॥

‡ श्री वल्लभ दिग्विजय करि, श्री यदुनाथ सुजान।
परंपरा वर्णन जु प्रभु, कीनेहु भूपति मान॥

‡‡ वल्लभ दिग्विजय, पृ० ५०

उनके एक पद के आधार पर वे गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक सिद्ध होते हैं†, अत. वे सूरदास के प्राय. समकालीन होने चाहिए। उनकी रचना मे महाप्रभु जी और गुसाईं जी के अतिरिक्त किसी अन्य गोस्वामी बालक का उल्लेख नहीं मिलता है, यहाँ तक कि श्री गोकुलनाथ जी का भी उन्होने उल्लेख नही किया है। इससे भी उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

इस ग्रंथ मे उस समय उपलब्ध वार्ताओ के अनेक प्रसंगो का संस्कृत पद्य मे अनुवाद किया गया है। इससे जहाँ वार्ताओ की महत्ता ज्ञात होती है, वहाँ उनकी प्राचीनता भी सिद्ध होती है। ब्रजभाषा रचनाओं का संस्कृत मे अनुवाद होना उस समय के लिए एक विशेष बात थी। यह ग्रंथ ३७०७ श्लोको मे पूर्ण हुआ है और इसमे १२५ वार्ता प्रसंगो का कथन किया गया है। इस ग्रंथ की दो विशाल-काय हस्त प्रतियाँ कांकरोली विद्या विभाग के सरस्वती भंडार मे सुरक्षित है। इसकी आरंभिक १६ वार्ताएँ 'प्राचीन वार्ता रहस्य' प्रथम एव तृतीय भाग मे प्रकाशित हो चुकी है।

इस ग्रंथ की ४८ वीं वार्ता सूरदास से संबंधित है। उस वार्ता के निम्न-लिखित उल्लेख से सूरदास की जन्मांधता और उनके ब्राह्मण होने की सूचना प्राप्त होती है—

"जन्मांधो सूरिदासोऽभूत प्राच्यो ब्राह्मण उन्मदः।"

भक्तमाल—इस ग्रंथ की रचना एक रामोपासक भक्त कवि नाभाजी ने की है। उन्होने अपने समकालीन एव पूर्ववर्ती अनेक भक्तो का परिचयात्मक वर्णन किया है। गोसाईं विट्ठलनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधर जी के संबंध मे लिखते हुए उन्होंने 'श्री गिरिधर भ्राजमान' शब्दो का प्रयोग किया है। इस वर्तमान काल की क्रिया से सिद्ध होता है कि भक्तमाल की रचना गिरिधर जी के आचार्यत्व-काल मे हुई थी। श्री गिरिधर जी के आचार्यत्व का समय सं० १६४२ से १६७७ तक है, अतः भक्तमाल की रचना का समय सं० १६६० के लगभग ज्ञात होता है।

---

† प्रगटे श्री विट्ठल ब्रज के नाथ।
पंच सब्द धुनि बजत बधाई, निज जन भये सनाथ॥
मंगल कलस लिए ब्रज-भामिनि, गावत गीत सु गाथ।
सकल मनोरथ भये 'नाथ' के, निज पद धरे जु माथ॥

हिंदी के प्रायः सभी विद्वानों ने भक्तमाल को प्रामाणिक एव सांप्रदायिक पक्षपात से रहित माना है। उन्होने अधिकांश भक्तो का जिस प्रकार कथन किया है, उससे यही धारणा बनायी जा सकती है, किंतु अनुसधान करने पर उनके कतिपय उल्लेख भ्रमात्मक भी सिद्ध होते है। भक्तमाल मे राजा आशकरण को रामभक्त कील्हदेव का शिष्य लिखा गया है, किंतु राजा आशकरण रचित पद, उनके सेव्य ठाकुर और उनके भानजे के वंशजो का इतिहास उक्त कथन को भ्रमात्मक सिद्ध करते हैं। राजा आशकरण के राम विषयक कोई पद प्राप्त नही है और न कील्हदेव के उल्लेख वाले पद ही प्राप्त होते है। इसके विरुद्ध बल्लभ संप्रदाय की वात्सल्य भक्ति भावना के उनके अनेक पद प्रसिद्ध है, जो संप्रदाय के प्रमुख मंदिरो में सदा से गाये जाते है†। एक पद मे तो उन्होने स्पष्ट रूप से अपने को विट्ठलनाथ जी का सेवक लिखा है‡।

इसके अतिरिक्त राजा आशकरण के सेव्य स्वरूप 'मोहन नागर", जिनका उल्लेख उनके प्रत्येक पद मे प्राप्त होता है, बल्लभ संप्रदायी गोस्वामियों के ठाकुर हैं। उनके 'मोहन' ठाकुर गुजरात के धोलका ग्राम मे और उनके 'नागर' ठाकुर बबई मे बल्लभ सप्रदाय के मदिरों मे विराजमान है। राजा आशकरण के भानजे के वश मे आज तक जितने राजा कृष्णगढ की गद्दी पर हुए है, वे सब के सब बल्लभ सप्रदाय के अनुयायी होते रहे है। इन सब कारणों से नाभा जी का आशकरण संबधी कथन भ्रमात्मक सिद्ध होता है।

भक्तमाल मे इसी प्रकार के और भी कतिपय कथन है, जो अनुसंधान करने पर भ्रमात्मक सिद्ध होते हैं, किंतु अप्रासंगिक होने के कारण उनका यहाँ पर उल्लेख नही किया गया है।

---

† १. यह नित्य नेंम यसोदाजू मेरे तिहारे लाल लडावन कौं।
निन्य उठ पालने झुलाऊँ, सकट-भजन जस गावन को॥

२. या गोकुल के चौहटे रंग राची ग्वाल।
मोहन खेले फाग, नैन सलोने री रंग राची ग्वाल॥

‡ जै श्री विट्ठलनाथ कृपाल।
कलि के जीव पतित अघ-रासी, अपने करिकें किये निहाल॥
पुरुषोत्तम निज लेकर दीने, ऐसे दाता महा दयाल।
'आसकरन' को अपनौ कीयौ, पुष्टि प्रेम बचन प्रतिपाल॥

नाभाजी ने सूरदास के संबंध मे केवल एक छप्पय लिखा है, जिसमें उनके कवित्व की प्रशंसा की गयी है और जिससे सूरदास की जन्मांधता का भी संकेत मिलता है। वह छप्पय इस प्रकार है—

उक्ति चोज, अनुप्रास, वरन, अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुक धारी॥
प्रतिबिंबित दिवि दृष्टि, हृदय हरि-लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी॥
बिमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन स्रवननि करै।
सूर-कवित सुन कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै॥

भक्तमाल की टीकाएँ एवं अन्य रचनाएँ—नाभाजी के उपरांत अनेक कवियों ने उनकी शैली का अनुकरण करते हुए भक्तमाल के कथनों का विस्तार किया है। इस प्रकार की रचनाओं मे प्रियादास की कृति विशेष उल्लेखनीय है, किंतु आश्चर्य की बात है कि उसमे सूरदास पर कुछ नही लिखा गया है। महाराज रघुराजसिंह कृत 'राम रसिकावली' और कवि मियाँसिंह कृत 'भक्तविनोद' में सूरदास का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। नाभाजी कृत भक्तमाल में दिए हुए कई सूरदासों की जीवन-घटनाएँ उनके उल्लेखों में मिल जाने के कारण वे अप्रामाणिक एवं अविश्वसनीय हो गये है, अत. बाह्य साक्ष्य के लिए उनका उपयोग नही किया गया है।

ध्रुवदास कृत 'भक्त नामावली' में भी अनेक भक्तों का संक्षिप्त कथन किया गया है। उसमें सूरदास का भी अत्यंत संक्षिप्त उल्लेख है, जिसमें उनकी भक्ति-भावना की प्रशंसा की गयी है। कृष्णगढ नरेश महाराज सावंतसिंह उपनाम 'नागरीदास' कृत 'नागर समुच्चय' में भी सूरदास संबंधी उल्लेख प्राप्त होते हैं, किंतु वे अतिरंजित एवं अतिशयोक्तिपूर्ण होने के कारण अग्राह्य हैं।

आईने अकबरी, मुन्तखिब उल तवारीख, मुंशियात अबुलफज़ल और मूल गोसाईं चरित मे भी सूरदास संबंधी उल्लेख मिलते हैं, किंतु वे अप्रामाणिक होने के कारण यहाँ पर बाह्य साक्ष्य के रूप में स्वीकार नही किये गये हैं। आगामी पृष्ठों में यथा स्थान आवश्यकता होने पर उनकी आलोचना की जावेगी।

अष्टसखामृत—यह ग्रंथ वृंदाबन निवासी प्राणनाथ कवि का रचा हुआ है। इसकी एक प्रति सं०१७६७ की लिखी हुई बंबई के बड़े मंदिर में है‡। इस ग्रंथ के परिचयात्मक दोहाओं से ज्ञात होता है कि इसका रचयिता बल्लभ संप्रदाय का अनुयायी था और वह गो० विट्ठलनाथ जी, श्री गोकुलनाथ जी तथा अष्टसखाओं का समकालीन था† । इसके रचे हुए गोकुलनाथ जी के माला प्रसंग विषयक कवित्त भी प्राप्त होते हैं।

इस ग्रंथ में सूरदास विषयक उल्लेख इस प्रकार है—

"श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सीही-सर-जलजात।
सारसुती-दुज तरु-सुफल, सूर भगत विख्यात ॥
सूर सूर हू तें अधिक, निस दिन करत प्रकास।
जाकी मति हरि-चरन मे, ताको देत विलास ॥
बाहिर नैन-विहीन सो, भीतर नैन विसाल।
तिन्हे न जग कछु देखिवौ, लखि हरि रूप निहाल ॥
बाहिर अंतर सकल तम, करत ताहि छन दूर।
हरि-पद-मारग लखि परत, याते साँचे सूर ॥
स्याम-सुधा-मधुरस-पगी, रसना सूर सहाइ।
'प्रान' मनहि थिर देत करि, हरि-अनुराग बढाइ ॥
रूप माधुरी हरि लखी, देखे नहिं अन लोक।
हरि गुन रस-सागर कियौ, हरन सकल जग सोक ॥
सारद बैठी कंठ तेहि, निस दिन करै कलोल।
हरि-लीला-रस पद कथत, नित नए सूर अमोल ॥

---

‡ नवीन भारत, १६ मई सन् १९४८ मे प्रकाशित लेख 'महाकवि सूरदास'

† 'गोकुलेस मथुरेस प्रभु, पद गहि हरन कलेस।
अष्टसखामृत अब रचत, भक्त-दास 'प्रानेस' ॥
हरिबल्लभ बल्लभ प्रभू, बिट्ठलेस पद धूरि।
धरो सीस जिनकी कृपा, पाई जीवन मूरि ॥
जिनकी कृपा कटाच्छ सूँ, बसि वृंदाबन धाम।
'प्राननाथ' धनि धनि भयौ, सब विधि पूरन काम ॥
जनम-जनम ब्रज भू मिलै, जनम-जनम विट्ठलेस।
जनम-जनम आठौ सखा, गोकुलनाथ ब्रजेस ॥

कहा बड़ाई करि सकै, जाकौ प्रगट प्रकास।
श्री बल्लभ के लाडिले, कहियत सूरजदास॥
वर बल्लभ सेयौ नहीं, गायौ गुन नहीं सूर।
'प्रान' जप्यौ नहीं नाम हरि, ताके मुख मे धूर॥"

इस उल्लेख से सूरदास के जन्म-स्थान सीही उनकी जाति सारस्वत ब्राह्मण और उनके अंधत्व का परिचय प्राप्त होता है।

संप्रदाय कल्पद्रुम—यह ग्रंथ श्री हरिराय जी के सेवक विट्ठलनाथ भट्ट द्वारा ब्रजभाषा पद्य मे लिखा गया है। इस ग्रंथ के रचयिता विट्ठलनाथ भट्ट गो० विट्ठलनाथ की पुत्री यमुना के पुत्र जगन्नाथ पंडितराज के ज्येष्ठ भ्राता गोपीनाथ के पौत्र थे। उन्होने कृष्णगढ़ के राजा मानसिंह के लिए उक्त ग्रंथ की रचना सं० १७२९ में की थी।

इस ग्रंथ मे श्री आचार्य जी और श्री गोसांई जी की जीवन-घटनाओ का वर्णन किया गया है। प्राचीन ग्रंथों मे वर्णित घटनाओ को तिथि-संवत् सहित देने की प्रथा प्राय नहीं थी, किंतु इस ग्रंथ मे वर्णित अनेक प्रसंगो के तिथि-संवत् दिये हुए है। इस दृष्टि से यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है, किंतु इसके कतिपय संवत् विश्वसनीय नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रंथकार ने अपने समय से पूर्व की घटनाओं के संवत् निर्धारित करने मे अधिक सावधानी से काम नहीं लिया है, किंतु उसके समय की घटनाओं के संवत् प्रामाणिक है।

इस ग्रंथ के निम्न लिखित उल्लेख से ज्ञात होता है कि महाप्रभु बल्लभाचार्य ने अपनी तृतीय यात्रा की समाप्ति पर सूरदास को शरण मे लिया था—

सूरदास को सरन लै, तीर्थराज प्रभु आय।
भू प्रदच्छिणा पूर्ण किय, ब्रह्मभोज करवाय*॥

जमुनादास कृत धौल—श्री हरिराय जी के सेवक जमुनादास कृत गुजराती भाषा का एक प्राचीन धौल प्राप्त है, जिसमे सूरदास का विस्तृत परिचय दिया गया है। जमुनादास और उसकी रचनाएँ बल्लभ-संप्रदाय मे प्रसिद्ध हैं। उसके रचे हुए सर्वोत्तम आदि के पद मंदिरों मे गाये जाते है। इस धौल की प्रामाणिकता प्राचीन हस्त प्रतियों और उसके व्यापक प्रचार से सिद्ध है। इस धौल की अंतिम पंक्ति से ज्ञात होता है कि कवि ने सूरदास विषयक कथन श्री हरिराय जी द्वारा श्रवण करने के उपरांत लिखा है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि उसका कथन हरिराय जी कृत भावप्रकाश के अनुकूल है-

* संप्रदाय कल्पद्रुम, पृ० ४२

श्री सूरदास जी परम भक्त शिरोमणि, आ रहेता ते नो दिल्ही सीही ग्राम जो ।
बालपने थी हरिभक्ति करता सदा, आ त्रण कालना ज्ञाननी राखे हाम जो ॥१॥

प्रगट्या ए तो ब्रह्म सारस्वत कुलमां, आ नेत्र विहीणे दरिद्र पिता ना धाम जो ।
कटु वचन सुणी ने घर थी चालिया,ते आवी पहोच्या एक तलावनी ठाम जो॥२

रह्या बार वर्ष लगी त्यां निर्भे थई, पण हरि मिलन नी चिंता मननी मांह्य जो ।
एक दिवसे अति विरह चित्त ने थयो,त्यारे कृपा करीने प्रगट्या श्रीहरि त्यांह्य जो ३

नेत्र दई ने आप्यां दर्शन श्रीनाथ जी, आ वर मांगवाने कह्युं छे तेनी वार जो ।
ए समय नां दर्शन थी मूदित थई, आ अंतरदृष्टि ए हरिलीला ने मांगे जो ॥४॥

त्यारे अति प्रसन्न वदने श्रीनाथजी, आ कहे, सुनो मम बाल सखा प्रवीन जो ।
हवे शीघ्र व्रजमंडल मां जाओ तमे, त्यां थाजो श्री वल्लभ ने आधीन जो ॥५॥

ते वारे दर्शन आपीश हुं तने, ने देखाडीश मम लीला ना परकार जो ।
ए समये विनती सूरदासे कीधी,प्रभु' केम जाणुं हुं श्री वल्लभ नो आकार जो॥६॥

त्यारे कृपा करीने श्रीनाथ जी, आ कहे छे त्यां श्री वल्लभ केरां रूप जो ।
दक्षिण ब्राह्मण वेष सदा एउनो रहे,आ स्याम वरन ने दिव्य तेज अनूप जो ॥७॥

ए परिक्रमा करीने पृथ्वी पावन करे,आ विहिण पादुका चरन सुवासित जान जो ।
रूप बटूक सदा छे एहुनां, आ तारा थी ए दिवस दस महान जो ॥ ८ ॥

एम कहीने प्रभु त्यारे अंतरध्यान थया,आ त्यारे तेमने प्रगट्यो विरह अपार जो ।
पछी आज्ञा प्रभुनी माथे धरी, आ चाली आव्या मथुरा थई गौघाट जो ॥ ९ ॥

त्यां रहीने कीरतन हरिनां बहु कर्यां,ने ध्यान कर्यां श्री वल्लभजी महाराज जो ।
एम करतां दक्षिण थी प्रभु आवीआ, ने शरणे लीधा छे भक्त शिरोमणि राजजो१०

सहस्र नाम रची हरि लीला भासित करी,आकी धा मनोरथ पूरण नंदकुमारजो ।
पछी त्यांथी प्रभु श्री गोकुल आवीया, आ संगे लाव्या सूरदास ने ते वारजो ११

अही बाल-लीला नां सुख आपी ने, आ थाप्या तेमने श्रीगोवर्धन सुखधाम जो ।
त्यां आत्मनिवेदने सोप्या छे श्रीनाथजी, आ आपी सेवा कीर्तननी अष्टयाम जो१२

पछी देखाड्युं रूप श्री गोवर्द्धन क्षेत्र नु ,आ सारस्वत कल्पनुं वृंदावन शुभ नामजो।
त्यारे त्यां रही शरणे पद रचना करी,आ सवालक्ष ते निज जन मन अभिरामजो १३

पछी श्री गुसांईजी ए थाप्या अष्टछाप मां,आ अष्टसखा मध्य राज सिरोमनि रूपजो
'जमनादास' अधम ते वर्णन शां करे,आ सुण्युं वदन जे श्रीहरिराय महाभूप जो१४

भाव संग्रह—इसकी रचना श्री द्वारकेश जी भावना वालों ने की है, जिनका समय सं० १७५१ से स० १८०० के आस-पास है। इसमें सूरदास की जन्म तिथि, जाति और उनके जन्म स्थान का निम्न उल्लेख मिलता है—

"सो सूरदास जी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन ते दस दिन छोटे हते। लीला मे उनको स्वरूप कृष्ण-सखा, चपकलता-सखी, श्रीजी के वाक् को स्वरूप, गिरिराज के चंद्रसरोवर द्वार के अधिकारी, स्वामी की छाप, सारस्वत ब्राह्मण, सीही गाम के बासी।"

वैष्णवाह्निक पद—इसकी रचना गो० श्री गोपिकालंकार जी उपनाम 'भट्टजी' जतीपुरा निवासी ने की है। उनका जन्म सं० १८७९ में हुआ था। उन्होंने अपनी रचनाएँ 'रसिकदास' के नाम से की हैं। सूरदास के यशोगान विषयक उनकी कई रचनाएँ उपलब्ध हैं। एक पद में उन्होंने सूरदास की जन्म तिथि का इस प्रकार उल्लेख किया है—

प्रगटे भक्त-शिरोमनि राय।
माधव शुक्ला पंचमि ऊपर छट्ठ अधिक सुखदाय॥
संवत पंद्रहा पेंतीस वर्षे 'कृष्ण' सखा प्रगटाय।
करि हैं लीला फेरि अधिक सुख मन मनोरथ पाय॥
श्री बल्लभ श्री बिट्ठल श्री जी रूप एक दरसाय।
'रसिकदास' मन आस पूरन ह्वै सूरदास भुव आय॥

जनश्रुतियाँ—सूरदास के जीवन-वृत्तांत से ज्ञात होता है कि वे अपने समय में ही यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उनके देहावसान के अनंतर उनकी ख्याति और भी बढी। इसके कारण अनेक प्रकार की जन-श्रुतियाँ उनके संबंध में लोक में प्रचलित हो गयीं। इनमें से कई जन-श्रुतियों की पुष्टि बाह्य साक्ष्य से हो जाती है और कई जनश्रुतियाँ अन्य सूरदासों से संबंधित होने के कारण अप्रामाणिक सिद्ध हो गयी हैं। सूरदास पर लिखने वाले कई लेखकों ने सूर संबंधी सामग्री में इन जनश्रुतियों को भी सम्मिलित किया है, किंतु हमने इनको सामग्री के रूप में स्वीकार नहीं किया है। प्रामाणिक जनश्रुतियों का संबंध सूरदास के अंतः साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्य से है, अतः उनके मूल तत्वों का विवेचन उक्त साक्ष्यों के साथ हो चुका है। अप्रामाणिक एवं निराधार जनश्रुतियों के संबंध में लिखना अनावश्यक समझा गया है।

३. आधुनिक सामग्री

अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के रूप मे सूरदास संबंधी जो प्राचीन सामग्री उपलब्ध है, उसका अनुसंधान करने पर आधुनिक विद्वानो ने जो निष्कर्ष निकाले है, वही आधुनिक सामग्री के रूप मे प्राप्त है। यह आवश्यक नहीं है कि ये समस्त निष्कर्ष निर्भ्रांत एवं विश्वसनीय हो, अतः उनके संबंध में मतभेद होना स्वाभाविक है। फिर भी सूर संबंधी अध्ययन को आगे बढाने के लिए प्रत्यक लेखक को अपने अग्रजों द्वारा प्रस्तुत सामग्री से बहुमूल्य सहायता मिलती रही है। हमने भी इस सामग्री का यथा स्थान उपयोग किया है, और जहाँ हमारा मत उसके अनुकूल नही हो सका है, वहाँ हमने उसका स्पष्ट उल्लेख कर दिया है।

सूरदास संबंधी आधुनिक सामग्री का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

१. सूर-काव्य की भूमिका के रूप मे प्रस्तुत सामग्री
२. खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथो में सूर-संबंधी सामग्री
३. सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री

अब हम इस सामग्री का संक्षिप्त परिचय देकर यह देखना चाहते हैं कि सूर संबंधी समीक्षात्मक निर्णय करने मे यह किस प्रकार सहायक हो सकती है।

१. सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री

सूरसागर—अब तक प्रकाशित सूरसागर के समस्त संस्करणो मे वेङ्कटेश्वर प्रेस बंबई का संस्करण सब से बडा है। इसका संपादन बा० राधाकृष्णदास ने किया है। उन्होंने इसकी भूमिका मे सूरदास का विस्तृत जीवन-वृत्तात भी लिखा है। जिस समय यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ था, उस समय वह वृत्तांत निःसंदेह महत्वपूर्ण माना जाता था, किंतु अब नवीन अनुसंधानो के कारण उसका महत्व कम हो गया है। रामरसिकावाली एवं भक्तविनोद की जिस सामग्री का उन्होने उपयोग किया है, वह स्वयं इस समय महत्वपूर्ण नहीं रही। सूरसागर का दूसरा महत्वपूर्ण संस्करण नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ का है, जिसमे सूरदास के जीवन-वृत्तांत की सामग्री उपलब्ध नही है, किंतु सूर संबंधी अंतःसाक्ष्य के लिए इसका भी महत्व है। बा० जगन्नाथदास रत्नाकर द्वारा संपादित होकर सूरसागर का एक संस्करण काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ था, किंतु रत्नाकर जी के असामयिक निधन के कारण वह

कार्य पूरा न हो सका। यदि रत्नाकर जी इसे पूरा कर लेते, तो इसकी भूमिका स्वरूप उनका लिखा हुआ सूरदास का जीवन-वृत्तांत निःसंदेह बड़ा महत्वपूर्ण होता। सूरसागर के दो संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित हुए है। एक का संपादन श्री वियोगी हरि ने और दूसरे का डा० बेनीप्रसाद ने किया है। उक्त विद्वान संपादकों ने सूरदास के जीवन-वृत्तांत पर भी प्रकाश डाला है, किंतु उनके कथन से किसी महत्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन नहीं होता है।

सूर-संकलन—सूरदास के काव्य का परिचय देने के लिए उनकी कविता के कई छोटे-बड़े संग्रह प्रकाशित हुए है। इनमे ला० भगवानदीन कृत 'सूर-पंचरत्न' और 'सूर संग्रह', श्री नंददुलारे वाजपेयी कृत 'सूर-संदर्भ' और 'सूर-सुषमा', श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' कृत 'सूर-पदावली', श्री नरोत्तमदास स्वामी कृत 'सूर-साहित्य-सुधा' तथा श्री हरदयालुसिंह कृत 'सूर-मुक्तावली' मुख्य है। इन संग्रह ग्रंथो की प्रस्तावना मे सूरदास के संबंध मे भी लिखा गया है। जहाँ तक सूरदास के जीवन-वृत्तांत का संबंध है, इन संग्रह ग्रंथो से कोई विशेष महत्व की बात ज्ञात नही होती है, किंतु उनमे सूरदास के काव्य और उनकी भाषा के संबंध मे महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये गये है। 'सूर-पंचरत्न' की भूमिका स्वरूप 'अंतर्दर्शन' मे सूरदास के काव्य और उनकी भाषा की विस्तृत आलोचना की गयी है। इसी प्रकार 'सूर मुक्तावली' के 'प्राक्कथन' और उसकी 'भूमिका' मे भी विद्वतापूर्ण विवेचन किया गया है। सूरदास के भ्रमरगीत विषयक पदो का एक अच्छा संकलन 'भ्रमरगीत-सार' के नाम से श्री रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित और साहित्यसेवा सदन, काशी द्वारा प्रकाशित हुआ है। शुक्ल जी उद्भट समालोचक थे। उन्होने इस ग्रंथ के आरंभ मे सूरदास के काव्य की विद्वतापूर्ण एवं सारगर्भित आलोचना की है, जो इस प्रकार की सामग्री मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सूर साहित्य के अनुशीलन के लिए यह समस्त सामग्री महत्वपूर्ण है, जिस पर हम यथा स्थान विचार करेंगे।

साहित्य-लहरी—श्री महादेवप्रसाद कृत टीका सहित सूरदास कृत 'साहित्य-लहरी' का यह संस्करण पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय द्वारा प्रकाशित हुआ है। साहित्य लहरी जैसे क्लिष्ट काव्य की टीका प्रस्तुत करने से श्री महादेव प्रसाद ने महत्वपूर्ण कार्य किया है; किंतु उन्होने अपने 'वक्तव्य' मे सूरदास के संबंध मे कुछ भ्रमात्मक बाते लिखी है। श्री गोकुलनाथ जी का नाम 'गुसाईं गोकुलदास जी' लिखते हुए उन्होने बतलाया है कि 'चौरासी वैष्णवन

की वार्ता' मे सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण और उनको रामदास का पुत्र तथा रुनकता नामक ग्राम मे उत्पन्न हुआ लिखा गया है। ऐसा ज्ञात होता है कि लेखक ने 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' को स्वय नही देखा है, अन्यथा वे इस प्रकार का कथन नही करते। सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखने वाले श्री गोकुलनाथ जी नही, बल्कि श्री हरिराय जी थे, जिन्होने चौरासी वार्ता पर भावप्रकाश लिखते हुए सूरदास का विस्तृत जीवन-वृत्तांत प्रस्तुत किया है; किंतु उनको रामदास का पुत्र और रुनकता मे उनके जन्म लेने की बात न तो श्री गोकुलनाथ जी ने लिखी है और न श्री हरिराय जी ने। इसके साथ ही बिल्वमगल वाली पुरानी कथा को भी इस ग्रथ के टीकाकार ने सूरदास से संबंधित करने मे 'हिचकिचाहट' नही की है। इस ग्रंथ के प्रस्तावना लेखक श्री धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ने जहाँ साहित्य-लहरी के काव्य पक्ष पर विद्वतापूर्ण विवेचन किया है, वहाँ सूरदास के जन्म, वश, अधत्व और निधन सबधी वही पुराना मत प्रकट किया है, जो नवीन अनुसधान से भ्रमात्मक सिद्ध हो चुका है। यदि इस ग्रथ मे साहित्य लहरी की टीका के अतिरिक्त 'वक्तव्य' आदि लिखने का कष्ट न किया जाता, तो अच्छा होता।

२. खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी सामग्री

खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथो मे सूर सबधी प्रामाणिक सामग्री के प्राप्त होने की आशा की जा सकती है, किंतु ये साधन अभी तक अपूर्ण सिद्ध हुए है! खोज संबधी अधिकांश कार्य काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ है। ब्रज साहित्य मडल द्वारा ब्रज मे और हिंदी विद्यापीठ द्वारा राजस्थान मे भी कुछ खोज का कार्य हुआ है। खोज रिपोर्टों के देखने से ज्ञात होता है कि उनमे सूरदास संबंधी सामग्री का बहुत कम उल्लेख हुआ है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों मे सूरसागर की कई प्रतियो के अतिरिक्त सूरदास की कुछ अन्य रचनाओ का भी विवरण लिखा गया है, किंतु यह सामग्री नितात अपर्याप्त है। यदि खोज का कार्य व्यवस्थित रूप से बड़े परिमाण मे किया जाय, तो सूर सबधी सामग्री यथेष्ट परिमाण मे मिलने की आशा की जा सकती है।

हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथो मे महाकवि सूरदास का उल्लेख होना अनिवार्य है, अतः उनमे सूर संबधी सामग्री अवश्य मिलती है, किंतु वह सामग्री जैसी प्रामाणिक होनी चाहिए थी, वैसी नही है। इसका कारण यही हो सकता है कि सूर संबंधी अध्ययन अभी अपूर्ण है और तत्संबंधी अनेक

बातें अभी विवादग्रस्त है। फिर भी हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों मे सूर संबंधी आधुनिक सामग्री प्रचुर परिमाण मे मिलती है। इस सामग्री का थोड़ा-बहुत विवेचन होना आवश्यक है।

हिंदी साहित्य के इतिहास की आरंभिक सामग्री फ्रेंच लेखक गार्सॅं द तासी लिखित 'इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदूए ऐंदुस्तानी' नामक फ्रेंच ग्रंथ, शिवसिंह सेंगर लिखित 'सरोज' और उसी के आधार पर सर जार्ज ए० ग्रियर्सन लिखित 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान' नामक अंगरेजी ग्रंथ मे उपलब्ध है। इन ग्रंथों मे प्रमुख हिंदी कवियों का उल्लेख होने से प्रसंगवश सूरदास का भी विवरण दिया गया है, किंतु वह अपर्याप्त एवं अप्रामाणिक है। तासी के उल्लेख का आधार 'आईन-ए-अकबरी' है, जिसका सूरदास संबंधी कथन स्वयं अप्रामाणिक है। 'शिवसिंह सरोज' मे भी सूरदास का संक्षिप्त एवं अप्रामाणिक वृतांत दिया हुआ है। इस ग्रंथ का निम्न लिखित उल्लेख महत्वपूर्ण है—

"इनका बनाया सूरसागर ग्रंथ विख्यात है। हमने इनके पद ६० हज़ार तक देखे है। समग्र ग्रंथ कहीं नहीं देखा।"

सूरदास ने लाख–सवा लाख पदों की रचना की थी, यह जनश्रुति परंपरा से चली आ रही है, किंतु इतना अनुसंधान होने पर भी अब तक ८-१० हज़ार से अधिक पद उपलब्ध नहीं हुए है। इस संबंध मे हम अपने विचार आगामी पृष्ठों मे लिखेंगे।

हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में मिश्रबंधु कृत 'मिश्रबंधु विनोद', श्री रामनरेश त्रिपाठी कृत 'हिंदी का संक्षिप्त इतिहास', श्री रामचंद्र शुक्ल कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', डा० श्यामसुंदर दास कृत 'हिंदी भाषा और साहित्य', पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कृत 'हिंदी भाषा और उसके साहित्य का विकास', श्री सूर्यकांत शास्त्री कृत 'हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', श्री ब्रजरत्न दास कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', डा० रामकुमार वर्मा कृत 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', मिश्रबंधु कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' और श्री गुलाबराय कृत 'हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास' विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से प्रमुख इतिहास ग्रंथों के विषय में आगे लिखा जाता है।

'मिश्रबंधु विनोद' और 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (मिश्रबंधु)

हिंदीके सुप्रसिद्ध विद्वान मिश्रबंधुओ को हिदी साहित्य का प्रथम व्यवस्थित इतिहास लिखने का श्रेय प्राप्त है। प्रथम प्रयास होने के कारण उसमे भ्रम और भूलो का रह जाना सर्वथा स्वाभाविक था, इसलिए उनके सूरदास सबंधी विवरण मे भी कई त्रुटियाँ प्राप्त होती है। उनका लिखा हुआ 'हिदी साहित्य का इतिहास' 'विनोद' की रचना के प्राय. २६ वर्ष पश्चात् सं० १६६६ में गंगा पुस्तक माला द्वारा प्रकाशित हुआ है, किंतु इसमें भी सूरदास संबधी विवरण अपरिष्कृत रूप मे विनोद जैसा ही दिया गया है। इससे यह समझा जा सकता है कि या तो इसके लेखक अपने पूर्व मत पर दृढ है, अथवा उनको नवीन अनुसधानो का पता नही है। उन्होने सूरदास के पिता का नाम रामदास, जन्म सवत् १५४० और निधन संवत् १६२० लिखा है। उन्होने सूरदास के ग्रंथो में 'नल-दमयती' का भी नामोल्लेख किया है। उन्होने ८ वर्ष की अवस्था मे सूरदास का मथुरा मे निवास करना लिखा है†। ये सब बाते यथेष्ट परिवर्तन और सशोधन की अपेक्षा रखती है।

हिंदी साहित्य का इतिहास (पं० रामचंद्र शुक्ल)—हिंदी के समस्त इतिहास ग्रंथो मे शुक्ल जी का इतिहास सबसे अधिक प्रसिद्ध और कदाचित सबसे अधिक श्रेष्ठ है। शुक्ल जी ने सूरदास के काव्य और उनकी भक्ति-भावना की बडी विद्वत्तापूर्ण आलोचना की है। यह आलोचना भ्रमरगीत-सार और सूरदास नामक ग्रंथों मे छप चुकी है। सूरदास के जीवन-वृत्तांत के संबंध मे शुक्ल जी द्वारा कोई महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त नही होता है। उन्होने इस संबध मे मिश्रबंधुओं का अनुकरण किया है। उन्होने भी सूरदास के जन्म एवं निधन काल के संवत् क्रमशः १५४० और १६२० का अनुमान किया है। उन्होने सूरदास के शरण-काल का संवत् अनुमानत: १५८० लिखा है*। नवीन सामग्री के अनुसंधान से ये सभी संवत् अप्रमाणिक सिद्ध हो गये है।

हिंदी भाषा और साहित्य (डा० श्यामसुंदर दास)-हिंदी का यह भी प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ है, जिसमे भाषा और साहित्य का काल-क्रमानुसार वर्णन किया गया है। बाद मे भाषा और साहित्य के अनुसार इसे दो स्वतंत्र

† 'मिश्रबंधु विनोद' (प्रथम संस्करण सं० १६७०) पृष्ठ २७० और 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' (प्रथम संस्करण सं० १६६६) पृष्ठ ६७

* 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (संशोधित संस्करण सवत् २००२) पृष्ठ १३८, १३६

ग्रथो मे विभाजित कर दिया गया। 'हिदी साहित्य' नामक ग्रथ मे विभिन्न-कालीन परिस्थियो का बडा गभीर विवेचन किया गया है। इस ग्रथ मे सूरदास का विवरण अपेक्षाकृत कम दिया गया है। उन्होने सूरदास के जन्म काल के संबध मे लिखा है—

"परंपरा के अनुसार इनका जन्म-काल सं० १५२६ माना जाता है‡।"

किंतु उन्होने इस 'परपरा' का स्पष्टीकरण नही किया है। उन्होने सूरदास को जन्मांध स्वीकार नहीं किया है।

हिंदी साहित्य का इतिहास (डा० रसाल)—यह हिदी का सबसे विशाल-काय इतिहास है, जिसके लेखक डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' है। इसमे लेखक ने हिंदी के इतिहास की विभिन्न प्रवृत्तियो का योग्यता और विस्तार पूर्वक कथन किया है। सूरदास के संबध मे उन्होने लिखा है—

"आपकी भी पूर्ण तथा यथार्थ जीवनी हमे प्राप्त नही। ८४ वैष्णवो की वार्ता के अनुसार आपका जन्म-स्थान रुनकता (रेणुका क्षेत्र) है, किंतु कोई कोई दिल्ली निकटस्थ सीही ग्राम को भी आपका जन्म-स्थान कहते है। वार्ता मे इन्हे सारस्वत ब्राह्मण श्री रामदास जी का पुत्र कहा गया है। भक्तमाल मे इनका ब्राह्मण होना तथा ८ वर्ष मे इनका उपवीत होना लिखा है*।"

उपर्युक्त कथन मे पर्याप्त संशोधन की आवश्यकता है, जैसा कि हम आगामी पृष्ठो मे सिद्ध करेगे। अन्य इतिहास ग्रंथो की तरह इसमे भी सूरदास का जन्म-काल संवत् १५४० और निधन-काल संवत् १६२० लिखा गया है।

हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा. रामकुमार वर्मा) यह हिंदी का सब से नवीन और महत्वपूर्ण इतिहास है, जिसके लेखक डा० रामकुमार वर्मा है। यह इतिहास अभी पूर्ण नही हुआ है, किंतु भक्ति-काल तक का विवरण होने से इसमे सूरदास का वर्णन आ गया है। अन्य इतिहास ग्रंथोकी अपेक्षा इसमे सूरदास संबधी सामग्री अधिक विस्तार पूर्वक दी गयी है।

‡ हिंदी साहित्य (चतुर्थ संस्करण संवत् २००३) पृष्ठ १८५

* हिंदी साहित्य का इतिहास (प्रथम संस्करण सं० १९८८) पृष्ठ २९०

इस सामग्री मे सूरदास के जीवन वृत्तांत, उनके ग्रंथ और उनके काव्य-महत्व का विवेचन किया गया है। जीवन वृत्तांत की आलोचना बाह्य साक्ष्य के आधार पर की गयी है। साहित्य लहरी के वंश परिचय वाले पद तथा मुंशी देवीप्रसाद और बा० राधाकृष्णदास के उल्लेखो के कारण इसके लेखक सूरदास को भाट जातीय मान सकते थे, किंतु उक्त पद मे 'विप्र' और 'ब्रह्मराव' दोनो विरोधी शब्दो का उल्लेख होने से उनको भी उक्त पद की प्रामाणिकता मे संदेह है† । बाह्य साक्ष्य मे सबसे अधिक महत्व चौरासी वार्ता को दिया गया है, जिसको उन्होने प्रामाणिक ग्रंथ माना है‡ । बाह्य साक्ष्य की अन्य सामग्री आईन-ए-अकबरी, मुंतखिबउलतवारीख, मुंशियात अबुलफजल और गोसाईं चरित पर इस ग्रंथ मे विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। उन्होने सूरदास के नाम अबुलफ़ज़ल के पत्र को प्रामाणिक मानकर "सूरदास की मृत्यु श्रावण सवत् १६४२ के बाद¶ " मानी है। नवीन अनुसधान से सिद्ध हो गया है कि अबुलफजल ने जिसे पत्र लिखा था, वह कोई अन्य सूरदास था, अत सूरदास की मृत्यु स० १६४० के बाद मानने का कोई कारण नही है। उन्होने महाप्रभु बल्लभाचार्य के निधन सवत् १५८७ के आधार पर लिखा है—

"सूरदास का आविर्भाव काल सवत् १५८७ के बाद ही मानना उचित है† ।"

यदि 'आविर्भाव' से लेखक का अभिप्राय सूरदास की प्रसिद्धि से है, तब भी उनका कथन प्रामाणिक सिद्ध नही होता है, क्यो कि वार्ता के अनुसार महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के समय मे ही सूरदास यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे और महाप्रभु जी स्वयं "आओ सूरसागर !" कहकर सूरदास का सन्मान करते थे। सूरसागर के रचना काल के सबध मे उन्होने लिखा है—

"सूरसागर का रचना-काल संवत् १५८७ के बाद ही होना चाहिए, जिस समय सूरदास श्री बलभाचार्य से दीक्षित हुए। दीक्षित होने से पहले वे 'घिघियाते' थे, बाद मे भगवद् लीला वर्णन करने मे समर्थ हुए। इसी भगवद् लीला वर्णन करने मे उन्होने सूरसागर की रचना की* ।"

† हिंदी का आलोचनात्मक इतिहास (प्रथम संस्करण सं० १९९९) पृ० ६०५
‡ ,, ,, ,, ,, पृ० ६११
¶ ,, ,, ,, ,, पृ० ६१६
† ,, ,, ,, ,, पृ० ६१२
* ,, ,, ,, ,, पृ० ६२३

लेखक का उक्त मत भ्रमात्मक है। सूरदास सं० १५८७ मे बल्लभाचार्य जी से दीक्षित नही हुए थे, बल्कि वे इससे प्रायः २० वर्ष पूर्व सं० १५६७ मे दीक्षित हो चुके थे। सं० १५८७ बल्लभाचार्य जी का निधन संवत् है, तब तक सूरदास सूरसागर के अधिकांश भाग की रचना कर चुके थे।

सूरदास के ग्रंथो का परिचय देते हुए उन्होने उनके कुल १६ ग्रथो का नामोल्लेख करते हुए लिखा है—

"इस प्रकार कुल मिलाकर सूरदास के नाम से १६ ग्रंथ है। इनमे से सूरसागर ही पूर्ण प्रामाणिक है। अन्य ग्रंथ सूरसागर के ही अंश है या सूरसागर की कथावस्तु के रूपांतर। कुछ ग्रंथ तो अप्रामाणिक भी होंगे*।"

सूरदास के ग्रथो के सबध मे हम आगामी पृष्ठो मे विस्तार पूर्वक लिखेंगे।

३. सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री

भारतेन्दु बा० हरिश्चद्र ने हिंदी साहित्य मे सूर सबंधी अध्ययनात्मक एव आलोचनात्मक सामग्री प्रस्तुत करने का आरभ किया था। उनके पश्चात् बा० राधाकृष्णदास, मुशी देवीप्रसाद और बा० जगन्नाथदास रत्नाकर ने इस कार्य को और भी आगे बढाया। हिंदी साहित्य के इतिहास की तरह इस कार्य को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय भी मिश्रबंधुओ को है। उन्होंने 'मिश्रबंधु विनोद' और'हिंदी नवरत्न' लिख कर हिंदी कवियो की अध्ययनात्मक एव आलोचनात्मक सामग्री को प्रथम बार सुंदर रूप मे उपस्थित किया। इस विषय के ये सब आरभिक प्रयत्न थे, अतः उनमे वैज्ञानिक शैली का अभाव दिखलायी देता है। जब उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियो के लिए इसप्रकार के साहित्य की माँग हुई,तब सूर सबंधी आलोचना और अध्ययन को वैज्ञानिक रूप मे प्रस्तुत करने की ओर विद्वानों का ध्यान गया। सुप्रसिद्ध समालोचक श्री रामचंद्र शुक्ल ने तुलसीदास और जायसी के अतिरिक्त सूरदास पर भी वैज्ञानिक आलोचना लिखी। सूर संबंधी वैज्ञानिक अध्ययन को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० धीरेन्द्र वर्मा को है। वर्मा जी ने अपने विद्यार्थियों को इस दिशा मे प्रेरित कर सूर संबंधी साहित्य को प्रचुर परिमाण मे प्रस्तुत करा दिया है। उनकी चेष्टा का ही यह परिणाम है कि विश्व विद्यालयो के अध्यापक, शोधक और आलोचक अब सूर साहित्य प्रस्तुत करने मे प्रयत्नशील हैं। इस साहित्य का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

* हिंदी का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ६२०

हिंदी नवरत्न (श्री मिश्रबंधु)—इस ग्रंथ मे हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नौ महाकवियो का परिचयात्मक एवं आलोचनात्मक विस्तृत विवरण है, जिसमे तुलसीदास के पश्चात् सूरदास को स्थान दिया गया है। यद्यपि 'विनोद' की अपेक्षा इसमे सूरदास का विस्तृत उल्लेख है, तथापि कवि के महत्व को देखते हुए अन्य कवियो की तुलना मे सूरदास का अपेक्षाकृत कम वर्णन लिखा गया है। जो कुछ लिखा गया है, वह पुरानी मान्यताओ पर आधारित है, जैसा कि इस पुराने ग्रंथ में होना स्वाभाविक था। अब नवीन शोध के आधार पर इसमे संशोधन होना आवश्यक है।

सूरदास (डा० जनार्दन मिश्र)—इस अंगरेजी ग्रंथ में सूरदास के जीवन ग्रंथ, उनके गुरु श्री बल्लभाचार्य और उनके धार्मिक सिद्धांतों का आलोचनात्मक विवरण दिया गया है। यद्यपि विद्वान लेखक ने इसके लिखने मे यथेष्ट परिश्रम किया है, तथापि वे कोई महत्वपूर्ण नवीन सामग्री उपस्थित नहीं कर सके है।

सूर साहित्य (प० हजारीप्रसाद द्विवेदी)—इस ग्रंथ के रचयिता हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान और विचारपूर्ण लेखक है। उन्होने सूर-साहित्य के धार्मिक पक्ष की विद्वतापूर्ण एव विवेचनात्मक आलोचना की है, किन्तु उन्होने सूर के जीवन वृत्तांत और उनके ग्रथों का समीक्षात्मक विवरण नही दिया है। उन्होने सूर-साहित्य के काव्य पक्ष पर भी विशेष प्रकाश नही डाला है। द्विवेदी जी जैसे प्रकांड विद्वान इस विषय को विस्तार पूर्वक लिखते तो अच्छा था।

भक्त-शिरोमणि महाकवि सूरदास (श्री नलिनीमोहन सान्याल)—इस ग्रथ मे सूरदास के काव्य की समालोचना की गयी है। सूरदास का जीवन-चरित्र अत्यंत संक्षिप्त रीति से केवल ५ पृष्ठो मे लिखा गया है। उसमे लेखक ने प्राय मिश्र बंधुओ के मत का अनुकरण किया है। सूरदास के ग्रंथो के विषय मे इस पुस्तक मे कुछ भी नहीं लिखा गया है।

इस पुस्तक में सूरसागर के काव्य-महत्व पर संक्षिप्त एवं सरल रीति से प्रकाश डाला गया है। इसमे वात्सल्य, माखनचोरी, संयोग शृंगार, रासलीला, भ्रमरगीत विषयक सूरदास के काव्य-सौष्ठव का परिचय दिया गया है।

सूर : एक अध्ययन (श्री शिखरचंद जैन)—सूर-साहित्य के विद्यार्थी को साधारण ज्ञान कराने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है, किंतु इसमे सूर सबंधी आलोचना एव अध्ययन की कोई महत्वपूर्ण सामग्री नही

सूर-साहित्य की भूमिका (श्री रामरतन भटनागर और श्री वाचस्पति त्रिपाठी)—दो विद्वान लेखकों ने इस आलोचनात्मक ग्रंथ की रचना की है। सूर संबंधी अन्य पुस्तकों की अपेक्षा इस पुस्तक मे महत्वपूर्ण सामग्री अधिक परिमाण में उपलब्ध है। आरंभ में लेखकों ने सूरदास की जीवनी पर प्रकाश डाला है। बाह्य साक्ष्य के रूप मे 'साहित्य लहरी' के वंश-परिचय वाले पद और 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' पर विचार करते हुए उन्होने चौरासी वार्ता को प्रामाणिक मान कर साहित्य लहरी के उक्त पद को अविश्वसनीय माना है†। उन्होने सूरदास को जन्मांध न मान कर वृद्धावस्था में उनके नेत्र विहीन हो जाने का अनुमान किया है। उन्होने सूरदास का जन्म संवत् १५४० और जन्म स्थान ब्रज प्रदेश लिखा है*, किंतु इसका निश्चित प्रमाण नही दिया है। उन्होने श्रीनाथ जी के मंदिर के निर्माण संवत् १५७६ को सूरदास का शरण-काल बतलाया है‡, जो कि अनुसंधान से अप्रामाणिक सिद्ध हो गया है।

सूरदास के ग्रंथो का विवेचन करते हुए उन्होने यह निष्कर्ष निकाला है—

"केवल सूरसागर ही प्रामाणिक ग्रंथ है। अन्य ग्रंथ या तो उन्होंने लिखे नहीं ही नहीं, या ये सूरसागर के ही अंग हैं‖।"

उन्होने डा० धीरेन्द्र वर्मा के लेख के आधार पर भागवत और सूरसागर की विस्तार पूर्वक तुलना करते हुए, सूरसागर के अधिकांश भाग को भागवत के आंशिक अनुवाद के रूप में स्वीकार किया है। उन्होने लीला-गायन विषयक पदो की अपेक्षा विनय के पदो को सूरदास की मौलिक रचना और सूरसागर का प्रधान भाग माना है। सूरसागर की आलोचना करते हुए उन्होने लिखा है—

"अंत मे हमे यह कहना है कि सूरसागर के मौलिक और महत्वपूर्ण भाग प्रथम स्कंध के वे पद है, जो विनय के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा संपूर्ण दशम स्कंध पूर्वार्द्ध और अन्य स्कंधो मे बिखरे हुए भक्ति, गुरु-महिमा आदि विषयो के पद हैं। वास्तव मे ये ही अंश सूरसागर के प्रधान अंग कहे जा सकते है, जो मौलिकता, रसात्मकता और भक्ति-भावना के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है*।"

† सूर-साहित्य की भूमिका (द्वितीय संस्करण सं० २००२) पृष्ठ ११
* ,, ,, ,, पृष्ठ १८
‡ ,, ,, ,, पृष्ठ १८
‖ ,, ,, ,, पृष्ठ २२
* ,, ,, ,, पृष्ठ ४३

हम लेखक के इस मत से पूर्णतया सहमत नहीं हैं। हम विनय आदि के पदो को महत्वपूर्ण मानते हुए भी उन्हे सूरदास की और सर्वोत्तम रचना सूरसागर के प्रधान अग के रूप मे स्वीकार करने मे असमर्थ है। सूरसागर और भागवत का क्या स बंध है, एव सूरसागर के प्रधान अग कौन से पद है, इस संबंध मे हम अपने विचार आगामी पृष्ठो मे विस्तार पूर्वक लिखेगे।

इस ग्रथ मे लेखको ने अनेक विषयो पर गभीरता पूर्वक विचार किया है, किंतु निर्णयात्मक प्रवृत्ति का सर्वत्र अभाव दिखलायी देता है। उन्होने अधिकांश विषयो को संदिग्धता के पारावार मे डूबते-उतराते हुए छोड दिया है।

सूर : जीवनी और ग्रंथ (श्री प्रेमनारायण टडन)—इस छोटी सी पुस्तिका मे सूरदास के जीवन वृत्तांत और उनके ग्रथो का विवरण दिया गया है। इसमें विद्यार्थियो के उपयोग के लिए सूर संबंधी पुरानी बातें एक स्थान पर संकलित कर दी गयी है। इससे सूरदास के संबंध मे कोई महत्वपूर्ण बात ज्ञात नहीं होती है।

सूर-सौरभ (श्री मुंशीराम शर्मा)—यह पुस्तक दो भागों मे समाप्त हुई है। यह सूरदास के स बध मे सबमे महत्वपूर्ण रचना है। इसके विद्वान लेखक ने सूर स बधी अनेक विषयो पर मौलिक एवं क्रांतिकारी विचार प्रकट किये है। इस ग्र थ के लेखक से हम लोगो को जिन बातो पर मतभेद है, उनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है। उनके मत का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) उन्होने 'सारावली' और 'साहित्यलहरी' दोनो को सूरदास की रचनाएँ मानी है और साहित्यलहरी के वंश-परिचय वाले पद को भी उन्होंने प्रामाणिक माना है। उक्त पद को प्रामाणिक मानते हुए भी वे सूरदास को भाट न मानकर ब्राह्मण मानते है ‡।

(२) 'सारावली' के 'सरसठ बरस' वाले कथन के आधार पर वे सूरदास की ६७ वर्ष की आयु मे उक्त ग्रंथ की रचना न मान कर उस आयु मे बल्लभाचार्य जी द्वारा दीक्षित होने की बात लिखते हैं †।

(३) वे सूरदास के पिता का नाम रूमदास और उसके मुसलमान हो जाने की कल्पना करते है ‖।

---

‡ सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृ० १३, ३२

† „ „ पृ० ५, ५३

‖ „ „ पृ० १६, ६४, द्वितीय भाग पृ० ३४

(४) वे सुबल संवत् के कारण 'साहित्य लहरी' का रचना-काल सं० १६२७ और सरस संवत् के आधार पर सूरदास का जन्म संवत् १५१५ मानते है *।

(५) उनका मत है कि वल्लभाचार्य जी की शरण मे आने से पहले सूरदास गृहस्थ थे। वे पहले शैव, तत्पश्चात् स्वामी हरिदास के शिष्य हुए थे‡।

(६) वे सं० १६२८ के पश्चात् सूरदास का जीवित रहना स्वीकार नही करते हैं❀।

सूरदास (डा० ब्रजेश्वर वर्मा)—यह ग्रंथ सूरदास पर लेखक की 'थीसिस' के रूप मे लिखा गया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार यह 'महाकवि सूरदास की जीवनी तथा काव्य का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन कहा जा सकता है।' यह ग्रंथ है भी बडा महत्वपूर्ण, किंतु हम इसकी अनेक बातो से पूर्णतया सहमत नही है। वे 'सूरदास की जाति और जन्मभूमि के विषय मे श्री हरिराय जी का विवरण निस्संकोच निर्णयात्मक रूप मे' नही मानते है° । सूरदास और वल्लभाचार्य का समवयस्क होना असंभव मान कर उनको सूरदास की जन्म तिथि वैशाख शु० ५ सं० १५३५ संतोषजनक ज्ञात नहीं होती है‖। उन्होने 'सूरसागर' और 'सारावली' की रचना शैली मे २७ अंतर स्थापित कर सारावली को सूरदास की रचना स्वीकार नहीं किया है †। वे 'साहित्य लहरी' को भी सूरदास की रचना नही मानते है ।

सूरदास : एक अध्ययन (श्री रामरतन भटनागर)— 'सूर साहित्य की भूमिका' के पश्चात् भटनागर जी की सूर संबंधी यह दूसरी रचना भी महत्वपूर्ण है। इसे सूरदास का अध्ययन न कह कर 'सूरसागर' का अध्ययन कहना चाहिए, क्यो कि उसी के आधार पर सूरदास के काव्य-महत्व का मूल्यांकन

---

* सूर-सौरभ, प्रथम भाग पृ० ८

‡ ,, ,, पृ० ३८, ३६, ४०, ४१, ४४ द्वितीय भाग, पृ० ४८

❀ ,, ,, पृ० ६०

° सूरदास, पृ० ३१

‖ ,, पृ० ४४

† ,, पृ० ७५, ८३

* ,, पृ० ९६

किया गया हैं । इसमे सूरदास के जीवन-वृत्तांत और उनके ग्र थो की प्रामाणिकता की जाँच नही की गयी है । ग्र थ के अत मे चार पृष्ठो वाले परिशिष्ट मे इनकी सूचना मात्र दे दी गयी है । इसमे उन्होने पुरानी बातो को दुहराते हुए तद्विषयक 'निर्णयात्मक खोज' न कर सकने का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है* ।

अष्टछाप-परिचय (प्रभुदयाल मीतल)–इस ग्र थ के सहयोगी लेखक की रचना होने के कारण इस पर कुछ कहने का हमको अधिकार नही है । यहाँ पर केवल यह बतलाना है कि उसमे उल्लिखित सूर स बधी मत इस ग्र थ के अनुकूल है । यदि उसमे इससे कही विरोध मालूम पडे, तो वह इसके प्रथम सस्करण के संबंध मे हो सकता है । इसके परिष्कृत द्वितीय सस्करण मे लेखक ने अपने नवीन अनुसधानो का उपयोग किया है । इस ग्र ंथ मे अष्टछाप के आठो कवियो का आलोचनात्मक जीवन-वृत्तांत और उनके काव्य का सकलन किया गया है । अष्टछाप के मुकुटमणि होने के कारण इसमे सूरदास पर विशेष रूप से लिखा गया है । सूरदास पर लिखते हुए लेखक ने सूर संबधी प्रायः समस्त सामग्री का अनुशीलन कर अपना मत निर्धारित किया है ।

अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (डा० दीनदयालु गुप्त)—यह अपने विषय की महत्वपूर्ण और सब से नवीन प्रकाशित रचना है । इसे डा० गुप्त ने 'थीसिस' के रूप मे कई वर्ष पहले लिखा था, किंतु यह पुस्तक के रूप मे अभी प्रकाशित हुई है । यह ग्र ंथ लेखक के प्रचुर परिश्रम और गभीर अध्ययन का परिणाम है । वल्लभ सप्रदाय और वार्ता साहित्य की जिन रचनाओ के आधार पर हमने अपने निष्कर्ष निकाले है, उनमे से अधिकांश का उपयोग डा० गुप्त ने भी किया है, फिर भी कई विषयो मे हमारा उनसे मतभेद है । हमने आगामी पृष्ठो मे यथा स्थान इस मतभेद का उल्लेख किया है । इस विशाल-काय ग्र थ मे सूरदास के जीवन-वृत्तांत और उनके ग्र थो पर अपेक्षाकृत कम लिखा गया है और 'थीसिस' की निर्दिष्ट सीमाओ के कारण उसमे सूरदास के काव्य पर तो कुछ भी नही लिखा गया है । यह सब होने पर भी इसमे सूरदास संबंधी प्रचुर सामग्री का समावेश है।

यहाँ पर कुछ ऐसी बातो पर प्रकाश डाला जाता है, जिनसे हमारा मतभेद है—

* सूरदास एक अध्ययन, पृ० २४७

(१) उन्होने बल्लभाचार्य जी की प्रथम यात्रा मे विद्यानगर का शास्त्रार्थ और कनकाभिषेक का होना लिखा है†, जब कि ये कार्य उनकी तृतीय यात्रा मे हुए थे‡।

(२) उन्होने बल्लभाचार्य जी के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ जी का देहावसान सं० १५६५ मे लिख कर उनके जीवन काल मे ही उनके एक मात्र पुत्र पुरुषोत्तम जी के देहावसान का उल्लेख किया है§, जब कि गोपीनाथ जी का निधन सवत् १५९९ है और पुरुषोत्तम जी का देहावसान अपने पिता के पश्चात् स० १६०६ मे हुआ था‡।

(३) श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश को प्रामाणिक मान कर भी वे सूरदास को जन्मांध स्वीकार नही करते है। उनका मत है कि सूरदास के "जन्मांध होने के प्रमाण उनकी रचनाओ मे नही मिलते*।" सूरदास के काव्य-कौशल के कारण अन्य लेखको ने उनकी वृद्धावस्था मे नेत्र विहीन होने का अनुमान किया है, किंतु इस ग्रंथ में वे उनकी बाल्यावस्था मे अंधे होने की कल्पना करते है°।

---

† अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृ० ७०

‡ अष्टछाप परिचय (द्वितीय सस्करण) पृ० ६

§ अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय पृ० ७५

‡ अष्टछाप परिचय (द्वितीय संस्करण) पृ० २०, २१, २३

* अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय पृष्ठ ८२

पृष्ठ २०२

द्वितीय परिच्छेद

चरित्र-निर्णय



नाम—

सूरदास के नाम से प्रसिद्ध रचनाओ मे उनके पॉच नाम मिलते हैं—सूर, सूरदास, सूरज, सूरजदास और सूरश्याम। इनके अतिरिक्त कही-कही सूरसुजान, सूरसरस, सूरजश्याम और सूरजश्याम सुजान नाम भी मिलते है। यहॉ पर यह विचारणीय है कि ये सभी नाम एक ही व्यक्ति के है, अथवा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के। डा० जनार्दन मिश्र ने अपने ग्रंथ 'सूरदास' मे सूरज, सूरजदास और सूरश्याम के नाम से मिलने वाले पदो को प्रक्षिप्त बतलाया है। इसका यह अभिप्राय है ये नाम सूरदास से अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियो के है। उन्होने अपने उक्त मत के समर्थन मे कोई संतोषजनक प्रमाण नहीं दिया है*। डा० दीनदयाल गुप्त इस मत के विरुद्ध उपर्युक्त नामो को सूरदास के ही नाम मानते है। उनका कथन है कि—

"उक्त छाप के पद बल्लभ-संप्रदायी प्राचीन संग्रहालयो मे भी उपलब्ध होते हैं और उन पदो मे सूर के सांप्रदायिक विचारो की छाप है†।"

श्री मुंशीराम शर्मा ने इन नामों पर विस्तार पूर्वक विचार किया है। उनका मत है कि ये सभी नाम महाकवि सूरदास के ही है। उनका मत है—

"पद-रचना मे जहाँ जैसा उपयुक्त जान पड़ा और पद के अनुकूल बैठ गया, वहाँ वैसा ही नाम उन्होने प्रयुक्त कर दिया है। सुजान, सरस आदि शब्द भी भाव भरित उमंग की लपेट मे इसी प्रकार प्रयुक्त हो गये है। जो लीला ही सरस हो और सुजान श्याम से सबंध रखने वाली हो, उसमें ऐसे शब्दो का आजाना स्वाभाविक है‡।"

श्री मुंशीराम शर्मा ने 'सूरसागर' और 'साहित्यलहरी' के ऐसे पदो को उद्धृत किया है, जिनकी टेक एक सी है, किंतु उनमे नाम भिन्न-भिन्न हैं। इससे उन्होने यह अनुमान किया है—

---

* सूरदास पृष्ठ ७

† अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृष्ठ १६६

‡ सूरसौरभ, द्वितीय भाग, पृष्ठ ५०

"सूर के पद विभिन्न गायकों के हाथों में पड़कर अपने मूल रूप से कुछ भिन्न भी हो गये हैं। संभव है इन गायकों ने अपनी रुचि के अनुकूल उनमें सूर के प्रसिद्ध उपनामों में से कहीं सूर, कहीं सूरदास, कहीं सूरश्याम और कहीं सूरसुजान उपनाम रख दिये हो। पद की पंक्ति को थोड़ा इधर उधर कर देने से ये सभी उपनाम उसमें खप जाते हैं।"इसके अतिरिक्त सूरसागर में कई स्थलों पर एक क्रमबद्ध प्रसंग के ही भीतर सूर, सूरज, सूरश्याम आदि उपनाम के पद आते हैं; जैसे दशमस्कंध के पृष्ठ २०६ पर 'यज्ञपत्नी वचन' शीर्षक कथानक में†।"

भाषा और भावों के साम्य के कारण हम भी इन सभी छाप वाले पदों को एक ही व्यक्ति की रचना मानते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि उनका मूल नाम क्या है। साहित्य लहरी के पूर्वोक्त पद से ज्ञात होता है कि उनका मूल नाम सूरजचंद था। फिर भगवान श्रीकृष्ण ने उनका नाम सूरजदास एवं सूर रखा। साहित्य लहरी के इस पद की अप्रामाणिकता के कारण इसका कथन पूर्णतया माननीय नहीं है, फिर भी इसमें सूरदास के इन नामों की एकता तो सिद्ध होती ही है। हमारा अनुमान है कि उनका नाम 'सूरज' था। सूरज का लघु रूप सूर है। फिर वैष्णवता के कारण सूरजदास, सूरदास अथवा सूरश्याम नाम पड़ गये थे। सूरजचंद नाम का कहीं पर भी प्रयोग नहीं हुआ है, इसलिए भी साहित्य लहरी का कथन उचित ज्ञात नहीं होता है।

गोसाईं विट्ठलनाथ जी, गोकुलनाथ जी एवं अष्टसखाओं के समकालीन वृंदावन निवासी प्राणनाथ कवि ने स्वरचित 'अष्टसखामृत' में लिखा है—

श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सीही सर जल-जात।
सारसुती दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात॥
कहा बड़ाई करि सकै, जाकौ प्रगट प्रकास।
श्री बल्लभ के लाडिले, कहियत सूरजदास॥

---

† सूरसौरभ, द्वितीय भाग, पृष्ठ ४१, ४२

* भयौ सातौ नाम सूरजचंद मंद निकाम॥

+ + +

नाम राखे मोर सूरजदास सूर सुस्याम॥

—'साहित्यलहरी' पद सं० ११८

इससे ज्ञात होता है कि उनका नाम सूरजदास था, किंतु लोक में वे सूर के नाम से विख्यात हुए। उनकी रचनाओं मे उनके मुख्य नाम ५ मिलते हैं— सूरज, सूरजदास, सूर, सूरदास और सूरश्याम, किंतु लोक मे और उनकी कविताओं मे सूर अथवा सूरदास नाम ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इसका कारण हरिराय जी ने अपने भाव प्रकाश मे इस प्रकार बतलाया है—

"श्री आचार्य जी आप तो 'सूर' कहते। जैसे सूर होय सो रण मे सो पाछो पॉव नॉहि देय, जो सबसों आगे चले। तैसेई सूरदासजी की भक्ति दिन-दिन चढ़ती दिसा भई। तासों श्री आचार्यजी आप 'सूर' कहते।

और श्री गुसाईं जी आप 'सूरदास' कहते। सो दास भाव मे कबहू घटै नांही। ज्यों ज्यों अनुभव अधिक भयो, त्यो त्यों सूरदास जी को दीनता अधिक भई। सो सूरदास जी कों कबहूँ अहंकार मद नाँही भयौ। सो 'सूरदास जी' इनकौ नाम कहे।"

उक्त उद्धरण से ज्ञात होगा कि श्री बल्लभाचार्य जी और गोसाईं विट्ठल-नाथ जी द्वारा सूर एवं सूरदास नामो से संबोधन किये जाने से उनके ये दोनों नाम ही लोक मे अधिक प्रसिद्ध हो गये। सूरदास ने भी अपनी रचनाओं मे इन्हीं दोनो नामो का विशेष प्रयोग किया है।

जन्म भूमि और निवास स्थान—

'साहित्य लहरी' के वंश-परिचय वाले पद में सूरदास के पिता का निवास-स्थान आगरा के निकटवर्ती 'गोपाचल' लिखा गया है†, किंतु इससे यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि सूरदास का जन्म स्थान भी वही था। सूरदास की रचनाओं की भाषा और परंपरागत जन श्रुतियों के आधार पर कुछ विद्वान उनका जन्म स्थान ब्रज प्रदेश मे मानते है। उनकी मान्यता का आधार मियाँसिंह कृत 'भक्त-विनोद' का निम्न लिखित कथन भी हो सकता है—

"मथुरा प्रांत विप्रवर गेहा। भो उत्पन्न भक्त हरि नेहा॥"

मूल चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि श्री बल्लभाचार्य जी की शरण मे आने से पहले सूरदास आगरा-मथुरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान पर रहा करते थे। उक्त वार्ता में भी गऊघाट को उनका जन्म स्थान नहीं बतलाया

† आगरे रहि गोपचल मे रह्यौ ता सुत वीर।

गया है। श्री मुशीराम शर्मा साहित्य लहरी के 'गोपाचल' को चौरासी वार्ता का 'गऊघाट' मानते है¶। उनका कथन अनुमान और नाम-साम्य पर आधारित है। इसके अतिरिक्त साहित्य लहरी के पद की अप्रामाणिकता के कारण गोपाचल को महत्व नही दिया जा सकता। हिंदी के कुछ माननीय इतिहासकारो ने भ्रम वश रुनकुता को सूरदास का जन्म स्थान लिख दिया था। रुनकुता वार्ता मे उल्लिखित गऊघाट के निकट स्थित है, इसीलिए शायद उक्त विद्वानो को भ्रम हो गया था, किंतु उन्होने अपनी रचनाओ के नवीन संस्करणो मे उसे दूर कर दिया है†। हमारे विचार से गोपाचल, रुनकुता और गऊघाट को सूरदास के जन्म स्थान मानने का तो कोई प्रमाण मिलता ही नही है, मथुरा प्रांत अथवा ब्रजमडल के किसी स्थान को भी किसी प्रामाणिक सूत्र के अभाव मे उनका जन्म स्थान नही माना जा सकता।

श्री हरिराय जी ने चौरासी वार्ता के भाव-प्रकाश में सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के निकटवर्ती 'सीही' नामक ग्राम को बतलाया है। बा० राधाकृष्ण दास ने सीही को मथुरा प्रांत के अतर्गत लिखा था, किंतु उनका यह कथन भ्रमात्मक है। हरिराय जी ने सीही की स्थिति बतलाते हुए कहा है—

"दिल्ली के पास चार कोस उरे में एक सीही ग्राम है, जहाँ परीक्षित के बेटा जन्मेजय ने सर्प यज्ञ कियौ है‡।"

हरिराय जी के इस कथन की पुष्टि उनके पूर्वज गोस्वाई विट्ठलनाथ जी एव गोकुलनाथ जी के समकालीन प्राणनाथ कवि के निम्न लिखित कथन से भी होती है—

श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सीहीं सर जल जात।
सारसुती-दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात† ॥

ऐसी दशा मे हम सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के निकटवर्ती सीही नामक ग्राम को मानने के लिए विवश है। हिंदी के माननीय इतिहासकार भी अब इसी मत को प्रामाणिक मानने लगे है*।

¶ सूर-सौरभ, प्रथम भाग पृ० १८, १९

† डा० श्यामसुंदरदास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों के नवीन संस्करण।

‡ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे 'अष्ट सखान की वार्ता' पृ० २

† अष्टसखामृत

* डा० श्यामसुंदरदास कृत हिंदी साहित्य' (चतुर्थ संस्करण २००३) पृ० १८५

हरिराय जी के कथन से ज्ञात होता है कि सूरदास अपनी छै वर्ष की आयु तक सीही ग्राम मे रहे। इसके उपरांत वे अपने माता-पिता से अलग होकर सीहीं से चार कोस दूर एक स्थान पर तालाब के किनारे रहने लगे। वहाँ पर वे अपनी अठारह वर्ष की आयु तक रहे। उस समय उनको संसार से वैराग्य हो गया। वे सब कुछ वही पर छोड कर ब्रज की ओर चल दिये और मथुरा होते हुए गऊघाट पर आकर रहने लगे। बहिःसाक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि वे वहाँ पर अपनी इकत्तीस वर्ष की आयु तक रहे। इसके उपरांत श्री बल्लभाचार्य जी के सेवक होकर वे उनके साथ गोवर्धन को चले गये। वहाँ पर वे अपनी अंतिम अवस्था तक रहे। वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि वे कभी-कभी मथुरा और गोकुल मे जाते थे, किंतु वे कभी ब्रज के बाहर किसी अन्य स्थान को भी गये थे, इसका उल्लेख नहीं मिलता है। इससे यही अनुमान होता है कि ब्रज मे आने के पश्चात् फिर वे जीवन पर्यंत वही पर रहे। वार्ता से ज्ञात होता है कि वे एक वार अकबर बादशाह से मिले थे, किंतु यह भेंट भी मथुरा में ही हुई थी।

भगवान् श्री कृष्ण की रास-स्थली होने के कारण गोवर्धन के निकटवर्ती परासौली ग्राम से भी उनका प्रेम था और इसी कारण वे वहाँ पर रहते थे। उनका देहावसान भी परासौली में ही हुआ था। इस स्थान पर उनकी कुटी अभी तक बनी हुई है।

जन्म तिथि—

पुष्टि संप्रदाय मे परंपरा से यह मान्यता चली आ रही है कि सूरदास श्री बल्लभाचार्य जी से आयु मे दस दिन छोटे थे। आचार्य जी का जन्म दिवस सं० १५३५ की वैशाख कृ० १० उपरांत ११ रविवार निश्चित है, अतः सूरदास की जन्म तिथि सं० १५३५ की वैशाख शु० ५* मंगलवार हुई। इस तिथि का उल्लेख अन्य प्रमाणों से भी इस प्रकार प्राप्त होता है—

---

* उस वर्ष वैशाख शु० ३ का क्षय था, इसलिए पंचमी मंगलवार की थी। दस दिन की गणना रविवार और दशमी से करनी चाहिए। जन्म की तिथि धर्मशास्त्र के अनुसार तत्काल व्यापिनी मानी जाती है, किंतु उस दिन उदयात् तिथि दशमी ही थी।

श्री वल्लभाचार्य जी के वंशज श्री गोपिकालंकार 'भट्ट जी महाराज' काव्योपनाम 'रसिकदास' ने सूरदास की जन्म तिथि का उल्लेख निम्न लिखित पद में किया है। भट्ट जी महाराज का जन्म गोवर्धन-जतीपुरा में सं० १८७९ हुआ था। उक्त पद का आरंभिक अंश इस प्रकार है—

प्रगटे भक्त शिरोमणिराय।
माधव शुक्ला पंचमि ऊपर छट्ठ† अधिक सुखदाय॥

उपर्युक्त कथन की पुष्टि भट्ट जी महारज के पूर्ववर्ती श्री द्वारिकेश जी (जन्म सं० १७५१) भावना वालो द्वारा रचित 'भाव संग्रह' के निम्न उद्धरण से इस प्रकार होती है —

"सो सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभुन ते दस दिन छोटे हते।"

उपर्युक्त उद्धरण से भी प्राचीन प्रमाण 'निज वार्ता' का है। इसमे गोसाईं श्री गोकुलनाथ जी (जन्म सं० १६०८) ने सूरदास की जन्म तिथि के विषय में इस प्रकार कथन किया है—

"सो सूरदास जी जब श्री आचार्य जी महाप्रभु कौ प्रगत्य भयो है, तब इनको जन्म भयो है। सो श्री आचार्य जी सो ये दिन दस छोटे हुते।"

ऐसी प्रसिद्धि है कि श्री हरिराय जी ने भी अपने वचनामृतों मे सूरदास को आचार्य जी महाप्रभु से दस दिन छोटे होने का उल्लेख किया है। इसकी पुष्टि हरिराय जी के सेवक जमुनादास कृत गुजराती धौल की निम्न पंक्ति से भी होती है—

"आ तारा थी ए दिवस दस महान् जो॰।"

यहाँ पर यह शंका हो सकती है कि जब गो० गोकुलनाथ जी कृत 'निज वार्ता' मे सूरदास की जन्म तिथि का उल्लेख है, तो उनके द्वारा कथित 'चौरासी वार्ता' में और हरिराय जी कृत चौरासी वार्ता के भावप्रकाश में सूरदास को जन्म तिथि का उल्लेख क्यो नहीं हुआ है? इसके समाधान के

† सूरदास के जन्म की निश्चित घड़ी अज्ञात होने के कारण यह नही कहा जा सकता कि उनका जन्म पंचमी मे हुआ या पंचमी उपरात छट्ठ मे, अत उदयात पंचमी मानना ही अधिक समीचीन है।

॰ यह समस्त धौल वाह्य साक्ष्य पृष्ठ ३१ पर दिया जा चुका है।

लिए उक्त महानुभावों की रचना शैली के अध्ययन की आवश्यकता है। गो० गोकुलनाथ जी और श्री हरिराय जी के ग्रंथो का सुचारु रूप से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे दोनो महानुभाव जिस बात को किसी एक ग्रंथ में कहते थे, उसको यथासाध्य दूसरे में दुहराते नहीं थे। इसके साथ ही तिथि-संवत् आदि पर तो वे बहुत ही कम ध्यान देते थे। उदाहरण के लिए दो-एक घटनाओं का उल्लेख किया जाता है। गो० गोकुलनाथ जी ने 'श्री आचार्य महाप्रभु जी की प्रागट्य-वार्ता' मे आचार्य जी के प्राकट्य-संवत् का कथन किया है†, किंतु उन्होंने 'निज वार्ता' में महाप्रभु जी के प्राकट्य-वृत्तांत का कथन करते हुए भी उनका प्राकट्य संवत् नही बतलाया है। इसके अतिरिक्त महाप्रभु जी की 'निज वार्ता' में गो० विट्ठलनाथ जी के प्राकट्य संवत् का कथन होने से स्वयं गोस्वामी जी की 'निजवार्ता' में उसका उल्लेख नही किया गया है। इसी प्रकार श्री हरिराय जी के वचनामृतो में सूरदास के दस दिन छोटे होने का कथन होने से 'चौरासी वार्ता' एव भावप्रकाश में इसका उल्लेख करने की आवश्यकता नही समझी गयी होगी।

वल्लभ सप्रदाय की सेवा-प्रणाली के इतिहास की संगति से 'सूरसारावली' का रचनाकाल सं० १६०२ स्पष्ट होता है। उस समय सूरदास की आयु ६७ वर्ष की थी। १६०२ में से ६७ कम कर देने से १५३५ रहते हैं, अतः अंतःसाक्ष्य से भी सूरदास का जन्म संवत् १५३५ ही सिद्ध होता है।

डा० दीनदयाल गुप्त ने इस सबंध मे खोज करते हुए अपना नाथद्वारे का अनुभव इस प्रकार लिखा है—

"श्रीनाथद्वारे मे सूरदास जी का जन्मोत्सव श्री बल्लभाचार्य जी के जन्म दिन वैसाख बदी ११ के बाद वैसाख सुदी ५ को मनाया जाता है। सूर के इस जन्म दिवस का मनाने का उत्सव सप्रदाय मे नया नहीं है, यह परंपरा बहुत प्राचीन है*।"

उपर्युक्त सभी प्रमाणो से सूरदास की जन्म तिथि सं० १५३५ की वैशाख शु० ५, मंगलवार सिद्ध होती है। हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान मिश्र-बंधुओं ने सूरदास का आनुमानिक जन्म संवत् १५४० लिखा था, जिसका अनुकरण हिंदी के प्रायः सभी इतिहासकारो ने किया है। अब इस आनुमानिक मत के संशोधन की आवश्यकता है।

---

† पृष्ठ सं० १७

* अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २१२

वंश-परिचय—

साहित्य लहरी के तथा-कथित वश परंपरा वाले पद के अतिरिक्त अन्य किसी भी साधन से सूरदास का वंश-परिचय प्राप्त नहीं होता है। सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य और मूल चौरासी वार्ता से भी इस पर कुछ प्रकाश नही पड़ता है। नाभा जी एवं प्रियदास ने क्रमशः 'भक्तमाल' और उसकी टीका मे अनेक भक्त कवियों के जीवन-वृत्तांत का कथन किया है, किंतु सूरदास के वंश के संबंध मे वे भी मौन है। नाभा जी ने सूरदास के कवित्व और उनकी भक्ति की प्रशसा की है, किंतु जीवन वृत्तांत पर उन्होने कुछ भी प्रकाश नही डाला है। साहित्य लहरी के पद की अप्रामाणिकता के कारण उसमे दिया हुआ वश-परिचय भी अप्रामाणिक है, अतः उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

ऐसी दशा मे सूरदास की वंश परंपरा जानने का कोई साधन नहीं है। इसका कारण यह ज्ञात होता है कि सूरदास अपनी बाल्यावस्था मे ही घर से निकल पडे थे और फिर जीवन भर विरक्त रहे। वे स्वयं अपने भौतिक जीवन के प्रति उदासीन थे, अतः इस संबंध में उन्होने कभी कुछ प्रकट नही किया। उनके समकालीन तथा परवर्ती व्यक्तियो को भी इस सबंध मे जानने का कोई साधन नहीं रहा, अतः यह विषय अभी तक अज्ञानाधंकार के आवरण से ढका हुआ है।

श्री हरिराय जी ने वार्ताओ पर भाव प्रकाश कहते हुए अनेक भक्तो के जीवन वृत्तांत प्रकट करने की भी चेष्टा की है; किंतु उन्होंने भी सूरदास का वश-परिचय विस्तार पूर्वक नही कहा है। यदि साहित्य लहरी मे स्वय सूरदास का कथित वश-परिचय होता, तो हरिराय जी उसका अवश्य उपयोग करते। उक्त पद की अप्रामाणिकता का यह भी एक कारण है, जैसा पहले लिखा जा चुका है।

श्री हरिराय जी के भावप्रकाश से केवल इतना ज्ञात होता है कि सूरदास का पिता एक अत्यत दरिद्र ब्राह्मण था। उसके चार पुत्रो में से सबसे छोटे पुत्र सूरदास थे। हरिराय जी ने सूरदास के पिता का नामोल्लेख नहीं किया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि साहित्य लहरी के जिस पद में सूरदास के तथा-कथित पूर्वजों के नाम लिखे गये है, उसमे भी उनके पिता का नाम नहीं दिया गया है। उक्त पद और उसमे दी हुई वंशावली की प्रामाणिकता मे विश्वास करने वाले श्री मुंशीराम जी शर्मा इसका कारण यह बतलाते हैं कि सूरदास का पिता अपने छै महा बलवान पुत्रों को मुसलमानों

की युद्धाग्नि मे झोंक कर भी आप मुसलमान हो गया था। सभवत. वह इच्छा से नहीं, बलात् मुसलमान बना लिया गया था। उसका यह कृत्य सूरदास के लिए लज्जाजनक ज्ञात होता था, अतः उन्होने उसका नाम देना भी उचित नही समझा† !

अकबर के सुप्रसिद्ध दरबारी अबुलफज़ल ने 'आईन-ए-अकबरी' मे अकबरी दरबार के सगीतज्ञों के नाम लिखे हैं। उनमे ग्वालियर निवासी बाबा रामदास और उनके पुत्र सूरदास का भी नामोल्लेख किया गया है। अलबदाउनी ने 'मुंतख़िब उल-तवारीख़' मे लिखा है रामदास सुप्रसिद्ध सगीतज्ञ तानसेन के समान ही विख्यात कलाकार था, जो अकबर और खानख़ाना से प्रचुर धन प्राप्त करता था।

अबुलफ़जल और अलबदाउनी के रामदास और उसके पुत्र सूरदास को डा० ग्रियर्सन ने भ्रमवश अष्टछापी सूरदास और उनका पिता समझ लिया था। यही भूल बाद के कई लेखकों ने भी की है। अकबर स० १६१३ मे गद्दी पर बैठा था। आरभिक १०-१५ वर्ष उसे अपने शासन को सुदृढ बनाने मे लगे थे। उसके दरबार मे कलाकारो का सन्मान इसके बाद ही सभव था। तानसेन भी अकबर के दरबार मे सं० १६२१ मे आया था। उस समय स्वयं सूरदास की ही आयु प्रायः ६० वर्ष की थी। यदि रामदास को सूरदास का पिता मान लिया जाय तो उसे अवस्था के अति वृद्ध पुरुष का अकबरी दरबार मे पहुँचना और तानसेन के समान आदर पाना कैसे संभव हो सकता है ! फिर उस रामदास का पुत्र सूरदास को भी अकबरी दरबार का नियमित गायक बतलाया गया है। हमारे सूरदास की एक बार अकबर से भेंट अवश्य हुई थी, किंतु उनका अकबरी दरबार से क़तई संबध नहीं था। अकबर से भेंट होने पर भी उन्होंने उससे पुनः मिलने की अनिच्छा प्रकट की थी। सूरदास जैसे विरक्त और सर्वस्व-त्यागी महानुभाव का अकबरी दरबार से संबंध हो भी कैसे सकता था ! यही कारण है कि सूरदास के पिता को रामदास बतला कर उसे अकबरी दरबार का गायक बतलाना एक दम भ्रमात्मक कथन है।

श्री मुंशीराम शर्मा अकबर के गायक रामदास को अष्टछापी सूरदास का पिता न मानते हुए भी उनके पिता का नाम रामदास ही मानने का आग्रह करते है। उन्होने लिखा है—

---

† सूर सौरभ प्रथम भाग, पृष्ठ १६

" पं० नानूराम भट्ट से प्राप्त हुई वंशावली के आधार पर महा-महोपाध्याय पडित हरिप्रसाद जी शास्त्री ने सूर के पिता का नाम रामचंद्र लिखा है, जो वैष्णव भक्ति के अनुसार रामदास बन जाता है। ‥ सूर के पिता का नाम भी यही था* । "

पं० नानूराम भट्ट की वंशावली और महामहोपाध्याय पं० हरिप्रसाद जी शास्त्री का मत भी साहित्य लहरी की वंशावली और डा० ग्रियसन के मत के समान अप्रामाणिक एवं भ्रमात्मक है, अतः उनके कथन को भी प्रमाण कोटि मे नही लिया जा सकता । ऐसी दशा मे सूरदास के पिता का भी नाम निश्चय करने का कोई साधन नही है ।

उपर्युक्त कथन का अभिप्राय यह है कि सूरदास का प्रामाणिक वंश-परिचय प्राप्त नही है । वे एक दरिद्र ब्राह्मण के पुत्र थे तथा उनके तीन भाई और थे, इसके अतिरिक्त कोई बात ज्ञात नहीं है। उनकी वंश-परंपरा, उनके पूर्वजो के नाम, यहाँ तक कि उनके पिता एवं भाइयों के नाम भी अज्ञात है ।

जाति—

सूरदास की जाति के विषय में कई मत प्राप्त हैं । इन मत-दाताओं में से कतिपय उनको भाट, ढाढी अथवा जाट जैसी निम्न जाति का मानते है, और सूरदास के पदो के अंतःसाक्ष्य से ही अपने-अपने मतो की पुष्टि भी करते है ! यहाँ हम उनके मतो की समीक्षा द्वारा सूरदास की जाति का निर्णय करना चाहते है ।

सूरदास के भाट जातीय होने की कल्पना साहित्य लहरी के पूर्वोक्त पद के कारण की गयी है । उक्त पद के 'प्रथ-जाग' के पाठांतर 'प्रथ-जगात' अथवा 'प्रथ-जगा तें' इस कल्पना के कारण है । जिन विद्वानों ने 'जगात' शब्द स्वीकार किया है, उन्होंने उसका अर्थ 'भाट' किया है, यद्यपि उसका वास्तविक अर्थ घाट का कर उगाहने वाला होता है । कुछ विद्वानों ने 'जगात' शब्द को गोत्र वाची मान कर सूरदास को प्रार्थज गोत्रोत्पन्न लिखा है । 'प्रथ-जगा' लिखने वाले तो स्पष्ट रूप से सूरदास को भाट मानते हैं । जिस पद के उक्त शब्दों के कारण सूरदास को भाट बतलाया जाता है, उसी के अंत में उनको

* सूर सरौभ, प्रथम भाग, पृष्ठ १९

ब्राह्मण भी लिखा गया है* । डा० रामकुमार वर्मा 'भाट' शब्दार्थ स्वीकार करते हुए भी पद के परस्पर विरुद्ध कथन के कारण उसकी प्रामाणिकता में सदेह करते हैं† । इस सदेह का निवारण श्री मुंशीराम शर्मा ने 'प्रथ जगात' अथवा 'प्रथ जगा तें' के स्थान पर 'प्रथ-जाग' पाठ उपस्थित कर एवं भाट को ब्राह्मण शब्द वाची लिख कर किया है$ । उक्त तर्क से पद के परस्पर विरुद्ध कथन की शंका तो दूर हो जाती है, किंतु वह समस्त पद फिर भी प्रामाणिक सिद्ध नहीं होता है, जैसा गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है। कुछ भी हो 'प्रथ-जाग' के शुद्ध पाठ के कारण अब सूरदास को भाट वंशीय मानने का तो कोई कारण नही है ।

साहित्य लहरी के पद को निश्चित आधार न मानते हुए भी डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने सूरदास के 'भाट' अथवा 'ब्रह्मभट्ट' होने की जनश्रुति भी उपस्थित की है—

"इस मत के पोषक सूरदास के 'ढाढ़ी वाले' पदों को भी अपने 'प्रमाणों' मे सम्मिलित कर सकते है, यद्यपि अभी तक ऐसा किसी ने किया नही है‡ ।"

सूरदास के आत्म निवेदनात्मक पदो में से अंतःसाक्ष्य निकाल कर कुछ विद्वान उन्हें सूरदास के जीवन-वृत्तांत के आधार रूप मे उपस्थित करते है । ऐसे ही अंतःसाक्ष्यो से उनको "ढाढी' अथवा 'जाट' जाति का बतलाया जाता है । हमारा निवेदन है कि सूरदास के अंतःसाक्ष्यों को जीवनचरित्र का आधार मानने में बडी सावधानी की आवश्यकता है । उनके आत्म निवेदनात्मक पदों का अधिकांश कथन माया-मोह से ग्रसित प्रायः समस्त सांसारिक जीवो के लिए है । उक्त कथनों का संबध सर्वत्र स्वयं सूरदास से लगाना अत्यंत भ्रमात्मक है ।

सूरदास के ढाढ़ी वाले पदों की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१. हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी 'सूरदास' मेरौ नाँऊं ॥
२. हँसि हँसि दौरि मिले अंक भरि हम-तुम एक ही जाति ॥
३. हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी भाव सेन सज पाऊँ ॥

---

* विप्र प्रथ के जाग को हौ, भावै भूरि निकाम ।
'सूर' है नँदनंद जू कौ, लियौ मोल गुलाम ॥ —साहित्यलहरी

† हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ६१२

$ सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृ० ६, १३

‡ सूरदास पृ० ४६

यदि पूर्वोक्त उल्लेखों के कारण सूरदास को ढाढ़ी जाति का कहा जा सकता है, तो फिर इस प्रकार के पदो के कारण अष्टछाप के अन्य कवियों को भी ढाढ़ी जाति का कहा जावेगा, यद्यपि उन कवियो की जातियां निश्चित है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ देखिए—

१. 'कृष्णदास' बल्लभ कुल कौ ढाढ़ी कीनौ जन्म सनाथ ॥
—कृष्णदास

२. हौ ढाढ़ी कबहूँ न अघाऊँ, यद्यपि नंद दातार ॥
—चतुर्भुजदास

३. 'नंददास' नंदराय कौ ढाढ़ी भयौ अजातिक ढोली ॥
—नंददास

ऐसे और भी कितने ही पद उपलब्ध हैं, जिनसे अन्य जातीय अष्टछापी एवं दूसरे कवियों को ढाढी जाति का कहना होगा। इसके अतिरिक्त इन पदों के कारण महाप्रभु बल्लभाचार्य के शरण मे आने के बाद भी सूरदास को गृहस्थ और सपत्नीक भी मानना होगा, जो कि हास्यास्पद है।

निम्न लिखित पद मे ढाढी की स्त्री और गृहस्थ जीवन का स्पष्ट उल्लेख है—

नंद जू दु:ख गयौ, सुख आयौ, सबन को दियौ पुत्र-फल मानौ।
तुम्हरौ पुत्र प्रान सबहिन कौ, भवन चतुरदस जानौ॥
हौ तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी, भाव सेन सज पाऊँ।
गृह गोवरधन बास हमारौ, घर तजि अनत न जाऊँ॥
ढाढ़िनि मेरी नाँचै गावै, हौ ही ढाढ़ौ बजावौ।
हमरौ चित्यौ भयौ तुम्हारे, जो माँगो सो पावौ॥
अब तुम मोकौ करौ अयाची, जो गृह गेह बिसारौं।
द्वारे रहौं, देहु एक मंदिर, स्याम सरूप निहारौं॥
हँसि ढाढ़नि ढाढ़ी सो बोली, अब तू बरनि बधाई।
ऐसौ दियौ न दैहै 'सूर' कोउ, यशोमति हौ पहराई॥

उपर्युक्त पद से सिद्ध है कि इसे सूरदास के जीवन कथन की सामग्री रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता। बल्लभ संप्रदाय की सेवा प्रणाली के अध्ययन से यह विषय भली भाँति स्पष्ट हो जाता है। इस संप्रदाय मे राधाष्टमी के दिन ढाढी बनने की प्रथा महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के समय से ही चली आती है। उस समय श्रीनाथ जी के कीर्तनियां को ढाढ़ी बन कर

आना पड़ता है। सूरदास आदि अष्टछाप के कवि श्रीनाथ की के कीर्तनकार होने के कारण ढाढी बनते थे और तत्संबंधी पदो का गायन करते थे। यह प्रथा अब भी बल्लभ सम्प्रदाय के मंदिरो मे प्रचलित है। इन पदो के आधार पर सूरदास को ढाढी कहना इतिहास की एक बहुत बडी भूल कही जायगी। जाट जाति सूचक पद "हरिजू हौ यातें दुख पात्र" की प्रक्षिप्तता पूर्व सिद्ध की जा चुकी है, अत. इस मत को भी हम अप्रमाणिक मानते है।

उपर्युक्त अत साक्ष्यो के विरुद्ध ऐसे अतःसाक्ष्य भी मिलते है, जिनसे सूरदास के उच्च जातीय होने की सूचना मिलती है। निम्न लिखित पदो को देखिये—

मेरे जीय सु ऐसी आय बनी।
छाँड़ि गुपाल और जो जाँचौ, तौ लाजै जननी॥
कहा काँच कौ संग्रह कीजै, त्याग अमोल मनी।
विष कौ मेरु कहाँ लौ कीजै, अमृत एक कनी॥
मन बच क्रम सत भाउ, कहत हौ मेरे स्याम धनी।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरी भक्ति लगि, तजी जाति अपनी*॥

अथवा—

बिकानी हरि मुख की मुसिकानि।
पर बस भई फिरत सँग निसि दिन, सहज परी यह बानि॥
× × ×
गई जाति, अभिमान, मोह, मद, पति, हरिजन पहचानि।
'सूर' सिंधु सरिता मिलि, जैसे मनसा बुंद हिरानि‡॥

उपर्युक्त पदों मे से प्रथम पद मे सूरदास ने भगवद्भक्ति के लिए और द्वितीय पद मे 'हरि-मुख की मुसकानि' पर सर्वस्व अर्पित करते हुए अपनी जाति को भी त्याग देने की बात कही है। उच्च जाति का त्याग ही लोक में कथनीय हो सकता है, अन्यथा निम्न जाति के त्याग का क्या महत्व है। इन अत· साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि वे अवश्य उच्च जाति के थे। उच्च जातियो मे भी ब्राह्मण जाति का महत्व माना गया है, क्यों कि वही जाति उन दिनो आचार-विचार मे सयम का विशेष रूप से पालन करती थी। इससे समझा

* सूर-सागर (बंबई सं० १६६४) पृष्ठ १७

‡ सूरदास कृत हस्त लिखित पदो के निजी संग्रह से।

जा सकता है कि सूरदास ब्राह्मण ही थे। इस मत की पुष्टि अनेक बाह्य-साक्ष्यो से भी होती है, जिनमे सूरदास को स्पष्ट रूप से सारस्वत ब्राह्मण बतलाया गया है।

गोसाईं विट्ठलनाथ जी छठे पुत्र गो० यदुनाथ जी (स० १६१५ से १६६०) ने सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण बतलाते हुए लिखा है—

"ततोऽलर्कपुरे समागताः। तत्राऽऽवासः कृतः। ततो व्रजसमागमने सारस्वत सूरदासोऽनुगृहीनः† ।"

गोसांई विट्ठलनाथ जी के सेवक श्रीनाथ भट्ट ने सूरदास को प्राच्य ब्राह्मण लिखा है—

" जन्मांधो सूरिदासोऽभूत प्राच्यो ब्राह्मण उन्मदः* । "

प्राच्य ब्राह्मण से श्रीनाथ भट्ट का अभिप्राय सारस्वत ब्राह्मण से है या नहीं, यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता है, किंतु उनके कथन से सूरदास का ब्राह्मण होना सिद्ध है।

गोसांई विट्ठलनाथ जी एव गो० गोकुलनाथ जी के समकालीन प्राणनाथ कवि ने स्पष्ट रूप से सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है—

श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सीहीं-सर जलजात।
सारसुती दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात‡ ॥

श्री यदुनाथ जी निश्चय पूर्वक सूरदास के समकालीन थे, श्रीनाथ भट्ट गोसाई जी के सेवक और प्राणनाथ गोकुलनाथ जी के समकालीन होने के कारण सूरदास के भी प्रायः समकालीन थे, अतः उनके कथन प्रामाणिक हैं।

श्री हरिराय जी ने तो स्पष्ट रूप से सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है—

"अब श्री आचार्य जी महाप्रभुन के सेवक सूरदास जी सारस्वत ब्राह्मण·· तिनकी वार्ता", "सो सूरदास···एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ प्रकटे§ ।"

---

† बल्लभ दिग्विजय, पृष्ठ ५०

* संस्कृत वार्ता मणिमाला, श्लोक १

‡ अष्टसखामृत

§ चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे 'अष्ट सखान की वार्ता' पृष्ठ १,२

अब यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि गोकुलनाथ जी कृत "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" मे सूरदास की जाति का उल्लेख क्यो नहीं है, जब कि उसमे दिये हुए ८२ भक्तो मे से कम से कम ७२ भक्तो की जातियो का उल्लेख शीर्षको मे हो किया गया है ? इसका उत्तर यह है कि सूरदास पुष्टि संप्रदाय मे दीक्षित होने से पूर्व ही अपनी जाति का त्याग कर चुके थे। वे बाल्यावस्था मे घर से निकल आने और अंधे होने के कारण जाति-मर्यादा पालन करने मे असमर्थ थे। इसके अनंतर स्वामी होने की अवस्था मे वे साधु-संतो मे रहा करते थे, जहाँ जाति-पाँति का विचार नही होता है। साधु-मंडली के मत "जाति-पाँति बूझै नहीं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।" के अनुसार सूरदास भी जातीय कट्टरता के प्रति उदासीन थे।

पुष्टि मार्ग मे भी सर्वोच्च श्रेणी के भक्तों के लिए जातीयता महत्वपूर्ण नहीं है। इस मार्ग मे जातीयता तब तक ग्राह्य है, जब तक भक्त लोक धर्म से परे नहीं हो जाते। सूरदास लोक धर्म से परे ही नही थे, प्रत्युत् वे 'स्वयं प्रकाश' भी हो गये थे। वार्ताकार सूरदास की इस स्थिति से परिचित थे। सभव है इसी लिए उन्होने सूरदास की जाति का कथन करना अनावश्यक समझा हो। वैसे निम्न जाति का होना पुष्टि सम्प्रदाय के भक्तो के लिए कोई आपत्ति-जनक बात नही थी, इस लिए वार्ताकार द्वारा सूरदास की निम्न जाति को छिपाने की आवश्यकता भी नही थी। पुष्टि संप्रदाय के अनन्य भक्त, श्रीनाथ जी के मदिर के अधिकारी और अष्टछाप के कवि कृष्णदास को वार्ता मे स्पष्ट रूप से 'शूद्र' लिखा गया है, किंतु इसके कारण उनकी प्रतिष्ठा एवं भक्ति मे कोई कमी नहीं समझी गयी।

इस सब कारणो से हम सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण मानते हैं।

अंधत्व—

सूरदास सबंधी समस्त जन-श्रुतियो मे उनके अधत्व की बात सब से अधिक प्रचलित है। परपरागत मान्यताएँ ही नही, प्रत्युत् सूरदास की रचनाओ के अंतःसाक्ष्य से भी उनका नेत्रविहीन होना सिद्ध है। लोक मे भी 'सूर' और अधत्व समान अर्थ वाची माने जाने के कारण 'सूरदास' शब्द अधे के लिए रूढ़ सा हो गया है। अब मतभेद केवल इस विषय पर है कि वे जन्मांध थे, अथवा बाद मे अंधे हुए थे।

हिंदी साहित्य के विद्वान सूरदास के काव्य की पूर्णता से प्रभावित होकर ही उनकी जन्मांधता मे विश्वास नहीं करते हैं, वरना उनके पास जन्मांधता के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं है। इसके विपरीत सम सामयिक विद्वानो के बाह्य

साक्ष्य, परंपरागत मान्यता और सूरदास की रचनाओं के कतिपय अंत.साक्ष्य से भी उनका जन्मांध होना प्रमाणित होता है ।

सूरदास के काव्य मे दृश्य जगत् के ऐसे यथार्थ वर्णन है, उनके द्वारा प्रस्तुत रूपक, उपमाएँ एवं उत्प्रेक्षाएँ इतनी स्वाभाविक है, और उनकी कविता में रंगो का ऐसा यथावत् कथन किया गया है, जो आधुनिक विद्वानों के मतानुसार आँखो से देखे बिना केवल सुनी हुई बातो के आधार पर होना असंभव है, इसीलिए वे उनको जन्मांध न मान कर बाद मे वृद्धावस्था अथवा किसी अन्य कारण से उनके नेत्र-विहीन हो जाने का अनुमान करते है ।

इस प्रकार के अनुमान करने में प्रायः सभी आधुनिक विद्वान एक मत हैं, जैसा निम्न उद्धरणों से ज्ञात होगा—

" हमें तो इनके जन्मांध होने पर विश्वास नहीं होता । सूरदास ने अपनी कविता मे ज्योति के, रगों के और अनेकानेक हाव-भावो के ऐसे-ऐसे मनोरम वर्णन किये है, तथा उपमाएँ ऐसी चुभती हुई दी है, जिनसे यह किसी प्रकार निश्चय नही होता कि कोई व्यक्ति बिना आँखो देखे, केवल श्रवण द्वारा प्राप्त ज्ञान से, ऐसा वर्णन कर सकता है* ।"

"सूर वास्तव मे जन्मांध नही थे, क्यो कि शृंगार तथा रंग रूपादि का जो वर्णन उन्होने किया है, वैसा कोई जन्मांध नही कर सकता† ।"

" प्राकृतिक दृश्य का अनुपम चित्र-चित्रण किसी प्रकार यह नही मानने देता कि वे जन्म से ही अंधे थे । मिल्टन की तरह अवस्था बढ़ने पर ही वे नेत्र विहीन हो गये थे× ।"

" सूरदास ने अपने काव्य मे जिस प्रकार से ज्योति का नाना प्रकार के वर्णों का तथा नाना हाव-भावो का वर्णन किया है और प्रकृति से जिस ढग से नाना प्रकार की उपमाएँ कथन की है, वह चक्षुष्मान व्यक्ति के अतिरिक्त अंध के द्वारा केवल श्रुति की सहायता से संगृहीत नहीं हो सकता ।...संभवतः वह जन्मांध नहीं थे और पीछे वह अंध हो गये थे, ऐसा अनुमान होता है§ ।"

* मिश्रबंधु कृत ' हिंदी नवरत्न ' पृष्ठ २३० ।

† डा० श्यामसुंदरदास कृत ' हिंदी साहित्य ' पृष्ठ १८५

× डा० बेनीप्रसाद कृत 'संक्षिप्त सूरसागर ' पृष्ठ ६

§ श्री नलिनीमोहन सान्याल कृत ' भक्तशिरोमणि सूरदास ' पृष्ठ १०

" सूरदास की रचनाओं मे प्रकृति का और मनुष्य के भावों के उतार चढ़ाव का जैसा सूक्ष्म चित्रण है, उसे देख कर यह कहने का साहस नहीं होता है कि सूरदास ने बिना अपनी आँखों के देखे केवल कल्पना से यह सब लिखा है* ।"

" यदि सूरदास जी को जन्मांध माना जाए तो इस विचार और युक्ति के युग मे भी हमे चमत्कारो पर विश्वास करना पड़ेगा† ।"

" जहाँ-जहाँ कवि ने नेत्रहीनता का उल्लेख अपने पदों मे किया है, वहाँ-वहाँ अपनी वृद्धावस्था का भी उल्लेख किया है। इन सब बातो पर विचार करते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि सूरदास जन्मांध नहीं थे, परंतु प्रौढ़ावस्था पार करते-करते वे नेत्र विहीन हो गये‡ । "

इस प्रकार उपर्युक्त सभी विद्वानो का अनुमान है कि सूरदास जन्मांध नही थे, प्रत्युत् अपनी वृद्धावस्था में नेत्र विहीन हो गए थे। डा० दीनदयाल गुप्त भी सूरदास को जन्मांध नही मानते है, किंतु वे उनकी वृद्धावस्था में नही, वल्कि बाल्यावस्था मे अंधे होने का अनुमान करते है$ ।

सूरदास के जन्मांध होने के विरुद्ध आधुनिक विद्वानो की युक्तियाँ इतनी तर्क सम्मत है, कि उनको स्वीकार करने में हमको भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, किंतु हमारे मत से यह तर्क एवं युक्तियाँ सामान्य कवियो के लिए संगत हो सकती है। इस संबंध मे हम श्री मुंशीराम शर्मा के निम्न मत का समर्थन कर सकते है—

" यह तो साधारण मनुष्यो की ही बात हुई। सूर जैसे उच्च कोटि के संत की तो बात ही निराली है। वे भगवद्भक्त थे। अघटित घटना घटा देने वाले प्रभु के सच्चे भक्त के सामने विश्व के निगूढ़ रहस्य भी अनवगत नही रहते। साधारण व्यक्ति जिस वस्तु को नेत्र रहते भी नही देख सकता, उसे क्रांतिदर्शी व्यक्ति एवं महात्मा अनायास देख लेते है¶

* श्री नंददुलारे वाजपेयी कृत "सूर संदर्भ" पृष्ठ ३४

† डाक्टर ब्रजेश्वर वर्मा कृत "सूरदास" पृष्ठ ३१

‡ भटनागर एव त्रिपाठी कृत 'सूर साहित्य की भूमिका' पृष्ठ १३

$ अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २०२

¶ सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ २४

सूरदास केवल परमोच्च श्रेणी के कवि, गायक और भक्त ही नहीं थे, प्रत्युत वे ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले ब्रह्मविद् महात्मा थे। आर्य शास्त्रों के मतानुसार जो महानुभाव ब्रह्म विद्या को प्राप्त कर ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेते है, वे इन भौतिक चक्षुओ के आश्रित नहीं रहते हैं। परमात्मा की कृपा से उनको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है और वे 'स्वयं प्रकाश' हो जाते है। इस बात के समर्थन मे निम्न लिखित श्रुति वाक्य द्रष्टव्य है—

"अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्ठादात्मापश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वामति सवाएष एवं पश्यन्नेवं। मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः सस्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति*।

(छांदो॰ उप॰)

इसी बात को सूरदास ने इस प्रकार प्रकट किया है—

चरन कमल बंदौ हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लघै अंधे कों सब कुछ दरसाई॥
बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।
'सूरदास' स्वामी करुनामय बारबार बंदौं तिहिं पाई॥

अथवा

हरि जू तुमतें कहा न होई।
रंक सुदामा कियौ इंद्र सम पांडव हित कौरव दल खोई॥
पतित अजामिल दासी कुबिजा तिनहूँ के कलिमल सब धोई।
बोलै गूँग, पंगु गिरि लघै अरु आवै अंधा जग जोई॥
बालक मृतक जिवाय दिये द्विज, जो आये दरबारै होई।
'सूरदास' प्रभु इच्छा पूरन श्री गुपाल सुमिरत सब कोई॥

इन उल्लेखों से यह निश्चित होता है कि सिद्ध ज्ञानी भक्त लोग चाहें चक्षु विहीन ही क्यो न हों, उस परात्पर ज्ञान के आश्रय से दृश्य एवं अदृश्य

* आत्मा का ही आदेश है, आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा पीछे है और आत्मा ही दक्षिण ओर है, और आत्मा ही बाम भाग है, आत्मा ही सर्व है। इस प्रकार देखते, मानते और जानते हुए आत्मा के साथ रति करने वाला, क्रीडा करने वाला और विनोद करने वाला आत्मानंद और स्वयंप्रकाश हो ... । लोक मे वह कामनाएँ पूर्ण करता है।

जगत् के सभी पदार्थों एवं विषयों आदि का यथार्थ रूप से अनुभव करते रहते है। आर्य शास्त्रो के इस सिद्धांत के दृष्टांत शुक और संजयादि है।

श्री शुकाचार्य ने जन्म से ही गृह त्याग कर ब्रह्मचर्य का पालन किया था, अत. उनको ससार के किसी भी पदार्थ एव विषयादि का लेश मात्र भी अनुभव नहीं था। तथापि श्री भागवत मे उन्होने व्यास द्वारा सुने हुए रासादि लीला एवं अन्य विषयो का इस प्रकार कथन किया है, जैसा दूसरा सामान्य अनुभवी पुरुष भी वर्णन नही कर सकता है, और न कर सका है। इसी प्रकार ईश्वर प्रदत्त दृष्टि के कारण स जय रणक्षेत्र से कोसो दूर रह कर भी वहाँ का समस्त वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाते थे। यह आर्य शास्त्रो के आध्यात्मिक विज्ञान का परम उत्कर्ष है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के मतानुसार ब्रह्मज्ञान में निष्ठा हुई तब जानी जा सकती है, जब जीव 'सर्वज्ञ' हो जाय। इसी प्रकार 'पुष्टि-पुष्टि' भक्त भी सर्वज्ञ होते हैं†।

आचार्य जी के कथन का तात्पर्य यह है कि शुद्धाद्वैत ब्रह्मज्ञान निष्ठ जीव और पुष्टि–पुष्टि भक्त दोनो 'सर्वज्ञ' होते हैं। यहाँ 'सर्वज्ञ' का अर्थ केवल भूत, भविष्य और वर्तमान को जानने वाला ही नहीं है, किंतु 'सर्व' रूप ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने वाला होता है; क्यो कि त्रिकाल ज्ञान तो ज्योतिष आदि एकांगी विद्याओ से भी प्राप्त हो सकता है।

आचार्य जी के मत से 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'पुरुष एवेद सर्वं' आदि श्रुतियो के आधार पर यह सारा जगत् ब्रह्म रूप है, अतः ब्रह्म का वास्तविक बोध हो जाने पर इस जगत् का भी सपूर्णतः ज्ञान स्वयमेव हो जाता है। फिर उस ब्रह्मज्ञानी के लिए जगत् के किसी भी पदार्थ व विषय के अनुभव मे किसी भी बाह्य इंद्रिय विशेष की अपेक्षा नही रहती है; क्यो कि वह 'स्वयंप्रकाश' हो जाता है।

सूरदास भी इसी प्रकार के ज्ञानी भक्त थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उनको तत्व और दशविध लीला प्रकारो द्वारा परब्रह्म श्री कृष्ण के स्वरूप का ज्ञान करा दिया था और इसी ज्ञान के कारण से सूरदास ईश्वर की कृपा प्राप्त कर उसका साक्षात्कार भी कर सके थे।

† "ज्ञान निष्ठा तदा ज्ञेया सर्वज्ञो हि यदा भवेत्" (निबंध)
"पुष्टया विमिश्रा सर्वज्ञा." (पुष्टि प्रवाह मर्यादा)

" श्री बल्लभ गुरु तत्त्व सुनायौ, लीला भेद बतायौ ।
ता दिन तें यह लीला गाई, एक लक्ष पद बंद ॥ "

"सारावली" की इन पंक्तियों से उक्त बात की पुष्टि होती है । इसके समर्थन मे सूरदास के " गुरु बिन ऐसी कौन करै " इत्यादि कई पद भी उपलब्ध होते है ।

अतः हमे यह मानना होगा कि सूरदास महाप्रभु की कृपा से तत्वज्ञानी और आत्मा (ईश्वर) मे रति करने वाले पूर्ण भक्त हो चुके थे । वे 'स्वयंप्रकाश' हो गये थे, अतएव वे बाह्य चक्षुओ के आश्रित नही थे । उन्होने जो कुछ भी वर्णन किया है, वह अपनी आध्यात्मिक ज्ञान शक्ति के आधार पर ही किया है, अन्यथा उनके जैसा अनुभवपूर्ण वर्णन बाह्य चक्षु वाले अभवत उत्तम कवियो ने आज तक भी नही किया है ।

हमारे इस कथन की पुष्टि तब और भी विशेष रूप से होती है, जब हम बल्लभाचार्य जी के शरण आने के पूर्व उनके रचे हुए पदो का अध्ययन करते है । शरण आने से पूर्व उनके रचे हुए पदो मे कहीं भी सृष्टि-सौंदर्य की उपमा, उत्प्रेक्षा और रंग आदि का वर्णन प्राप्त नही होता है । उनमे केवल सुने हुए पुराणादि के दृष्टांतो से ईश्वर का माहात्म्य और जीव की अज्ञानता तथाच अधमता का ही निरूपण विनय के साथ पाया जाता है । सृष्टि सौंदर्य, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का जिसमे समावेश होता है, ऐसी भगवल्लीलाओ का वर्णन तो उन्होने महाप्रभु से प्राप्त किए हुए ज्ञान—तत्व-दर्शन के अनतर ही किया है । इस बात की पुष्टि पूर्व उद्धृत " ता दिन ते यह लीला गाई " वाली सारावली की पंक्ति से होती है । अतः यह मानना होगा कि सूरदास के पदों मे प्राप्त उक्त रंग, उपमा आदि का स्वाभाविक वर्णन उनके बाह्य चक्षुओं का विषय न होकर उनके आंतर अनुभव का था । इस बात का दृष्टात सहित समर्थन सूरदास की वार्ता से इस प्रकार होता है—

" सो इनके हृदय मे स्वरूपानद कौ अनुभव है । तासो जैसौ तुम सिंगार करौगे सो तैसौ ही पद सूरदास जी वर्णन करिकं गावेगे । तासो भगवदीय की परीक्षा नांही करनी । "

" सो सूरदास जी जगमोहन में बैठे हते । सो इनके हृदय मे अनुभव भयो* । "

* चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) के अंतर्गत ' अष्टसखान की वार्ता ' पृ० १७, १८

वार्ता के इस प्रसंग से सूरदास के हृदय मे ब्रह्मज्ञान और पुष्टि-भक्ति के आश्रय से ही यथार्थ अनुभव होते रहने का निश्चय होता है। इस सिद्धांत के समर्थन मे पूर्वोक्त श्रुति वाक्य दिया जा चुका है। नाभा जी ने भी सूरदास के सबंध मे इसी प्रकार का कथन किया है‡।

फिर भी यदि हम पाश्चात्य बुद्धिवाद—जडवाद की शिक्षा के प्रभाव से आर्य शास्त्रोक्त ब्रह्मज्ञान के उत्कर्ष को स्वीकार न करते हुए अपने पूर्व तर्क पर ही दृढ रहना चाहते है, तो हमे उस तर्क से उत्पन्न होने वाले इन प्रश्नो का समाधान भी समुचित रूप से करना होगा। तभी उस तर्क के आधार पर हम सूरदास का बाद मे नेत्र विहीन होना सिद्ध कर सकते है। उक्त तर्क से उत्पन्न होने वाले प्रश्न ये हैं—

(१) सूरदास के पदो में प्राप्त वात्सल्य और श्रृंगार रसों के स्वाभाविक अनुभवपूर्ण वर्णनो को देखते हुए पूर्व तर्क के आधार पर ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सूरदास उच्च राजकुटुंब के पूर्ण गृहस्थी और अनेक उत्तम रमणियो एव पुत्रादि से भी युक्त थे, क्यो कि ऐसे उत्तम प्रकार के भुक्त भोगी हुए बिना पूर्व तर्क के अनुसार सूरदास के पदो मे वात्सल्य और श्रृंगार की संयोग, विप्रयोग, स्वकीय, परकीय हृदय वेधक भावनाओ का स्वाभाविक वर्णन होना सर्वथा असभव ही माना जायगा।

(२) सूरदास के पदो मे प्राप्त स्त्री हृदय का स्वभाविक तलस्पर्शी वात्सल्य और वेदनादि तत्वो के वर्णन पूर्व तर्क के अनुसार एक पुरुष हृदय मे पढने, सुनने या देखने से नही हो सकता है, अत. उनके स्त्री हृदय की सगति भी हमे ढूँढनी होगी।

संभव है कुछ लोग इन प्रश्नो का समाधान बिल्वमगल के चिंतामणि वेश्या वाले, तथाच नेत्र फोडने वाले चरित्रो को इन सूरदास के चरित्रो मे जोड़ कर करना चाहे ! किंतु उनका यह आधारहीन प्रयास "भक्तमाल" के विरुद्ध होने से भी प्रमाणिक नहीं कहा जायगा, क्यो कि "भक्तमाल" मे दोनों सूरदासो का भिन्न-भिन्न वर्णन प्राप्त है।

फिर भी क्षण भर के लिये बिल्वमंगल सूरदास के चरित्रो को इन सूरदास के चरित्रो मे जोड कर उन्हे भुक्त भोगी सिद्ध भी किया जाय, तब भी सूरदास

‡ प्रतिबिंबित दिवि-दृष्टि हृदय हरि-लीला भासी।

मे प्राप्त स्त्री हृदय की संगति के लिये हमारे पास कोई प्रामाणिक तर्क या आधार प्राप्त नही है। अतः सूरदास को पीछे से अंध हुए सिद्ध करने मे जो तर्क उठाया गया है, वह सूरदास के विषय मे अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण ही कहा जायगा।

पूर्वोक्त दोनों आवश्यक प्रश्नो का समाधान सूरदास को सिद्ध ज्ञानी भक्त मानने से इस प्रकार स्वतः हो जाता है—

श्रुतियो के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप "सर्व रसमय" है†, अतः सिद्ध भक्त को उसके बोध से काव्य शास्त्रोक्त दसो रसों का अनुभव हो जाता है। इस बात की पुष्टि सूरदास के पदो मे प्राप्त दशविध रसो के वर्णनों से भी होती है।

अन्य प्रकार से भी, परब्रह्म श्रीकृष्ण मे दसों रस विद्यमान थे‡, और वे सूरदास के परम इष्ट थे। अतः उनके साक्षात्कार से श्रीकृष्ण के दशविध रसात्मक स्वरूप का अनुभवपूर्ण ज्ञान उन्हें प्राप्त होना स्वाभाविक है।

श्री कृष्ण के वात्सल्य एवं शृंगार रसात्मक स्वरूपो का अनुभव करने के लिए भक्ति मार्ग मे गोपी हृदय की प्राप्ति होना आवश्यक माना गया है। इसीलिए पुष्टिमार्ग मे गोपीजनो को गुरु मानते हुए उनके प्रेम भावो की भावनाओ को ही मुख्य साधन रूप माना गया है*। इन्ही भावों की वात्सल्य प्रेम आदि भावनाएँ सूरदास के पदो मे दिखाई देती है। निम्न पद देखिए—

द्वै लोचन साबित नहीं तेऊ।
बिनु देखे कल परत नही छिन ऐसे पर कीन्हे यह टेऊ।
बार बार छबि देख्यौ चाहत साथी निमिष मिले हैं येऊ॥
तू तौ ओट करत छिन ही छिन देखत ही भरि आवत वेऊ॥
कैसे मै उनको पहिचानो नयन बिना लखियै क्यो भेऊ।
ये तौ निमिष परत भरि आवत निठुर बिधाता दीने जेऊ॥
कहा भयौ जो मिली स्याम को तू जान्यौ जानत सब केऊ।
'सूरस्याम' कौ नाम स्रवन सुनि, दरसन नीके देत न वेऊ॥

† "रसो वै स.", "सर्व रस.''इत्यादि।
‡ "मल्लानाशनिर्नृणा नरवर."—भागवत
* (१)…"गोपिका प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत्"
(२) "भावोभवनयासिद्ध" (संन्यास निर्णय)

उक्त पद मे गोपियो के "पलकांतर विरह" की भावना व्यक्त करते हुए सूर ने अपनी नेत्र हीनता को भी सूचित कर दिया है। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास को रसात्मक ब्रह्म का बोध होने के साथ गोपी हृदय भी प्राप्त हो चुका था।

गोपी हृदय की भावना की सिद्धि सूर के इन उल्लेखो मे भी प्राप्त होती है-

(१) "हौं चेरी महारानी तेरी।'

(२) "सूर सखी कैसे मन माने।"

निम्न पद मे तो सूर ने दृष्टांत के साथ पुरुष हृदय मे भक्ति के उद्रेक मे स्त्री भाव की प्राप्ति को स्पष्ट किया है—

भज सखी भाव भाविक देव।
कोटि साधन करौ कोऊ तौऊ न माने सेव॥
धूमकेतु कुमार मांग्यौ कौन मारग रीत।
पुरुष ते त्रिय भाव उपज्यौ सबै उलटी रीत॥
बसन भूषन पलटि पहरे भाव सों सजोय।
उलटि मुद्रा दई अंकन बरन सूधे होय॥
वेद विधि कौ नेम नहि जहाँ प्रीति की पहचान।
ब्रजबधू बस किये मोहन "सूर" चतुर सुजान॥

इस पद में महाप्रभु के "भावो भावनया सिद्धः साधन नान्य दिष्यते।" वाले सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए सूर ने पद्मपुराणोक्त सोलह हजार ऋषियो के हृदय मे रामचंद्र जी के दर्शन कर भक्ति भाव की उद्रेकता के साथ जो स्त्री भाव उत्पन्न हुआ था, उस कथा का दृष्टांत रूप से वर्णन किया है। इसका सुचारु रूप से वर्णन महाप्रभु ने "चीरहरण" प्रसग की सुबोधिनी मे किया है। अतः भक्तिमार्ग मे भावना के उद्रेक से पुरुष को भी स्त्री हृदय प्राप्त हो जाता है, यह बात दृष्टांतो के साथ सिद्ध है। अष्टछाप के परमानददास भी इस बात का इस प्रकार समर्थन करते है—

लगै जो वृंदावन कौ रंग।
स्त्री भाव सहज मे उपजै पुरुष भाव होय भग॥

भक्ति मार्गीय सिद्धांतो के अनुसार जिस प्रकार ज्ञानी भक्तों को ब्रह्म का बोध होने पर समस्त जगत के पदार्थ एव विषयो का स्वत. ज्ञान हो जाता है, उसी प्रकार गोपियो के से प्रेम भाव से रसात्मक ब्रह्म की उपासना करने वाले

प्रेमी भक्तो के लिए स्त्री-हृदय भी सहज ही मे प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार सूरदास को नेत्रविहीन और पुरुष होते हुए भी उपर्युक्त दोनो बाते साध्य थी। अत. भक्तिमार्गीय सिद्धांतो के विवेचन से सूरदास सबंधी दोनो बातो की स्वतः सगति बैठ जाती है।

अब हम सम सामयिक विद्वानो के कथन, बहि.साक्ष्य एव सूरदास की रचनाओ के अतःसाक्ष्यो से उनकी जन्मांधता की जाँच करेगे।

सूरदास के प्राय. समकालीन श्रीनाथ भट्ट एव प्राणनाथ कवि के कथन सर्व प्रथम विचारणीय है। श्रीनाथ भट्ट ने अपनी 'सस्कृत मणिमाला' मे सूरदास को स्पष्ट रूप से जन्माध लिखा है—

"जन्मांधो सूरदासोऽभूत

प्राणनाथ कवि कृत 'अष्टसखामृत' मे सूरदास को स्पष्ट रूप से जन्मांध नही कहा गया है, किंतु उनके कथन से जन्मांधता का ही सकेत मिलता है—

बाहर नैन विहीन सो, भीतर नैन बिसाल।
तिन्है न जग कछु दखिवौ, लखि हरि रूप निहाल॥
बाहर-अंतर सकल तम, करत ताहि छन दूर।
हरि-पद मारग लखि परत, याते सोचे सूर॥
रूप माधुरी हरि लखी, देखे नहि अन लोक।
हरिगुन रस-सागर पियौ, हरन सकल जग सोक॥

सूरदास के कुछ समय पश्चात् होने वाले नाभाजी के कथन से भी सूरदास की जन्मांधता का ही बोध होता है—

प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि, हृदय हरि लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी॥

इसके बाद प्रायः सभी लेखको ने उनको जन्मांध ही लिखा है। रघुराजसिंह कृत 'रामरसिकावली' और मियासिंह कृत 'भक्तविनोद' मे भी उनको जन्माध ही लिखा गया है—

जन्मति ते है नैन विहीना। दिव्य दृष्टि देखहि सुख भीना॥
—रामरसिकावली

जनम अध दृग ज्योति विहीना। जननि जनक कछु हरप न कीना॥
—भक्तविनोद

श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश युक्त चौरासी वार्ता में सूरदास को स्पष्ट रूप से जन्मांध लिखा गया है, किंतु श्री गोकुलनाथ जी कथित मूल चौरासी वार्ता मे इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख न होने के कारण भी बहुत से विद्वानो को सूरदास की जन्मांधता मे विश्वास नही होता है। मूल चौरासी वार्ता मे सूरदास के अंधत्व की स्पष्ट सूचना दो प्रसगो मे मिलती है–प्रथम अकबर से भेंट होने के समय और द्वितीय सूरदास के देहावसान के समय। इन दोनों अवसरो पर सूरदास वृद्ध हो चुके थे, इसीलिए आधुनिक विद्वान वृद्धावस्था मे उनके नेत्रविहीन होने का अनुमान करते है। यदि मूल चौरासी वार्ता को भी ध्यान पूर्वक पढा जाय तो उससे ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के शरण मे आने के समय भी सूरदास नेत्रविहीन थे। वार्ता मे लिखा है—

"तब सूरदास जी अपने स्थल ते आयके श्री आचार्य जी महाप्रभून के दर्शन को आये। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून ने कह्यो जो 'सूर' आवो बैठो। तब सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून को दर्शन करिके आगे आय बैठे।"

सूरदास के आगमन पर आचार्य जी ने उनको 'सूर' नाम से संबोधन किया है, इसलिए श्री मुंशीराम शर्मा का अनुमान है कि "महाप्रभु से मिलने के पूर्व ही सूरदास अंधे होने के कारण 'सूर' नाम से प्रसिद्ध हो चुके थे†।" इसके विरुद्ध कुछ विद्वानों का मत है कि वार्ता के उपर्युक्त कथन "तब सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून को दर्शन करिके आगे आय बैठे" से उनका अंधत्व ज्ञात नही होता है, क्यो कि अंधा व्यक्ति किस प्रकार दर्शन कर सकता है। उनके समाधान के लिए हम वार्ता मे दिए हुए अन्य प्रसग को उपस्थित करते है।

वार्ता मे लिखा हुआ है कि सूरदास को शरण मे लेने के अनंतर श्री वल्लभाचार्य जी गऊघाट पर तीन दिन ठहरे थे। इसके पश्चात् वे सूरदास को लेकर गोकुल की ओर चल दिए। उस समय का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"अब जो श्री आचार्य जी महाप्रभु व्रज को पॉव धारे सो प्रथम श्री गोकुल पधारे। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून के साथ सूरदास जी हू आये। तब श्री महाप्रभु जी अपने श्री मुख सो कह्यौ जो सूरदास जी श्री गोकुल को दर्शन करौ, सो सूरदास ने श्री गोकुल को दंडवत करी।"

† सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ २२

इस उल्लेख से सूरदास के अंधे होने का स्पष्ट संकेत मिलता है। एक नेत्रों वाला व्यक्ति जिस प्रकार अंधे से कहता है, उसी प्रकार आचार्य जी ने सूरदास से गोकुल के दर्शन करने को कहा है। यदि सूरदास के नेत्र होते, तो वे आचार्य जी के सूचित करने से पूर्व ही गोकुल के दर्शन कर लेते। आचार्य जी की सूचना के अनुसार नेत्र विहीनता के कारण वे गोकुल के दर्शन तो कर ही नहीं सकते थे, अतः उन्होंने गोकुल को दंडवत् कर अपना भक्ति-भाव प्रदर्शित किया। वार्ता के इस उल्लेख से उस समय सूरदास का नेत्र विहीन होना सूचित होता है। यदि उस समय वे नेत्र विहीन थे, तो इससे तीन दिन पूर्व श्री वल्लभाचार्य जी के शरण मे आने के समय मे भी वे नेत्र विहीन होंगे। उस समय सूरदास जी की आयु प्रायः ३१ वर्ष की थी, अत वे वृद्धावस्था मे ही नहीं, वरन् युवावस्था में भी नेत्र विहीन थे, यह इस प्रसंग से सिद्ध होता है।

जो विद्वान चौरासी वार्ता द्वारा उनके जन्मांध होने का स्पष्ट विवरण जानना चाहते है, उनको ज्ञात होना चाहिए कि वार्ता का आरभ इसी प्रसग को लेकर हुआ है। इससे पूर्व का वृत्तांत अर्थात् सूरदास के जन्म एवं बाल्य काल का वर्णन मूल चौरासी वार्ता मे नही दिया गया है। ऐसी दशा मे प्रसग न आने के कारण ही उसमें जन्मांधता का उल्लेख नही है।

वार्ता के कथन की पूर्ति श्री हरिराय जी ने अपने 'भावप्रकाश' मे की है। उन्होंने स्पष्ट रूप से सूरदास को जन्म से ही अंधा होना लिखा है। यथा—

"सो सूरदास जी के जन्मत ही सों नेत्र नाहीं हैं।"

श्री हरिराय जी ने सूर और अंधे का भेद बतलाते हुए उनके सूर नाम की सार्थकता इस प्रकार बतलायी है—

"जन्में पाछे नेत्र जांय, तिनको आंधरा कहिये, सूर न कहिये और ये तो सूर हैं।"

सूरदास की जन्मांधता के विषय में इतने बाह्य प्रमाण प्राप्त हैं कि आधुनिक विद्वानो के तर्क उनके सामने टिक नहीं सकते है। डा० दीनदयाल गुप्त सूरदास की जन्मांधता के संबध मे श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश एव अन्य बाह्य प्रमाणों से प्रभावित तो हैं, किंतु वे आधुनिक विद्वानों के अनुमान का किंचित समर्थन करते हुए सूरदास को वृद्धावस्था में नहीं, बल्कि बाल्यावस्था में अंधा होना मानते हैं। उन्होंने लिखा है—

"एक ओर तो बाह्य प्रमाण सूर को जन्मांध कहते हैं और दूसरी ओर, यदि हम उनकी रचनाओं को अंध विश्वास की आँख को हटा कर साधारण बुद्धि की आँख से देखें तो हमे उनके स्वाभाविक और सजीव भाव-चित्रो और वर्णनो के सहारे ज्ञात होगा कि कवि ने संसार के रूप-रंग को किसी अवस्था मे अवश्य देखा होगा। बाह्य प्रमाण विरुद्ध होते हुए भी यदि यह मान लिया जाय कि सूरदास अपनी बाल्य अवस्था मे ही अंधे हो गये थे, तो इसमे सूर का महत्व कुछ कम नही होता†।"

यहाँ पर सूर के महत्व का प्रश्न नहीं है; प्रश्न तो वास्तविक बात की खोज करने का है। सूरदास की वृद्धावस्था मे उनके नेत्रविहीन हो जाने की बात तो कुछ अर्थ भी रखती है, किंतु डा० गुप्त उनकी बाल्यावस्था मे अंधे होने की बात किस आधार पर कहते हैं? निस्संदेह "यदि हम उनकी रचनाओ को अंध विश्वास की आँख को हटाकर साधारण बुधि की आँख से देखें" तो बाह्य साक्ष्य ही नही, अंतःसाक्ष्य से भी सूरदास की नेत्रविहीनता और उनका जन्मांध होना सिद्ध होता है।

सूरदास की निम्न रचनाओ के अंतःसाक्ष्य से उनकी नेत्र विहीनता ज्ञात होती है—

सक्रकौ दान बिनमान ग्वालिन कियौ,गह्यौ गिरि पान जस जगत छायौ।
यहै जिय जानिकै अंध भव त्रास ते 'सूर' कामी कुटिल सरन आयौ ॥१॥

'सूर' कहा कहै द्विविध आँधरौ, बिना मोल कौ चेरौ ॥२॥

रास-रस-रीति नहिं बरनि आवै।
इहै निज मंत्र, यह ज्ञान, यह ध्यान है, दरस दंपति भजन सार गाऊँ।
इहै मांगौ बार-बार प्रभु, 'सूर' के नयन द्वै रहौ, नर-देह पाऊँ ॥३॥

'सूर' कूर आँधरौ हौ द्वार परयौ गाऊँ ॥४॥

उक्त उल्लेखो से यह ज्ञात होता है कि जब सूरदास श्रीनाथजी के मंदिर मे कीर्तन करते थे, तब वे निश्चित रूपसे अंध थे।

उपर्युक्त अंतःसाक्ष्यों से सूरदास की अंधता सिद्ध होती है, किंतु उनकी जन्मांधता की स्पष्ट सूचना प्राप्त नही होती है। अब हम सूरदास के कुछ

† अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २०२

ऐसे पद देते हैं, जिनमे उनकी जन्मांधता का अस्पष्ट एव स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पहले निम्न लिखित पद देखिए—

कहावत ऐसे त्यागी दानि ।
चारि पदारथ दिए सुदामहि, अरु गुरु के सुत आनि ॥
रावन के दस मस्तक छेदे, सर गहि सारंग-पानि ।
लंका दई विभीपन जन को, पूरबली पहिचानि ॥
विप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि ।
'सूरदास' सो बहुत निठुरता, नैननि हू की हानि ॥

उपर्युक्त पद की अतिम पंक्ति से सूरदास के जन्मांध होने की अस्पष्ट सूचना मिलती है। इस पक्ति मे सूरदास ने अपने इष्टदेव के प्रति 'बहुत निठुरता' का आक्षेप किया है। इस पद मे वर्णित 'त्यागी' और 'दानी' कहलाने वाले इष्टदेव पर निठुरता का प्रबल आक्षेप तभी हो सकता है, जब उन्होने सूरदास को जन्म से ही नेत्र विहीन किया हो। यदि सूरदास वृद्धावस्था अथवा अन्य किसी कारण से अधे होते, तो इष्टदेव के प्रति इस प्रकार का आक्षेप असंगत हो जाता। सूरदास जैसे शब्दो के मर्म को जानने वाले महाकवि से इस प्रकार असंगत कथन की आशा नही की जा सकती है।

निम्न लिखित पदो मे सूरदास की जन्मांधता का स्पष्ट उल्लेख हुआ है—

(राग धनाश्री)

किन तेरौ गोविंद नाम धरयौ ।
सांदीपनि के सुत तुम ल्याये, जब विद्या जाय पढ़यौ ॥
सुदामा की दालिद्र तुम काटी, तंदुल भेटि धरयौ ।
द्रुपद सुता की लाज तुम राखी, अंबर दान करयौ ॥
जब तुम भए लेवा देवा के दाता, हम सूं कछु न सरयौ ।
'सूर' की बिरीयां निठुर होइ बैठे, जन्म-अंध करयौ ॥

यह पद एक प्रामाणिक एव प्राचीन हस्त लिखित प्रति से उद्धृत किया गया है। इस प्रति का समय सं० १८०८ के आस-पास का ज्ञात होता है। उक्त पद से मिलते हुए कुछ पद सूरसागर की मुद्रित प्रतियो में भी प्राप्त होते है, किंतु उनमें पाठ का इतना अतर है कि वे उक्त पद से पृथक् ज्ञात होते हैं। सूरदास की रचनाओ मे एक सी शब्दावली एवं भावों के कई पृथक्-पृथक् पद मिलते हैं।

इस पद मे 'गोविंद' और 'जन्म अंध' की असंगति बतलाते हुए सूरदास ने गोविंद पर स्वार्थपरायणता और निठुरता का आक्षेप किया है। इस आक्षेप की पुष्टि सूरदास ने सांदीपनि आदि के दृष्टांतो से की है, जिसके कारण उनकी सार्थक शब्द-योजना और भी चमक उठी है।

'गोविंद' अर्थात् इंद्रियो का दाता—स्वामी (इंद्र), इस शब्दार्थ के कारण अपने को नेत्र-इंद्रिय से रहित जन्मांध करने पर सूरदास श्री कृष्ण के प्रति 'लेवा देवा के दाता' और 'निठुरता' के आक्षेप करते है और 'गोविंद' नाम की अयोग्यता भी बतलाते है। यद्यपि कृष्ण ने सांदीपनि को पुत्र, सुदामा को वैभव और द्रौपदी को चीर देकर अपना दातृत्व स्पष्ट किया है, तथापि सूरदास कहते है कि उनका वह दातृत्व क्रमश. विद्या पढने, तदुल खाने और अबर-दान के बदले में था, अत स्वार्थवश था। सूरदास कहते है कि मुझसे आपका कोई स्वार्थ सिद्ध नही हुआ, इसलिए मुझे नेत्र-इंद्रिय का दान न कर जन्मांध कर दिया, अत. आपका 'गोविंद' जैसा असार्थक नाम किसने रखा है!

इसी प्रकार का एक पद और देखिए—

हरि बिन संकट मे को का कौ।
तुम बिन दीनदयाल कृपानिधि नाम लेहुँ धौ का कौ॥
मंजारी-सुत चुवै अबा मे, उनकौ बार न बाँकौ।
निरभै भए पांडुसुत डोलत, उनहि नाहिं डर का कौ॥
धन्य भाग है पांडु सुतन के, जिनकौ रथ प्रभु हाँकौ।
जरासंध जोरावर मारयौ, फारि कियौ दो फाँकौ॥
द्रौपदि चीर गहेउ दुस्सासन खेंचत भुज-बल थाकौ।
महाभारत भारहिं के अंडा तोरयौ गज-कांधा कौ॥
कोटि कोटि तुम पतित उधारे, कह हूँ कवन कहाँ कौ।
रहौ जात एक पतित, जनम कौ आँधरौ 'सूर' सदा कौ॥

यह पद भी एक प्राचीन हस्त-प्रति से उद्धृत किया गया है। इस पद मे 'हरि' और 'संकट' शब्द सार्थक हैं। हरि का अर्थ होता है दुःख को हरने वाला, इसलिए 'हरि' को 'संकट' के साथ रखा गया है। इस पद की अंतिम पक्ति का अर्थ कुछ लोग इस प्रकार भी कर सकते है कि सूरदास अपने को जन्म से पतित और 'सदा कौ आँधरौ' अर्थात् अज्ञानी कहते है। सूरदास ने अपने अनेक पदो में अपने को सब से अधिक पतित, यहाँ तक कि

'हौं तौ पतित सात पीढी कौ' कहा है, इसलिए 'एक जन्म का पतित' अर्थ करना ठीक न होगा। यहाँ पर 'पतित' शब्द को 'जनम' के साथ न मिला कर "जनम कौ आंधरौ" समझना ही उचित है।

अब निम्न लिखित पद देखिए। यह पद नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद की भजनावली मे सगृहीत है—

(राग भूपाली–तीन ताल)

नाथ मोहि अबकी बेर उबारौ।
तुम नाथन के नाथ सुवामी, दाता नाम तिहारौ ॥
करमहीन जनम कौ अंधौ, मोते कौन नकारौ।
तीन लोक के तुम प्रतिपालक, मै तो दास तिहारौ ॥
तारी जाति कुजाति प्रभु जू, मो पर किरपा धारौ।
पतितन मे इक नायक कहिये, नीचन मे सरदारौ ॥
कोटि पापी इक पासंग मेरे, अजामिल कौन बिचारौ।
धरम नाम सुनिकै मेरौ, नरक कियौ हठ तारौ ॥
मोको ठौर नहीं अब कोऊ, अपुनौ विरद सम्हारौ।
छुद्र पतित तुम तारे रमापति, अब न करो जिय गारौ।
"सूरदास" साँचौ तब माने, जो है मम निस्तारौ ॥

इस पद में 'नाथ' शब्द की सार्थकता के साथ कर्महीनता, जन्मांधता आदि का संबंध जोडा गया है। नाथ का शब्दार्थ है—न + अथ अर्थात् दूसरा नही। इस पद मे सूरदास ने अपनी सर्वविध निःसाधनता बतलाते हुए एक मात्र भगवान का भरोसा किया है। सूरदास कहते है कि मैं कर्महीन, जन्मांध और सबसे अधिक पापी हूँ। आपने छोटे-छोटे पतितो का तो उद्धार किया है। जब आप मेरा निस्तार करेंगे, तब मै आपके पतित पावन विरद को सत्य समझूँगा। सूरदास के पदों की सी सार्थक शब्द-योजना अन्य कवियो के काव्य मे मिलना कठिन है। यही कारण है कि सूरदास हिंदी साहित्य-गगन के सूर्य कहे जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के अनंतर हमारा मत है कि सूरदास वृद्धावस्था एवं बाल्यावस्था में ही नहीं, बल्कि जन्म से ही अंधे थे।

आरंभिक जीवन और गृह–त्याग—

सूरदास के आरंभिक जीवन का परिचय श्री हरिराय जी के 'भावप्रकाश' के अतिरिक्त अन्य किसी साधन से प्राप्त नहीं होता है। 'चौरासी वार्ता' अथवा सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से इस विषय पर विस्तृत रूप से प्रकाश नहीं पड़ता है। 'भावप्रकाश' से ज्ञात होता है कि सूरदास के पिता अत्यंत दरिद्र ब्राह्मण थे, अतः उनके लिए अंधे सूरदास भार स्वरूप थे। सूरदास की उस समय की अवस्था का बोध उनकी रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से भी होता है।

'साहित्यलहरी' के वंश–परिचय वाले पद के आधार पर श्री मुंशीराम शर्मा का कथन है—

"सूर समृद्ध कुल में उत्पन्न हुए थे।... जिस वंश के व्यक्ति बादशाहों से युद्ध करने की हिम्मत रखते हों, वह वंश दरिद्र नहीं हो सकता†।"

किंतु जिसका आधार ही अप्रामाणिक है, उसके कथन को प्रामाणिक मानने का कोई कारण नहीं है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य साधन से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि नहीं होती है। सूरदास के विनयपूर्ण पदों में ऐसे कई अंतःसाक्ष्य हैं, जिनसे उनके दरिद्र कुलोत्पन्न होने का ही आभास मिलता है।

'भावप्रकाश' से ज्ञात होता है कि सूरदास अपनी छै वर्ष की आयु तक अपने माता–पिता के साथ रहे। इसके अनंतर वे गृह-त्याग कर अपने जन्म-स्थान सीही से चार कोस दूर एक ग्राम में चले गये और वहाँ पर अपनी आयु के अठारह वर्ष तक रहे। यद्यपि छै वर्ष की आयु में गृह-त्याग की पुष्टि अभी तक किसी अन्य सूत्र से नहीं हो सकी है, तथापि 'चल्यौ सवेरौ, आयौ अवेरौ' आदि अंतःसाक्ष्यों से सूरदास द्वारा अपनी बाल्यावस्था में ही गृह-त्याग की सूचना अवश्य मिलती है। मियाँसिंह कृत 'भक्त विनोद' में भी सूरदास की आरंभिक अवस्था में ही उनके गृह-त्याग का उल्लेख है, किंतु उसका वृत्तांत भिन्न है। 'भक्त विनोद' से ज्ञात होता है कि सूरदास का यज्ञोपवीत आठ वर्ष की आयु में हुआ था। इसके पश्चात् उनके माता-पिता उनको लेकर ब्रज यात्रा के लिए गये। वहाँ पर मथुरा में सूरदास

† सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ ३८

कृष्ण--भक्तों के साथ रह गये और अपने माता--पिता के आग्रह करने पर भी उनके साथ वापिस नहीं गये। इसके बाद सूरदास की ख्याति, उनके कूप-पतन और श्री कृष्ण के दर्शन प्राप्त होने का उल्लेख किया गया है। कवि मियाँसिंह के इस कथन के विषय मे डा० दीनदयाल गुप्त का मत है—

"ज्ञात होता है कि अन्य सूरदासो की कहानियाँ मिला कर तथा साहित्य लहरी मे दिये हुए सूर की वशावली वाले प्रक्षिप्त पद का कुछ अंश मे सहारा लेकर यह वृत्तांत लिखा गया है‡।"

हम भी डा० गुप्त के मत का समर्थन करते है, अत. 'भक्त विनोद' के उपर्युक्त कथन को अप्रामाणिक समझते हैं।

श्री हरिराय जी कृत 'भावप्रकाश' से ज्ञात होता है कि गृह-त्याग के अनतर सूरदास अपने जन्म स्थान सीही के निकटवर्ती ग्राम मे तालाब के किनारे एक पीपल के वृक्ष के नीचे आकर ठहरे। उस ग्राम के जिमीदार की १० गाये चोरी चली गयी थी। सूरदास के कारण जिमीदार की गायें मिल गयी, अत. उसने सूरदास के रहने के लिए उक्त तालाब के किनारे एक झोपड़ी बनवा दी और उनके खान-पान का भी प्रबंध कर दिया।

इस स्थान पर सूरदास अपनी अठारह वर्ष की आयु तक रहे। ग्राम के जिमींदार ने यह प्रसिद्धि कर दी थी कि सूरदास शकुन विद्या के अच्छे जानकार है। उनके बतलाने से उसकी खोई हुई गायें मिल गईं थी। यह समाचार सुन कर अनेक व्यक्ति सूरदास के पास शकुन पूछने आने लगे। सूरदास का बतलाया हुआ शकुन सत्य होता था, अतः उनकी खूब प्रसिद्धि हो गयी। शकुन पूछने वालों की लायी हुई भेंट से सूरदास के पास अन्न, वस्त्र एव द्रव्य यथेष्ट परिमाण मे एकत्रित हो गया। अब सूरदास 'स्वामी जी' कहलाने लगे और अनेक व्यक्ति उनके सेवक हो गये। यही पर रहते हुए सूरदास ने गायन कला मे भी कुशलता प्राप्त कर ली थी। उनके पास गायन-वादन का भी सरजाम था। वे अपने सेवकों की मंडली मे विरह के पदो का गायन किया करते थे।

सूरदास द्वारा शकुन बतलाने की बात का समर्थन किसी अन्य सूत्र से नही होता है, किंतु "मिलै गोपाल सोई दिन नीकौ।...भद्रा भली भरणी भय-हरणी चलत मेघ अरु छींकौं॥" आदि सूरदास की रचनाओं के

‡ अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय, पृ० १२४

अतःसाक्ष्य, श्रीकृष्ण की जन्म कुंडली के पद एवं भविष्य सूचक कथनों से यह भली भाँति सिद्ध होता है कि वे ज्योतिष विद्या के जानकार अवश्य थे। उनकी गायन-कुशलता के संबंध में कुछ कहना ही व्यर्थ है। चौरासी वार्ता के आरंभिक प्रसंग से ही ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य होने के पूर्व ही सूरदास एक कुशल गायक के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। इन विद्याओं का ज्ञान उनको किस प्रकार हुआ, यह किसी अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य से प्रकट नहीं होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि सत्संग से ही उनको इन विद्याओं की प्राप्ति हुई थी। पूर्व संस्कारों के कारण उनको सहज ही में इनका ज्ञान प्राप्त हो गया; फिर चिर अभ्यास से वे इनमें दक्ष हो गये थे।

सूरदास की स्वामी अवस्था और उनके अनेक शिष्य आदि की सूचना निम्न लिखित पद से प्रकट होती है—

हरि, हौं सब पतितन कौ नायक।
को करि सकै बराबरि मेरी, इतै मान को लायक॥

× × ×

यह सुनि जहाँ तहाँ तैं सिमिटैं, आइ जुरे इक ठौर।
अब कै इतने और मिलाऊँ बेर दूसरी और॥
होड़ा होडी मनहि भावते, किए पाप भरि पेट।
ते सब पतित पाय तर डारौं, यहै हमारी भेट॥
बहुत भरोसो जानि तुम्हारौ, अघ कीन्हे भरि भाँडौ।
लीजै बेगि निबेरि तुरत ही, 'सूर' पतित कौ टाँडौ॥

इस स्थान पर रहते हुए सूरदास के पास यथेष्ट वैभव, शिष्य-सेवक तथा गाने बजाने का सरजाम एकत्रित हो गया था। हरिराय जी ने अपने भावप्रकाश में लिखा है—

"या प्रकार सूरदास तलाब पे पीपर के वृक्ष नीचे बरस अठारह के भये। सो एक दिन रात्रि को सोवत हते, ता समय सूरदास को वैराग्य आयो। तब सूरदास जी अपने मन में बिचारे जो देखौ मैं श्री भगवान् के मिलन के अर्थ वैराग्य करिके घर सौं निकस्यो हतो। सो यहाँ माया ने ग्रसि लियो। ··· पाछें सूरदास एक वस्त्र पहरि के लाठी लेके उहाँ ते कूंच किये। ··· कितनेक सेवक संसार सो रहित हते सो सूरदास जी के संग चले।"

यद्यपि सूरदास ने अपनी बाल्यावस्था में ही गृह-त्याग किया था, तथापि वे अपने गृह से बहुत दूर नहीं, प्रत्युत् चार कोस दूर एक गाँव में रहने लगे थे। वहाँ उनके गुणों से आकर्षित होकर अनेक प्रकार के व्यक्ति उनके पास आने लगे। अबोधावस्था का वैराग्य भाव वहाँ पर दुःसंग के कारण कुछ समय के लिए दब गया था। वे स्वामित्व के कारण माया-जाल मे भी फँस गये थे। इस प्रकार उनके जीवन का आरम्भिक भाग व्यतीत हुआ। जब वे अठारह वर्ष के हुए, तब पश्चात्ताप पूर्वक फिर उनकी वैराग्य की ओर प्रवृत्ति हुई। उस समय का वैराग्य दृढ था। उस समय तक उनकी अबोधावस्था दूर हो चुकी थी, और उनको संसार का कुछ अनुभव भी प्राप्त हो चुका था। तब वे अपनी जन्म-भूमि का परित्याग कर संगीत के सरजाम एवं कुछ सच्चे त्यागी सेवकों के साथ मथुरा होते हुए गऊघाट पर आकर रहने लगे।

दृढ भक्ति से पूर्व की स्वामी अवस्था मे काम, क्रोध, निंदा, स्तुति आदि दोषो का आना स्वाभाविक है। सूरदास कृत दीनता, विनय एवं वैराग्य के पदों मे ऐसे अनेक कथन है, जिनसे उस समय की दशा का ज्ञान हो सकता है। ये कथन अतिशयोक्ति पूर्ण होते हुए भी अवास्तविक नहीं कहे जा सकते। यदि ये कथन अवास्तविक होते, तो उनमे पश्चात्ताप की जो तीव्र भावना दिखलायी देती है, वह कदापि संभव नहीं थी। सूरदास को अपनी स्वामी अवस्था के कृत्यों का पश्चात्ताप अपनी प्रौढावस्था तक रहा था, जैसा उनके अनेक पदों से ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए निम्न लिखित पद देखिए—

जौलौं सत्य स्वरूप न सूझत।
तौलौं मन मनिकंठ बिसारे, फिरत सकल बन बूझत॥

× × ×

कहत बनाय दीप की बातें, कैसे ही तम नासत।
'सूरदास' जब यह मति आई, वे दिन गये अलेखे।
कहँ जाने दिनकर की महिमा, अंध नैन बिनु देखें॥

इस पद के 'वे दिन गये अलेखे' शब्दों द्वारा पश्चात्ताप की भावना स्पष्ट प्रकट होती है। इसी प्रकार बाल्यावस्था में गृह-त्याग करने पर भी अधिक समय बाद बडी अवस्था मे भगवत्प्राप्ति की सूचना निम्नलिखित पदांश से प्रकट होती है—

चल्यौ सवेरौ आयौ अबेरौ, लेकर अपने साजा।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलि है, देखत जम दल भाजा॥

इस कथन से ज्ञात होता है कि सूरदास ने अपने गृह का त्याग अपनी बाल्यावस्था में ही किया था, किंतु बीच में कहीं अटक जाने के कारण प्रभु से मिलने में उनको कुछ विलंब हो गया था। इस पद से यह भी ज्ञात होता है कि प्रभु से मिलने के पूर्व वे अपने साज-सामान सहित वैभवशाली थे। यह कथन उनकी अठारह वर्ष की अवस्था तक के वृतांत की पुष्टि करता है। इसके बाद के साज-सरंजाम सहित गऊघाट पर आकर रहने और वहाँ भी बारह वर्ष के लंबे समय के पश्चात् वे महाप्रभु बल्लभाचार्य जी से मिले, जिसकी सूचना उक्त कथन से प्राप्त होती है।

शरणागति एवं शरणागति-काल—

सूरदास अपने वैराग्य की दृढता के कारण अपना समस्त वैभव जहाँ का तहाँ छोड कर ब्रज की ओर चल दिए। वे पहले मथुरा में आये। वहाँ कुछ समय रह कर मथुरा और आगरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान पर यमुना नदी के किनारे रहने लगे।

चौरासी वार्ता मे सूरदास की कथा का आरंभ यही से होता है। चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि जब सूरदास गऊघाट पर रहते थे, तब वे स्वरचित पदों के गायन द्वारा भगवान् की आराधना किया करते थे। इस प्रकार रहते हुए उनको बहुत समय हो गया। एक बार महाप्रभु श्री बल्लभाचार्य अपने सेवको सहित अडैल से ब्रज जाते हुए गऊघाट पर ठहरे। सूरदास के एक सेवक ने उनको सूचना दी कि आज गऊघाट पर श्री बल्लभाचार्य जी पधारे है। इन आचार्य जी ने काशी तथा दक्षिण मे मायावाद का खडन किया है और भक्ति-मार्ग की स्थापना की है। सूरदास ने यह समाचार सुन कर उक्त सेवक से कहा—"जब आचार्य जी भोजनादि से निश्चिंत होकर बैठें, तब मुझको सूचना देना। मै उनके दर्शन करूँगा।"

जब श्री बल्लभाचार्य जी भोजनादि से निश्चिंत होकर गद्दी पर विराजमान हुए और उनके शिष्य सेवक गण उनके निकट बैठ गये, तब सूरदास के सेवक ने इसकी सूचना उनको दी। सूरदास अपने सेवकों सहित बल्लभाचार्य जी के दर्शनार्थ आये और दंडवत प्रणाम कर उनके सन्मुख बैठ गये। श्री आचार्य जी ने सूरदास से कहा—"सूर! कुछ भगवद्-यश वर्णन करो।" इस पर सूरदास ने निम्न लिखित पदों का गायन किया—

(१) हौ हरि! सब पतितन कौ नायक।
(२) प्रभु! हौ सब पतितन कौ टीकौ।

इन पदों को सुनकर श्री बल्लभाचार्य ने कहा—" तुम 'सूर' होकर भी ऐसी दीनता दिखलाते हो ! कुछ भगवल्लीलाओं का वर्णन करो।" चौरासी वार्ता में लिखा है कि श्री बल्लभाचार्य के उपर्युक्त कथन पर सूरदास ने उनसे कहा—"महाराज ! मुझे भगवल्लीलाओं का ज्ञान नहीं है।" इस पर श्री आचार्य जी ने सूरदास से कहा—"हम तुमको इन सब बातों का यथार्थ ज्ञान कराये देते हैं।"

सूरदास की रचनाओं में भी इस प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है—

१. श्री बल्लभ अब की बेर उबारो।
'सूर' अधम को कहूँ ठौर नहीं बिनु एक सरन तुम्हारौ॥
२. मन रे तू भूल्यौ जनम गँवावै।
'सूरदास' बल्लभ उर अपने चरन कमल चित लावै॥
३. मन रे तै आयुष वृथा गँवाई।
अजहू चेत कृपाल सदा हरि श्री बल्लभ सुखदाई।
'सूरदास' सरनागत हरि की और न कछू उपाई॥

इस पर श्री बल्लभाचार्य जी ने अपने संप्रदाय की विधि के अनुसार सूरदास को अष्टाक्षर मंत्र का 'नाम' सुनाया और 'ब्रह्म संबंध' कराते हुए उनसे 'समर्पण' कराया। 'नाम' एवं 'समर्पण' पुष्टि संप्रदाय की दो प्रकार की दीक्षाएँ हैं। गुरु अपने सेवक के कान के पास 'श्रीकृष्णः शरणं मम' इस अष्टाक्षर मंत्र को तीन बार सुनाते है। इसी को 'नाम सुनाना' कहते है। 'समर्पण' का अभिप्राय यह है कि जीव अपना सर्वस्व अर्थात् अहंता-ममतात्मक देह, इंद्रियाँ, स्त्री, पुत्र, कुटुंब, गृह, द्रव्य, अतःकरण, प्राण, लोक, परलोक, आत्मा आदि को भगवान् श्रीकृष्ण के अर्पित कर उनका दासत्व स्वीकार करता है। सूरदास की रचनाओं मे इनका इस प्रकार उल्लेख प्राप्त होता है—

अजहू सावधान किन होहि।
कृष्ण नाम सो मंत्र संजीवनि, जिन जग मरत जिवायौ।
बार-बार ह्वै स्रवन निकट, तोहि गुरु-गारुडी सुनायौ॥
(नाम दीक्षा)

यामैं कहा घटैगौ तेरौ।
नंदनँदन कर घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहैं चेरौ।
सबै समर्पन 'सूर' स्याम कों, यह साँचौ मत मेरौ॥
(समर्पण दीक्षा)

इस प्रकार सूरदास बल्लभ संप्रदाय मे दीक्षित हुए। इस विधि के अनंतर श्री बल्लभाचार्य जी ने सूरदास को श्रीमद्भागवत् के 'दशमस्कंध की अनुक्रमणिका', भागवत् की टीका स्वरूप स्वरचित 'सुबोधिनी' और भागवत सार समुच्चय रूप 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम'* सुनाया, जिनके कारण सूरदास को भागवत के तत्व और उसकी दशविध लीलाओ का यथार्थ ज्ञान हो गया। इसी के फल स्वरूप बाद मे सूरदास ने श्री कृष्ण-लीला विषयक सहस्रो पद एवं सूरसारावली की रचना की थी।

श्री बल्लभाचार्य जी गऊघाट पर तीन दिन तक ठहरे। इसी समय सूरदास ने अपने समस्त शिष्य-सेवकों को भी श्री आचार्य जी द्वारा दीक्षित करा दिया। इसके अनंतर श्री आचार्य जी अपने सेवको के साथ गोकुल होते हुए गोवर्धन चले गये। सूरदास भी उनके साथ थे। गोवर्धन पहुँच कर आचार्य जी ने सूरदास को श्रीनाथ जी के मदिर मे कीर्तन करने का आदेश दिया।

चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास को शरण में लेने से पूर्व श्री बल्लभाचार्य जी काशी और दक्षिण के शास्त्रार्थों में विजयी होकर 'आचार्य महाप्रभु' की पदवी प्राप्त कर चुके थे। सांप्रदायिक इतिहास के अनुसार पत्रावलंबन वाला काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ सं० १५६३ वि० मे और राजसभा वाला दक्षिण का इतिहासप्रसिद्ध शास्त्रार्थ सं० १५६५ वि० मे हुआ था‡, अतः सूरदास का शरण-काल स० १५६५ के अनंतर निश्चित होता है।

गो० विट्ठलनाथ जी के आविर्भाव के समय गाया हुआ सूरदास-रचित एक बधाई का पद—'श्री बल्लभ दीजै मोहि बधाई।'—उपलब्ध है। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास गो० विट्ठलनाथ जी के जन्म स० १५७२ से पूर्व श्री बल्लभाचार्य की शरण मे आ चुके थे। इस प्रकार बहिःसाक्ष्य और अंतः-साक्ष्य के अनुसंधान से सिद्ध होता है कि सूरदास सं० १५६५ के पश्चात् और सं० १५७२ के पूर्व महाप्रभु की शरण मे आये थे।

---

* 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के विषय में ऐसा समझा जाता है कि इसकी रचना सूरदास के शरणागत होने के बहुत दिनों बाद श्री गोपीनाथ जी के लिए की गयी थी। इस संबंध मे हम अपने विचार विस्तार पूर्वक आगामी पृष्ठों मे लिखेंगे।

‡ अष्टछाप परिचय (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ ८

गो० यदुनाथ जी ने अपने 'बल्लभ दिग्विजय' नामक ग्रंथ मे लिखा है कि अडैल से ब्रज जाते हुए श्री आचार्य जी महाप्रभु ने सूरदास को अपने शरण मे लिया था। फिर ब्रज से पुनः अडैल वापिस पहुँचते ही उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथजी का अडैल मे जन्म हुआ था। श्री गोपीनाथ जी की प्राकट्य तिथि सं० १५६८ की आश्विन कृ० १२ है। अडैल से ब्रज जाने मे और वहाँ कुछ दिन रह कर पुनः अडैल वापिस आने मे उस समय कम से कम ६ महीने अवश्य लगे होगे। इस प्रकार सूरदास का शरण-काल वि० सं० १५६७ निश्चित होता है।

उपर्युक्त संवत् की पुष्टि वार्ता के कथन से भी हो जाती है। जैसा पहिले लिखा जा चुका है सं० १५६५ के दक्षिण राजसभा वाले शास्त्रार्थ के अनंतर आचार्य जी अडैल से ब्रज जाते हुए गऊघाट पर ठहरे थे। राजसभा वाले शास्त्रार्थ के पश्चात् ही उन्होने अडैल मे अपना स्थायी निवास बनाया था, जहाँ से ब्रज मे जाकर उन्होने श्रीनाथ जी की सेवा का प्रबंध किया था। 'बल्लभ दिग्विजय' के अनुसंधान से सूरदास अपनी आयु के ३२ वें वर्ष मे महाप्रभु की शरण मे आये थे। सूरदास का जन्म संवत् १५३५ गत पृष्ठों मे सिद्ध किया जा चुका है, अत. उनका शरण-काल 'चौरासी वार्ता' और 'बल्लभ दिग्विजय' दोना के प्रमाण से सं० १५६७ ही सिद्ध होता है।

"श्रीनाथ जी की प्रागट्य वार्ता" की मुद्रित प्रति में सूरदास का शरण-काल सं० १५७७ लिखा हुआ है। हिंदी के कुछ विद्वानों ने भी उनके शरण-काल का यही संवत् लिखा है†, किंतु यह सर्वथा भ्रमात्मक है। श्रीनाथ जी का मंदिर पूर्णतया सं० १५७६ मे बन कर तैयार हुआ था। श्री बल्लभाचार्य द्वारा सूरदास श्रीनाथ जी के मंदिर मे कीर्तन कार्य के लिए नियत किये गये थे। इसी की संगति मिलाते हुए श्रीनाथ जी के मंदिर के निर्माण-काल सं० १५७६ के अनंतर सं० १५७७ मे सूरदास का शरण-काल लिखा गया है, जो निम्न लिखित प्रमाणानुसार अशुद्ध है।

श्री बल्लभाचार्य जी की प्रेरणा से पूरनमल खत्री ने श्रीनाथ जी के मंदिर निर्माण का कार्य सं० १५५६ की वैशाख शु० ३ को आरंभ कर दिया था।

† १. सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ ४५
२. सूर साहित्य की भूमिका, पृष्ठ १८
३. सूर: जीवनी और ग्रंथ, पृष्ठ २६

द्रव्याभाव से यह निर्माण कार्य बीच मे रुक गया था, किंतु तब तक मंदिर का अधिकांश भाग बन चुका था और वह ऐसी स्थिति मे था कि उस नवीन मदिर मे श्रीनाथ जी का स्वरूप (मूर्ति) स्थापित हो सके। सं० १५६४ में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने उस मदिर मे श्रीनाथ जी को विराजमान कर दिया था, जैसा " वल्लभ दिग्विजय " और " संप्रदाय कल्पद्रुम " से सिद्ध है। इसके बाद द्रव्य की व्यवस्था होने पर मदिर के शिखर आदि बाह्य भाग की पूर्ति स० १५७६ मे हुई थी। इस निर्माण-पूर्ति के सवत् की संगति के कारण ही 'श्रीनाथ जी की प्रागटय वार्ता' मे सूरदास का शरण-काल स० १५७७ मान लिया गया प्रतीत होता है। यदि सूरदास वास्तव मे स० १५७७ मे ही बल्लभ सप्रदाय मे सम्मिलित हुए होते, तब उनके द्वारा सं० १५७२ मे गो० विट्ठलनाथ जी के प्राकटय अवसर पर गाया हुआ बधाई का पद किस प्रकार उपलब्ध होता !

इस प्रकार अत साक्ष्य एव बहिःसाक्ष्य के आधार पर सूरदास का शरण-काल स वत् १५६७ वि० निश्चित होता है।

ब्रजवास और कीर्तन-सेवा—

चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की शरण मे आने के अनंतर सूरदास गऊघाट से गोकुल, मथुरा होते हुए गोवर्धन गये थे। वहाँ पर वल्लभाचार्य जी ने उनको श्रीनाथ जी के मदिर की कीर्तन-सेवा का कार्य दिया था। सूरदास ने अपना शेष जीवन स्थायी रूप से गोवर्धन मे रहते हुए और श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा करते हुए व्यतीत किया था।

सूरदास का स्थायी निवास गोवर्धन के निकट परासोली ग्राम मे था। वहाँ पर चद्र सरोवर के पास वे अपनी कुटी मे रहा करते थे और प्रति दिन परासोली से श्रीनाथ जी के मंदिर मे जाकर कीर्तन सेवा करते थे। सूरदास के गोवर्धन निवास की सूचना निम्न लिखित पदांश के अंतःसाक्ष्य से भी प्राप्त होती है—

" नंद जू ! मेरे मन आनंद भयौ, सुनि गोवर्धन ते आयौ।"

इस पद मे सूरदास के ढाढी बन कर गोवर्धन से आने का उल्लेख है। ढाढी बनने का कारण हम जाति विषयक गत पृष्ठो मे स्पष्ट कर चुके है। 'निज वार्ता' के अनुसार इस पद की रचना स० १५७२ मे होना सिद्ध होता है, जब कि महाप्रभु वल्लभाचार्य जी अपने नवजात शिशु विट्ठलनाथ जी को अड़ैल से प्रथम बार ब्रज मे लाये थे।

गोवर्धन मे आने के पश्चात् वे श्रीनाथ जी की सेवा करते हुए स्थायी रूप से वहीं पर रहने लगे। वार्ता से ज्ञात होता है कि एक बार श्रीनाथ जी के स्वरूप के साथ मथुरा और कभी कभी नवनीतप्रिय जी के दर्शनार्थ गोकुल जाने के अतिरिक्त वे गोवर्धन छोड कर कहीं नहीं गये। 'आईने अकबरी' मे लिखा हुआ है कि एक बार अकबर बादशाह ने सूरदास को अपने से मिलने के लिए प्रयाग मे बुलवाया था, किंतु यह उल्लेख किसी अन्य सूरदास से संबध रखता है। हमारे सूरदास तो पूर्णतया विरक्त थे, अतः राज्य कार्य ही नही, प्रत्युत् वाह्य जगत् से भी उनका कुछ संबध नही था। वे श्रीनाथ जी की सेवा छोड कर कहीं जाना भी नही चाहते थे। एक बार सं० १६२३ मे जब उनको श्रीनाथ जी के स्वरूप (मूर्ति) के साथ मथुरा जाना पड़ा, तो वहाँ पर वे श्रीनाथ जी के साथ २ माह और २२ दिन तक रहे थे। उसी समय उनकी अकबर से भी भेंट हुई थी, जिसका विस्तार पूर्वक उल्लेख आगामी पृष्ठों मे किया जावेगा। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे लिखा हुआ है कि कुंभनदास और परमानंददास के कारण जब सूरदास को श्रीनाथ जी के कीर्तन से कुछ अवकाश मिलता, तो वे नवनीतप्रिय जी के सन्मुख कीर्तन करने गोकुल जाया करते थे‡। ऐसे अवसर सं० १६२८ के बाद ही आये होंगे, जब गो० विट्ठलनाथ जी स्थायी रूप से गोकुल मे रहने लगे थे।

सूरदास की रचना मे गोकुल, मथुरा और वृंदावन का उल्लेख† प्राप्त होने से उनका उक्त स्थानों मे जाने का अनुमान होता है। उनके मथुरा और गोकुल मे कार्यवशात् जाने का उल्लेख तो वार्ता मे भी मिलता है, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, किंतु उनके वृंदावन जाने का उल्लेख वार्ता मे प्राप्त नहीं है। उनकी भक्ति--भावना को देखते हुए यह अनुमान होता है कि वे श्रीनाथ जी प्रभृति स्वरूपो की सेवा छोड कर अधिक समय तक वृंदावन आदि किसी स्थान मे नहीं रह सकते थे। इस संबंध मे वार्ता मे दिया हुआ कृष्णदास अधिकारी का वृंदावन वाला प्रसंग द्रष्टव्य है*। उनकी रचना के वृंदावन वाले उल्लेख से यह संभावना होती है कि वे शायद महाप्रभु

‡ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' (अग्रवाल प्रेस) मे 'अष्ट० की वार्ता' पृ० १६

† १. ब्रजभूमि मोहिनी मैं जानी।

(इस पद में गोकुल, वृंदाबन का उल्लेख हुआ है)

२. वृंदाबन एक पलक जो रहिये।

'सूरदास' बैकुंठ मधुपुरी भाग्य बिना कहाँ ते पैये॥

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' (अग्रवाल प्रेस) मे 'अष्ट० की वार्ता' पृ० १३२

वल्लभाचार्य जी अथवा गो० विट्ठलनाथ जी की आज्ञा से उन्हीं के साथ ब्रजयात्रा करते हुए वृंदावन गये हो, अथवा स्वदेश से गऊघाट जाते समय जब वे मथुरा आये थे, तब वे संभवतः वृंदावन भी गये हो। वृंदावन में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी की बैठके विद्यमान है, जिनसे सिद्ध होता है कि पुष्टि संप्रदाय के आरंभिक इतिहास से वृंदावन का भी संबंध है। ऐसी दशा मे किसी समय सूरदास का वहाँ जाना असंभव नही है।

सूरदास द्वारा श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करने का उल्लेख वार्ता के अतिरिक्त उनके निम्न लिखित पदांश के अंतःसाक्ष्य से भी प्राप्त होता है—

'सूर कूर आँधरौ, हौं द्वार परयौ गाऊँ।'

इसके अतिरिक्त वल्लभ संप्रदाय की सेवा-प्रणाली के अनुसार पवित्रा एकादशी, रथ यात्रा, छप्पन भोग एवं अष्ट समय की सेवा के विशिष्ट पदो की रचना द्वारा सूरदास का मंदिर की कीर्तन-सेवा से घनिष्ट संबंध सिद्ध होता है।

श्रीनाथ जी के प्रति आसक्ति—

सूरदास के इष्टदेव श्रीनाथ जी थे, अतः उन्हीं के प्रति उनकी पूर्ण आसक्ति थी। उन्होने श्रीनाथ, गोवर्धनधर, गोपाल आदि नामो से उनके प्रति अपनी भक्ति-भावना प्रकट की है, जैसा कि निम्न लिखित कतिपय पदों से स्पष्ट है—

१. अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी।
   श्रीनाथ सारंगधर कृपा करि मोहि, सकल अघ हरन हरि गरुड़गामी॥

२. श्री गोवर्धनधर प्रभु, परम मंगलकारी।
   उधरे जन 'सूरदास' ताकी बलिहारी॥

इन उल्लेखो से सूरदास का श्रीनाथ जी के प्रति इष्टदेव का संबंध पुष्ट होता है। भक्ति-भाव से श्रीनाथ जी की उपासना और निष्काम भाव से उनकी कीर्तन-सेवा करते हुए उनको अपने इष्टदेव का साक्षात्कार भी प्राप्त हो गया था। इस बात का उल्लेख "स्याम कह्यौ 'सूरदास' सो मेरी लीला सरस बनाय", अथवा "तब बोले जगदीस जगतगुरु सुनहु 'सूर' मम गाथ" इत्यादि कथनों में स्पष्टतया मिलता है।

'सूरसागर' नाम की प्रसिद्धि—

गोवर्धन मे स्थायी रूप से रहने के अनंतर सूरदास ने महाप्रभु जी द्वारा प्राप्त भागवतोक्त ज्ञान के आधार पर भगवल्लीलाओं का गायन किया था, जिसके कारण महाप्रभु जी उनको 'सागर' के नाम से संबोधन करते थे।

सूरदास को 'सागर' कहने का तात्पर्य यह था कि उनके हृदय मे दशविध लीलाओं की स्थिति हो चुकी थी और उन्ही लीलाओ की अनेक भाव-तरगो को सूरदास ने अपने असख्य पदो मे व्यक्त किया है। ये पद संतप्त जीवों को सदा शांति देने वाले है।

महाप्रभु जी के इस मंगलाचरण से लीला-समुद्र वाली बात की पुष्टि होती है—

"नमामि हृदये शेषे लीला-क्षीराब्धि-शायिनं ।
लक्ष्मी सहस्र-लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ॥"

महाप्रभु जी इस मगलाचरण मे लीलाओ की उपमा क्षीर समुद्र से देते है। इस अनंत लीला रूपी समुद्र की स्थापना महाप्रभु ने भागवत के दशम स्कध की अनुक्रमणिका और समस्त भागवत के सार समुच्चय स्वरूप "पुरुषोत्तम सहस्रनाम" के यथार्थ ज्ञान द्वारा सूरदास के हृदय मे की थी। इसी से वे "सागर" हो गये थे। महाप्रभु जी द्वारा सूरदास को "सूरसागर" कहने का यह अभिप्राय था। बाद मे यह नाम इतना प्रचलित हुआ कि सूरदास की रचनाएँ भी उक्त नाम से प्रसिद्ध हो गयीं।

महाप्रभु जी द्वारा 'सागर' कहने पर सूरदास अपनी दीनता दिखलाते थे, जिसका उल्लेख उनकी निम्न रचना मे इस प्रकार हुआ है—

है हरि मोहू तें अति पापी।
सागर सूर विकार जल भरयौ, बधिक अजामिल बापी ॥

अष्टछाप की स्थापना—

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथ जी के मंदिर मे कीर्तन का जो 'मंडान' प्रचलित किया था, उसके सर्व प्रथम नियमित कीर्तनकार सूरदास थे; उनके पश्चात् परमानंददास हुए। कुंभनदास यद्यपि सूरदास से भी पूर्व कीर्तन करते थे, किंतु वे गृहस्थ होने के कारण नियमित रूप से अपना समय देने मे असमर्थ थे। इस प्रकार महाप्रभु जी के समय में सूरदास एवं परमानददास नियमित रूप से श्रीनाथ जी की सभी झाँकियों मे कीर्तन करते थे और कुंभन-दास अपने अवकाशानुसार उनको सहयोग देते थे। महाप्रभु जी के पश्चात्

गोपीनाथ जी के समय मे भी यही क्रम चलता रहा। गो० विट्ठलनाथ जी के समय मे इस कीर्तन-प्रणाली को व्यवस्थित एव विस्तृत किया गया, और श्रीनाथ जी की आठो समय की झाँकियो के पृथक्-पृथक् कीर्तन-कार नियत किये गये। उस समय तक सर्वोच्च श्रेणी के कई अन्य कीर्तनकार भी सप्रदाय मे सम्मिलित हो चुके थे, अत. गो० विट्ठलनाथ जी ने संप्रदाय के प्रमुख आठ कीर्तनकारो को श्रीनाथ जी के मदिर मे नियमित रूप मे कीर्तन करने को नियत किया। उनमे से सूरदास, परमानंददास, कुभनदास और कृष्णदास—ये चार महाप्रभु जी के सेवक थे तथा छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नददास—ये चार गोसाई जी के सेवक थे।

गो० विट्ठलनाथ जी ने श्री गोपीनाथ जी का निधन होते ही सं० १६०० मे एक ब्रजयात्रा की थी। उसी समय उन्होने श्रीनाथ जी के मदिर की सेवा का विस्तार करने की इच्छा प्रकट की, किंतु उसमे द्रव्य की आवश्यकता थी। इसके लिए उन्होने उसी वर्ष गुजरात का प्रथम 'प्रदेश' किया। उस 'प्रदेश' मे प्राप्त समस्त द्रव्य उन्होने श्रीनाथ जी के अर्पण कर दिया, जिससे व्यवस्थित रूप मे सेवा का विस्तार किया गया। यह कार्य सं० १६०१ से स० १६०२ मे हुआ था।

सेवा के भोग, राग और शृंगार प्रमुख अग है। गो० विट्ठलनाथ जी ने उक्त तीनो अगो को व्यवस्थित एवं विस्तृत किया था। सेवा का रागात्मक अंग कीर्तन है, जिसका विस्तार अनेक राग-रागनी और वाद्य यंत्रो के साथ किया गया। श्रीनाथ जी के आठ समय के दर्शनों के आठ प्रमुख कीर्तनकार थे, जो 'अष्टछाप' अथवा 'अष्ट काव्य वारे' कहलाते थे। इन कीर्तनकारो मे सूरदास प्रमुख थे।

अनुसधान से ज्ञात होता है कि नंददास के अतिरिक्त 'अष्टछाप' के अन्य सात कवि सं० १६०२ तक श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा मे उपस्थित हो चुके थे। नंददास सं० १६०७ के लगभग गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक होकर पुष्टि संप्रदाय मे सम्मिलित हुए थे। ऐसा ज्ञात होता है कि वे सेवक होने के अनंतर कुछ समय तक ब्रज में रह कर बाद मे अपने जन्म-स्थान रामपुर मे चले गये थे और सं० १६२० के पश्चात् वे स्थायी रूप से गोवर्धन में आकर रहने लगे थे†। उस समय वे अपनी काव्य-संगीत विषयक योग्यता के कारण अष्टछाप मे भी सम्मिलित किये गये। इससे पूर्व अष्टछाप के आठवें कीर्तनकार

† इसका विस्तार पूर्वक कथन आगामी पृष्ठों मे किया गया है।

महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के सेवक विष्णुदास छीपा थे। यही कारण है कि श्री द्वारिकानाथ जी महाराज उपनाम 'द्वारिकेश' कृत छप्पय मे नददास के स्थान पर विष्णुदास का नाम मिलता है†। जब नददास दुबारा ब्रज मे आये, तब विष्णुदास छीपा अत्यंत वृद्ध होने के कारण गोसाई' जी के द्वार-रक्षक बनाये गये और नंददास उनके स्थान पर श्रीनाथ जी के कीर्तनकार नियत किये गये।

श्रीनाथ जी की अनन्य भक्ति के कारण अष्टछाप के आठो कवियो को अपने इष्टदेव का साक्षात्कार भी प्राप्त था। वार्ता मे लिखा है कि स्वय श्रीनाथ जी सखा भाव से उनके साथ खेलते थे। इन कारणो से वे 'अष्टसखा' के नाम से भी प्रसिद्ध हुए और श्रीमद्भागवत के आधार पर उनके सखात्व के नाम भी निश्चित किये गये। श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण ने अपने सखाओ को निम्न नामों से सं'बोधित किया है—

हे कृष्ण स्तोक, हे अंशो, श्रीदामन् सुबलार्जुन ।
विशालर्षभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप ‡ ॥

उपर्युक्त एकादश सखाओं मे कृष्ण से ऋषभ तक के आठ नाम सूरदास आदि आठो भक्त कवियो के माने गये है। इन आठो मे सूरदास मुख्य थे, अतः उनका नाम 'कृष्ण' सर्वथा उचित भी था। सूरदास की रचनाओ मे जो 'सूरस्याम' नाम की छाप मिलती है, उसका कारण भी उनका यह 'कृष्ण' नाम ही ज्ञात होता है।

अष्टछाप के कवियों का पारस्परिक संबंध—

यद्यपि 'अष्टछाप' में सूरदास को प्रधानता दी गयी है, तथापि वे आठो महानुभाव एक दूसरे के प्रति अत्यंत आदर और नम्रता का भाव रखते थे। भावप्रकाश वाली वार्ता से ज्ञात है कि सूरदास कभी-कभी परमानंददास से मिलने उनकी कुटिया पर जाया करते थे और उनसे संप्रदायिक रहस्यो के सबध मे बातचीत करते थे‡। इसी प्रकार परमानंददास एव कु'भनदास का परस्पर मिलना और उनका कृष्णदास अधिकारी के पास जाना भी वार्ता से सिद्ध है°।

† बबई से प्रकाशित "श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता"
‡ श्री मद्भागवत, दशम स्कंध पूर्वार्द्ध, अध्याय २२
‡ चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) मे अष्ट० वार्ता पृ० ५१
° चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में अष्ट०वार्ता पृ० १२१

इससे ज्ञात होता है कि वे परमोच्च श्रेणी के संत होने के कारण अत्यत नम्र भाव रखते थे और उनमे बडप्पन का लेश मात्र भी अभिमान नही था।

सूरदास जहाँ संत स्वभावानुसार अत्यत विनम्र थे, वहाँ वे स्पष्टवादी भी थे। यही कारण है कि उन्होने अपनी रचनाओ के भावापहरण के कारण कृष्णदास अधिकारी को एक वार टोका भी था‡।

ऐसा ज्ञात होता है कि सूरदास और नददास का घनिष्ट संबंध था। वार्ता मे लिखा है कि नददास को सांप्रदायिक ज्ञान की शिक्षा सूरदास से प्राप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त नंददास की रचनाओ मे सूरदास के भावो की स्पष्ट छाया दिखलायी देती है, किंतु वार्ता से यह ज्ञात नही होता कि कृष्णदास अधिकारी की तरह नददास को भी सूरदास ने कभी टोका हो। इसलिए यह अनुमान होता है कि नददास ने सांप्रदायिक ज्ञान ही नही, बल्कि काव्य विषयक ज्ञान भी किसी रूप में सूरदास से ही प्राप्त किया था।

अकबर से भेंट—

"चौरासी वार्ता" मे सूरदास और अकबर की भेंट का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। इस भेंट का विस्तारपूर्वक वर्णन 'अष्टसखान की वार्ता' मे किया गया है*। इससे ज्ञात होता है कि तानसेन से सूरदास का एक पद सुनने पर अकबर ने सूरदास से मिलने की इच्छा प्रकट की थी। सूरदास से मिलने की उत्सुकता मे अकबर ने अपने सेवको को उनकी खोज के लिए गोवर्धन भेजा, किंतु वहाँ ज्ञात हुआ कि सूरदास मथुरा मे है। अत मे सूरदास और अकबर की भेंट हुई। अकबर के कहने पर सूरदास ने 'मना रे! तू कर माधौ सो प्रीत' नामक जिस उपदेशात्मक पद का गायन किया था, वह 'सूर पच्चीसी' के नाम से प्राप्त है।

सूरदास का अलौकिक गायन सुन कर अकबर बडा प्रसन्न हुआ। वार्ता मे लिखा है कि जब अकबर ने उनसे अपना यश वर्णन करने को कहा तो सूरदास ने निम्न लिखित पद का गायन किया—

नाहिन रह्यौ मन मे ठौर।
नंदनंदन अछत कैसै आनिऐ उर और?
स्याम गात, सरोज आनन, ललित अति मृदु हास।
'सूर' ऐसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास॥

---

‡ चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) मे अष्ट० वार्ता पृ० ११५

* चौरासी वै० की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) मे 'अष्टसखान की वार्ता पृ०' १४

उक्त पद के गायन से सूरदास ने अकबर को बतला दिया कि उनके हृदय मे भगवान् श्री कृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के लिए स्थान नही है, अतः उनके द्वारा किसी व्यक्ति का यश-वर्णन करना भी संभव नही है। सूरदास की इस सारगर्भित स्पष्टोक्ति को सुन कर अकबर चुप हो गया, किंतु उपर्युक्त पद की अंतिम पंक्ति के सबंध मे उसने सूरदास से प्रश्न किया—"सूरदास जी! तुम्हारे नेत्र तो है ही नही, फिर उनको रूप की प्यास किस प्रकार हो सकती है?" वार्ता मे लिखा है कि अकबर के इस प्रश्न का सूरदास ने कोई उत्तर नहीं दिया, किंतु अकबर जैसे गुणग्राहक और साधुसेवी नरेश को इस संबध मे स्वतः समाधान होगया।

अकबर से सूरदास की भेंट संबधी वार्ता के उपर्युक्त कथन की पुष्टि सूरदास की रचना के अंत.साक्ष्य अथवा किसी बहि.साक्ष्य से भी अभी-तक स्पष्ट रूप से नही हो सकी है, किंतु कुंभनदास और हरिदास आदि से अकबर का मिलना प्रमाणित है, इसलिए सूरदास जैसे महान् कवि और गायक से भी अकबर का मिलना सर्वथा संभव है। अकबर सगीत का प्रेमी और साधु-सतो का आदर करने वाला गुणग्राही नरेश था। सूरदास अपने समय के विख्यात कवि, गायक और महात्मा थे, अतः अकबर द्वारा उनसे मिलने की बात निराधार नही हो सकती है।

सूरदास और अकबर का मिलन हमारे अनुमान से सं० १६२३ मे मथुरा मे हुआ था। सांप्रदायिक इतिहास से ज्ञात होता है कि सं० १६२३ की फाल्गुन कृ० ७ को गो० विट्ठलनाथ जी की अनुपस्थिति मे उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजी श्रीनाथ जी के स्वरूप को गोवर्धन से मथुरा मे ले गये थे। उस समय श्रीनाथ जी की सेवा के लिए सूरदास भी मथुरा गये थे। उस अवसर पर श्रीनाथ जी २ माह २२ दिन पर्यंत मथुरा मे रहे थे और उस अवधि मे सूरदास को भी उनकी कीर्तन सेवा करते हुए मथुरा में ही रहना पड़ा था।

अकबर सं० १६१३ मे बादशाह हुआ था और स० १६२१ में तानसेन उसके दरबार मे आया था। सं० १६२३ मे अकबर का मथुरा जाना इतिहास प्रसिद्ध है, अतः तानसेन की प्रेरणा से इसी संवत् में सूरदास का अकबर से मिलना सर्वथा संगत है, अतः सं० १६२३ में अकबर-सूरदास की भेंट होने का हमारा अनुमान भी प्रामाणिक सिद्ध होता है। डा० दीनदयाल गुप्त के मतानुसार यह भेंट मथुरा में सं० १६३६ के लगभग हुई थी†, किंतु उक्त संवत् में सूरदास का मथुरा में रहना प्रामाणित नहीं होता है, अतः इसका समय सं० १६३६ की अपेक्षा सं० १६२३ ही अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है।

† अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २१८

सूर तुलसी मिलन —

वार्ता, भक्तमाल की टीका और मूल गुसाईं चरित में सूरदास और तुलसीदास की भेंट का उल्लेख किया गया है। वार्ता और भक्तमाल द्वारा इस भेंट का संवत् ज्ञात नहीं होता है, किंतु 'मूल गुसाईं चरित' में इसका संवत् १६१६ दिया गया है। 'मूल गुसाईं चरित' मे लिखा है सं० १६१६ मे श्री गोकुल-नाथ जी ने सूरदास को कृष्ण-रंग मे डुबो कर तुलसीदास से मिलने को भेजा था। चित्रकूट पर उनकी तुलसीदास से भेंट हुई। सूरदास ने तुलसीदास को स्वरचित सूरसागर दिखलाया और उसमे से दो पदों का गायन भी किया। इसके पश्चात् सूरदास ने तुलसीदास के चरणों मे मस्तक नवाया और उनसे आशीर्वाद माँगा। सूरदास वहाँ पर सात दिन तक रहे। अंत मे तुलसीदास ने गोकुलनाथ जी के नाम एक पत्र देकर उनको विदा किया‡।

'मूल गुसाईं चरित' का उपर्युक्त कथन सर्वथा इतिहास विरुद्ध है। सं० १६१६ मे गोकुलनाथ जी प्रायः ८ वर्ष के बालक थे, अतः उनके द्वारा सूरदास का भेजा जाना असंभव है।

हम गत पृष्ठों मे लिख चुके है कि गोवर्धन आने के पश्चात् सूरदास कभी–कभी गोकुल या मथुरा जाने के अतिरिक्त कही अन्यत्र नही गये। ऐसी दशा में अपनी ८१ वर्ष की वृद्धावस्था मे श्रीनाथ जी की सेवा छोड कर चित्रकूट जैसे सुदूर स्थान मे उनका जाना संभव नही है। इसके अतिरिक्त सूरदास आयु में तुलसीदास से बडे थे और उन्होने काव्य-रचना भी तुलसीदास से बहुत पहले आरंभ कर दी थी। सं० १६१६ में सूरदास सहस्रो पदों की रचना कर चुके थे, जिनके कारण वे 'सागर' कहलाते थे। इसके विरुद्ध तुलसीदास ने उस समय तक 'रामचरित मानस' आदि अपने प्रमुख ग्रंथों की रचना का आरंभ भी नही किया था। ऐसी दशा मे सूरदास का तुलसीदास के चरणो मे नत–मस्तक होना भी असंगत कल्पना ज्ञात होती है। ऐसे ही कारणों से प्रायः समस्त प्रमुख विद्वानो ने 'मूल गुसाईं चरित' को अप्रामाणिक माना है। हम भी इसे अप्रामाणिक मानते हैं, अत. इसमे वर्णित सूर-तुलसी मिलन का वृतांत सर्वथा अग्राह्य है।

वार्ता मे इस प्रसंगका संवत् नही दिया गया है, किंतु उसमे वर्णित घटनाओ की संगति से सूर-तुलसी मिलन और उसके काल की यथार्थता सिद्ध हो जाती है। वार्ता से ज्ञात होता है कि एक बार तुलसीदास अपने भाई नंददास से मिलने के लिए ब्रज मे आये थे। वे नंददास से परासोली मे मिले*। परासोली

‡ मूल गुसाईं चरित, पृ० २९,३० *प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, पृ० ३४४

सूरदास का निवास स्थान था। नंददास और सूरदास का जो काव्य-विषयक सबंध हम गत पृष्ठो मे बतला चुके है, उसके कारण नददास का सूरदास के यहाँ आना-जाना होता ही था, अत. परासोली मे नददास से मिलने पर तुलसीदास की सूरदास से भेट होना सर्वथा सभव है। वार्ता और श्री गोकुलनाथ जी के वचनामृतो से ज्ञात होता है कि उस समय नंददास अपने भाई तुलसीदास को गोकुल मे भी ले गये थे। वहाँ पर उन दिनो गो० विट्ठलनाथ जी के पचम पुत्र श्री रघुनाथ जी का विवाह हो रहा था†। रघुनाथ जी के विवाह का समय सं० १६२६ श्री गोकुलनाथ जी के स्फुट वचनामृतों की हस्त लिखित प्रति के निम्न उद्धरण से स्पष्ट होता है—

"ते तुलसीदास श्री गोकुल आये हते। ता दिन श्रीरघुनाथ जी महाराज कौ विवाह हतौ। सो ठौर ठौर आनंद होय रह्यौ हतौ।...ता समे श्री रघुनाथ जी वर्ष पंद्रे के हते।"

रघुनाथ जी का जन्म सं० १६११‡ है। उपर्युक्त घटना के समय वे १५ वर्ष के थे, अतः उक्त घटना का समय स० १६२६ निर्धारित होता है। ऐसी दशा मे तुलसीदास के ब्रज-आगमन और उनके सूरदास से मिलने का समय भी स० १६२६ ही सिद्ध होता है। सं० १६२० के पश्चात् नददास गृहस्थ का त्याग कर विरक्त भाव से गोवर्धन मे स्थायी रूप से रहने लगे थे, अत. सं० १६२६ मे उनसे मिलने के लिए तुलसीदास का ब्रज मे आना सर्वथा संभव है।

ब्रज मे आने पर और वहाँ के वातावरण से प्रभावित होने पर तुलसीदास ने कुछ पदो की रचना भी की थी। वे पद उक्त घटना की स्मृति स्वरूप पुष्टि संप्रदाय के मदिरो में परपरा से गाये जाते है*। उक्त पद एव कुछ अन्य

---

† १. प्राचीन वार्ता रहस्य द्वितीय भाग, पृ० ३४६

२. वार्ता साहित्य मीमासा (गुजराती) पृ० ६ ‡ श्री वल्लभ वशवृक्ष

* १. बरनौं अवधि श्री गोकुल गाम।

उत बिराजत जानकी-वर, इतहिं स्यामा स्याम॥
भक्त हित श्री राम-कृष्ण सु धर्यौ नर अवतार।
दास 'तुलसी' दोऊ आसा, कोउ उबारो पार॥

२. श्री रघुनाथ राम अवतार।

जानकी जीवन सब जगवंदन कलिमद हरन उतारन भार॥
श्री गोकुल मे सदा विराजो, बचन पीयूष काम निरवार।
'तुलसीदास' प्रभु धनुषबान धरो, चरनन देहुँ सीस तब डार॥

रचनाओ के कारण तुलसीदास का ब्रज मे आना प्रामाणित होता है*। तुलसीदास कृत 'गीतावली' और 'कृष्णगीतावली' ब्रजभाषा मे लिखी हुई और ब्रज के भक्ति भाव से अनुप्राणित रचनाएँ है। इनके कारण भी तुलसीदास का ब्रज मे आना और पुष्टि संप्रदाय के भक्तो से किसी रूप मे प्रभावित होना अवश्य सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विवेचन के अनंतर हमारा मत है कि तुलसीदास स० १६२६ मे ब्रज मे आये थे और उसी समय उनकी सूरदास से भी भेंट हुई थी।

गुरु–निष्ठा—

संसार के समस्त धर्म एवं संप्रदायो मे अति प्राचीन काल से गुरु का स्थान अत्यत महत्वपूर्ण माना गया है। आर्य शास्त्रो मे तो गुरू को ईश्वर तुल्य बतलाया गया है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

भारतवर्ष के संत एवं भक्तों मे तो गुरु को ईश्वर से भी बढ कर बतलाया गया है। निम्न लिखित दोहा इसका प्रमाण है—

गुरु गोविंद दोनो खड़े, का के लागौं पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, जिन गोविंद दिये बताय॥

इस प्रकार की मान्यता का कारण यह है कि गुरु द्वारा ही यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिससे जीव अपना वास्तविक कल्याण कर सकता है। 'गुरु बिना ज्ञान नही' यह कहावत इसीलिए लोक मे चल पड़ी है। किंतु गुरु किस प्रकार का होना चाहिए, इसके संबंध मे महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का निम्न लिखित कथन विचारणीय है—

कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादि रहितं नरम्।
श्री भागवततत्त्वज्ञं भजेज्जिज्ञासुरादरात्†॥

महाप्रभु जी ने गुरु के जो तीन लक्षण बतलाये है, वे सब स्वयं उनमे विद्यमान थे, इसीलिये सूरदास उनमे और हरि मे कोई अंतर नही समझते थे।

---

* राधे–राधे रटत है, आक ढाक और कैर।
तुलसी या ब्रजभूमि मे, कहा राम सो बैर॥

† निबंध श्लोक २२९

वार्ता मे लिखे गये सूरदास के देहावसान संबंधी प्रसंग से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है* ।

सूरदास जिस प्रकार अपने दीक्षा--गुरु महाप्रभु जी को श्री हरि के रूप मे देखते थे, उसी प्रकार उनके पुत्र गोसाईं जी को भी देखते थे। इसकी पुष्टि सूरदास की रचना और वार्ता के प्रसंगो से होती है। इसके अतिरिक्त वे महाप्रभु जी के पौत्रो का भी अत्यंत आदर करते थे, जैसा कि वार्ता मे लिखित नवनीतप्रिय जी के श्रृंगार वाले प्रसंग से प्रकट है‡ ।

लोक--कल्याण की भावना—

वीतरागी भक्त जन लोक एवं वेद के बाह्य धर्मों के प्रति प्राय: उदासीन होते है। वे एकांत स्थान में आत्म-चिंतन करते हुए परमानंद का अनुभव करते रहते है। इस प्रकार वे अपनी आत्मा का कल्याण तो कर लेते है, किंतु लोक-कल्याण के कार्यों मे उनसे कोई सहायता प्राप्त नही होती। सूरदास परम विरक्त और परमोच्च श्रेणी के भक्त एव संत होने के कारण ब्रह्मानंद में लीन तो रहते ही थे, किंतु वे लोक-कल्याणकारी कार्यों के प्रति भी उदासीन नहीं थे ।

अपनी स्वामी अवस्था से ही उनके पास अनेक जिज्ञासुओ की भीड लगी रहती थी। सूरदास अपने सदुपदेश द्वारा उनको सन्मार्ग पर लाते थे। बल्लभ संप्रदाय के सेवक होने के अनंतर उनकी प्रकृति में दैन्य भाव की विशेष वृद्धि हो गयी थी, फिर भी वे अपने नम्र उपदेशों द्वारा अनेक व्यक्तियों का कल्याण करते थे।

वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास ने अपने उपदेश से चौपड खेलते हुए कुछ व्यक्तियों और गोपालपुर निवासी एक द्रव्यासक्त वैश्य को सन्मार्ग दिखलाया था† ।

उपस्थिति--काल—

सूरदास की विशाल-काय काव्य-रचना और उनके काव्य के अंतःसाक्ष्य से यह भली भाँति ज्ञात होता है कि वे बहुत बड़ी आयु तक जीवित रहे थे। उनकी रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से उनकी वृद्धावस्था की पुष्टि होती है।

---

* चौरासी वार्ता (अग्रवाल प्रेस) मे 'अष्टसखान की वार्ता' पृ० २९, ३०

‡ ,, ,, ,, पृ० १७, १८

† ,, ,, ,, पृ० ११, २०

सूरदास के पदों की निम्न लिखित पंक्तियाँ देखिये—

१. तीनों पन मे ओर निबाही, इहै स्वाँग को काछे।
'सूरदास' को इहै बडो दुख, परत सबन के पाछे ॥ १, ७७

२. सबै दिन गए विषय के हेत।
तीनो पन ऐसे ही बीते, केस भए सिर स्वेत ॥ १, १७५

३. बिनती करत मरत हौ लाज।
नख-सिख लो मेरी यह देही, है पाप की जहाज ॥
और पतित न आवे आँख तर, देखत अपनौ साज।
तीनों पन भरि बहोरि निबाह्यो, तोउ न आई लाज ॥

उपर्युक्त पदों से ज्ञात होता है कि सूरदास अपने तीनों पन—बाल्य, युवा एवं वृद्धावस्था को पार कर अत्यंत वृद्ध हो चुके थे। सूरदास अत्यत वृद्धावस्था तक जीवित थे, यह निश्चित है, किंतु उनकी स्थिति इस भूतल पर किस संवत तक रही, यह विचारणीय है। इसके विवेचन के लिए हम सूरदास की रचना के कुछ अंत.साक्ष्य उपस्थित करते है और पुष्टि संप्रदाय के इतिहास से उनकी संगति मिलाते हुए उनके उपस्थिति-काल पर भी विचार करते है।

सूरदास कृत 'छप्पन भोग' का एक पद उपलब्ध है, जो इस प्रकार है—

भोजन करत गोवर्धन धारी।
छप्पन भोग, छतीसों व्यंजन परोस धरे ललिता री।
अचवन को लाई चंद्रावलि, भरि यमुनोदक झारी ॥
सुगंध बीड़ी आरोगावति, विसाखा अँग-अँग फूलत भारी।
मुकुर दिखावति चंपकलता, 'सूरदास' बलिहारी ॥

इस पद मे श्रीनाथ जी के छप्पन भोग का वर्णन है। सांप्रदायिक इतिहास से प्रकट है कि यह छप्पन भोग सं० १६१५ की मार्गशीर्ष शु० १५ को हुआ था। इसकी स्मृति मे तब से अब तक बराबर प्रति वर्ष मार्गशीर्ष शु० १५ को श्रीनाथ के यहाँ छप्पन भोग का मनोरथ होता है। इससे ज्ञात होता है कि सं० १६१५ तक सूरदास उपस्थित थे।

इसके अनंतर 'रथ यात्रा' के निम्न लिखित पद पर विचार कीजिए—

तुम देखो सखी री आज नयन भरि, हरि जू के रथ की सोभा।
'सूरदास' गोकुल के बासी, प्राननाथ वर पावै ॥

इस पद के अंतःसाक्ष्य की संगति वल्लभ संप्रदाय के इतिहास से मिलाने पर सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६२२ पर्यंत अवश्य निश्चित होती है। सांप्रदायिक इतिहास से प्रकट है कि वल्लभ संप्रदाय में रथयात्रा का उत्सव सं० १६१७ से आरंभ हुआ है। इससे पहले संप्रदाय में रथोत्सव नहीं होता था। यह उत्सव सर्व प्रथम श्री नवनीत प्रिय जी का अडैल में हुआ था।

सं० १६१९ में जब अडैल में राजकीय उपद्रव की आशंका हुई, तब गो० विट्ठलनाथ श्री नवनीतप्रिय जी का स्वरूप (मूर्ति) और अपने कुटुंब को लेकर रानी दुर्गावती की राजधानी गढा नामक स्थान में चले गये, जहाँ वे प्रायः दो वर्ष तक रहे। गढा वर्तमान मध्य प्रांत के जब्बलपुर नगर के निकट इतिहास-प्रसिद्ध रानी दुर्गावती की राजधानी था। गो० विट्ठलनाथ जी की पत्नी रुक्मिणी जी का देहांत सं० १६१६ में हो चुका था। इनमें गोसाईं जी को १० संतान—६ पुत्र एवं ४ पुत्रियाँ थीं। रानी दुर्गावती के आग्रह से सं० १६२० की अक्षय तृतीया के दिन सजातीय कन्या पद्मावती के साथ गोस्वामी जी को अपना दूसरा विवाह करना पड़ा। सं० १६२१ में जब गढ़ा में भी रानी दुर्गावती और अकबर के युद्ध की संभावना हुई, तब विट्ठलनाथ जी गढा से प्रयाग होते हुए सं० १६२२ में मथुरा आ गये। मथुरा से वे गोकुल गये, किंतु वहाँ पर जन्माष्टमी के उत्सव पर दही दूध के छींटों के कारण गोसाईं जी के ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी की महाबन के भोमियाओं से काफी कहा-सुनी हो गयी। उस समय गोसाईं जी गोवर्धन में थे। इस उपद्रव का समाचार सुन कर वे गोवर्धन से गोकुल आये और उपद्रव अधिक न बढे, इसलिए अपने कुटुंब सहित गोकुल से फिर मथुरा आ गये और रानी दुर्गावती द्वारा निर्मित भवन में रहने लगे। सं० १६२८ में राजा बीरबल की सहायता से गोसाईं जी को जब अकबर द्वारा गोकुल बसाने की आज्ञा प्राप्त हुई और वहाँ की सुरक्षा का भी यथोचित प्रबंध हो गया, तब गोसाईं जी स्थायी रूप से गोकुल में रहने।

उपर्युक्त पद के 'सूरदास गोकुल के बासी प्राननाथ वर पावै' वाले कथन से यह सिद्ध होता है कि तब तक गोसाईं विट्ठलनाथ गोकुल में बस चुके थे। यह उल्लेख सं० १६२२ से भी संबंधित हो सकता है और सं० १६२८ से भी; अतः उपर्युक्त उल्लेख के कारण सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६२२ तक अवश्य मानी जा सकती है।

अकबर से सूरदास की भेंट का समय भी उनके उपस्थिति-काल पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। हमने गत पृष्ठो मे इस भेंट का समय म०१६२३ निश्चित किया है, अतः सूरदास की उपस्थिति सं० १६२३ पर्यंत मानी जा सकती है।

'अष्टसखान की वार्ता' से ज्ञात होता है कि श्रीनाथ जी के मदिर में कीर्तन के लिए जब कुंभनदास एव परमानददास का 'ओसरा' आता था, तब कभी-कभी सूरदास नवनीतप्रिय जी के मदिर मे कीर्तन करने के लिए गोकुल जाया करते थे। उस समय ठाकुर जी का जैसा शृंगार होता था, उसका सूरदास नेत्र विहीन होते हुए भी यथावत् वर्णन करते थे। एक बार गुसाईं जी के पुत्रो ने सूरदास की परीक्षा के लिए नवनीतप्रिय जी को वस्त्र न पहरा कर केवल मोतियो का शृंगार किया और सूरदास को बतलाए बिना उनसे कीर्तन करने को कहा। सूरदास जी ने उस समय जिस पद का गायन किया था, उसका कुछ अश निम्न प्रकार है—

देखे री हरि नंगम नंगा।
जल सुत भूषन अंग विराजति, बसन हीन छबि उठन तरंगा॥

उपर्युक्त उल्लेख से सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६२८ पर्यंत अवश्य मानी जा सकती है, क्यो कि इसी सवत् मे गुसाईं विट्ठलनाथ जी स्थायी रूप से गोकुल मे रहने लगे थे, तभी नवनीतप्रिय जी का मोतियो का शृंगार और 'ओसरा' के अनुसार सूरदास द्वारा उनके कीर्तन करने का अवसर आया था।

अष्टछाप के कवि कृष्णदास रचित बसंत का एक पद नीचे दिया जाता है। इससे सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६३८ तक मानी जा सकती है। वह पद इस प्रकार है—

(राग बसंत)

खेलत बसंत वर विट्ठलेश राय। निज सेवक सुख देखत आय।
श्री गिरिधर राजा बुलाय। श्री गोविंदराय पिचकारी लाय॥
श्री बालकृष्ण छबि कही न जाय। श्री गोकुलनाथ लीला दिखाय।
रघुनाथलाल अरगजा लाय। श्री जदुनाथ चोबा मॅगाय॥
घनस्याम धाय फेटन भराय। सब बालक खेलत एक दाय।
तहाँ सूरदास नाँचत है आय। परमानंद घोरि गुलाल लाय॥

चत्रभुज प्रभु केसर माँट भराय। छीतस्वामी हु बूका फेंके जाय।
नंददास निरखि छबि कहत आय। गावै कुंभनदास बीना बजाय॥
तब गोविंद बोलि छिरके आय। कोउ नाँचत देइ दमा भुजाय।
सब बालक हो हो बोले जाय। उड्यौ अबीर गुलाल धुंवर फराय॥
पिचकाई इत उत छींटे जाय। कोउ फेंकत फूलन अपने भाय।
कोउ चोवा ले छिरके बनाय। बाजे ताल मृदंग उपंग भाय॥
बिच बाजत मुह्चग मुरली जाय। कोऊ डफ ले महुवरि सो मिलाय।
एक नाँचत पग नूपुर बजाय। बाढ्यौ सुख समुद्र कछू कह्यौ न जाय॥
सब बालक भीने अंग चुवाय। भक्तन घर घर सुख ही छाय।
सोभा कहे कहा कवि हू बनाय। यह सुख सब सेवक दिखाय॥
सुर कुसुमन बरखन आय आय। सब गावत मीठी गारि भाय।
सब अपने मनोरथ करत आय। तहाँ 'कृष्णदास' बलिहारि जाय॥

उक्त पद में सूरदास सहित अष्टछाप के आठों कवि, गोसाईं विट्ठलनाथ जी एवं उनके सातों बालकों का नामोल्लेख हुआ है। गोसाईं जी के सप्तम पुत्र घनश्याम जी का जन्म सं० १६२८ निश्चित है।। बसंत खेलते समय उनकी आयु कम से कम १० वर्ष की मानी जाय, तो सं० १६३८ तक सूरदास की उपस्थिति सिद्ध होती है।

अब सूरदास कृत निम्न रचना के कारण उनकी उपस्थिति सं० १६४० के लगभग मानी जा सकती है—

भोजन भयौ भाँवतो मोहन। तातौ ई जेय जाहुगे गोहन॥
खीर खाँड़ खीचरी सँवारी। मधुर महेर अरु गोपिन प्यारी॥
राय भोग लीनों भात पसाय। मूंग ढरहरी हींगु लगाय॥
सद माखन तुलसी दै छायौ। घृत सुवास कचौरनि नायौ॥
पापर बरी अचार परम रुचि। अद्रक अरु निबुअनि ह्वै है रुचि॥

× × ×

'सूरदास' देखौ गिरिधारी। बोलि दई हँसि झूँठनि थारी॥
वह जेंवनार सुनै जो गावै। सो निज भक्ति अभय पद पावै॥

। श्री बल्लभ वंशवृक्ष

उपर्युक्त रचना में 'राजभोग' मे छप्पन भोग' की भावना की गयी है। सांप्रदायिक इतिहास के अनुसार इस का समय स० १६४० वि० है। उस वर्ष मे गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने श्री नवनीतप्रिय जी की प्रधानता मे सब निधि स्वरूपों को एकत्रित कर गोकुल मे राजभोग करते हुए छप्पन भोग की भावना मात्र की थी।

छप्पन भोग की भावना करने का कारण यह था कि जब सं० १६१५ मे गुसाईं जी ने श्रीनाथ जी का छप्पन भोग किया था, तब उन्होंने अपने स्थायी निवास अड़ैल स्थित श्री नवनीतप्रिय जी का भी छप्पन भोग करने का निश्चय किया था, किंतु कई असुविधाओं के कारण उनकी मनोभिलाषा तत्काल पूर्ण न हो सकी। स० १६१५ के अनतर गुसाईं जी जगदीश और गौड देश की यात्रा को चले गये। वहाँ से वापिस आने पर स० १६१६ में उनकी प्रथम पत्नी रुक्मिणी जी का देहावसान हो गया। इसके पश्चात् वे गढा और गढा से मथुरा होकर गोकुल आये, किंतु उनको फिर सं० १६२२ मे मथुरा मे रहना पडा। स० १६२३ मे वे गुजरात की यात्रा करने गये। इसके बाद स० १६२८ मे वे स्थायी रूप से गोकुल मे रहने लगे, किंतु पुत्रो के यज्ञोपवीत, पुत्र-पुत्रियो के विवाह और सभी बालको के पृथक् पृथक् निवास स्थान बनवाने मे उनको यथेष्ट व्यय करना पडा। इसी बीच मे उनको दो बार द्वारिका जैसे सुदूर प्रदेश की यात्रा भी करनी पडी। स० १६३८ के पश्चात् उन्होंने अपने सातो पुत्रो का बँटवारा कर दिया। इस प्रकार गृहस्थ के कार्यों से निश्चिंत होकर और अपना अतिम समय निकट जान कर गुसाईं जी ने अपना पूर्व मनोरथ पूर्ण करने विचार किया, किंतु उस समय उन पर कुछ ऋण भी हो गया था, अतः वे अपनी इच्छानुसार छप्पन भोग की सांगोपांग पूर्ति नही कर सकते थे, इसलिये उन्होंने श्री नवनीतप्रिय जी की प्रधानता मे सब निधि-स्वरूपो को एकत्रित कर राजभोग मे ही छप्पन भोग की भावना द्वारा अपने पूर्व मनोरथ की पूर्ति की थी। यदि उस उत्सव को छप्पन भोग की प्रणाली से यथावत् किया जाता, तो उसमे द्वादश मास के सभी उत्सवों का करना भी आवश्यक हो जाता, जो कि उस समय की स्थिति के अनुसार सभव नही था, अतः गुसाईं जी ने सब प्रकार की सामिग्री राजभोग मे 'अरोगा' कर छप्पन भोग की भावना मात्र की थी। सूरदास ने इसीलिए इस मनोरथ को छप्पन भोग का नाम न देकर 'जेंवनार' कहा है, जब कि माणिकचंद, भगवानदास आदि गोसाईं जी के अन्य सेवकों ने अपने-अपने पदो में इसे छप्पन भोग ही कहा है।

उक्त पद के 'सूरदास देख्यौ गिरधारी' वाला कथन श्री नवनीतप्रिय जी के निकट भावना मे पधराये हुए श्रीनाथ जी के स्वरूप का सूचक है। इससे 'भावना' वाले कथन की भी पुष्टि होती है। इस उल्लेख के कारण सूरदास जी की उपस्थिति सं० १६४० के आस-पास सिद्ध हो जाती है। चतुर्भुजदास कथित 'खट ऋतु की वार्ता‡' मे भी श्रीनाथ जी के साथ सातो स्वरूपों के प्रथम अन्नकूट का जो उल्लेख हुआ है, उसका समय भी सं० १६४० ही आता है। उस अवसर पर सूरदास जी की उपस्थिति का भी उल्लेख हुआ है, अतः इससे भी सूरदास की उपस्थिति स० १६४० तक मानी जा सकती है।

इस प्रकार अंत.साक्ष्य एवं वाह्यसाक्ष्यों से सूरदास का उपस्थिति-काल स० १६४० पर्यंत सिद्ध होता है।

देहावसान—

अपना अंतिम समय निकट जान कर एक दिन सूरदास श्रीनाथ जी की मंगला-आरती कर परासोली चले गये। वहाँ पर पहुँच कर श्रीनाथ जी के मंदिर की ध्वजा को साष्टांग प्रणाम कर वे उसके सन्मुख मुख कर एक चबूतरे पर लेट गये। अंत मे सब ओर से चित्त की वृत्ति को हटाकर वे श्रीनाथ जी एव गुसाईं जी का ध्यान करते हुए अपने अंतिम समय की प्रतीक्षा करने लगे।

उधर श्रीनाथ जी की शृंगार-झाँकी के अवसर पर सूरदास को अनुपस्थित देख कर गुसाईं विट्ठलनाथ जी को उनके विषय मे शंका हुई। सूरदास का यह नियम था कि वे श्रीनाथ जी के शृंगार के समय प्रति दिन जगमोहन मे उपस्थित होकर कीर्तन किया करते थे। गुसाईं जी के सेवको ने उनको बतलाया कि आज प्रात काल की मंगला आरती के दर्शन कर और समस्त वैष्णवो को भगवत्-स्मरण कराकर सूरदास परासोली चले गये हैं। सूरदास का अंतिम समय निकट जान कर गुसाईं जी ने समस्त वैष्णवो से कहा—"सूरदास पुष्टि मार्ग के जहाज है। अब उनके जाने का समय आ गया है। आप सब लोग उनके पास जाओ, और उनसे जो लेना हो, सो लेलो। हम भी श्रीनाथ जी के राजभोग की आरती के उपरांत वहीं पर आते है।"

यह सुन कर गोसाईं जी के सेवक परासोली गये। उन्होंने वहाँ पर सूरदास को अचेतावस्था मे पाया। कुछ समय पश्चात् गुसाईं विट्ठलनाथ भी वहाँ पर पहुँच गये। उनके साथ रामदास, कुंभनदास, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास आदि कई वैष्णव भी थे।

‡ संदेश प्रेस, अहमदाबाद से प्रकाशित (पृ० ५३)

गोसाईं जी ने सूरदास का हाथ पकड़ कर कहा—" सूरदास जी ! क्या हाल है ? " गोसाईं जी के शब्द सुन कर सूरदास ने तत्काल नेत्र खोल दिए और दंडवत करते हुए उनसे कहा—" महाराज ! आप आ गये । मै तो आपकी प्रतीक्षा ही कर रहा था । आपने बड़ी कृपा की । '

इसके अनंतर कुछ भगवत्-चर्चा करते हुए उन्होने निम्न लिखित पद कह कर अपना भौतिक शरीर छोड़ दिया—

खंजन नैन रूप-रस माते ।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते ॥
चलि-चलि जात निकट स्रवनन के, उलटि-पलटि ताटंक फँदाते ।
'सूरदास' अंजन-गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते ॥

सूरदास के देहावसान की निश्चित तिथि का कहीं पर उल्लेख नही मिलता है । हमारे अनुमान से उनका देहावसान सं० १६४० के लगभग हुआ था । पुष्टि संप्रदाय के कुछ विद्वान और हिंदी साहित्य के अनेक लेखकों ने उनके देहावसान का संवत् १६२० लिखा है, किंतु उनका यह मत भ्रमात्मक है ।

गत पृष्ठो मे हम सूरदास की उपस्थिति सं० १६४० पर्यंत सिद्ध कर चुके है । ऐसी दशा मे सं० १६२० मे उनका देहावसान होना सर्वथा असंभव है । वार्ता के उल्लेखानुसार सूरदास का देहावसान गोसाईं विट्ठलनाथ जी की उपस्थिति मे हुआ था । साम्प्रदायिक इतिहास से सिद्ध है कि सं० १६१६ से १६२१ तक गोसाईं जी ब्रज मे उपस्थित नही थे । सं० १६२० मे वे रानी दुर्गावती की राजधानी गढ़ा मे थे । ऐसी दशा में सं० १६२० मे सूरदास का देहांत परासोली मे गो० विट्ठलदास की उपस्थिति मे कैसे संभव हो सकता है !

गो० विट्ठलनाथ जी के देहावसान का सं० १६४२ निश्चित है । इसके साथ ही सं० १६३८ के पश्चात् तक हम सूरदास की उपस्थिति प्रमाणित कर चुके है । ऐसी दशा मे उनके देहावसान का समय सं० १६३८ से १६४२ के बीच मे होना चाहिए ।

'अष्टसखान की वार्ता' प्रसंग १० मे श्री हरिराय जी ने बतलाया है जिस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण अपने भक्त यदुवंशियो का संसार से तिरोधान कराकर आप वैकुंठ मे पधारे, इसी प्रकार श्री आचार्य जी महाप्रभु अंतर्ध्यान हो गये और गुसाईं जी को अभी होना शेष है । श्री गोसाईं जी भगवदीय जनों को नित्य लीला में स्थापित करने के अनंतर ही पधारेंगे ।

इस उल्लेख से सिद्ध है कि गोसाईं विट्ठलनाथ जी के निधन से कुछ समय पूर्व ही सूरदास का देहावसान हुआ होगा। गोसाईं जी का निधन काल सं० १६४२ निश्चित है, अतः सूरदास का देहावसान सं० १६४० के लगभग सिद्ध होता है। गत पृष्ठों मे बतलाए हुए उनके उपस्थिति काल से भी इस संवत् की संगति बैठती है, अतः सूरदास का निधन संवत् १६४० प्रमाणित होता है।

तृतीय परिच्छेद

ग्रंथ-निर्णय



सूरदास के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथ—

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट, प्राचीन पुस्तकालयों के अनुसंधान और आधुनिक विद्वानो के कथनो के अनुसार सूरदास के नाम से अधिक से अधिक निम्न लिखित ग्रंथ प्रसिद्ध है—

१ सूरसारावली,	२ साहित्यलहरी,	३ सूरसागर,
४. भागवत भाषा,	५ दशमस्कंध भाषा	६. सूरसागर-सार,
७. सूर रामायण,	८. मान लीला,	६. राधारसकेलिकौतूहल
१० गोवर्धन लीला (सरस लीला)		११. दान लीला,
१२ भँवरगीत,	१३. नाग लीला,	१४. ब्याहलो,
१५. प्राणप्यारी,	१६. दृष्टिकूट के पद,	१७ सूरशतक,
१८ सूरसाठी,	१९. सूरपचीसी	२०. सेवाफल,
२१. सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद,		२२. हरिवंश टीका(संस्कृत)
२३ एकादशी माहात्म्य,	२४ नलदमयती,	२५ रामजन्म

इन ग्रंथो के अतिरिक्त कांकरौली सरस्वती भंडार मे ,सूरदास कृत स्वरूप-वर्णन, चरण चिन्ह वर्णन और दो बारहमासी भी मिलती है, जिन्हे हम स्फुट पदों के अंतर्गत मान लेते है।

उपर्युक्त पच्चीस ग्रंथो मे संख्या २२ से २५ तक की रचनाएँ निश्चित रूप से अष्टछाप के कवि सूरदास कृत नही है। संख्या १ से २१ तक की रचनाएँ हमारे सूरदास की ही है। सं० २२ से २५ तक की रचनाओ को हम निम्न-लिखित कारणों से प्रक्षिप्त मानते हैं—

२२ हरिवंशटीका—यह एक संस्कृत रचना है। नाम से ज्ञात होता है कि यह हरिवंश पुराण की टीका होगी। "कैटेलोगस कैटेलोग्रम" मे इसका सूरदास कृत होना लिखा है।

हमारे सूरदास ने संस्कृत में भी कोई रचना की थी ऐसा किसी भी सूत्र से आज तक ज्ञात नही हो सका है। प्रत्युत् उन्होने श्रीमद्भागवत आदि संस्कृत

ग्रंथो को भाषा मे ही गाया है। इससे यह संस्कृत टीका किसी अन्य सूरदास, संभवतः बिल्वमंगल सूरदास, की रचना हो सकती है।

२३. एकादशी माहात्म्य—इसका उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की १९१७-१९ ई० की खोज-रिपोर्ट नं० १८७ (बी) मे हुआ है। इसके प्रारंभ मे गणेश, शारदा और अन्य देवो की वंदना प्राप्त है। फिर राजा हरिश्चंद्र की प्रशंसा और एकादशी माहात्म्य संबंधी अन्य कथाएँ है। यह सारा ग्रंथ अवधी भाषा मे दोहा-चौपाई छंदो मे लिखा हुआ है।

भाषा और सांप्रदायिक सिद्धांतो के आधार पर यह रचना अष्टछाप के सूरदास की सर्वथा नहीं हो सकती। सूरदास प्रारंभ से ही व्रजभाषा मे रचना करते थे, अतः यह ग्रंथ भी किसी अन्य सूरदास का होना चाहिए।

२४. नल-दमयन्ती—इस ग्रंथ का उल्लेख सर्व प्रथम बाबू राधाकृष्ण दास ने सूर की जीवनी मे किया है। उसी के आधार पर मिश्रबंधु आदि हिंदी के सभी लेखको ने इसको संदिग्ध रूप से सूरदास कृत माना है। अष्टछाप के सूरदास ने कभी मानव-काव्य भी रचा था, ऐसा किसी सूत्र से ज्ञात नही होता, अतः इसे भी हम प्रक्षिप्त मानते है।

डा० मोतीचंद एम० ए०, पी० एच० डी० ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे कवि सूरदास कृत 'नलदमन' काव्य पर एक लेख लिखा था। यह प्रेम-काव्य ग्रंथ उनको बंबई के 'प्रिंस औफ वेल्स म्युज़ियम" मे मिला था। इसके कर्ता सूरदास ने इस ग्रंथ के अंत मे अपना वंश परिचय भी दिया है। इसके अनुसार वे गुरदासपुर जिला कलानौर के कम्बू गोत्र के किसी गोवर्धनदास के पुत्र थे। इस रचना का संवत् १७१४ वि० है।

यदि यह "नलदमन" काव्य उक्त "नल-दमयन्ती" ग्रंथ ही है, तो इसका अष्टछाप के सूरदास कृत न होना विशेष स्पष्ट हो जाता है।

२५. रामजन्म—काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट सन् १९१७-१९ ई० नं० १८७ (ए) मैं इसे भी सूरदास कृत लिखा गया है। ग्रंथ मे गणपति, राम आदि की वंदना की गयी है, जिससे इसका अष्टछाप के सूरदास कृत होना नहीं माना जा सकता, अतः यह भी किसी अन्य सूरदास का ही सिद्ध होता है। डा० दीनदयालु गुप्त के मतानुसार एकादशी माहात्म्य और रामजन्म का कर्ता एक हो सकता है।

उपर्युक्त कारणों से ये चारो ग्र थ अष्टछाप के सूरदास कृत नही है, इसलिए हिंदी इतिहासकारो को अब सूरदास के नाम पर बतलाये जाने वाले ग्र थो मे से इन्हे निकाल देना चाहिए।

हमारी राय मे सूरदास की प्रामाणिक रचनाएँ ये है—

१. सूरसारावली

२ साहित्यलहरी

३. सूरसागर (भागवत भाषा, दशमस्कध भाषा, सूरसागर-सार, सूर रामायण. मानलीला, राधारसकेलिकौतुहल, गोवर्धनलीला (सरसलीला) दानलीला, भँवरगीत, नागलीला, ब्याहलो, प्राणप्यारी, दृष्टकूट के पद, सूरशतक—ये रचनाएँ सूरसागर के ही अश है, अतः इनको हम स्वतत्र नहीं मानते है।)

४ सूरसाठी

५. सूरपच्चीसी

६. सेवाफल

७ सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद।

इस प्रकार हमारे मतानुसार सूरदास की स्वतंत्र एव प्रामाणिक रचनाएँ सात हैं। इनमे सबसे प्रथम सूरसारावली की प्रामाणिकता पर विचार किया जाता है।

१. सूरसारावली—यह ग्रंथ बंबई और लखनऊ से प्रकाशित सूरसागर के सस्करणो के प्रारभ मे दिया हुआ है। इसमे ११०७ तुक है। इसके प्रारंभ मे सग्रहकार ने इस प्रकार लिखा है—

"अथ श्रीसूरदास जी कृत सूरसागर सारावली"।।"तथा सवा लच पदों का सूचीपत्र ।।"

उक्त उल्लेख का आधार शायद सारावली की ११०३ वाली यह तुक ज्ञात होती है—

श्रीबल्लभ गुरू तत्त्व सुनायौ लीला भेद बतायौ।
ता दिन तं हरि लीला गाई एक लच पद बंद।
ताकौ सार 'सूर' सारावलि गावत अति आनद।। ११०३

हिंदी के प्रायः सभी विद्वानों ने भी "एक लच पद बद" का एक लाख पद अर्थ करते हुए सारावली को एक लच पद वाले सूरसागर का सार रूप मानकर इसे सूरदास की ही रचना स्वीकार की है।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपनी "सूरदास" थीसिस मे इस सारावली पर विशेष रूप से विचार किया है। उन्होने "एक लच्छ पद बंद" का अर्थ एक लाख पद मान कर ही 'सारावली के इस दावे को' गलत सिद्ध करने की चेष्टा की है। उन्हाने सूरसागर और सारावली का विश्लेषण करते हुए इन दोनो रचनाओ के बीच २७ अतर स्थापित किये है। अत मे दोनो रचनाओ का कर्ता एक नही हो सकता, इस प्रकार का अपना अभिमत प्रकट किया है। उन्होने लिखा है—

"उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से 'सूरसागर-सारावली' सूरदास की प्रामाणिक रचना नही जान पडती। तथा कथित आत्म-कथन और कविछापो से भी यही सकेत मिलता है†।"

यदि हम सारावली को सवालाख पदो का सूचीपत्र माने, जैसा प्राय. सभी विद्वान मानते आये है, तो नि.सदेह डा० वर्मा के स्थापित किये हुए उक्त २७ अतर बडे महत्त्वपूर्ण और विचारणीय कहे जा सकते है, किंतु सारावली का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन करने पर हम निःसकोच रूप से कह सकते है कि यह लाख या सवालाख पदो का सूचीपत्रात्मक सार रूप नही है और न सारावली का भी यह दावा है! फिर भी 'कथा वस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से" निश्चय ही यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसके "आत्मकथन और कवि छापो से भी" इसी बात की पुष्टि होती है जिसका हम अगले पृष्ठो मे विस्तृत विवेचन कर रहे है।

सारावली को सूरदास के लाख या सवा लाख पदो का सूचीपत्र न मानने का निम्न-लिखित कारण है—

मूल वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास ने "सहस्रावधि" पद किये थे। "सहस्रावधि" के दो अर्थ हो सकते है—एक "सहस्र है जिसकी अवधि" और दूसरा सहस्रो की अवधि। प्रथम अर्थ से केवल ९९९ पदों तक का ही सूचन होता है और दूसरे अर्थ से ९९९९९ पदो तक का सूचन होता है। सूरदास की रचनाओ को देखते हुए दूसरा अर्थ स्वीकार करना ही अधिक समीचीन जान पडता है, जिसका वर्णन अगले पृष्ठो मे किया जा रहा है।

† सूरदास, पृष्ठ ८३

इन्हीं अर्थों को लेकर भावप्रकाश वाली वार्ता मे 'सहस्रावधि' और 'लक्षावधि'† ऐसे दोनो शब्दो का प्रयोग मिलता है। वार्ता प्रसग १० मे कहा गया है कि सूरदास अपने अतिम समय तक एक लक्ष पदो की रचना कर सके थे। शेष २५ हजार पद सूरश्याम की छाप से श्रीनाथ जी ने किये थे।

अब यदि हम सारावली के "एक लक्ष पद बद" का अर्थ एक लाख पद करते हुए उनके सार रूप से इसकी रचना की हुई माने तो यह सूरदास के अतिम समय की रचना सिद्ध होती है। उस समय सूरदास प्राय १०५ वर्ष के थे सारावली के "गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन' वाले कथन मे यह स्पष्ट है कि सूरदास ने इसकी रचना अपने ६७ वे वर्ष मे की थी। यदि हम इस सरसठ वर्ष को सूरदास के जन्म सवत से जोडते है तो इसकी रचना का सवत् १६०२ वि० आता है। इसी प्रकार यदि हम इसको सूरदास के सप्रदाय प्रवेश से ६७ वे वर्ष मे रची हुई माने तो इसका सवत आता है १६३४ वि०। इन दोनो मे से किसी भी सवत को स्वीकार किया जाय तब भी "एक लक्ष पद बद" का एक लाख पद वाला अर्थ इसमे सगत नही हो सकता है; क्यो कि सूरदास के लाख पदो का समाप्ति-काल वि० सं० १६४० मे आता है।

सारावली का रचना-काल वि० सं० १६३४ की अपेक्षा वि० सं० १६०२ मानना अधिक प्रशस्त एव प्रामाणिक होगा। वि० स० १६३४ इस लिये विरुद्ध और अप्रामाणिक कहा जायगा कि सारावली की 'सरस सवत्सर लीलाओं" मे वल्लभ सप्रदाय के वि० सं० १६१५ के पश्चात् निर्मित उत्सवो के सूरदास रचित पदो का सकेत भी नही मिलता है, यथा—रथ यात्रा, छप्पनभोग आदि के वर्णन। जैसा पहले कहा जा चुका है इन उत्सवो का निर्माण वि० स० १६१५ के पश्चात् गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी ने किया था।

वि० सं० १६०२ मे सारावली का निर्माण मानना अधिक प्रशस्त एव प्रामाणिक इसलिए है कि संप्रदाय की सेवा-प्रणाली का व्यवस्थित और

† "तैसे ही सूरदास ने सहस्रावधि पद किये है।" (प्रसंग ३)
"और सूरदास जी ने श्रीठाकुर जी के लक्षावधि पद किये है।" (प्रसग ११)
(अग्रवाल प्रेस से प्रकाशित भावनावाली ८४ वार्ता मे सूरदास की वार्ता)

विस्तृत निर्माण वि० सं० १६०२ मे गो० श्री विट्ठलनाथ जी ने सर्व प्रथम किया था, जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है। इससे सम्प्रदाय की सेवा मे नवीनता और अद्भुतता आई, जिसका स्पष्टीकरण सारावली के अनन्तर ही लिखे हुए 'सेवाफल" मे सूरदास ने इस प्रकार किया है—

'सेवा की यह अद्भुत रीति, श्रीविट्ठलेश सो राखे प्रीत"

इस अद्भुतता का कारण सेवा मे निकुंज-लीला का क्रियात्मक विस्तार है। गो० श्री विट्ठलनाथ जी के पूर्व तक सेवा में केवल बाल-भावना का क्रियात्मक विस्तार हुआ था। इसीलिए बल्लभ-सम्प्रदाय मे गो० श्री विट्ठलनाथ जी के पूर्व माधुर्य भक्ति का अभाव था, इस प्रकार का मत लोक मे प्रसिद्ध हुआ है। किंतु श्रीमद् बल्लभाचार्य जी ने जिस माधुर्य-भक्ति को अपने ग्रंथो मे व्यक्त किया था, उसी को श्री विट्ठलनाथ जी ने सेवा मे क्रियात्मक रूप से उपस्थित किया, जिसके फल स्वरूप सम्प्रदाय मे निकुंज-भावना तादृश हुई। इसी से सूरदास ने प्रभावित होकर सेवा की अद्भुतता और "गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन" आदि कथन किया है। जिन निकुंज के दर्शनो की सूरदास अभिलाषा करते थे, वे उनको अपनी ६७ वर्ष की अवस्था मे तादृश हुए थे। वे महाप्रभु बल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी मे कोई भेद नही समझते थे।[‡] इसलिए यहाँ भी उन्होने"गुरु-प्रसाद होत यह दरसन" इस प्रकार का कथन किया है और उनका निकुंज लीला के साथ ही वर्णन किया है।

गो० श्री विट्ठलनाथ जी ने इन्ही निकुंजादि की माधुर्य भावनाओ को अपने 'शृंगाररस मंडन' तथा 'निकुंज विलास' आदि ग्रंथो मे स्पष्ट किया है। इस प्रकार वि० सं० १६०२ मे ही सारावली की रचना होना सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सारावली सूरदास के सवालाख अथवा लाख पदो का सूचीपत्र नही है। जब यह बात निश्चित हो गयी कि यह लाख या सवालाख पदो का सूचीपत्र नहीं है, तब डा० ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा स्थापित २७ अंतर एक प्रकार से निरर्थक हो जाते है।

‡ "भरोसौ दृढ इन चरनन केरौ।"—इस पद मे 'इन चरनन" शब्द अपने सन्मुख उपस्थित हुए श्री विट्ठलनाथ जी के चरणों का बोध कराने वाले है। इससे श्री बल्लभाचार्य जी और गो० श्री विट्ठलनाथ जी के प्रति सूरदास की समान भक्ति ज्ञात होती है।

अब यह प्रश्न उठता है कि जब सारावली सूरसागर का सूचीपत्र रूप नहीं है तो 'ताकौ सार सूरसारावली' का अर्थ क्या हो सकता है? सारावली के गंभीर और सांगोपांग अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते है कि यहां 'सार' का अभिप्राय 'सैद्धांतिक तत्व रूप' से है, अर्थात् सूरदास ने जिन कथात्मक और सेवात्मक हरिलीलाओ का वर्णन सं० १६०१ तक किया था, उन्हीं के सैद्धांतिक तत्व रूप से उन्होने सारावली की रचना की है। जैसे नंददास जी ने रासपंचाध्याई के कथात्मक वर्णन के अनंतर उसी के सैद्धांतिक-सार रूप से 'सिद्धांतपंचाध्याई' की रचना की है। इस दृष्टि से ही हम डा० ब्रजेश्वर वर्मा के उन २७ अंतरो से सहमत हो सकते है और उन्ही के शब्दो मे कहेंगे कि—

"सारावली सूरसागर के पदो का सूचीपत्र नहीं है। यह एक स्वतंत्र रचना है, जिसकी कथावस्तु मे सूरसागर की कथावस्तु से घनिष्ठ साम्य होते हुए भी उसे निश्चित सूरसागर का संक्षेप भी नही कह सकते* ।"

फिर भी यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। सारावली की प्रामाणिकता और हमारे सैद्धांतिक तत्व वाले कथन की पुष्टि आगामी विस्तृत विवेचन से स्पष्ट हो जायगी।

सब से प्रथम यहाँ आंतर उल्लेखो एवं कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण से सारावली का परिचय और उसकी प्रामाणिकता को हम स्पष्ट करेंगे। सारावली पर विचार करने के लिए सब से प्रथम उसके निम्न लिखित उल्लेख द्रष्टव्य है —

करम योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायौ।
श्रीबल्लभ गुरु तत्व सुनायौ लीला-भेद बतायौ ॥ ११०२ ॥
ता दिन ते हरि-लीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताकौ सार 'सूर-सारावलि' गावत अति आनंद ॥ ११०३ ॥
सरस संबतसर लीला गावै युगल चरन चित लावै।
गरभवास बंदीखाने मे 'सूर' बहुर नहि आवै ॥ ११०७ ॥
गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।
सिव विधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नही लीन ॥१००२॥

* सूरदास, पृ० ७०

इन तुकों में ये बातें प्रकट होती हैं—

(१) सारावली के कर्ता सूरदास हैं।

(२) सूरदास प्रारम्भ में कर्मयोग, ज्ञान, उपासना आदि में विश्वास करते थे, किंतु श्रीवल्लभ गुरु ने जब उनको तत्व सुनाकर लीला-भेद दिखाया (समझाया), तब सूरदास को कर्मयोग आदि के अपने पूर्व विश्वास भ्रम रूप ज्ञात होने लगे और तभी से उन्होंने उन लीलाओं को एक 'लक्ष' स्वरूप श्रीकृष्ण की पद वंदना करते हुए गाया है, जिसका सार-सिद्धांत तत्वरूप—यह 'सारावली' है।

(३) सारावली की लीला के दर्शन सूरदास को अपनी ६७ वर्ष की वय में गुरुप्रसाद से हुए थे। उस समय सूरदास सम्प्रदाय के तत्व और लीला ज्ञान में 'प्रवीन' हो चुके थे। सारावली में कही हुई लीला का अनुभव शिवजी को भी अनेक विधि पूर्वक बहुत दिन तक तप करने से भी नहीं हुआ था।

(४) सारावली की सरस संवत्सर की लीला को जो कोई युगल चरणों में चित्त स्थापित कर गावेगा, वह गर्भवास बंदीखाने में फिर कभी नहीं आवेगा।

उक्त चार बातों की पुष्टि सूरदास के अन्य अंतःसाक्ष्य आदि से करना आवश्यक है। जब ये बातें पुष्ट हो जायगी, तब सारावली पर विशेष विचार करना सुगम होगा।

१—कर्ता—सारावली के कर्ता सूरदास थे, इस बात का ज्ञान जिस प्रकार सारावली में प्राप्त सूर, सूरज आदि उपलब्ध छापों से होता है, उसी प्रकार उसकी भाषा आदि से भी होता है। सारावली की भाषा सूरदास के सूरसागर और उनके अन्य पदों की भाषा से इस प्रकार मिलती है—

(कृष्ण-जन्म)

सारावली— आठें बुद्ध रोहिनी आई' संख चक्र वपु धार्यौ।
कुंडल लसत 'किरीट' महा धुनि वपु वसुदेव निहार्यौ। ३६५।
'पीतांबर' अरु श्याम जलद वपु निरखि सुफल दिन लेख्यौ।
अस्तुति करी बहुत नाना बिधि रूप चतुर्भुज देख्यौ।३६६।
तब हरि कहेउ जन्म तुम्हरे गृह 'तीन बार' हम लीनों।
पृश्नी-गर्भ देव ब्राह्मण जो कृष्ण रूप रंग कीनो।३६७।

'मांग्यौ सकल' मनोरथ अपने मन वांछित फल पायौ।
'सख चक्र गदा पद्म' 'चतुर्भुज' 'अजन जन्म' लै आयौ।३६८।

प्राकृत रूप धर्‌यौ हरि छनमे 'सिसु ह्वै रोवन लागे'।
तब देवकी दीन ह्वै भाख्यौ नृप को नांहि पतीजै।
'अहो वसुदेव जाव लै गोकुल' कह्यौ हमारौ कीजै।३७१।

उक्त पंक्तियो का मिलान सूरसागर की 'बालविनोद भांवती लीला'† के पद से करने पर उनकी भाषा आदि का इस प्रकार साम्य दिखलायी देता है—

कीर्तन — 'बुध रोहिनी अष्टमी' सगम वसुदेव निकट बुलाये हो।
सकल लोकनायक सुखदायक 'अजन जन्म' धरि आये हो॥
माथे 'मुकुट' सुभग 'पीतांबर' उर सोहत भृगु रेखा हो।
'सख चक्र भुज चारि विराजत' अति प्रताप सिसु भेखा हो॥
सुनो देव एक 'आन जनम' की तुमसो कथा चलाऊ हो।
तुम 'मांग्यौ मै दयौ नाथ ह्वै तुमसो बालक पाऊ हो॥
यह कहि माया मोह अरुझाये 'सिसु ह्वै रोवन लागे हो'।
'अहो वसुदेव जाउ लै गोकुल' तुम हो परम सभागे हो॥

दोनो ग्रथो की उपर्युक्त पक्तियो के अतिरिक्त अन्य पक्तियाँ भी देखिये—

सारावली— 'सेष सहस फन ऊपर छाये' घन की बूँद बचावै हो।
आगे 'सिंह हुंकारत' आवत निर्भय बाट जनावै हो॥
'यमुना अति जलपूर' बहत है, 'चरन कमल परसायौ'।

कीर्तन— आगे 'जानु जमुन जल बूडौ' पाछे 'सिंह दहाडे' हो।
'चरन पसारि परसि कालिंदी' तरवा नीर ते आगे हो॥
'सेष सहस फन ऊपर छायौ' गोकुल को अति भागे हो।

सारावली— 'पहुँचे आय महरि मदिर मे' 'नैक न सका कीन्ही'।
कीर्तन— 'पहुँचे जाय महरि मंदिर मे' मनहिं 'न संका कीन्हीं हो'।
सारावली— 'यह कन्या मोहि बकसि बीरजू' कीजे मो मन भायौ हो।
कीर्तन— 'यह कन्या मोहि बकसि बधु तू' दासी जानिकर दीन्ही हो।

† सूरसागर, बधाई, पृ० १७४

सारावली— 'कंस बंस कौ नास करत है' कहा समुझ री सयानी ।
कीर्तन— 'क्रूर कंस मम बंस बिनासन' समुझे बिना रिस कीन्ही हो ।

सारावली— 'पटकत सिला गई आकासै' कंस प्रतीति न मानी ।
भई 'अकास बानी' 'सुरदेवी' कंस यहाँ अब आई ॥
'तेरौ सत्रु प्रगट कहुँ ब्रज मे' 'काहु लख्यौ नही जाई' ।
'जैसे मीन करत जल क्रीडा' 'जल मे रहत समाई' ॥

कीर्तन— 'पकरत कन्या गई अकासहि' दोउ भुज चरन लगाई हो ।
'गगन गई बोली सुरदेवी' कंस मृत्यु नियराई हो ॥
'जैसे मीन जाल मे क्रीडत' गनै न आपु लखाई हो ।
'तैसोई कंस काल ढूक्यौ है' 'ब्रज में जादौराई हो' ॥

सारावली— क्षम अपराध देवकी मेरौ, 'लिख्यौ न मेट्यौ जाई' ।
मै 'अपराध किये सिसु मारे' कर जोरे बिलखाई ॥
पुनि गृह आय 'सेज पर सोयौ' 'नैक नीद नहिं' आवै ।
'देस देस के दूत बुलाये' 'सबहिंन मतौ सुनावै' ॥

कीर्तन— 'बहु अपराध करे सिसु मारे' 'लिख्यौ न मेटयौ जाई हो' ।
'चारि पहर सुख सेज पर निस' 'नैक हू नींद नहि आई हो'॥
'देस देस के दूत बुलाये' 'कासो है छल कैसौ हो' ।

इसी प्रकार कृष्ण जन्म के इस वर्णन के कई शब्द भी सूरदास के अन्य कीर्तनो मे ज्यो के त्यो प्राप्त होते है, जैसा कि "खड्ग", "कन्या" आदि । इस प्रकार इस वर्णन मे भाषा, शब्द, भाव, वर्णन पद्धति आदि सबका साम्य प्राप्त होता है ।

(ब्रज वर्णन)

सारावली— 'नंदराय घर ढोटा जायौ महर महा सुख पायौ' ।
विप्र बुलाय बेद विधि कीन्हीं, स्वस्ति वचन पढायौ ॥
जाति कर्म पूजि 'पितरु सुर 'पूजन' विप्र करायौ ।
'दोय लख धेनु दई तिहिं ओसर' बहुतहिं दान दिवायौ ॥

इन पंक्तियो मे 'विप्र बुलाय पितर पूजन' आदि के तथा 'दान' आदि की जो वर्णन पद्धति प्राप्त होती है, वही वर्णन पद्धति सूरदास कृत जन्माष्टमी की बधाई के अन्य पदो में भी मिलती है, जैसा कि—

"नांदीमुख 'पितर पूजय' अतर सोच हरे ।'
"गनगैया गिनी न जाय" · "ते दीनी द्विजन अनेक।" इत्यादि*
"महरि जसोदा ढोटा जायौ ।' इत्यादि†
"दई सुबच्छ लच्छ द्वै गैया नद बढायौ त्याग¶ ।"

(ढाढ़ी)

सारावली— 'निज कुल' 'वृद्ध जानि' 'एक ढाढी गोवर्धन ते आयो । ४०६
कीर्तन— नद जू मेरे मन आनद भयौ सुनि 'गोवर्धन ते आयो' ।
हौं तो 'तुम्हारे घर को ढाढी' सूरदास मेरो नाउँ ।
सारावली— बहुत दान दिये 'उपनद जू' रतन कनक मणि हीर ।
'धरानद' धन बहुतहिं दीन्हों ज्यो बरखत धन नीर ॥
कुंडल कान कठ माला दै 'ध्रुवनद' अति सुख पायौ ।
सीधौ बहुत 'सुरसुरानदे' गाडा भरि पहुँचायौ ॥
'कर्मा धर्मानद कहत है बहुतहि दान दिवायौ ।
कीर्तन— महानद 'सुरसुरानद' नदनद सुख कीजै ।
'धरानद' 'ध्रुवनद' और 'उपनद' परम उपकारी ॥

वध)

सारावली— प्रथम पूतना कंस पठाई' अति 'सुदर वपु धारयऊ ।
'लीन्हे खैच प्रान विषमय युत' देह विकल तब कीनौ ॥
'योजन डेढ' विटप बेली सब चूर चूर कर डारे ।
कीर्तन— 'प्रथम कंस पूतना पठाई' ।
अति मोहिनी रूप धरि लीन्हे' ।
'पय सग प्राण ऐंच हरि लीन्हो' 'जोजन डेढ' गिरी मुरझाई ।
इत्यादि—

इसी प्रकार करवट, शकट, तृणावर्त और नामकरण आदि के पदो का भी मिलान करने पर वही शब्द, वही भाव, वही वर्णन पद्धति का साम्य दिखलायी देता है । करोटी, बूंढ बाबू आदि शब्द भी सूरदास के पदो मे मिलने है, जिनका डा० वर्मा ने नही मिलने का उल्लेख किया है‡ ।

* 'ब्रज भयौ महरि के पूत' इस पद की पक्तियाँ है ।
† 'हौं एक नई बात सुनि आई' इस पद की पंक्ति है ।
¶ 'आज अति बाढ्यो है अनुराग' (सूरसागर) इस पद की पक्ति है ।
‡ सूरदास, पृष्ठ ७६

(रामजन्म का वर्णन)

सारावली— "देत 'दान' नृपराज द्विजन को सुरभी हेम अपार ।
आये देव और 'मुनिजन' सब दे असीस सुख भारी ॥"

कीर्तन— आनंद आज नृपति दशरथ घर । ××
'ऋषि मुनि' वेद मधुर धुनि उपजत 'दान' विधान करत
एति औसर । ××

जिस प्रकार राम का भोजन विषयक वर्णन सारावली मे प्राप्त होता है, उसी प्रकार सूरदास के अन्य पदो मे भी मिलता है। जैसा कि—

(राम भोजन)

सारावली— " बैठे संग बाबा के 'चारो भैया जेवन लागे' ।
लघु लघु ग्रास राम मुख मेलत आपु 'पिता मुख मेलत' ॥ "१८९

कीर्तन— " जननि 'अपुने हाथ जिमावति' ।
'भोजन करत भ्रात एक थारी' लोचन लाल निरावत । "

(नरसिंह विषयक)

सारावली— 'निरगुण सगुण होय मैं देख्यो तोसो भक्त न पाऊं' ।
'सुन प्रह्लाद प्रतिज्ञा मेरी' तोको कबहुं न त्यागू ॥

कीर्तन— तौलो हौं वैकुंठ न जैहो ।
'सुन प्रह्लाद प्रतिज्ञा मेरी' जौलो तो सिर छत्र न देहो ।
'निर्गुण सगुण हेर सब देखे तोसो भक्त मै कबहू न पैहो'॥

(वामन विषयक)

सारावली— " करी 'वेद धुनि' नृप द्वार पै मनहु महा घन गाजै ।
'सुनि धायौ तबहिं बलिराजा' आय 'चरन सिर नायौ' ॥
'चलिये विप्र यज्ञ शाला मे' जहाँ द्विज वर सब राजै ।
'तब नृप कहेउ कछू' द्विज माँगो 'रत्नभूमि' मणिदान ॥
हय गज हेम रत्न पाटबर देहो प्रगट प्रमान ।
तब बोले वामन यह बानी सुन प्रहलाद कुल भूप ॥
'बहुत प्रतिग्रह लेत विप्र' जो 'जाय परत भव कूप' ।
'तीन पेड बसुधा हम पावे' 'पर्णकुटी' इक कारन ॥

'जब नृप भुव सकल्प कियौ है' लागे 'देह पसारन' ।
'एक पैड मे' वसुधा नापी 'एक पैड' सुरलोक ॥
'एक पैड दीजै बलिराजा' तब ह्वै हो बिन सोक ।
'नापो देह हमारी द्विजवर' सो 'सकलिपत कीनो' ॥

कीर्तन— राजा एक पडित पौरि तिहारी । × × ×
'सुनि धुनि बलिराजा उठि धाये' आहुति यज्ञ बिसारी ।
सकल रूप देख्यौ जू विप्र कौ 'कियो दडोत जुहारी' ॥ ३
चलिये विप्र जहाँ यज्ञ वेदी' बहुत करी मनुहारी ।
'जो मांगो सो' देहो तुरत ही हीरा 'रतन भडारी' ॥ ४
रहो रहो राजा अधिक न कहिये दोष लगत है भारी' ।
'तीन पैंड वसुधा मोहि दीजे' जहाँ रचो 'धर्म सारी' । ५ × × ×
ले 'उदक सकल्प जो कीनों' वामन 'देह पसारी' ॥ ७
जय जयकार भयौ भूमापत 'द्वय पैड भई' सारी ।
'एक पैड तुम देहु तुरत ही' कै वचनन सत हारी ॥ ८
सत नहीं छाँडौ सतगुरू मेरे 'नापो पीठ हमारी' ।

(होरी वर्णन)

होरी वर्णन मे एक मास की वर्णन की शैली का " कछु दिन ब्रज और रहो " इस पद से साम्य है ।

इस प्रकार सारावली की प्रत्येक लीला सूरसागर और सूरदास के अन्य पदो की भाषा, उनके भाव आदि से मिलती है, जिनके स्पष्टीकरण मे सैकडो पृष्ठ और चाहिये, इसलिए हम उस बृहद् अनुसधान के कार्य को अपने उत्साही पाठको के लिए ही छोड देते है । पाठक अवश्य ही उन सबका मिलान कर इस कथन की वास्तविकता की जॉच करेंगे, ऐसी हम आशा करते है ।

सारावली और सूर की अन्य रचनाओ मे प्राप्त कुछ विशिष्ट प्रकार के शब्दो का एक सा उल्लेख इस प्रकार है—

'सिंघद्वार', 'रतन चौक', 'सुनो सूर', 'अँकवार', फगुवा', 'मत्र'*, 'कोषि'‡

* बसत धमार के पदों मे ।

‡ बधाई के पदो मे ।

'कटकट*', 'सगुण निर्गुण‡', 'थापें‡', 'चोतनिया†', 'मनो', 'जन्म पत्रिका', 'झगुलिया†', 'अकवार', 'अशरण शरण', 'बकम', 'आनकदुद्भि', 'अधाधुंध‡', 'नाथ', 'रिगनलीला' इत्यादि ।

इनसे भी सारावली के कर्ता सूरदास है, इस बात की पुष्टि होती है ।

उक्त कथन का विशेष समर्थन आगे के प्रमाणो से और होगा, अतः इस बात को हम यही पर समाप्त करते है ।

२-आत्म वृतांत —

(अ) सूरदास श्री बल्लभ गुरू के शरण में आने से पूर्व 'कर्म ज्ञानादि मे विश्वास करते थे ।

(ब) किंतु जब श्री बल्लभ गुरू ने उनको तत्त्व सुना कर लीला भेद को समझाया, तब वे अपने पूर्व विश्वास को भ्रम समझने लगे और तभी से उन्होने उस लीला का गायन किया, जिसका सार (सैद्धांतिक तत्त्व रूप) यह सारावली है ।

सारावली के इन कथनों की क्रमशः पुष्टि सूरदास के अतःसाक्ष्यों से इस प्रकार होती है—

(अ—कर्म ज्ञानादि विश्वास)

(१) "करम गति टारी नांहि टरै ।"

(२) "रे मन ! चिंता ना कर पेट की ।"

इत्यादि पदो से सूरदास का कर्म पर अटल विश्वास जिस प्रकार जाना जा सकता है, इसी प्रकार 'सब दिन होत न एक समान' तथा च 'भजन बिनु बैल बिराने ह्वै हो' आदि पदों से उनके ज्ञान तथा उपासना-भक्ति की प्रारंभिक श्रद्धा को भी जाना जा सकता है ।

---

* करखा के पदो मे ।

‡ नृसिंह जयती आदि के पदो मे ।

† श्रृंगार के पदो मे ।

‡ ' सूरदास ए कैसे निभेगी 'अन्धाधुंध' सरकार " शेष शब्द सामान्य पदों मे प्राप्त होते हैं ।

(ब--वल्लभ गुरु से तत्त्व-लीला ज्ञान)

(१) " श्री बल्लभ भले बुरे तोउ तेरे । "
(२) " दृढ इन चरनन केरौ । "

इन पदो से सूरदास श्री बल्लभ गुरु के सेवक थे, यह बात स्पष्ट होती है ।

अब प्रथम यह जानना आवश्यक है कि श्री बल्लभ गुरु ने सूरदास को कौन सा तत्त्व सुनाया और किस लीला भेद को समझाया था, जिनकी सूचना सारावली मे दी गयी है, तभी उस पर आगे विचार किया जा सकता है।

उक्त बात का ज्ञान वार्ता से होता है । वार्ता मे लिखा है कि सूरदास को महाप्रभु ने शरण मे लेकर " दशम स्कध की अनुक्रमणिका " और " पुरुषोत्तम सहस्रनाम " सुनाये थे, जिससे सूरदास को भागवत की टीका स्वरूप श्री सुबोधिनी का ज्ञान हुआ था । इस ज्ञान के आधार पर ही सूरदास ने श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कध से द्वादश स्कध पर्यंत की लीलाओ का कीर्तन किया* ।

वार्ता के इस कथन की पुष्टि सूरदास के इन पदो से होती है—

(१) " गुरु बिनु ऐसी कौन करे । "

इस पद में सूरदास कहते है कि—

भवसागर ते बूढत राखे 'दीपक' हाथ धरे ।

सूरदास का सांकेतिक यह 'दीपक' ज्ञान प्रदीप रूप श्रीमद्भागवत है । महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत को ही कलिकाल रूप अज्ञानाधंकार को दूर करने वाला "प्रदीप" कहा है । जैसा कि—

" श्रीमद्भागवतप्रदीपमधुना चक्रे मुदा वल्लभ । " (निबंध)

---

* " पाछें आप दशम स्कध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास को सुनाये × × × सो सगरी श्री सुबोधिनी को ज्ञान श्री आचार्य जी ने सूरदास के हृदय मे स्थापन कियो । × × × ता पाछें श्री आचार्य जी ने सूरदास कूं 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनायो । तब सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय मे स्फुरी । सो सूरदास ने प्रथम स्कध श्री भागवत सो द्वादश स्कध पर्यन्त कीर्तन वर्णन किये । " (प्रा० वा० र० पृ० १४–१५)

इसलिए सूरदास ने भी उक्त पद मे भागवत का ही 'दीपक' शब्द से संकेत किया है† । महाप्रभु के मत से इस कलिकाल मे श्री कृष्ण के नाम स्वरूप यह भागवत शास्त्र ही जीव के उद्धार करने मे एक मात्र समर्थ है, इसीलिए सूरदास ने 'भव सागर ते बूड़त राखे' शब्दो का भी वहाँ प्रयोग किया है । अस्तु ।

महाप्रभु ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को श्रीमद्भागवत के 'सार समुच्चय' रूप कहा है, क्यो कि श्रीमद्भागवत मे से ही महाप्रभु ने शुद्धाद्वैत सिद्धांत प्रतिपादक एक हजार नामो को उद्धृत कर 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना की है, इसलिए महाप्रभु ने तत्व रूप 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के उपदेश द्वारा श्रीमद्भागवत रूप ज्ञानदीपक का ही सूरदास को दान किया था । इस प्रकार सूरदास के उक्त पद मे वार्ता के पूर्व कथन की तथा सारावली के 'तत्व सुनायौ' वाले उल्लेख की पुष्टि होती है ।

अब 'लीला भेद बतायौ' वाले कथन को स्पष्ट करेंगे । श्रीमद्भागवत के तत्व स्वरूप 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' मे महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत की सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वतर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय इन दशविध लीला सूचक नामो का स्कधानुसार निरूपण किया है‡, अत. 'सहस्रनाम' के उपदेश द्वारा उक्त लीला भेद को महाप्रभु ने सूरदास को समझाया था, जिससे समग्र भागवत का अर्थ सूरदास के हृदय मे स्फुरायमान हुआ था । इन कथन की पुष्टि जिस प्रकार वार्ता के "सगरे श्रीभागवत की लीला सूरदास के हृदय मे स्फुरी" इस उल्लेख से होती है, उसी प्रकार आगे आने वाले पद से भी होती है—

---

† सूरदास ने निम्न पद मे श्रीमद्भागवत को 'ज्ञानदीप' स्पष्ट रूप से भी कहा है—

' निगम कल्पतरु पक्व फल सुक मुख ते जु दयौ ।
श्री सुकदेव कृपा करि कै अति परीछित स्रवन पयौ ॥
"ज्ञानदीप हिरदे" प्रगटायौ मनोकामना काज लयौ ।
जग मे प्रकास करि हरि कथा उँर कौ तिमिर सबहि गयौ ॥
'सूर स्याम' सुन हो रसिकनमनि बारबार रस पीवो नयौ । '

‡ ' सर्गलीलाप्रवर्तकः ', ' विसर्गकर्तासर्वेश. ', ' स्थितिलीलाब्धिरच्युतो विजयप्रद । ' इत्यादि ।

श्री भागवत सकल गुन-खानि।
सर्ग, विसर्ग, स्थान रु, पोषण, उति, मन्वंतर जानि॥
ईस, प्रलय, मुक्ति, आश्रय पुनि, ये दस लच्छन होय।
'उत्पत्ति तत्व' 'सर्ग' सो जानो 'ब्रह्माकृता' विसर्ग' है सोय॥
कृष्ण 'अनुग्रह' 'पोषण' कहिये कृष्ण 'वासना' उति ही मानो।
'आछे धर्मन की' प्रवृत्ति जो, सो 'मन्वतर' जानो॥
'हरि हरिजन की कथा' होय जहाँ सो 'ईशानु' ही मान।
'जीव स्वत. हरि ही मति धारे' सो 'निरोध' हिय मान॥
'तजि अभिमान कृष्ण जो' पावै सोई 'मुक्ति' कहावै।
'उत्पत्ति, पालन, प्रलय करै जो हरि' 'आश्रय' कहावै॥
सूरदास 'हरि की 'लीला' लखि कृष्ण रूप ह्वै जावै'।

महाप्रभु ने उक्त सर्गादि लीलाओ का क्रम तथा अर्थ इस प्रकार किया है—

'आनंदस्य हरेर्लीला शास्त्रार्थो दशधाहि स।
अत्र सर्गो, विसर्गश्च, स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वंतरेशानुकथा 'निरोधो' मुक्तिराश्रय।
अधिकारी साधनानि द्वादशार्थास्ततोऽत्रहि॥' (निबंध)

अर्थ—"आनंद रूप हरि की लीला वह इस समग्र भागवत का अर्थ है।" 'वह लीला' सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, उति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय के नाम से 'दशधा' है।

अधिकारी के भेद को दिखाने वाला प्रथम स्कध है। सर्व प्रकार के ज्ञान कहने वाला साधन रूप द्वितीय स्कध है। तृतीय स्कध से सर्गादि लीलाओ का क्रम है। महाप्रभु के सिवाय भागवत के सभी टीकाकार 'आश्रय' को 'निरोध' के स्थान पर और 'निरोध' को अतिम 'आश्रय' के स्थान पर रखते है, किंतु उसकी असगति को महाप्रभु ने अपनी सुबोधिनी मे अच्छी तरह से स्पष्ट कर दिया है॰।

सूरदास ने भी अपने उक्त पद मे निरोध (प्रलय) को अष्टम ही माना है। यह उनको महाप्रभु ही के द्वारा भागवत के लीला भेद के ज्ञान-प्राप्ति का सूचक है।

॰ देखो दशमस्कंध सुबोधिनी की कारिकाएँ।

इन लीलाओं के महाप्रभु द्वारा बतलाए हुए लक्षणों को ही सूरदास ने भी उक्त पद में कहा है। इससे उक्त बात की और पुष्टि होती है। महाप्रभु ने इन लीलाओं की व्याख्या इस प्रकार की है—

"अशीरस्यविष्णो', पुरुष शरीर स्वीकारः† 'सर्ग'। पुरुषाद्ब्रह्मादीनामुत्पत्ति 'विसर्गः, उत्पन्नानां तत्तन्मर्यादया पालनं स्थान', स्थितानामभिवृद्धिः 'पोषण', पुष्टानामाचार 'ऊतिः,' तत्रापि सदाचारो 'मन्वन्तरम्' तत्रापि विष्णुभक्तिरीशानुकथा भक्तानां प्रपञ्चाभावो 'निरोधः निष्प्रपञ्चानां स्वरूपलाभो 'मुक्ति', मुक्तानां ब्रह्म स्वरूपेणावस्थान'माश्रयः' ।"

आचार्य श्री के इस कथन का अर्थ वही होता है, जो सूरदास ने उक्त पद में सरलरीत्या किया है‡। इससे जाना जा सकता है कि महाप्रभु ने लीलाभेद से भागवत के द्वादश स्कंधों का अर्थ पुरुषोत्तम सहस्रनाम के उपदेश द्वारा सूरदास के हृदय में स्थापित किया था। इसी के अनुसंधान से सूरदास ने श्रीमद्भागवत को दो प्रकार से गाया था। एक द्वादश स्कंधात्मक कथा रूप से, जिसको सूरसागर कहते हैं, और दूसरे उसके सिद्धांतात्मक सर्गादि दशविध लीलाओं के सार-तत्व-रूप से, जिसको उन्होंने सारावली नाम दिया है। जैसा कि आगे स्पष्ट किया जा रहा है, सारावली 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर की गयी होने से उसमें उन लीलाओं के अनुकूल और पोषक अन्य पुराणादि की कथाओं का भी समावेश हुआ है। 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' में आचार्य जी ने श्रीमद्भागवत की दशविध लीलाओं के एक हजार नामों के उपरांत अन्य पुराणादि से भी तत्तल्लीला पोषक ७५ नामों को विशेष रूप से उद्धृत किया है। जैसा कि—

"पञ्चसप्तति विस्तीर्णं पुराणांतर भाषितम्।" २४६

इसीलिए सूरदास ने भी अन्य पुराणादि की कथाओं को स्वीकार किया है।

महाप्रभु जी श्रीमद्भागवत से अविरुद्ध ऐसे सर्गादि पांच लक्षण वाले अन्य पुराणों को भी 'हरि का स्वरूप' मानते हैं॥।

---

† तत्त्व रूप से।

‡ देखो निबंध प्रकाश' आदि ग्रंथ।

॥ पुराण हरिरेवसः। पुराणेष्वपि सर्वेषु तत्तद्रूपो हरिस्तथा। (निबंध)

भागवत के प्रथमस्कन्ध से द्वादशस्कन्ध पर्यंत कीर्तनो की 'सूरसागर' नाम से प्रसिद्धि है। यह प्रसिद्धि महाप्रभु के समय से ही है, क्योंकि वार्ता मे लिखा है कि महाप्रभु सूरदास को देखते तब 'आओ सूरसागर!' इस प्रकार कहते थे।

महाप्रभु श्रीमद्भागवत को 'सागर' मानते है। जैसा कि—

"हृदयाविंशित चित्तेन श्रीमद्भागवत सागरात्।" (पु० सहस्रनाम)

भागवत की इन्ही दशविध लीलाओ को सूरदास के हृदय मे स्थापित कर सूरदास को भी महाप्रभु ने 'सागर' बना दिया था। इससे सूरदास 'भागवत' स्वरूप हो चुके थे, इसलिए ही महाप्रभु उनको 'सागर' कहते थे। महाप्रभु द्वारा कहा हुआ 'सागर' नाम सूरदास के हृदय मे उच्छलित लीला भावो के तरग रूप पदो से सार्थक हुआ है।

जैसा कि पहले कहा गया है 'आओ सूरसागर!' कथन की पुष्टि "सागर सूर विकार जल भर्यौ" वाले अंतःसाक्ष्य से होती है। इससे मानना होगा कि महाप्रभु के समय मे ही सूरदास भागवत की द्वादश स्कन्धात्मक लीलाओ को विशेषतया गा चुके थे, तभी तो वे उस समय मे भी 'सागर' नाम से प्रसिद्ध थे।

अब सारावली के 'एक लक्ष पद बद' वाले उल्लेख पर विचार करेंगे। यहाँ 'एक लक्ष' वाला कथन सख्या वाची नही है, किंतु वह कृष्ण का सूचक है। अर्थात् श्रीमद्भागवत मे नवलक्षण—सर्गादि नव लीलाओ से लक्ष्य-आश्रय-स्वरूप-श्रीकृष्ण का ही निरूपण किया गया है। इसलिए इन दशविध लीलाओ को गाने के पूर्व उन लीलात्मक श्रीकृष्ण के पद की वदना सूरदास ने की है। इस कथन का समर्थन 'सूरसागर' के भागवत-माहात्म्य वाले प्रारंभिक मगलाचरण के इस पद से होता है—

"वंदो श्री गिरिधरनलाल के चरन कमल रज सदा सीस बस।
जिनकी कृपा कटाच्छ होत ही पायौं परम तत्व लीला रस†।।"

नददास ने भी अपने श्रीमद्भागवत भाषा के मगलाचरण मे नव लक्षण से लक्ष्य श्रीकृष्ण की वदना की है।

नव लच्छण करि 'लच्छै' जो, दसये आश्रय रूप।
नद बदि लै ताहि को श्रीकृष्णाख्य अनूप।।

† कांकरोली सरस्वती भंडार मे प्राप्त सूरसागर के भागवत माहात्म्य वर्णन के प्रारंभिक मंगलाचरण का पद।

उक्त सब प्रमाणों से यह निश्चित होता है कि महाप्रभु ने सूरदास को श्रीमद्भागवत के तत्व रूप' 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को सुनाकर श्रीमद्भागवत और उसकी दशविध लीलाओ के भेदो को समझाया था। उसी ज्ञान के आधार पर सूरदास ने समस्त भागवत और तदनुकूल अन्य पुराणान्तरो की तत्तन्लीला विषयक सहायक कथाओ को भी श्रीनाथ जी की पद-वदना कर गायन किया है। ये कथाएँ महाप्रभु द्वारा 'सूरसागर'के नाम से प्रसिद्ध हुई और इन्ही लीलाओं-कथाओ के सैद्धातिक तत्व सार-रूप से उन्होने सूर-सारावली को गाया था, अतः इन दोनो का मुख्य आधार भागवत होते हुए भी इन दोनो की रचनाओ के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न थे।

(च) अब हम श्रीमद्भागवत स्वरूप सूरसागर के सार रूप 'सारावली' पर विचार करेंगे—

सूरसागर मे श्रीमद्भागवत की दशविध लीलाओ का उसके स्कंध, प्रकरण और अध्यायानुसार प्राप्त कथाओ द्वारा गायन किया गया है। इन कथाओ मे श्रीकृष्ण के अनेक अवतार और उनकी अनेक लीलाओ का स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से प्रतिपादन हुआ है। महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत की अनेक अस्पष्ट लीलाओ को भी अपनी सुबोधिनी मे कई स्थानो पर स्पष्ट किया है‡। इससे जाना जा सकता है कि श्रीमद्भागवत मे गूढ रूप से भी कई लीलाओ का वर्णन हुआ है।

महाप्रभु ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' मे श्रीमद्भागवत की स्पष्ट और अस्पष्ट सभी लीलाओ को उनके तत्व रूप एक हजार पचहत्तर नामो से प्रकट किया है। इसलिए 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को महाप्रभु ने'भागवत सार समुच्चय' कहा है। सूरदास ने भी इसी 'सहस्रनाम' के आधार पर अपने सूरसागर की लीलाओ, कथाओ के सार तत्व रूप इस सारावली की रचना की है। इसलिए भागवत की गूढ लीलाएँ भी, जो 'द्वादश स्कंधो के कथात्मक' 'सूर-सागर' मे स्पष्ट रूप से वर्णित नही हैं, सारावली मे स्पष्ट हुई है।

जिस प्रकार महाप्रभु ने भागवत के सार रूप पुरुषोत्तम सहस्रनाम को 'भागवत सार समुच्चय' रूप कहा है, उसी प्रकार सूरदास ने सूरसागर के सार

स्वभावत एव खिन्ना ता त्यक्त्वा अभ्यर्ण सहस्थित इति। ततश्चेत् समागत्य प्रकर्षेण हसति, सुतरा क्षोभं प्राप्नोति (१०–३१–१० सु०) यहाँ खंडिता को स्पष्ट किया है।

रूप इस ग्रंथ को 'सारावली' कहा है। इस प्रकार 'सारावली' नाम भी पुरुषोत्तम सहस्रनाम के 'सार समुच्चय' नाम पर ही आधारित है।

अब हम 'सारावली' के तात्विक सार वाले कथन की प्रामाणिकता 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के नामों से स्पष्ट करेंगे। पुरुषोत्तम सहस्रनाम के प्रारंभ में महाप्रभु ने श्रीकृष्ण के स्वरूप का इस प्रकार प्रतिपादन किया है—

'श्रीकृष्ण'[१], सच्चिदानंदो[२], नित्यलीलाविनोदकृत्[३]।
सर्वागमविनोदीच[४], लक्ष्मीशः[५], पुरुषोत्तम[६] ।८।
आदिकालः[७] सर्वकाल[८], कालात्मा[९], माययावृत[१०] ।९।।

इन्ही नामो के अनुसार सूरदास अपनी सारावली के प्रारभ मे श्रीकृष्ण के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन करते है—

'अविगत, आदि, अनंत, अनूपम, अलख, पुरुष, अविनासी ।
पूरनब्रह्म, प्रकट पुरुषोत्तम, नित निज लोक विलासी ।। १ ।।

सारावली के इस वर्णन मे 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के उक्त नामो का इस प्रकार समावेश हुआ है—

*१ 'अविगत' = सर्वागमविनोदी (४), २ 'आदि' = आदि काल (७), ३. 'अनंत' = सर्वकाल. (८), ४. 'अनूपम = लक्ष्मीश (५), ५. 'अलख' = माययावृत (१०), ६ 'पुरुष' = सच्चिदानदो (२), ७ 'अविनासी' = कालात्मा (९), ८. 'पूरनब्रह्म' = श्रीकृष्णः (१), ९ 'प्रगट पुरुषोत्तम' = पुरुषोत्तम. (६), १० 'नित निजलोकविलासी' = नित्य लीलाविनोदकृत् (३)।

सूरदास 'नित निज लोक विलासी' का विशदीकरण सारावली मे इस प्रकार करते है—

---

* इन नामों के स्पष्ट अर्थों को जानने के लिए देखो, गो० श्रीरघुनाथजी कृत 'पुरुषोत्ताम-सहस्रनाम की टीका' तथा महाप्रभु कृत सुबोधिनी' आदि अन्य साहित्य।

'नित्यलीलाविनोदकृत्' नाम का विवरण—

'जहाँ वृंदावन आदि अजर जहाँ कुंज लता विस्तार।
तहँ विहरत प्रिय प्रियतम दोऊ निगम भृंग गुंजार ॥२॥
रतन जटित कालिंदी के तट अति पुनीत जहाँ नीर।
सारस हंस चकोर मोर खग कूजत कोकिल कीर ॥३॥
जहाँ गोवर्द्धन पर्वत मणिमय सघन कंदरा सार।
गोपिन मंडल मध्य बिराजत 'निशदिन करत विहार' ॥४॥

आगे 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के 'भक्तोद्धारप्रयत्नात्मा', 'जगत्कर्ता' 'जगन्मयः।' नामो का विशदीकरण सूरदास ने सारावली मे चौबीस अवतारों के वर्णन मे तथा सृष्टि की उत्पत्ति और तत्वों से किया है। जैसा कि—

खेलत खेलत चित्त मे आई 'सृष्टि करन विस्तार'।
अपुने आपु करि 'प्रगट कियौ है हरि पुरुष अवतार ॥५॥

इसमे 'जगत्कर्त्ता' नाम का सूचन है। इसका विस्तार आगे और भी किया गया है। आगे 'जगन्मयः' नाम का सूचन इस प्रकार हुआ है—

'कीने तत्त्व प्रगट तेही छण सबै अष्ट अरु बीस।'

इन अट्ठाईस तत्वो से परब्रह्म ही इस जगत् रूप हुए है, ऐसा शुद्धाद्वैत सिद्धांत है,|| अतः इससे 'जगन्मयः' नाम का सूचन होता है।

चौबीस अवतारो का हेतु मुख्यतः भक्तो के उद्धार का है, इसलिए उनके वर्णन से 'भक्तोद्धारप्रयत्नात्मा' नाम का स्वतः बोध होता है।

सारावली मे सर्गादि दस लीलाओ का इस प्रकार वर्णन किया गया है — महाप्रभु ने सर्ग लीला दो प्रकार की मानी हैं—अलौकिक और लौकिक।

अलौकिक सर्ग श्रीकृष्ण की 'निर्गुण-त्रिगुणातीत-लीला सृष्टि की उत्पत्ति' है। इसका वर्णन सूरदास ने सारावली के प्रारभ मे पूर्वोक्त २-३-४ तुको मे तथा आगे भी किया है।

लौकिक सर्ग अट्ठाईस तत्व आदि की उत्पत्ति है। इसका वर्णन सारावली में तुक ५ से १० तक किया है। इस उत्पत्ति का प्रकार भी महाप्रभु के कथनानुसार ही है, जैसा कि महाप्रभु अपनी 'भगवत्पीठिका' मे सृष्टि-उत्पत्ति का इस प्रकार वर्णन करते है—

'अष्टाविंशति तत्वाना स्वरूप यत्र वै हरिः।' (निबंध)

"श्रीपुरुषोत्तमस्य सृष्टेरिच्छा यदा जायते 'तदा रविकाश्मिरयोगो' 'यथा वह्निः प्रजायते तथा 'कालोऽक्षराज्जात. सदानंदकटाक्षन पृथक् भवति। भ्रुवो रंध्रादुत्पद्यते 'कालात्प्रकृतिपुरुषौ'। 'प्रकृतेर्गुणात्मको' 'नारायणो' लक्ष्मीपतिः। 'तस्य' मनसो विष्णुः। ललाटाद्रुद्रः। नाभि-कमलात् 'ब्रह्माजातः'।"

इसी को सूरदास ने सारावली में इस प्रकार कहा है—

"खेलत खेलत चित्त मे आई सृष्टि करन विस्तार।
'अपुने आप करि' प्रगट कियौ है 'हरि पुरुष अवतार ॥५॥
माया क्षोभ कियौ बहु बिधि करि 'काल पुरुष के अग।
'राजस तामस सात्त्विक' 'त्रैगुण' 'प्रकृति पुरुष' कौ संग ॥६॥

तथाच—

अष्टाविंशति तत्त्वानां स्वरूप यत्र वै हरिः।

इस निबध वाक्य और 'तत्त्वकर्ता' यह 'सहस्रनाम' वाले (श्लोक २७॥) नाम के अनुसार सूरदास सारावली मे २८ तत्वों का इस प्रकार उल्लेख करते है--

कीने तत्त्व प्रगट तेहि क्षण सबै अष्ट अरु बीस।
तिनके नाम कहत कवि 'सूर' जो 'निर्गुण' सब के ईस ॥७॥
'पृथ्वी','अप','तेज','वायु','नभ', संज्ञा 'शब्द', 'परस' अरु 'गध'।
'रस' अरु 'रूप, और 'मन','बुद्धि','चित्त', 'अहंकार' मति अंध ॥८॥
'पान', 'अपान', 'व्यान', ,उदान', और कहियत 'प्रान' समान।
'तक्षक', 'धनंजय', पुनि 'देवदत्त' और 'पौड्रक' 'शख' 'द्युमान'। ९॥
'राजस', 'तामस', 'सात्त्विक' तीनो जीव, ब्रह्म सुखधाम।
अट्ठाइस तत्त्व यह कहियत सो कवि 'सूर' जो नाम ॥१०॥

इस प्रकार द्विविध सर्गों के वर्णन के अनंतर ब्रह्मादि की उत्पत्ति से सूरदास विसर्ग का इस प्रकार वर्णन करते है—

नाभि कमल 'नारायण' की मो वेद गरभ अवतार।
नाभि कमल मे बहुत ही भटक्यौ तउ न पायौ पार ॥११॥
तब आज्ञा भई यह हरि की नभ करो परम तप आप।
तब ब्रह्मा तप कियौ वर्ष सत दूर किये सब पाप ॥१२॥
तब दर्शन दीन्हो करुणाकर परमधाम निज लोक।
ताकौ दर्शन देखि भयौ अज सब बातन नि.शोक ॥१३॥

जहाँ आदि 'निजलोक' महानिधि 'रमा सहस संजूत'।
आंदोलन झूलत करुणानिधि रमा सुखद अति पूत ॥१४॥
अस्तुति करे बिबिध नाना करि परम पुरुष आनंद।
जै जै जै श्रुति गीत गाय कै पढत है नाना छंद ॥१५॥
आज्ञा करी 'नाथ' चतुरानन करो सृष्टि विस्तार।
होरी खेलन की बिधि नीकी रचना रचे अपार ॥१६॥
दश ही पुत्र भये ब्रह्मा के जिन संच्यौ संसार।
स्वायभू मनु प्रगट तब कीने अरु शतरूपा नार ॥१७॥

सारावली के इस वर्णन से ब्रह्म की उत्पत्ति नारायण के नाभी कमल से हुई, ऐसा ज्ञात होता है। यह बात पूर्वोक्त 'पीठिका' के उल्लेख के अनुसार ही है। इसी प्रकार ब्रह्मा को जिस 'निज लोक' के दर्शन कराये है, वह 'अलौकिक सर्ग' का सूचक है। महाप्रभु ने—

'नमामि हृदयेशेषे लीलाक्षीराब्धिशायिनम्।
'लक्ष्मीसहस्र लीलाभिः' सेव्यमानं कलानिधिम् ॥"

इस श्लोक मे भगवान के दिव्य रूप का जो उल्लेख किया है, उसी के अनुसार सूरदास ने 'रमा सहस सजूत' आदि को यहाँ और अन्यत्र भी कहा है। यह महाप्रभु का कहा हुआ 'अलौकिक सर्ग' है।

यहाँ ब्रह्मा की उत्पत्ति और उनके द्वारा सृष्टि की रचना का कथन 'विसर्ग' है। इसमे 'आदि कर्त्ता' नाम सार्थक हुआ है।

महाप्रभु 'पुरुषाद्ब्रह्मादीनामउत्पत्तिर्विसर्गः' जिस प्रकार कहते है, उसी प्रकार सूरदास 'ब्रह्माकृता विसर्ग है सोय' कहते है। इसी के अनुसार यहाँ आदि पुरुष से ब्रह्मा और शतरूपा, स्वायंभू आदि की उत्पत्ति के वर्णन द्वारा विसर्ग का सूचन किया गया है।

फिर पृथ्वी आदि की स्थिति एव चौदह लोक के निर्माण द्वारा 'स्थान' का निरूपण सारावली मे तुक १६ से ३४ तक किया गया है। यथा—

सातों द्वीप कहे सुक मुनि ने सोई कहत अब सूर।
जंबू प्लक्ष क्रौच शाक शाल्मलि कुश पुष्कर भरपूर ॥३४॥

इसी प्रकार पोषण (अनुग्रह) और उति लीला (कर्मवासना) का सूचन सूरदास ने तुक ३५-३६ मे इस प्रकार किया है—

अपने अपने 'स्थानन' पर 'फगुवा' दियौ चुकाय।
जब जब हरि माया ते दानव प्रकट भये है आय ॥३५॥

तब तब धरि अवतार कृष्ण ने कीनो 'असुर संहार' ।३५३।।

यहाँ 'फगुवा' के नाम से स्थानाधिपतिओ को अधिकार देकर अभिवृद्धि करने का सूचन है। यही पोषण-अनुग्रह रूप है। महाप्रभु आज्ञा करते हैं कि- "स्थिता नाम अभिवृद्धि पोषणं"।

इसी प्रकार देव और दानवो को कर्मों से प्रवृत्त कर सद्-असद् वासना रूप उति-लीला आप करते है। पुनः अवतार लेकर दानवों के नाश द्वारा आप भक्ति की प्रवृत्ति करते है—यही सद् वासना है। ऐसे सद्, असद् और सद्-असद् वासना रूपी उति-लीला का भी यहाँ सूचन हुआ है।

इस प्रकार ३५ तुको से श्रीकृष्ण की सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण और उति ऐसी पांच लीलाओ को तत्वरूप मे सूरदास ने सारावली में गाया है। तत्वरूप से इसलिए कि उनमे तत्तत्कथाओं का विस्तार नही किया गया है। इसका कारण यह है कि ये कथाएँ विस्तार से सूरसागर मे कही जा चुकी हैं, अत. यहाँ पर उनको तत्वरूप से कहा गया है।

महाप्रभु के मत से भागवत की ये पांच लीलाएँ 'भगवदन्वय' रूप है, अर्थात इन पांच लीलाओं मे भगवान् का समन्वय है। भगवान् कारण रूप से उनमे रह कर इन लीलाओं को करते है। शेष मन्वतरादि पांच लीलाएँ 'व्यतिरेक' वाली है, अतः उनमे भगवान् भिन्न रूप से दिखायी देते है। इसीलिए उन लीलाओ का निरूपण सूरदास ने २४ अवतारो के कार्यों द्वारा सारावली मे विस्तृत रूप से किया है। इस प्रकार सूरसागर रूपी भागवत मे भगवान् के अनेक अवतारो का जो निरूपण किया गया है, उनके सार रूप से सारावली में मुख्यतः २४ अवतारों का वर्णन हुआ है। अन्य पुराणादि के सहारे उनकी कथाओ का विस्तार और गौण रूप से अन्य अवतारो का भी उसमे उल्लेख हुआ है, जो कि तत्तत् लीलाओं के पोषक हैं। इस प्रकार सारावली मे श्री वल्लभ गुरु द्वारा बतलाए हुए तत्व और दशधा लीलाओं का उल्लेख हुआ है।

महाप्रभु ने बालमीकि रामायण और महाभारत को भी शास्त्र रूप मे प्रमाण माना है†, इसलिए इन दोनो ग्रथो की विशेष कथाओ को भी सारावली में गाया गया है। जैसा कि—

† अर्थोऽयमेव 'निखिलैरपि वेदवाक्यै 'रामायणै.' सहित भारत' पञ्चरात्रै.।
अन्यैश्च 'शास्त्रवचने. सह तत्त्व 'सूत्रै' निर्णीयते सहृदयं हरिणा सदैव।

रामायण— ब्याह केलि सुख बरनन कीनो मुनि बाल्मीकि अपार।
सो सुख 'सूर' कह्यौ यह कीरति जगत करी विस्तार॥२४२॥

महाभारत— सभा रची चौपर क्रीड़ा करि कपट कियौ अति भारी।
जीत युधिष्ठिर भई सब जानी तउ मन मे अधिकारी।७६२

सूरदास ने सागर और सारावली मे अन्य पुराणों की कथाओ को भी स्वीकार किया है। इसका उल्लेख भी उन्होने कहीं-कहीं किया है। जैसा कि—

सो 'ब्रह्मांड पुराण' व्यासमुनि कियौ वदन उचार। १६२।

इस प्रकार सारावली 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' और द्वादशस्कंध के कथात्मक 'सूरसागर' के तात्विकसार रूप सिद्ध होती है। भाषा, भाव, वर्णन शैली, कथा के प्रकार और सिद्धांतादि के साम्य से भी इसकी पुष्टि होती है। इससे सारावली के निम्न कथन की प्रामाणिकता निर्विवादत स्पष्ट होती है —

कर्मयोग पुनि ज्ञान-उपासन सब ही भ्रम भरमायौ।
श्रीबल्लभ गुरु तत्व सुनायौ लीला-भेद बतायौ॥
ता दिन ते यह लीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताकौ सार "सूर" सारावली गावत अति आनंद॥

उपर्युक्त विवेचन से भली भॉति सिद्ध हो जाता है कि 'सारावली' के रचयिता अष्टछाप के सूरदास ही थे। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि महाप्रभु जी ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना सूरदास के लिए की थी, अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी के लिए नही, जैसा कि कुछ विद्वानो का मत है। सूरसागर के तात्विक सार रूप होने के कारण सारावली सूरदास की स्वतंत्र रचना सिद्ध होती है, क्यो कि सूरसागर और सारावली के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न है।

अब हम 'सारावली' में कथित '६७ बरस प्रवीन' और 'सरस संवत्सर लीला' इन दो महत्वपूर्ण विषयो पर विचार करते है। ये दोनो कथन ऐतिह्य दृष्टि से एक दूसरे के सापेक्ष है, अतः हम उन दोनो पर एक साथ विचार करते है।

'सरस संवत्सर लीला" वाले कथन को स्पष्ट करने से '६७ बरस प्रवीन' वाला कथन अपने आप स्पष्ट हो जाता है, इसलिए सब से प्रथम 'सरस संवत्सर लीला' वाले उल्लेख पर ही विचार किया जाता है।

सूरदास की कही हुई "सरस संवत्सर लीला" कौनसी है, यह जानना सर्व प्रथम आवश्यक है। श्री मुंशीराम जी शर्मा 'सरस' नामक संवत्सर की कल्पना द्वारा व्यर्थ उलझन में पड गये है‡। हमारा निश्चित मत है कि 'सरस' नाम का कोई संवत् नही होता है। ऐसी दशा मे 'सरस संवत्सर लीला' का अर्थ होगा संवत्सर की सरस लीला। यहाँ संवत्सर की सरस लीला का तात्पर्य श्रीकृष्ण की वर्ष भर की दान-मानादि रसात्मक लीलाओ से है, जिनको सूरदास ने सारावली मे गाया है। इन लीलाओ के उल्लेखों का महत्व तब समझ मे आ सकेगा, जब हम वल्लभ संप्रदाय के सिद्धांत और उसकी सेवा-प्रणाली विषयक आवश्यक अंगो को जान लेंगे।

वल्लभ संप्रदाय मे 'रसोवैस.' 'सर्वरस.' आदि श्रुतियों के आधार पर परब्रह्म को रसात्मक माना है। महाप्रभु के मत से यह रसात्मक परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण है, अतः पुष्टिमार्ग के परमदैवत् तथाच उपास्य देव भगवान् श्रीकृष्ण ही है।

ये रसात्मक श्रीकृष्ण अपने वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं संकर्षण व्यूहो से ब्रज मे प्रगट हुये थे। उन चार व्यूहो से उन्होने मोक्ष, वंशवृद्धि, धर्मोपदेश तथाच संहार कार्य किया था। धर्मी मूलस्वरूप रसात्मक श्रीकृष्ण ने तो एक मात्र आनंददायी लीलाएँ की है। महाप्रभु के मत से ये धर्मी स्वरूप की स्थिति केवल ब्रज मे और भक्तों के हृदय मे रहती है, क्यो कि इनको केवल भाव रूप माना गया है। भक्त जब, जैसे और जहाँ इस स्वरूप की भावना करते है, तब वैसे और वहाँ वह स्वरूप प्रकट होकर भक्तो के मनोरथो को पूर्ण करता है। इसलिए यह स्वरूप और उसकी लीलाएँ भी नित्य मानी गयी है। ऋग्वेद आदि से भी लीला की नित्यता का समर्थन होता है*।

रसात्मक भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रज मे श्रुतियों को दिये हुए वरदान की पूर्ति के लिए प्रकट होकर उनके साथ अनेक प्रकार की आनंदमयी लीलाएँ की है। इन लीलाओ का वर्णन श्रीमद्भागवत तथाच पद्म, ब्रह्म, बाराह आदि पुराण और गर्ग संहिता, नारद पंचरात्रि आदि मे प्राप्त है।

---

‡ सूर सौरभ, द्वितीय भाग, पृष्ठ ३३

* तां वां वास्तून्यूश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयास।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि॥

—ऋग्वेद (२-२-२४)

इन प्रमाणों के आधार पर पुष्टिमार्गीय सेवा-भावना का निर्माण हुआ है। इसमे नित्य और वर्षोत्सव की भावनाएँ प्रधान है। नित्य की भावना मे भगवान् श्रीकृष्ण नंदालय मे बाल भाव से और निकुंज मे किशोर भाव से प्रात:काल से शयन तक अनेक प्रकार की आनंदात्मक लीलाएँ करते है। वर्षोत्सव की भावना मे भगवान की प्रागट्य लीला से लगाकर हिंडोलना पर्यंत की षट्ऋतु आदि की लीलाओ का समावेश हुआ है। ये सब लीलाएँ रसात्मक ब्रह्म के सबंध वाली होने से सरस है।

नित्य की भावना और वर्षोत्सव की भावनाओ का क्रमबद्ध वर्णन पुष्टिमार्गीय सेवा प्रणाली के अनुसार सूरदास ने सारावली मे तुक ८७० से १०८९ तक किया है। पुष्टिमार्गीय सेवा का क्रम जन्माष्टमी से माना गया है, इसलिए सूरदास ने भी जन्माष्टमी से ही इसका इस प्रकार वर्णन किया है—

जन्माष्टमी (भाद्र० कृ० ८-९)—

नित प्रति मगल रहत महर के, नितप्रति बजत बधाई।
नितप्रति मगल कलस धरावत, नितप्रति वेद पढ़ाई ॥८७०॥

ये सब बातें पुष्टिमार्ग की सेवा में प्रति वर्ष होती है। श्रीमद्भागवत् दशमस्कध के जन्म प्रकरण की देवस्तुति भी पढ़ी जाती है।

राधाष्टमी (भाद्र शु० ८)—

श्री वृषभानुराय के आंगन नितप्रति बजत बधाई।

पुष्टिमार्ग मे जन्माष्टमीवत् राधाष्टमी भी प्रतिवर्ष मानी जाती है।

बाललीला—

बाल केलि क्रीडत ब्रज आंगन जसुमति को सुख दीन्हो।

जन्माष्टमी और राधाष्टमी के बीच बाललीला गायी जाती है। पलना आदि भी होते हैं।

चंद्रावली आदि का उत्सव (भाद्र शु० ५-६-७)—

चंद्रावली गोप की कन्या चंद्रभाग गृह जाई ॥८७२॥

पुष्टिमार्ग में भादों सुदी ५ को चद्रावली जी का, सुदी ६ को विशाखा जी का तथा सुदी ७ को ललिता जी का प्रागट्योत्सव माना जाता है।

दान (भाद्र शु० ११ से)—

लूट लूट दधि खात साँवरो जहाँ साँकरी खोर। (८७३ से ८९४)

इसी दान के प्रकरण मे सूरदास ने नंदालय और निकुंज की नित्यकेलि के क्रमों को भी ले लिया है, जो पुष्टिमार्गीय भावना के अनुकूल है।

पुष्टिमार्ग मे दान, होरी, रास आदि उत्सवो मे नित्य की तथाच वर्षोत्सव की सभी अनुकूल भावनाओ का समावेश किया जाता है। इस बात की पुष्टि इन पदो† से होती है—

(१) होरी मे दान की भावना—

माई मेरौ मन मोह्यौ साँवरे अब घर हो मोपै रह्यौ न जाय।

इस होरी की धमार मे—

माई हौं गोरस लै निकसी श्री वृंदावन ही मँझार।
आय अचानक औचका मटुकी हो मेरी दीनी ढार॥ (त्रिलोकी)

(२) दान की धमार—

सखी री रसिया नंदकुमार दधि बेचन गई री।
गलिन गलिन सखी हौं फिरी दधि काहु नांहि लई री॥(सूरदास)

(३) कनक पुरी होरी रची मोहन ब्रज बाला।
कहाँ की तुम ग्वालिनी मोहन ब्रज बाला।
कहाँ दधि बेचन जाय मोहन ब्रज बाला। (छीतस्वामी)

होरी मे मंगला से शयन पर्यंत की नित्य की भावना के अनेक पद प्राप्त होते है, जैसा कि—

आज भोरहि ब्रज युवतिन रोर मचायौ॥ आदि

इन पदों से उक्त बात की पुष्टि होती है। इसी भावना के अनुसार सूरदास ने दान प्रकरण मे निकुंज तथा नंदालय की नित्यकेलि की इस प्रकार सगत भावनाएँ की है—

इंदा वृंदा और राधिका चंद्रावलि सुकुमारि।
बिमल बिमल दधि खात सबनकौ करत बहुत मनुहारि॥८९५॥
गहि बहियाँ लै चले स्याम घन सघन कुंज के द्वार।
पहले सखी सबै रचि राखी कुसुमन सेज सँवार॥८९६॥

† १-२-३ पद देखो त्रिकमचकु द्वारा प्रकाशित 'वर्षोत्सव के पद', द्वितीय भाग, पृ० ४४४—४८०

नाना केलि सखिन संग बिहरत नागर नंद कुमार।
गोवर्धन की सघन कंदरा कीनौ रैन निवास।
भोर भये निज धाम चले अति आनंद विलास ॥८८१॥

नंदालय की मंगला से राजभोग पर्यंत की लीला—

नंद धाम हरि बहुरि पधारे पौढ़ रहे निज सैन।
यसोमति मात जगावत भोरहि जागे अंबुज नैन ॥८८२॥
करी मुखारी और कलेऊ कीनो जल अमनान।
करि शृ गार चले दोऊ भैया खेलन को सुखदान ॥८०३॥
कहुँ खेलत कहुँ ग्वाल मंडली आँख मिचौनी खेल।
भोजन समय जात यसुमति ने लीने दुहुन बुलाय ॥८०५॥

पुन: निकुंज की नित्य लीला (मान आदि)—

राधा सो मिलि अति सुख उपज्यौ उन पूछी यक बात ॥८१०॥
द्वितीय रूप देख अबला कौ मान बढ़यौ तन छाँह ॥८१४॥

निकुंज के मंगला शृ गार आदि—

जागे प्रात निपट अलसाने भूषन सब उलटाने।
करत सिंगार परस्पर दोऊ अति आलस भिथिलाने ॥१०१८॥

सांझ की उत्थापन आदि की लीला बन की है, उसका वर्णन—

कंद मूल फल दीने गोधन सो निशि को मै खायौ ॥८११३॥

दान के पद १४ दिन तक गाये जाते है। इस लिए भी नित्य की भावनाएँ सगत होती है।

निकुंज प्रकरण मे सूरदास ने रास, व्रतचर्या, जल-विहार और हिंडोलना की लीलाओं को प्रसंगानुसंधान तथा इन भावनाओं के अनुकूल होने से ले लिया है, जैसा कि—

नित्यरास—

नाना बंध विधि रस क्रीडा खेलत स्याम अपार॥ ९७६॥
यह निकुंज कौ वर्णन करिके वेद रहे पचिहार।
नेति नेति 'कहेउ सहस वेद विधि तऊ न पायौ पार॥१००६॥

इस स्थान पर सूरदास ने बृहद् बामन पुराण तथा पद्म पुराण की उन कथाओं का भी उल्लेख किया है, जिनका संबंध रासलीला से है। वृहद् बामन पुराण के अनुसार श्रुतियों को ब्रह्म ने अपने निर्गुण रसात्मक स्वरूप तथा

अपनी आनंदमयी लीला का दर्शन देकर उनको अपने स्वरूपानंद देने का वरदान दिया था। इसलिए सारस्वत कल्प मे ये श्रुतियाँ ब्रज में गोपियो के रूप मे प्रकट हुई थी। इसी प्रकार दण्डकारण्य के ऋषियो को रामचद्र जी ने वरदान दिया था, अतः वे ब्रज मे कुमारिकाओ के रूप मे हुए। यह कथा पद्मपुराण मे है।

इन गोपियो और कुमारिकाओ के साथ कृष्ण ने रासलीला की थी, अतः पुष्टिमार्ग मे रास का उत्सव आश्विन शु० १५ को माना जाता है। इसके अनुसार सूरदास ने यहाँ दोनो प्रकार के रास का वर्णन किया है—एक नित्य-रास, जो निकुंजादि मे विविध प्रकारो से होता है और दूसरा कृष्णावतार का रास।

'नाना बध विधि रस क्रीडा' वाला सारावली का पूर्व वर्णन नित्यरास का सूचक है और तुक १००७ से १००६ का रास अवतार दशा का है। सूरदास ने वहाँ इस प्रकार उल्लेख किया है—

कृष्णावतार का रास—

सो श्रुति रूप होय ब्रजमंडल कीनों रास विहार।
नवल कुज मे अंश बाहु धरि कीन्ही केलि अपार।१००८॥
पुनि ऋषि रूप राम वर पायौ हरि से प्रीतम पाय।
'वरन प्रसाद राधिका' देवी उन हरि कंठ लगाय॥१००६॥

व्रतचर्या—

'चरन-प्रसाद राधिकादेवी' से यहाँ तात्पर्य है, श्रीकृष्ण की तामस आधिदैविक शक्ति रूप 'कात्यायनी' से। 'राधिका' शब्द 'राधस्' मुख्य शक्ति वाचक है। उनकी आराधना से ही कुमारिकाओं को रास का वर प्राप्त हुआ था$ इसमे हेमंत मास की व्रतचर्या की भी सूचना मिलती है। पुष्टिमार्ग मे व्रतचर्या का उत्सव मार्गशीर्ष कृ० १ से एक मास पर्यंत माना जाता है, अतः रास और व्रतचर्या का क्रम भी सेवा-प्रणाली के क्रमश. सगत ही रहता है।

इसके आगे सारावली मे जल विहार और झूला का जो वर्णन निकुंज की नित्य-केलि मे आया है, वह वर्षोत्सव के क्रम से सगत नही है, क्योंकि वर्षोत्सव के क्रम मे ये उत्सव उष्णकाल और वर्षाऋतु मे होते है।

सूरदास ने इन उत्सवो का यहाँ उल्लेख कर जिस प्रकार निकुंज केलि के वर्णन में विशेषता की है, उसी प्रकार यह भी सूचित किया है कि ये दोनों

$ इस विषय का विस्तृत विवेचन महाप्रभु ने अपनी सुबोधिनी तथा श्री विट्ठलेश ने अपनी टिप्पणी मे किया है।

उत्सव प्रत्येक ऋतु मे होते है। इसलिए इनमें क्रम का प्राधान्य नही दिया है। युगलगीत के श्लोक और लीलाओ की संगति मे भगवान श्रीकृष्ण पौष में भी जलविहार करते है, यह सुबोधिनी प्रभृति से जाना जा सकता है। चूंकि सप्रदाय की सेवा में वात्सल्य भाव का प्राधान्य है, अत जलविहार को उष्णकाल के क्रम मे रखा गया है, अन्यथा किशोर भाव से तो शरद्-ऋतु मे भी रासोत्सव के समय प्रभु ने जलक्रीडा की ही है।

इस प्रकार ज्येष्ठ, आषाढ और श्रावण के जलविहार तथा हिंडोला के उत्सवों के क्रम को सारावली मे निकुंज की नित्य केलि के साथ ले लिया है। जैसा कि—

'कबहुँक' केलि करत यमुना जल सुंदर 'शरद' तडाग।'
'कबहुँक' मधुर माधुरी 'झूलत' आनँद अति अनुराग॥१०२३॥

इन वर्णनो के अनतर सूरदास ने बसंत, होरी, डोल और बनविहार (फूलमडलिओ) की लीलाओ को तुक १०२४ से १०८८ तक गाया है, जो सांप्रदायिक वर्षोत्सव की भावनाओ से क्रम के अनुकूल है।

'प्रथम 'बसत पचमी' शुभ दिन मगलचार बधाये।' १०२४।

सप्रदाय की प्रणाली के अनुसार बसत माघ शु० ५ से शु० १४ तक माना जाता है। शु० १५ को होरीदाडारोपण होता है। इसका उल्लेख सारावली मे इस प्रकार है—

होरी दाडो दिवस जानिके अति फूले ब्रजराज। १०५ ॥
विप्र बुलाय वेद विधि करिके होरी दाडो रोप।१०५१॥

फिर फाल्गुन कृ० १ से फाल्गुन शुक्ल १५ तक तीस दिन की होरी मानी जाती है, जिसका मितिवार वर्णन सारावली मे इस प्रकार प्राप्त होता है—

'परिवा' प्रथम दिवस होरी को नदराय गृह आई। १०५२।
'शुक्लपक्ष' परिवा पुरुषोत्तम क्रीडा करत अपार। १०६७।
'पून्यौ सुख पाये ब्रजवासी होरी हरख लगाय। १०८४।

फिर 'डोल'—

यशुमति माय लाल अपुने को 'शुभ दिन डोल' झुलायौ।

यहाँ शुभ दिन इसलिए कहा गया है कि पुष्टिमार्ग मे श्रीविट्ठलेश के निर्णय के अनुसार 'उत्तरा फाल्गुन नक्षत्र' जिस दिन हो, उसदिन प्रभु को डोल झुलाने का नियम है। मिति निश्चित नहीं है। उत्तरा फाल्गुन नक्षत्र १५-१-२ इन फाल्गुन शुक्ल और चैत्र कृष्ण के दिनो मे किसी एक दिन आता है।

चैत्र कृ० २ को द्वितीया को पाट का उत्सव माना जाता है। उसमे गोपादि की यमुना स्नान की तथाच प्रभु के पाट विराजने की भावनाएँ है। इस आधार पर सूरदास ने सारावली मे गाया है कि—

'यमुना जल क्रीडत' ब्रजवासी संग लिये गोविंद।
सिंहद्वार 'आरती उतारत' यसुमति आनंद कंद ॥१०८७॥

फिर वनविहार की भावना से सम्प्रदाय मे दो-तीन मास तक फूलमंडलियाँ होती है। इनमे उपवन क्रीडा-कुंज और निकुंजादि की भावना है। इसीलिए उन दिनोमे कुंज-निकुंजादि के पद भी गाये जाते है। यथा—'चलो किन देखन कुंज कुटी' इत्यादि। इस वनविहार की भावना सारावली मे इस प्रकार प्राप्त है—

यह विधि क्रीडत गोकुल मे हरि निज वृंदावन धाम।
मधुवन और कुमुदवन सुंदर बहुलावन अभिराम ॥१०८८॥
नंदग्राम संकेत खिदरबन और कामबन धाम।
लोहबन माँट बेलबन सुंदर भद्र महदबन ग्राम ॥१०८९॥
चौरासी ब्रज कोस निरंतर खेलत है बल मोहन।

इस प्रकार सूरदास ने पुष्टिमार्गीय वर्षोत्सव की लीला भावनाओ को सारावली मे 'सरस संवत्सर की लीला' रूप मे गाया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है वर्षोत्सव की सेवा-भावना का विधि पूर्वक निर्माण गो० विट्ठलनाथ जी ने बडी अद्भुत रीति से किया था। इस रीति के अनुसार सेवा करने से कलियुग मे भी द्वापर का अनुभव होता है। भक्तमाल के रचयिता नाभा जी ने इसीलिए गाया है कि—

"राग भोग नित विविध रहत परिचर्या ततपर।
सज्या भूषन बसन रुचिर रचना अपने कर॥
वह गोकुल वह नंद-सदन दीच्छित कौ सोहै।
प्रगट विभौ जहाँ घोष देखि सूरपति मन मोहै॥
बल्लभ सुत बल भजन के, 'कलियुग मे द्वापर कियौ।
बिट्ठलनाथ ब्रजराज ज्यो, लाल लड़ाय कै सुख लियौ॥'

गो० विट्ठलनाथ जी ने इस कलियुग मे कृष्णलीलाओ को सेवा-प्रणाली द्वारा साक्षात् कर दिखाया था, इसीलिए सूरदास ने गाया कि 'गुरुप्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।' अर्थात् महाप्रभु और विट्ठलनाथ जी के प्रसाद से ही आज मुझे अपनी सरसठ वर्ष की आयु मे यह संपूर्ण साक्षात्कार की भावनाओं वाली सेवा की नित्य और वर्षोत्सवो की लीलाओ के दर्शन हो

रहे है। इन लीलाओ के समझने मे सूरदास उस समय 'प्रवीन' हो चुके थे, अत. उन्होने अपने लिये 'प्रवीन' शब्द का भी प्रयोग किया है। इन लीला-भावनो के ज्ञान मे प्रवीणता की नितांत आवश्यकता है, क्यो कि जब तक लीला भेद नही जाना जाय, तब तक इन भावनाओं का वास्तविक ज्ञान भी नही हो सकता है। इसी महत्ता को प्रकट करने के लिये सूरदास ने शिवजी का दृष्टांत भी दिया है कि अनेक विधानो से बहुत दिनो तक तप करने पर भी मर्यादा भक्त शिरोमणि शिवजी ने भी इस लीला का पार नही पाया है, अर्थात् उनको भी इसका अनुभव नहीं हुआ है। शिवजी को भी यह लीला दुर्लभ है, इस बात को सूरदास ने रामचरित्र आदि कई स्थानो पर अन्यत्र भी कहा है—

सहस वर्ष लौं ध्यान कियौ सिव रामचरित सुखसार।
अवगाहन करि कै सब देख्यौ तऊ न पायौ पार ॥१४७॥
नहि प्रवेस अज, सिव, गनेस पुनि कितक बात संसार ॥६६६॥

सूरदास अपने को अन्य स्थानो पर भी प्रवीन, चतुर, सुजान, आदि कहते है, यथा—

"ब्रज बधू बस किये मोहन 'सूर' 'चतुर सुजान'।"

संप्रदाय के इतिहास की संगति के अनुसार गो० विट्ठलनाथ जी ने वर्षोत्सव के अद्भुत सेवा प्रकार का निर्माण वि० सं० १६०२ मे किया था। उस समय सूरदास ६७ वर्ष के थे। इससे सूरदास का जन्म वि० सं० १५३५ मे होना सिद्ध होता है, जैसा गत पृष्ठो मे लिखा जा चुका है।

सारावली के अनंतर सूरदास ने 'सेवाफल' की रचना की है। इसमे उन्होने सेवा के विषय का इस प्रकार उल्लेख किया है—

सेवा की यह 'अद्भुत रीति'। श्री विट्ठलेश सों राखो प्रीति ॥

इस कथन से उक्त बात की पुष्टि होती है। श्री विट्ठलनाथ ने महाप्रभु की प्रकट की हुई सेवा मे वर्षोत्सव की भावनाओं को अद्भुत रीति से स्थापित कर उनका विस्तार किया है। इसका रहस्य श्री विट्ठलनाथ पर प्रीति रखने से ही प्राप्त हो सकता है, क्यो कि ये भावनाएँ उनकी स्वतंत्र खोज की हुई वस्तुएँ है।

अब एक प्रश्न यह रह जाता है कि सारावली मे सर्गादि लीलाओ के साथ वर्षोत्सव की सेवा-भावना को क्यो मिलाया गया है? इसका उत्तर इस प्रकार है—

(१) वर्षोत्सव की सेवा-भावना का पर्यवसान निरोध मे है। इससे प्रपचासक्ति दूर होकर भगवदासक्ति सिद्ध होती है। इसलिए सारावली के तत्व रूप आठवी निरोध लीला से उसकी सगति होती है, अत उसका विस्तार यहाँ आवश्यक था।

(२) वर्षोत्सव की इन लीलाओ की सगति सूरदास ने भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मणि के प्रति कही हुई ब्रज लीलाओ के वर्णन से की है, इसलिए भी ये आवश्यक है। जैसा कि—

एक दिना रुकमनि सों माधव करत बात सुखदाई।
सुनि रुकमनि राधिका बिनु मोहि, पल छिन कल्प बिहाई ॥

श्रीकृष्ण का यह कथन भागवत की कथा मे नही है, किंतु पुराणांतर मे प्राप्त है, अतः उसकी पूर्ति सूरदास ने इस वर्णन से की हे।

विशेष मिलान—

सारावली—(१) कचन बरन जात तेरौ वपु 'पीतांबर' पहिरावै। ६३४

पद—वे जो धरत तन कनक 'पीतपट'सो तो सब तेरी गति ठानी।

सारावली (२) वायस अजा शब्द मन मोहन रटत रहत दिन रैन।६५५।

दृष्टिकूट पद—वायस अजा शब्द कौ मिलिवौ ता कारन उठि धावै।

कवि-छाप के प्रयोगो की शैली भी सूरसागर के समान होने के कारण इसी की पुष्टि करती है। जैसा कि—

सारावली– (३) सातो द्वीप कहे शुक मुनि ने 'सोई' कहत अब सूर।

फलश्रुति —

सूरदास की बडी बडी सभी रचनाओं मे जिस प्रकार फलश्रुति मिलती है, इसी प्रकार इस मे भी है। इससे भी इसकी प्रामाणिकता की पुष्टि होती है।

इस रचना की विशिष्टता यह है कि सारावली के प्रारभ मे जिस 'अविगत आदि अनत अनूपम' स्वरूप और उसके नित्य अलौकिक विहार का सकेत किया गया, है उसी स्वरूप और विहार के वर्णन का अत मे भी उससे मिलान किया है। जैसा कि —

सदा 'एक' रस 'एक अखंडित' 'आदि', 'अनादि', 'अनूप'।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत बिहरत युगल स्वरूप' ॥१०६६॥

इसी प्रकार होरी के वर्णन की भी समाप्ति इस प्रकार की है—

संकर्षन के बदन अनल ते उपजी अग्नि अपार।
सकल ब्रह्मांड तुरत तेज सो मानो होरी दई पजार॥११००॥

यहाँ उत्पत्ति, पालन और प्रलय करने वाले 'आश्रय' स्वरूप ब्रह्म का वर्णन समाप्त होता है।

इसी प्रकार शुद्धाद्वैत सिद्धांत का भी अंत मे सूचन इस प्रकार किया गया है—

सकल तत्त्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब बिधि काल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण 'सब है अंश' गोपाल।११०१॥

इस प्रकार सारावली का प्रारंभ और अंत एकसा है। इसमे कवि की काव्य-निपुणता भी प्रकट होती है। ऐसी रचना सूर के सिवाय और कोई नही कर सकता है।

होरी भावना का रहस्य—

सारावली मे जगत् की उत्पत्ति का वर्णन होरी की लीला के रूपक से किया गया है। इसका रहस्य यह है कि होरी मे जिस प्रकार ऊँच-नीच का भेद तथाच किसी भी प्रकार की सकुचित भावना नही रहती है, उसी प्रकार इस सृष्टि के खेल मे सभी से सभी प्रकार का खेल ईश्वर करता है। इसमे सब एक-रस खेल होता है, इसीलिए यह सारा जगत ईश्वर का होरी के खेल रूप है।

इस प्रकार यह सारावली अष्टछाप के सूरदास की ही रचना सिद्ध होती है और उसमे बडा भारी तत्त्व ज्ञान भरा हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप यह निःसकोच कहा जा सकता है कि—

(१) कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार मे यह सारावली नि.सदेह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसमे प्राप्त आत्म-कथन और कवि छापो से भी इसकी पुष्टि होती है।

(२) सारावली की रचना वि० स० १६०२ मे हुई है।

(३) सारावली का आधार 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' है।

(४) सारावली का दृष्टिकोण सैद्धांतिक रहा है।

(५) वि० सं० १६०२ पर्यंत सूरदास ने श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कंध के अतिरिक्त बल्लभ सप्रदाय की नित्य और वर्षोत्सव की सेवा के जिन पदों को गाया था, उन्ही का यह सूचीपत्र अथवा सिद्धांतात्मक सार है। सृष्टि रचना के

लिए उसकी प्रारंभिक विशिष्ट प्रस्तावना" और "होरी खेल की कल्पना" इस सिद्धांतात्मक दृष्टि की पुष्टि करती है।

(६) द्वादशस्कधात्मक भागवत के सार रूप से इसमे प्रधानत २४ अवतारो का वर्णन और नित्य एव उत्सव की सेवाओ के पदो के सार रूप से "सरस संवत्सर लीला" की भावनाओ का वर्णन है। इस प्रकार सारावली मे "कथा वस्तु" को दो भागो मे पृथक्-पृथक् बॉटना भी 'ताकौ सार सूर सारावली' वाले कथन की पुष्टि करता है।

इस प्रकार सारावली सूरदास की एक स्वतत्र सैद्धांतिक रचना है।

२. साहित्यलहरी—यह भी सूरदास की प्रमुख रचना है। इसमे ११८ दृष्टिकूट के पदो का सग्रह है। १०९ और ११८ संख्या वाले पदो को छोड कर अन्य सब पदो मे काव्यशास्त्रोक्त रस प्रकरण के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओ का वर्णन किया गया है। १०९ सख्या वाले पद मे 'साहित्य लहरी' का रचना-काल और ११८ सख्या वाले पद मे सूरदास का वश परिचय दिया गया है। इस ग्र थ का प्रकाशन सर्व प्रथम भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र की प्रति के आधार पर सन् १८९२ ई० मे खड्गविलास प्रेस से हुआ था। इसके पश्चात् सवत् १९९६ वि० मे पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय से इसका पुनः प्रकाशन हुआ है।

११८ संख्या वाले पद के अतिरिक्त साहित्य-लहरी के अन्य समस्त पदो को हिंदी के प्रायः सभी विद्वानो ने सूरदास कृत माना है। हम भी उक्त पद के अतिरिक्त इसके सभी पदो को प्रामाणिक मानते है। जिस पद को हमने अप्रामाणिक माना है, उसमे जहॉ इतिहास विरुद्ध अनेक कथन है, वहाँ अन्य पदो के विरुद्ध उसमे दृष्टिकूट शैली का भी नितांत अभाव है। इस पद की अप्रामाणिकता के विषय मे हम गत पृष्ठो मे विशेष रूप से लिख चुके है।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपनी "सूरदास" थीसिस में "साहित्य-लहरी" पर भी विशेष रूप से विचार किया है। उन्होंने अपने 'विश्लेषण' से दो बाते स्पष्ट की है—

"एक तो यह कि 'साहित्य-लहरी' के प्रणयन मे उसके कवि की मूल प्रेरणा साहित्यिक है, भक्ति नही और दूसरी यह कि इन दृष्टकूट कहे जाने वाले पदो मे राधा एवं राधाकृष्ण के नखशिख के वर्णन नहीं हैं; कुछ पद श्रृंगार से संबद्ध होते हुए भी राधा का उल्लेख नही करते तथा कुछ स्पष्टतया राधा और दाम्पत्य रति से असंबद्ध है।"

उन्होंने आगे लिखा है—

'सूरसागर का कोई प्रसग और कदाचित कोई पद ऐसा नहीं है, जिसमे कवि की भक्ति-भावना किसी न किसी रूप मे प्रकट न हुई हो ·· 'साहित्य-लहरी' का रचना-काल संवत १६२७ माने, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि सूरदास ने इसकी रचना की है तो अपनी मृत्यु के कुछ ही पहले उन्होंने अपनी भक्ति-भावनापूर्ण मनोवृत्ति मे आकस्मिक परिवर्तन कर दिया और मानो वे अपने साधन को साध्य रूप मे ग्रहण करके मरते-मरते एक असफल और शिथिल लक्षण ग्रंथ रचकर अपने भावी साहित्यिक बंधुओ का नेतृत्व करने के लिये तत्पर होगए। ········· सूरसागर जैसे बृहद् ग्रथ मे जो कवि अपनी रचना के विषय मे मौन रहा हो, वह 'साहित्य-लहरी' जैसे असफल प्रयत्न मे नाम और रचना-काल मे इतना मुखर हो जाए, यह भी उसकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल जान पड़ता है†।"

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर डॉ० वर्मा साहित्य-लहरी को भी सूरदास कृत नही मानते हैं। डॉ० वर्मा की मुख्य मुख्य शकाओ का निम्न लिखित प्रश्नों में समावेश हो जाता है—

१. सूरदास जैसे विरक्त महात्मा और सिद्ध कोटि के ज्ञानी भक्त को अपनी पूर्ण वयोवृद्ध अवस्था मे इस प्रकार के काव्य-साहित्य रस का आश्रय लेने की क्या आवश्यकता हुई ?

२ जब इसमे राधा के नख-शिख का वर्णन नही, तब इसे दृष्टिकूट शैली मे रचने की क्या आवश्यकता थी ?

३. सूरसागर जैसे बृहद् ग्रथ मे जब कवि ने रचना-काल आदि नही लिखा तब ऐसे एक असफल प्रयत्न मे सवतादि देने की क्या आवश्यकता हुई ?

इन तीनो प्रश्नों पर विचार करते समय हमको पुष्टि संप्रदाय की भक्ति-प्रणाली तथा उसके सिद्धांत को प्रथम जान लेना आवश्यक है। पुष्टि संप्रदाय मे भगवान् श्रीकृष्ण को "रसोवैसः" श्रुति के अनुसार रसात्मक माना गया है और ब्रह्मांड में जहाँ कही आनंद-रस अभिव्यक्त है, वह भगवद्रूप माना गया है—

"यस्तु तस्तु ब्रह्माण्ड मध्ये आनन्दोऽभिव्यक्तस्तिष्ठति भगवद्रूपः‡।"

---

† सूरदास, पृ० ८७/९३ ‡ सुबोधिनी तृ स्कं० १५-३६

इसी के आधार पर नंददास ने भी अपनी "रसमंजरी" मे लिखा है—

रूप-प्रेम-आनंद रस जो कछु जग मे आहि।
सो सब गिरिधर देव को निधरक बरनो ताहि॥

अर्थात् जगत् मे जहाँ कहीं भी और जो कुछ भी आनंद (रस) है, वह भगवान् श्रीकृष्ण का ही स्वरूप है। इसलिए शुकदेव जी ने भी श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की रास पचाध्यायी के अतिम अध्याय के २६ वें श्लोक मे कहा है—

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः ससत्यकामोऽनुरताबला गणः।
सिषेव आत्मन्युपरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथा रसाश्रया।।२६।

इस श्लोक के अंतिम चरण "सर्वा. शरत्काव्य कथा रसाश्रया·" से स्पष्ट होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने काव्यशास्त्रोक्त प्रकारो से भी लीलाएँ की हैं। इसका स्पष्टीकरण महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने भी अपनी सुबोधिनी मे इस प्रकार किया है—

"काव्य कथा अपिनीताः। काव्योक्त प्रकारेण गीतगोविन्दोक्त न्यायेनापि रति कृतवान्। तत्र हेतुः रसाश्रया इति†।"

अर्थात् काव्य कथाओ का भी इस प्रकार सेवन किया। काव्योक्त प्रकारेण, तथाच गीत गोविन्दोक्त न्याय से भी भगवान् ने रमण किया।

इससे स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने काव्यशास्त्र के अनुसार नायिकाभेद की पद्धति से भी रमण किया है। इन्ही आधारो पर अष्टछाप के भक्त कवियो ने अनेक प्रकार की नायिकाओ को उपस्थित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओ का गायन किया है।

हमारे सूरदास ने भी श्रीमद्भागवत के उपर्युक्त श्लोक के स्पष्टीकरण एव विशदीकरण मे ही समस्त 'साहित्य-लहरी' का निर्माण किया है इसीलिए इसमे नायिकाभेद का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।

सूरदास की समस्त रचनाओं का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत रहा है, क्यो कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उनको शरण मे लेते ही तत्काल 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम' और 'दशम् स्कंध की अनुक्रमणिका' द्वारा श्रीमद्भागवत की दशविध लीलाओ का बोध कराया था। इसी के आधार पर सूरदास ने समस्त भागवत की कथाओ का सामान्य अनुवाद और दशम् स्कध की अस्पष्ट एवं स्पष्ट लीलाओ का विशेष रूप से विस्तार के साथ वर्णन किया है। इसी में दशम-

† सुबोधिनी १०-३३-२६

स्कंध की अस्पष्ट सांकेकित लीलाओ मे इस विषय का भी समावेश हो जाता है। यदि सूरदास ने इस ग्रंथ की रचना न की होती, तो उनके द्वारा भागवत की लीलाओ का पूर्ण रूप से वर्णन न हो पाता। अब 'साहित्य-लहरी' नाम पर विचार करते समय यह बात द्रष्टव्य है कि उन्होने भगवत् लीलात्मक नाम न रख कर 'साहित्य' शब्द का उपयोग क्यो किया? इसके दो कारण है। एक तो यह कि इस रचना मे किसी एक विशिष्ट लीला का उल्लेख नही है। इसमे केवल शृगार-रस ही नही है, वरन् अन्य रसो का भी वर्णन किया गया है। ये रस काव्य-शास्त्र की आत्मा है, अत· इनके विवेचन के कारण इस रचना का नाम साहित्य से सबधित रखा गया है। इसका दूसरा मुख्य कारण यह है कि इसमे भगवान् कृष्ण की लौकिक प्रकार की काव्य कथा होने के कारण अनधिकारी व्यक्तियो मे अन्यथा भाव उत्पन्न न हो। राजा परीक्षित जैसे ज्ञानी भक्त को भी उक्त श्लोक को सुनकर जब शका हुई थी, तब अन्य व्यक्तियो का तो कहना ही क्या है! इसीलिए नायिकाभेद की रचनाएँ दृष्टिकूट शैली मे लिखी गयी है, जिससे अधिकारी विद्वान ही उनका रसानुभव कर सके। दृष्टिकूट शैली के आवरण के कारण ही इस रचना मे काव्यानद की स्पष्ट झलक नही दिखलायी देती। यह आवरण जानबूझ कर रखा गया है।

उपर्युक्त सैद्धांतिक विवेचन से दो बाते स्पष्ट होती है—एक तो यह कि साहित्यलहरी का नाम और उसका बाह्य कलेवर काव्य-साहित्य का सूचक होते हुए भी वह भक्ति की उच्चतम भावना से अनुप्राणित है। इससे कवि का उद्देश्य भगवान् श्रीकृष्ण की रहस्यमयी लीलाओ का गायन करना मात्र था, "साहित्यिक-नेतृत्व" करना नही। दूसरी बात यह है कि इन पदो मे काव्योक्त (लौकिक प्रकारो वाली) कृष्ण लीलाएँ होने से उन्हे गूढ रखना आवश्यक था, अतः इनमे प्राप्त नायिकाओं के उल्लेखो मे भी कुछ गूढता लायी गयी है, जिसके कारण नखशिख वर्णन न होते हुए भी इसमे दृष्टिकूट शैली की नितांत आवश्यकता थी।

यहाँ एक गौण प्रश्न और हो सकता है। वह यह कि सूरदास कृत इस प्रकार की लीलाओं के ऐसे भी अनेक पद है, जिनमे दृष्टिकूट शैली का सर्वथा अभाव है—इसका क्या कारण है? इसका उत्तर यह है कि एक तो उन पदो मे नायिकाओं का स्पष्ट कथन प्राप्त नहीं है, केवल लक्षणो से ही उनका ज्ञान होता है। दूसरे वे पद श्रीनाथजी के सन्मुख स्वतः गाये हुए है, जहाँ उन्हे छिपाने

की कोई आवश्यकता नही थी। 'साहित्य-लहरी' के पद भागवत की कथा के विशदीकरण रूप मे विशिष्ट कारण से रचे गये हैं।

इस विवेचन से उक्त दोनो प्रश्न हल हो जाते हैं। अब रह जाता है तीसरा रचना-काल विषयक प्रश्न। इसका उत्तर यह है—

श्रीमद्भागवत की कथाओ का अनुवादात्मक सूरसागर सूरदास की परतत्र रचना है। इसमे भागवत की कथाओ का अनुसरण है, अत. यह स्वतत्र रचना नहीं है। फिर इस रचना के अनतर ही इसके तत्वरूप से सूरदास ने सूर-सारावली की सैद्धांतिक स्वतंत्र रचना की थी। इसमे उन्होने स्पष्ट रूप से अपनी ६७ वर्ष की आयु का उल्लेख कर दिया है, जिससे सूरसागर का भी रचना-काल जाना जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से जहाँ साहित्य-लहरी की रचना का उद्देश्य ज्ञात होता है, वहाँ डा० ब्रजेश्वर वर्मा की शकाओं का भी स्वतः समाधान हो जाता है, अतः उन शकाओ पर पृथक् विचार करने की आवश्यकता नही रह जाती।

डा० वर्मा का एक तर्क यह है कि—

"उक्त गोस्वामी जी के द्वारा साहित्य-लहरी का कोई उल्लेख न होना, जब कि इस रचना मे कवि ने तिथि और नाम तथा अपनी वंशावली का उल्लेख किया है वास्तव मे इस रचना को सूरदास कृत न मानने के लिये एक प्रबल कारण है *।"

वार्ता साहित्य के गभीर अध्ययन से यह ज्ञात हो सकता है कि समग्र वार्ता-साहित्य प्रासंगिक रूप से कहा हुआ है, अतः जहाँ जिस विषय का प्रसग चल पडा, वहाँ उसका वर्णन किया गया है। इसको ऐतिहासिक ढंग से आद्योपांत चरित्र रूप में नही लिखा गया है। यदि वार्ता में सूरदास की रचनाओ पर पूर्ण रूप से एक स्थान पर विचार किया गया होता, तब तो उक्त तर्क का महत्व सिद्ध होता, किंतु उसमे प्रासगिक स्थानों पर सूरदास की अमुक-अमुक रचनाओ का उल्लेख हुआ है, अतः उक्त तर्क पर बल देना निरर्थक है।

साहित्य-लहरी की दृष्टिकूट शैली और उसके पदो के वर्ण्य विषय सूर-सागर में तथा सूरदास की अन्य रचाओ मे भी प्राप्त हैं। इनसे भी इसकी प्रमाणिकता का अनुमान हो सकता है।

---

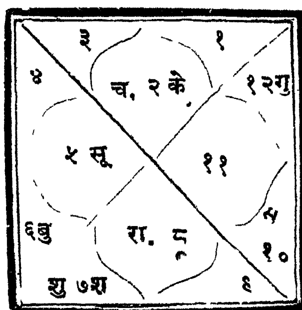
* सूरदास, पृ० ९६

केहरि वेद रास त्रै मूरत सेस भार सब लैहैं।
बान सखी सुत है पुत्री के मदन बहुत उपजैहैं।।
साख्न सुक्र तुल के रवि सुत ते बैरी हरता जोग।
मुनि बस तिय बस करै भूमि सुत भागवान मे भोग।।
लाभ थान पंचमी काम धुज ग्रहनिधि गृह मे आई।
मान लेहु मन अपने भू सब हरो भार इन भाई।।
बान वर्ष मे कब देखैगी, कहाँ तिहारी पूरी।
"सूरदास" दोउ परे पॉइ तर भूषन चित्र समूरी।।८१।।

प्रथम पद में गर्ग नाम स्पष्ट है। उसको यहाँ दृष्टिकूट शैली के कारण विप्र कहा है। इसी प्रकार मास, तिथि, वार, नक्षत्र, योग और ग्रहों का भी दृष्टिकूट शैली मे वर्णन हुआ है। उन सब के फल भी वही कहे है, जो प्रथम पद मे प्राप्त है। इसमे वात्सल्य रस को इन पंक्तियो मे विशेष रूप से प्रकट किया गया है—

एक बार जो प्रथम सुनाई लगन-कुंडली सोइ।
पुनहि मोहि सुनावहु सुन कर कहन लगे सुख भोइ।।
× × × ×
बान वर्ष मे कब देखैगी कहाँ तिहारी पूरी।
'सूरदास' दोउ परे पॉइ तर भूषन चित्र समूरी।।

इन दोनो पदों से कृष्ण की जन्म-कुंडली इस प्रकार निर्मित होती है—



इसी प्रकार एक ज्येष्ठा-कनिष्ठा के अनुरूप का साम्य देखिये—

नंदनंदन हँसे नागरी हर्ष चंद्रावलि कंठ लाई।
बाम भुजा बनी दच्छिण भुजा सखी पर चले बन धाम सुख कहीन जाई।।

मनो बिच दामिनी बीच नव घन सुभग देखि छबि काम रति सहित लाजै।
किधौं कंचनलता बीच तरु तमाल भामिनी बीच गिरिधर बिराजै॥
गये गृह कुंज अलि गुंज सुमननि पुंज देखि आनंद भरे 'सूर' स्वामी।
राधिकारवन युवतीरवन मनरवन निरखि छबि मन होत काम कामी॥
(अनुराग लीला—पृष्ठ ४६३)

इस पद मे राधिका को वाम भाग और चद्रावलि को दक्षिण भाग मे रखकर भगवान कृष्ण गृह को गये–ऐसा वर्णन है। राधिका को ज्येष्ठा और चद्रावलि को कनिष्ठा कह कर साहित्य-लहरी की दृष्टिकूट शैली मे इस प्रकार गाया गया है—

आज सखिन सँग सुरुचि साँवरी' करत रही जल केलि।
आइ गयौ तहाँ सरस साँवरा प्रेम पसारन बेलि॥
× × × ×
भूषन हित परनाम 'छोट बड' दोहुन को कर राखी।
'सूरज' प्रभु फिर चले गेह को करत सत्रु सिब साखी॥ ७॥

इसी प्रकार नेत्र वर्णन, नायक का मान, विपरीत रमण और खडिता आदि साहित्य-लहरी के कई विशिष्ट विषय सूरदास के सागर और उनके अन्य पदो से मिलते है।

दृष्टिकूट पदो का साम्य—

सखी री सुन परदेसी की बात।
अरध बीच दै गये धाम को हरि अहार चलि जात।
ग्रह नछत्र अरु वेद अरध कर को बरजै मुहि खात॥
रवि पवक सँग गये स्यामघन तातें मन अकुलात।
कहुँ सहुक्त कवि मिले "सूर" प्रभु प्राण रहत न जात†॥२३॥

---

† लहेरियासराय वाली प्रति मे "न तो जात" पाठ है, किंतु वह अशुद्ध है। टीकाकार ने और भी कई पाठो को अशुद्ध बना दिया है, जैसा कि—"राधे कियौं कौन सुभाव" इस पद में 'प्रानपति बेदन बिभूषित सुन गुन चित्त चाव॥" यहाँ वास्तव मे "सुन गुन" चहिए "सुंन गुन" नहीं। इससे अर्थ का अनर्थ हो गया है। इसी प्रकार और भी कई अशुद्धियाँ है, जैसे "आवत थी"—यहाँ "आवत ही" चाहिए इत्यादि।

कहे न कोई परदेसी की बात।
जब तें बिछुरे नंदसाँवरौ ना कोइ आवै न जात।
मंदिर अर्ध अवधि प्रभु बदि गये हरि अहार चलि जात॥
अजयाभख अनुसारत नाही कैसेक समय सिरात।
ससिरिपु बरस भानुरिपु जुग सम हरिरिपु कीन्हो घात॥
नखद वेद ग्रह जोरि अरध करि सोइ बने अब खात॥
मघपंचक लै गयौ साँवरौ तातें मन अकुलात।
"सूर" श्याम आवन कै आसा प्रान रहे नतु जात†॥

साहित्य-लहरी के कतिपय विषय व्रतचर्या, नायक का मान आदि संप्रदाय से पूर्णतः संबंधित है। नायक का मान अष्टछाप मे सूर एवं परमानंद के अतिरिक्त और किसी ने नहीं गाया है। उसका आभास इस साहित्य-लहरी के कई पदों मे है। इन सब कारणो से संप्रदाय के मर्मों से अपरचित व्यक्ति इसकी रचना नहीं कर सकता है। इस प्रकार काव्य की गभीरता को देखते हुए भी यह रचना साधारण कवि की ज्ञात नही होती है। इसमें शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसो के प्रतिपादन के लिए महाभारत आदि की कथाएँ भी उपलब्ध है। अन्य कवि, जिसका उद्देश्य केवल शृंगार वर्णन करना हो, इस प्रकार की रचना सर्वथा नही कर सकता है, अतः यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसकी पुष्टि आंतर प्रमाणों से भी भली भाँति होती है।

अब हम इसके रचनाकाल विषयक पद पर विचार करेंगे। वह पद इस प्रकार उपलब्ध होता है—

७ ० ६
"मुनि पुनि रसन के रस लेख।
१
दसन गौरीनंद को लिखि सुबल संवत पेख॥
नंदनंदन मास* छय ते हीन तृतीया बार।
नंदनंदन जनम ते है बान‡ सुख आगार॥
तृतीय ऋक्ष सुकर्म जोग विचार 'सूर' नवीन।
नंदनंदनदास हित साहित्य-लहरी कीन॥

† लहेरियासराय द्वारा प्रकाशित प्रति मे पृ० २७ पर इसे पाठांतर के रूप मे उपस्थित किया गया है, किंतु यह एक स्वतंत्र पद है।
* माधव मास। ‡ पाँचवाँ।

उक्त पद की रचना-शैली भी साहित्य-लहरी के अन्य पदो की रचना शैली के समान दृष्टिकूट वाली है, अत. इस पद मे भी 'नदनदन मास' (माधव-वैशाख मास) और 'नदनदन जनम ते है वान सुख-आगार' (श्री कृष्ण के जन्म-दिन बुध से पॉचवॉ वार रवि) आदि वाक्य परोक्ष सूचक प्राप्त होते है। सूरदास विशिष्ट अवसर पर समय का भी अनुसंधान रखते थे, जैसा कि सारावली मे 'गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन' वाक्य दिया हुआ है। इसलिए यहॉ पर दिए हुए सवतादि समय का कथन भी उनके स्वभाव के अनुकूल ही है। श्रीकृष्ण की जन्मपत्री सूचक पदो से यह भी ज्ञात होता है कि सूरदास ज्योतिषज्ञ भी थे, अतः यहॉ 'नक्षत्र'-'योग' आदि का कथन भी इस पद को सूरदास की रचना बतलाने मे सहायक होता है।

सूरदास ने अपनी प्रायः सभी रचनाएँ किसी न किसी विशिष्ट हेतु से की है। जैसा कि—'सूर-पचीसी' बादशाह अकबर के लिए, 'सूर-साठी' एक बनिया के लिए, 'भरोसौ दृढ इन चरनन केरौ' वाला पद चतुर्भुजदास के लिए, 'आज काम काल काम' यह पद भी एक बनिया के लिए, 'मन ! तू समझ सोच विचार' यह पद चौपड के खेलाडियो को देखकर, दान-मान आदि के अनेकानेक पद श्रीनाथजी की सेवा के लिए, 'सूरसागर' महाप्रभु बल्लभाचार्य जी की आज्ञानुसार और 'सूर-सारावली' उस 'सागर' की लीलाओ और नर्षोत्सव की सेवा-भावनाओं के तात्विक अनुसधान के हेतु से रची गयी है। इन हेतुओ को देखते हुए यह विचार उत्पन्न होता है कि 'साहित्य-लहरी' की रचना का भी कोई विशेष प्रयोजन अवश्य रहा है। इसका उल्लेख उक्त पद के 'नंदनदनदास हित साहित्य-लहरी कीन' वाले वाक्य मे किया गया है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि 'नंदनदनदास' अर्थात् कृष्ण के भक्तो के लिए यह 'लहरी' बनायी गयी, तो वह एक सामान्य प्रयोजन कहा जायगा। उस सामान्य प्रयोजन का इस प्रकार विशेष प्रयत्न पूर्वक उल्लेख करना निरर्थक सा है, क्यो कि सूरदास की सभी रचनाएँ कृष्ण-भक्तो के लिए तो है ही, फिर 'साहित्य-लहरी' मे इस बात का पृथक् उल्लेख क्यो किया गया ? अत· यह मानना होगा कि जिस प्रकार पूर्वोक्त विशेष रचनाओ के विशिष्ट हेतु रहे है, उसी प्रकार इस वृहद् रचना का भी कोई विशिष्ट हेतु अवश्य रहा है।

आख्यायिका और वार्ता से इस रहस्य का उद्घाटन होता है। आख्यायिका के अनुसार नददास का नदनदनदास के नाम से सबोधन सूर द्वारा किया जाना स्पष्ट होता है। अष्टछाप के सातों कवि प्रारभ से ही कृष्ण-भक्त थे, केवल नददास ही पहले राम-भक्त थे। जब वे बल्लभ संप्रदाय मे प्रविष्ट हुए, तब सूरदास ने ही उनको 'नदनदनदास' कहा था। इससे भी उक्त बात का समर्थन होता है।

इस गूढ़ उद्देश्य को समझने के लिए हमे अधिक दूर जाने की आवश्यकता नही है। 'भावप्रकाश वाली वार्ता' से यह जाना जा सकता है कि नंददास ने जब पुष्टिमार्ग मे प्रवेश किया, तब सर्व प्रथम वे सूरदास की सगति मे छै मास तक चदसरोवर पर रहे थे †।

'वार्ता' के इस कथन की पुष्टि नंददास की रचनाओं मे सूरदास के पदो की भाषा, उनके भाव आदि के अनुसरण से हो जाती है। यहाँ पर दोनो कवियो के कतिपय ऐसे पद दिये जाते है—

सूर का पद—

माई री कृष्ण नाम जब तू श्रवन सुन्यौ री, तब ते भूली री भवन बावरी सी भई री। भरि-भरि आवे नैन, चित न रहत चैन, बैन नहीं सूधौ भूली मन की दसा सब और ह्वै रही री ।। कौन माता, कौन पिता, को बहिनी, कौन भ्राता, कौन ज्ञान, कौन ध्यान, मदन हई री। 'सूर' स्याम जब ते परे री मेरी दृष्टि बाम, काम, धाम, निसि-याम लोक-लाज कुल-कानि निनई री ।।

नंददास का पद—

कृष्ण नाम जब ते श्रवन सुन्यौ री, आली, भूली री भवन हौं तो बावरी भई री। भरि-भरि आवै नैन, चित्त हू न परत चैन, मुख हू न आवै बैन, तन की दसा कछु औरें भई री ।। जेतेक नैम धरम व्रत कीने री मै बहु बिध, अंग-अंग भई हौं तो श्रवन मई री। 'नंददास' जाके श्रवन सुने यह गति माधुरी मूरति कैधौं कैसी दई री ।।

सूर का पद—

दौरि-दौरि आवत, मोहि मनावति, दाम खरच कछु मोल लई री।
गई तौ गई, न गई तौ न गई, ऐसी कहा कछु गरज भई री।।
सुनि राधे कैधौं मान मेरौ कह्यौ, तो बिनु लालन कछु न सही री।
'सूरदास' मन हरि लीन्हो, हँसि-मुसिक्याय निकट गई री ।।

नंददास का पद—

दौरि दौरि आवति, मोहि मनावति, दाम खरच कछु मोल लई री।
अचरा पसारति, मोहि को खिजावति, तेरे बाबा की कहा चेरी भई री ।।
जा री, जा दूति ! तू भवन आपुने, लख बातन की एक बात कही री।
'नददास' प्रभु वे क्यो नहीं आवत, उनके पाँयन कहा महेंदी दई री ।।

† प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, पृ० ३८०

(मकर संक्रांति)

सूरदास का पद—

'मेष' सी अचल कहा बैठी 'बृष' भान लली, 'मिथुन' के काजै तोहि स्याम सुधि करी है। 'करकै' सिंगार आज 'सिंह' ह्वै चलो री आली, प्यारी 'कन्या' रितुमान ह्वै कहा गुमान भरी है। 'तुल' रे विरही कान, वृक्ष तरे ठाडे आन, 'धन' 'मकर' करे आली, येही सुभ घरी है ।। 'कुंभ' ज्यों मिलोगी जाय, व्याकुल कान कुंजन में, मीन' जैसे तलफत सुध करे घरी-घरी है। 'सूरदास' मदनमोहन सुमिरत है निस-दिन, द्वादस रासि रूप कृष्ण चरन जाय ढरी है ।।

नंददास का पद—

'मेष' सी ह्वै रही अति 'वृषभ' गति तेरी आली, 'मिथुन' के काजै हमारौ कह्यौ क्यों न कीजै। 'करक' मिटाओ आछें 'सिंह' की सरनि आओ, 'कन्या' कौ सुभाव सो तौ बेग तजि दीजै ।। 'तुला' तो अतुल रस 'वृश्चिक' कौ विष मटि, 'धन' घनस्याम जू की सरनि गहि लीजै । 'मकर' न कीजे आछे कुंभ के गुन नेह, 'नंददास' भानमती 'मीन' गति लीजै ।।

इसी प्रकार का एक पद कृष्णदास का भी प्राप्त है, जिसमे सूरदास के भावो का अनुकरण किया गया है—

कृष्णदास का पद—

'मीन' से चपल अरु 'मेष' हू न लागे पल, 'वृषभ' सी गति लिएँ डोलत भवन मे। 'मिथुन' पै चल अंक 'करक' लावै 'सिंह', 'कन्या' प्रवेस सो तौ आयौ तेरे तन मे ।। 'तुला' जिन करै आली 'वृश्चिक' व्यथा समान, 'धनुष' सी भौह सोहै 'मकर' तेरे प्रन मे। 'कुंभ' जैसे कुच साज, भेंट पिय अंक आज, दंपति छबि निरख 'कृष्णदास' हरषि मन मे।।

(ज्येष्ठ की दुपहरी)

सूरदास का पद—

सूर आयौ सीस पर, छाया आई पाँइन तर, पंथी सब झुक रहे देखि छाँह गहेरी। धंधीजन धंध छांडि, बैठे धूपन के लिएँ, पसु-पछी जीव-जंतु चिरैया चुप रहे री ।। ब्रज के सुकुमार लोग दै दै किवार सोए, उपवन की ब्यारि तामैं सुख क्यो न लहे री। 'सूर' अलबेली चलि, काहे को डराति बलि, माह की मध्य राति जैसे, ये जेठ की दुपहरी ।।

नंददास का पद—

सूर आयौ माथे पर, छाया आई पाँइन तर, उतर ढरे पथिक डगर देखि छाँह गहेरी ॥ सोए सुकुमार लोग जोरि के किवार द्वार, पवन सीतल घोख मोख भवन भरत गहेरी। धंधी जन धंध छाँडि जब तपत धूप डरत, पसु-पंछी जीव-जंतु छिपत तरुन सहेरी। 'नंददास' प्रभु ऐसे म गवन न कीजै कहुँ, माघ की आधी रात जैसी ये जेठ की दुपहरी ॥

इसी प्रकार नंददास के और भी अनेक पद है, जिनमे सूरदास के पदो के ज्यो के त्यो शब्द, भाव और उनकी रचना-शैली भी प्राप्त होती है। नंददास का भ्रमरगीत भी सूरदासके भ्रमरगीत का विस्तार और उसकी छाया रूप है।

सूरदास का भ्रमरगीत—

'ऊधौ कौ उपदेस' सुनो किनु कान दै।
सुंदर स्याम सुजान पठायौ मान दै॥
कोउ आयौ उत ओर जितै नँदसुवन सिधारे।
वहै बेनु धुनि होइ मनो आये नँद-प्यारे॥
धाई सब गल गाजि कै ऊधौ देखे जाय।
लै आई ब्रजराज मै हो आनँद उर न समाय॥
अरघ आरती तिलक दूब दधि माथे दीन्ही।
कंचन कलस भराय आनि 'परिकरमा' कीन्ही॥
गोप भीर आँगन भई मिलि बैठे जादव जात।
जल झारी आगे धरी हो 'बूझत हरि कुसलात'॥
'कुसल छैम' बसुदेव 'कुसल' छैमहिं कुबजाऊ।
'कुसल' छैम अक्रूर 'कुसल' नीके बलदाऊ॥

नंददास का भ्रमरगीत—

'ऊधौ कौ उपदेस' सुनो ब्रज-नागरी।
रूप सील लावण्य सबै गुन-आगरी॥
× × × ×
ऊर्धासन बैठाय बहुरि 'परिकरमा' कीनी।
× × × ×
बूझन सुधि नँदलाल' की बिहँसत मुख ब्रजबाल।
'नीके है बलबीर जू' बोलत बचन रसाल॥
'कुसल'राम अरु स्याम'कुसल' संगी सब तिनके।
'यदुकुल' सगरे कुसल परम आनँद हैं तिनके॥

इस प्रकार सूरदास के भ्रमरगीत की पद्धति, उसके भाव और शब्दो का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग नददास ने अपने भ्रमरगीत मे सर्वत्र किया है। फिर भी नददास को सूरदास ने इसके लिए कभी टोका नही था। इससे निश्चित होता है कि नददास सूरदास के काव्य-शिष्य थे और सप्रदाय की भावनाओ का ज्ञान भी उनको सूरदास से ही प्राप्त हुआ था। इसी लिए नददास ने अपने अनेक पदो मे सूरदास के पदो के कई वाक्य भी ज्यो के त्यो ले लिये है। उनको शिष्यत्वेण उनके वाक्य, भाव और भाषा का उपयोग करने का सपूर्ण अधिकार था, अन्यथा सूरदास ने जिस प्रकार कृष्णदास अधिकारी को उनके पदो में प्राप्त अपने पदो की मामूली छाया को देख कर भी टोका था‡, उसी प्रकार वे नददास को भी अवश्य ही टोकते। नददास की 'रस मजरी' मे जो नायिकाभेद का उल्लेख मिलता है,उसके मूल में भी कदाचित 'साहित्य-लहरी' की अनुकरणात्मक प्रेरणा हो सकती है।

नददास के अतःसाक्ष्य और सोरो की सामग्री के अनुसधान से भी इस बात की पुष्टि होती है। इसमे कोई सदेह नही कि नददास बल्लभ सप्रदाय मे दीक्षित होकर सूरदास के आदेश पर अपने गृह गये थे। वहाँ पर उन्होने गृहस्थाश्रम का उपभोग किया था। तत्पश्चात् वि० स० १६२० के लगभग वे विरक्त होकर पुनः स्थायी रूप से ब्रज मे आकर रहने लगे थे। उक्त कथन की पुष्टि नददास के अंतःसाक्ष्य और वार्ता के उल्लेख से होती है।

जिस पद से नंददास का गृहस्थ होना और दूसरी बार ब्रज मे आना स्पष्ट होता है, वह यह है—

प्रीति लगी श्री नंदनँदन सो, इन बिनु रह्यौ न जाय री।
सास नँनद कौ डर लागत है, जाउँगी नैन बचाय री॥
गुरुजन, सुरजन, कुल की लाजन, करत सबहि मन भाय री।
'पुत्र कलत्र कहत जिन जाओ, हम तुम लागत पाँय री॥'
जाको सिव नारद मुनि तरसत, श्रुति पुरान गुन गाय री।
मुख देखें बिनु,घट प्रान नहिं रहि हैं 'जाउँगी पौर ब्रजराय री॥'
स्यामसुंदर मुख कमल अमृत रस, पीवन नाहि अघाय री।
'नंददास' प्रभु जीवन धन मिले 'जनम सुफल भयौ आय री॥'

‡ प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, पृ० २०६

उक्त पद मे सामान्यत. गोपीजन का वर्णन दिखायी देता है, किन्तु अर्थानुसंधान से इसमे गोपी-प्रेम-भाव-भावित नंददास का वृत्तांत ही स्पष्ट होता है। इस पद का 'पुत्र कलत्र कहत जिन जाओ' वाला वर्णन श्रीमद्भागवत के रास से संबंधित है। रास के समय गोपीजनो को उनके पुत्र आदि ने बन मे जाने से रोका था; किन्तु इसमे "जाउँगी पौरि ब्रजराय री" वाक्य उस अर्थ के विरुद्ध पड़ता है। श्रीमद्भागवत मे ऐसा कहीं उल्लेख नहीं मिलता है कि "ब्रजराय की पौरि" अर्थात् नंदराय जी के घर जाने से किसी भी गोपी को उसके पुत्र कलत्र आदि ने इस प्रकार विनय के साथ रोका हो। फिर इस पद के अंतिम चरण "जनम सुफल भयौ आय री" भी नंददास के द्वितीय बार ब्रजागमन की ही सूचना देता है, क्यों कि गोपीजनो का जन्म तो श्रीकृष्ण के जन्म और उनके नित्यप्रति के दर्शनादि के कारण प्रारंभ से ही सुफल हो चुका था, अत उनके लिए इस प्रकार का उल्लेख प्रमाण-विरुद्ध और असंगत ज्ञात होता है। इस प्रकार मानना होगा कि नंददास गृहस्थ होने के पश्चात् घर से नाता तोड कर द्वितीय बार ब्रज मे आकर स्थिर रूप से रहे थे, जिसका समय वि० सं० १६२० के आस-पास का, वार्ता मे वर्णित "जयति रुकमनि नाथ पद्मावती प्राणपति" वाले कथन से, सिद्ध हो सकता है। ब्रज के विरह सूचक पदो से भी नंददास के द्वितीय बार ब्रजागमन की पुष्टि होती है।

नंददास अपनी गृहस्थी को छोड कर ब्रज मे आये थे, तभी तो उनके भाई तुलसीदास को उन्हे समझाने के लिए ब्रज मे आना पडा, जिसका समय वि० सं० १६२६ गत पृष्ठो मे लिखा जा चुका है। इससे सूरदास और नंददास का विशिष्ट सांप्रदायिक एवं साहित्यिक संबंध भी ज्ञात हो सकता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि वार्ता मे उनके दुबारा ब्रज मे आने का स्पष्ट कथन क्यों नहीं मिलता? इसका उत्तर वार्ता की कथात्मक शैली है। इस शैली मे ऐतिहासिक उल्लेखो का क्रमबद्ध विवरण न मिलना स्वाभाविक है।

अब 'साहित्य-लहरी' के रचनाकाल का निश्चय करना हमारे लिये शेष रह जाता है। उक्त पद के "मुनि पुनि रसन के रस लेख। दसन गौरी-नंद कौ लिखि सुबल संवत पेख" से कुछ विद्वान इसकी रचना का समय वि० सं० १६०७ करते है। कुछ विद्वान अब १६१७ और कुछ १६२७ भी करने लगे हैं। इस भिन्नता का कारण 'रसन' शब्द के अर्थ का मतभेद है। हमारे मत से ज्योतिष के अनुसंधान एवं 'रसन' शब्द की वास्तविकता के आधार पर उसको 'एक' संख्यावाची मानना अधिक समीचीन कहा जायगा,

क्यो कि "रसन के रस" अर्थात् जिह्वा का षट् रस अर्थ ही प्रामाणिक है। कुछ विद्वान "मुनि सुन रसन के रस लेख" ऐसा पाठ भी उपस्थित करते है। इसके आधार पर 'सुन' का अर्थ ० और 'रसन के रस' का अर्थ ६ करने से १६०७ संवत् स्पष्ट होता है। यहाँ पर हम इस रचना के उपर्युक्त हेतु का ऐतिहासिक अनुसंधान करना उचित समझते है, जिससे उक्त रचना के निर्माण-काल पर विशेष प्रकाश पड सकेगा।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि इसकी रचना नंददास के के हितार्थ की गयी थी। इसके लिए नंददास के वल्लभ सप्रदाय मे प्रवेश करने का समय निश्चित करना आवश्यक होगा।

नंददास के पुत्र का नाम कृष्णदास, रामपुर का नाम श्यामपुर आदि उल्लेख भी सोरो सामग्री द्वारा प्राप्त होते है, और उससे यह भी ज्ञात होता है कि नंददास ने वि० स० १६१३ मे अपना विवाह किया था। इस अनुसंधान से उनका ब्रज से आना निश्चित होता है।

नंददास तुलसीदास के छोटे भाई थे। इसकी पुष्टि गोकुलनाथ जी के प्रत्यक्ष वचनों से होती है, अत. तुलसीदास के जन्म के अनंतर ही उनका जन्मकाल माना जा सकता है। यद्यपि तुलसीदास का जन्म वि० स० १५८९ प्रायः सभी विद्वानों ने मान लिया है, फिर भी वह किसी प्रामाणिक और प्राचीन सूत्र से पुष्ट नहीं है, अत. तुलसीदास के जन्म का निश्चित समय अभी संदिग्ध ही कहा जावेगा। यदि हम तुलसीदास का जन्म संवत् १५८९ मान ले, तब नंददास का जन्म उसके बाद मानना उचित होगा। सोरो-सामग्री और वार्ता के अनुसंधान से नंददास का जन्म स० १५९० माना जा सकता है। तभी वि० सं० १६१३ मे उनके विवाह वाला कथन और उससे पूर्व उनका किसी संघ के निरीक्षण मे ब्रज आदि स्थानो मे जाना संभव हो सकता है। वार्ता से ज्ञात होता है कि नंददास किसी संघ के निरीक्षण मे तुलसीदास द्वारा सर्व प्रथम यात्रा को भेजे गये थे अत: उस समय वे शायद वयस्क नही थे, ऐसा ज्ञात होता है। फिर भी वे तरुण अवस्था मे प्रवेश कर रहे थे, जिससे उनकी लौकिक आसक्ति का वर्णन वार्ता द्वारा प्राप्त होता है। इन सब अनुसंधानो पर विचार करते हुए प्रथम ब्रजागमन के समय उनकी आयु ज्यादा से ज्यादा १८ वर्ष की मानी जा सकती है। इस अनुमान से उनका प्रथम ब्रजागमन वि० स० १६०७ के आस-पास का स्पष्ट होता है। यही समय उनका वल्लभ संप्रदाय मे प्रवेश करने का है। इस कच्ची अवस्था और लौकिक आसक्ति के कारण ही गोसाई जी ने उन्हे

सूरदास जैसे सिद्ध कोटि और विरक्त ज्ञानी भक्त के पास रखा था। अवश्य ही उस समय तक वे संस्कृत विद्या के विशेष ज्ञाता हो चुके थे, जिसकी सूचना वार्ता और उनकी रचनाओ से भी प्राप्त होती है।

सूरदास ने नंददास के मन के अनुकूल विषय को साहित्य-लहरी द्वारा उपस्थित कर उनकी श्रीमद्भागवत के प्रति निष्ठा दृढ़ की, जिसके कारण उनका मन श्रीमद्भागवत की कृष्ण-लीलाओ मे क्रमश एकाग्र होता गया। सूरदास के उपदेशानुसार ही उन्होने गृहस्थी का भी उपभोग किया था, जिससे उनकी लौकिक आसक्ति सर्वथा निर्मूल हो गयी थी।

इस प्रकार के अनुसंधान से साहित्य-लहरी का समय वि० स० १६०७ ज्ञात होता है। उक्त अनुसंधान के कारण यह मान लिया जाय कि नददास के गृह जाने के अनंतर सूरदास ने समय-समय पर अन्य रस आदि के कुछ विशेष पदो की रचना कर वि० स० १६१७ मे इसकी पूर्ति की, तब भी उक्त विवरण मे 'हेतु' की कोई असगति नही दिखलायी देती है। अथवा नददास के दूसरी बार ब्रज मे आने पर उन्होने इसकी रचना स० १६२७ में की थी—ऐसा भी माना जाय, तब भी कोई असगति नही दिखलायी देती है। इसकी रचना उपर्युक्त संवतो में से किसी भी संवत मे मान ली जाय, तब भी उक्त प्रमाणो से यह निश्चित है कि साहित्य-लहरी की रचना का मूल हेतु नंददास थे।

३. सूरसागर—यह सूरदास की प्रामाणिक और सर्व प्रधान रचना है। इसकेदो संस्करण अभी तक प्रकाशित हुए है–एक बबई वेंकटेश्वर प्रेस से,दूसरा लखनऊ नवलकिशोर प्रेस से। पहले संस्करण मे श्रीमद्भागवत के प्रथम से द्वादश स्कध पर्यंत के पद है। दूसरे मे केवल दशम के पूर्वार्द्ध की लीलाओ के ही पद है। इन दोनो मे सब मिलाकर करीब ५००० पद हैं। लखनऊ वाले संस्करण के प्रारभ मे कुछ नित्य-कीर्तन के भी पद है, जिनमे सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियो की रचनाएँ भी है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूरसागर के अपूर्ण संस्करण मे उक्त दोनों मुद्रित प्रतियों के अतिरिक्त अन्य हस्तलिखित प्रतियो से कुछ विशेष पद बढाये गये है। उक्त सभा को प्रथम से द्वादश स्कंध वाले संस्करण की सब से ज्यादा प्राचीन प्रति स० १७५३ की लिखी हुई काशी से प्राप्त हुई है। इसी प्रकार केवल दशम पूर्वार्द्ध वाले सस्करण की एक प्राचीन प्रति वि० सं० १६६७ की उदयपुर मे है। इन दोनो प्राचीन प्रतियो से उक्त संस्करणों की प्राचीनता सिद्ध होती हैं।

उपलब्ध मुद्रित एव हस्तलिखित प्रतियो के अध्ययन से यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह श्रीमद्भागत का न तो अनुवाद है, न इसमे उसकी प्रथम से द्वादश स्कध की कथाओं का पूर्ण समावेश ही हुआ है। फिर भी हमे इस विषय पर सूरसागर मे सूरदास का निम्न कथन मिलता है—

व्यास कहे सुकदेव सो द्वादस स्कध बनाइ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ॥

(स्कध १, पद २२५)

इस उल्लेख से जान पडता है कि सूरदास ने द्वादश स्कध पर्यंत की कथाओ को, जो व्यास जी द्वारा कथित हुई है, गाया है।

इन दोनो विरोधाभास वाले कथनो का एक अविरुद्ध निष्कर्ष यह हो सकता है कि श्री बल्लभाचार्य जी ने व्यास जी की जिस समाधि भाषा को प्रमाण रूप माना है, उसी का सूरदास ने गायन किया है।

श्री बल्लभाचार्य जी के मतानुसार श्रीमद्भागवत मे त्रिविध भाषा है—लौकिकी, परमत और समाधि। लौकिकी भाषा उसे कहते है, जो सूत जी द्वारा ऐतिहासिक चरित्र रूप से कही गयी है। परमत भाषा उसे कहते है, जो अन्य ऋषि-मुनियों के विभिन्न मतो के रूप मे उपस्थित की गयी है। समाधि भाषा उसे कहते हैं, जो व्यास जी को समाधि में प्रत्यक्ष अनुभव हुआ था, उसी के वर्णन रूप मे, व्यास-शुकदेव द्वारा कही हुई है। महाप्रभु जी ने इसी समाधि भाषा को प्रमाण चतुष्टय मे स्वीकार किया है‡। यह भाषा भक्तिमार्ग का मूल है। इसी के आधार पर चारो भक्ति-संप्रदायो की विविध भावनाओ का विस्तार हुआ है। संभव है सूरदास ने अन्य भाषाओ की अनावश्यक कथाओ आदि पर ध्यान न दिया हो। इसी प्रकार परमत स्वरूप कर्म-ज्ञान वाले वर्णनों की भी उपेक्षा की गयी हो। भक्ति मे आवश्यक ऐसे कर्म-ज्ञान का तो सूरदास ने वर्णन किया ही है, जिनके फलस्वरूप ईश्वर मे प्रेम बढाने वाले कर्म और ब्रह्म के माहात्म्य सूचक अनेक प्रसंग और वर्णन प्राप्त होते है। सूरदास का हेतु श्रीमद्भागवत वर्णन से भगवान् की भक्ति और उनकी अनेक लीलाओ का कथन करना मात्र था—ऐसा ज्ञात होता है। इसीलिए सूरसागर की कथाओ मे स्कधानुक्रम होते हुए भी प्रत्येक प्रसंग या अन्य वर्णनों का भागवत-क्रम पूर्णतः अपेक्षणीय नहीं समझा गया है।

‡ 'समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्'। (निबंध)

सूरसागर के अध्ययन से दूसरी बात यह ज्ञात होती है कि श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध से द्वादश स्कंध पर्यंत की प्रत्येक प्रमुख कथा को वर्णनात्मक रीति से बड़े पदों मे भी गाया है। उनके अंतर्गत जहाँ कही ईश्वर का माहात्म्य अथवा उनकी भक्ति के उल्लेखनीय वर्णन आते हैं, वहाँ सूरदास ने तद्विषयक अनेक छंदों मे स्फुट पदों की रचना द्वारा प्रसंगो को ऐसा भावपूर्ण और रोचक बना दिया है, जिनसे श्रोता के हृदय मे भक्ति का अनायास प्रादुर्भाव होता है। इन स्थानो मे सूरदास ने श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य पुराण, महाभारत आदि का भी आश्रय लिया है। इसके लिए 'द्रौपदी सहाय' तथा इसी प्रकार के अन्य पदो को देखना चाहिए। इससे भागवत की अपेक्षा भी सूरसागर विशेष आकर्षक और उपयोगी सिद्ध होता है।

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूरदास का अभिप्राय सूरसागर की रचना द्वारा 'माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेह' रूप भक्ति का वर्णन और विकास करना मात्र है, और उसमे वे पूर्णत. सफल भी हुए हैं। यह एक विकल्प है।

दूसरा विकल्प यह भी हो सकता है कि जब सूरदास सूरसागर के प्रारंभ मे यह स्पष्ट कहते है कि—

व्यास कहे सुकदेव सों द्वादस स्कंध बनाइ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ॥

तब संभव है उन्होंने समस्त श्रीमद्भागवत का ही अनुवाद किया हो, किंतु उसके 'सहस्त्रावधि' पद होने के कारण उसकी आद्योपांत प्रतिलिपि न हो सकने से उसमे से मुख्य-मुख्य अंशों को किसी ने संगृहीत कर लिया हो और उसी की फिर अनेक प्रतिलिपियाँ होती रही हो, जो आज-कल उपलब्ध है।

इस अनुमान की पुष्टि सूरसागर की अनेक प्रतियो के पदो का मिलान करने से भी होती है। सूरसागर की उपलब्ध प्रतियो में दशम-स्कंध के पद ही विशेष रूप से मिलते है, किंतु काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट मे सं० १७६८ की एक ऐसी प्रति का विवरण दिया गया है, जिसमें दशम-स्कंध का केवल १ पद है, और द्वादश स्कंध के १७४९ पद है। इससे ज्ञात होता है कि अन्य स्कंधो के भी अनेक पद रचे गये होंगे, जो इस समय किसी कारणवश उपलब्ध नही हो रहे है।

जो भी हो, 'सूर-सारावली" के 'सार' वाले उल्लेख से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि—

(१) सूरदास ने अपने गुरु श्री वल्लभाचार्य जी से श्रीमद्भागवत तत्व का उपदेश प्राप्त कर उसकी अनेक विध हरि लीलाओं को गाया था, जिनका आधार श्रीमद्भागवत और उसके अनुकूल अन्य पुराण, महाभारत, रामायण, पंचरात्र और संहितादि रहा है। ये लीलाएँ कथात्मक शैली की है। ऐसा ज्ञात होता है कि इनको उन्होंने अपने सेवकों को उपदेशार्थ गाया था।

(२) सम्प्रदाय की नित्य और वर्षोत्सव की लीलाओं को प्रति वर्ष नवीन भाव, छंद और वर्णन की विभेदता से सूरदास ने श्रीनाथ जी के सन्मुख स्वतः उद्‌गार रूप से गाया था।

सभव है ये दोनों संग्रह प्रारंभ मे भिन्न-भिन्न रूप मे लिखे जाते हो और पीछे किसी ने उन्हे एक कर दिया हो, जो आज द्वादश स्कंधात्मक और दशम पूर्वार्द्ध के रूप मे उपलब्ध होते हैं।

द्वादश स्कंधात्मक उपलब्ध संस्करण निम्न लिखित पदो के अनुसंधान से सूरदास के बाद का संकलन निश्चित होता है। सूरसागर के जो पद अप्रासंगिक है, उनका ज्ञान उनके अध्ययन से स्वतः हो जाता है।

उदाहरणार्थ संख्या १६ से २२३ तक के पद स्पष्टतः सूरदास के दीनता, आश्रय और विनय आदि के है। इनका उस स्थान की कथा से कोई संबंध ज्ञात नही होता है। इनमे सूरदास के व्यक्तिगत उद्‌गार प्रकट हुए है। यथा—

महा मोह में पर्‌यौ 'सूर' प्रभु काहे सुधि बिसरी ॥ पद १६ ॥
असरन सरन 'सूर' जाँचत है को अब सुरति करावै ॥ पद १७ ॥

इसी प्रकार अन्य स्थानों मे प्राप्त कई पद अप्रासंगिक है। इनसे सूरसागर के इस संस्करण का संकलन सूर के अनंतर किसी व्यक्ति द्वारा हुआ है, यह स्पष्ट ज्ञात होता है।

इस मान्यता के आधार पर सूरसागर के नवीन संस्करणों मे भागवत के क्रमानुसार परिवर्तन करना चाहिए। इसके स्पष्टीकरण के लिए यहाँ सूरसागर-प्रथम स्कंध के कुछ पदों पर विचार किया जाता है।

(प्रथम स्कंध)

प्रथम अध्याय—

सूरसागर के ३, ४, ५, ६, ७, ६, १०, ११, १२, १३, १४, १५ संख्या वाले पद मंगलाचरण (भागवत) के श्लोक में वर्णित निर्गुण स्वरूप की सगुण लीलाओं का बोध कराने वाले हैं। ये सब पद सूरसागर संख्या २,

वाला पद—"अविगत गति कछु कहत न आवै" के अंतिम चरण वाले "तातें सूर सगुन-पद गावै।" कथन का विस्तार रूप है। इससे भगवान का अनवगाह्य माहात्म्य, 'कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथा कर्तुं म सर्व सामर्थ्य रूप' तथा च भक्त-वत्सलता शरणागत-वत्सलता आदि गुण भी प्रकट होते है।

"माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिक. स्नेहो भक्तिरिति"–इस प्रकार की आचार्य प्रतिपादित भक्ति को हृदयस्थ करने के लिए प्रथम 'ईश्वर का माहात्म्य', फिर उनके दिव्य गुणो का जानना जरूरी है। इसीलिये सूर ने भागवतोक्त भगवल्लीला वर्णन के पूर्व मगलाचरण वाले श्लोक के भक्ति-पक्ष को स्पष्ट किया है। यह कथन "सत्यं परम धीमहि" का ही भाष्य है—यदि ऐसा कहा जाय तो यथार्थ होगा।

उक्त संख्या वाले पदो मे ८ वॉ पद "प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ" सूर-सागर के उक्त प्रसंग से असंबद्ध है। वार्ता के अनुसार सूरदास ने इस पद का कथन अपने अंतिम समय मे गो० विट्ठलनाथजी के लिए किया था। इसकी सत्यता "बदन प्रसन्न कमल सन्मुख ह्वै देखत हो हरि जैसे" इत्यादि पंक्तियो से स्पष्ट होती है। इसके प्रत्यक्षदर्शी वचन हरि के सदृश किसी अन्य व्यक्ति के लिए कहे हुए स्पष्ट प्रतिभासित हो रहे है।

सूरसागर के १६ से २२३ संख्या तक के स्फुट पद दीनता, आश्रय और विनय विषयक हैं, जो अप्रासंगिक हैं। सूरसागर का २२४ संख्या वाला पद भागवत के द्वितीय श्लोक मे प्राप्त उसके कथा-माहात्म्य के अनुकूल है। भागवत तृतीय श्लोक "निगम कल्पतरु" के अनुसार यहॉ पर सूरसागर का 'निगम कल्पतरु' वाला पद देना आवश्यक था। इसी प्रकार सूरसागर का 'सुत व्यास सो हरिगुन सुने' वाला सं० २२८ का पद भागवत के ४-५ श्लोक के अनुसंधान से यहॉ देना आवश्यक था।

द्वितीय अध्याय—

इसके बाद "व्यास कह्यौ जो सुक सो गाय" यह शुक के जन्म की कथा वाला सं० २२६ का पद भागवत श्लोक २ के व्याख्यान रूप होने से आवश्यक है। इसमे शुकदेव का वर्णन आने से सूरदास ने अन्य पुराणो से शुक के जन्म की कथा का आद्योपांत वर्णन किया है।

तृतीय अध्याय—

इसमें भगवान के अवतारो का वर्णन है। सूरदास ने इन अवतारो मे व्यास का सबसे प्रथम वर्णन पद सं० २२६ मे किया है। भागवत के श्लोकों

में जहाँ व्यास-जन्म का अत्यत सूक्ष्म उल्लेख है, वहाँ सूरदास ने उसका बडे रोचक ढ ग से विस्तार के साथ वर्णन किया है। उसमे "देखो काम प्रताप अधिकाई। कियौ परासर बस रिषिराई॥ प्रबल शत्रु आहै यह मार। यातै स तो चलौ सँभार॥' —इस प्रकार उपदेश भी दिया है। यहाँ अन्य अवतारो के उल्लेख वाला पद भी होना चाहिए था।

चौथा, पाँचवाँ, छटा अध्याय—

व्यास जी क असं तोष का विशद वर्णन—'भयौ भागवत जा परकार।'' स० २३० के पद मे है। इसमे भागवत की महिमा और नारदजी के चरित्र का सकेत भी है। श्लोक २८ से ३७ तक के अतर्गत लीला-कीर्तन का माहात्म्य है। इन्हे सूरदास ने पद स० २३१ से २३५ तक नाम माहात्म्य के रूप मे गाया है। फिर विदुर-गृह-गमन और द्रौपदी-वस्त्र-हरण के पद २३७ से २५६ तक के वर्णनो मे सूरदास ने उस भक्ति की महिमा के उत्कर्ष को दृष्टांत द्वारा स्पष्ट किया है। इन पदो मे सूरदास ने अनेक प्रकार से भक्ति को प्रकट किया है। इसके अध्ययन से हृदय द्रवीभूत हुए बिना नही रह सकता है।

सात से पद्रह अध्याय—

इन अध्यायो मे भागवत के मुख्य अधिकारी परीक्षित के जन्म से स बंधित और पांडव के उत्तर गमन विषयक महाभारत की कथा है। इसके वर्णन मे सूरदास ने पद सं० २६० से २६१ तक पांडव-राज्याभिषेक का समय संक्षिप्त एव रोचक ढ ग से गाया है।

इनके वर्णन में सूरदास ने भागवत के अध्यायो के क्रम का अनुसरण नही किया है, क्यों कि ऐसा करने से कथा मे रोचकता और सरलता नही आ सकती थी।

भीष्म के कथन के तत्वरूप से सूरदास ने २६२ से २६५ तक के स्फुट पद और गाये है। स० २६६ का पद अप्रासगिक है। स० २६७ से २८० तक मे भक्त-वत्सलता का वर्णन है। इनमे अर्जुन-दुर्योधन का कृष्ण गृह-गमन, भीष्म के प्रति दुर्योधन के वचन, भीष्म-प्रतिज्ञा आदि का कथन किया गया है। पद २८२, २८३ मे कुंती-स्तुति का वर्णन है, जो अध्याय ८ के अनुकूल होने के कारण पहले दिया जाना चाहिए। पद २८१ मे द्वारिका-गमन का वर्णन है, जो भागवत अध्याय १० के अनुकूल है। इसी प्रकार पद स० २८४ से २९८ तक का वर्णन भागवत क्रम के अनुकूल एव प्रासंगिक है, किन्तु स० २९९, ३०५, ३०६ और ३२५ वाले पद अप्रासंगिक है।

आज कल कई विद्वानों का ध्यान सूरसागर का प्रामाणिक संस्करण निकालने की ओर गया है, किंतु उनको सूरसागर का मूल स्वरूप निश्चित करने में बड़ी कठिनाई ज्ञात होती है। हमने अपने मतानुसार सूरसागर के मूल स्वरूप का निर्देश किया है। यदि इस प्रकार के परिवर्तन और संशोधन के अनुसार सूरसागर का संपादन किया जाय तो पूर्व विकल्प भी संगत हो जायगा और इससे श्रीमद्भागवत की संगति भी मिल जायगी। इस प्रकार के संपादन में विनय तथा नित्य एवं नैमित्तिक वर्षोत्सव वाले लीला-पदों को भिन्न-भिन्न रूप से परिशिष्टों में देना होगा। इनके अतिरिक्त प्रासंगिक एवं विशिष्ट स्फुट रचनाओं का संपादन उनके वृत्त के साथ स्वतंत्र रूप से करना उचित है। इस प्रकार संपादन होने पर ही हम सूरसागर के मूल रूप की वास्तविकता के अधिक निकट पहुँच सकेंगे। संपादन के पूर्व सूरदास के पदों की विशेष खोज भी नितांत आवश्यक है।

अब यहाँ पर सूरदास की उन १४ कृतियों पर भी विचार करना है, जिनको हमने सूरसागर के अंतर्गत उनकी प्रामाणिकता रचनाएँ माना है।

भागवत भाषा, दशमस्कंध भाषा, सूरसागर-सार, सूर-रामायण—इन रचनाओं का उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में भी मिलता है। इनके नाम और परिचय से ये स्पष्टतया सूरसागर की ही अंश ज्ञात होती है। सूर-रामायण सूरसागर के नवम स्कंध के राम-विषय पदों का संकलन है।

मानलीला और राधारसकेलिकौतुहल—ये दोनों रचनाएँ श्रीनाथजी के मंदिर में आज तक गायी जाती है। 'मानलीला' में मान के स्फुट पदों का संग्रह है। 'राधारसकेलिकौतुहल' का दूसरा नाम 'मान-सागर' भी है, जो मान का विस्तृत वर्णन करने वाली बड़ी रचना है। यह मंदिरों में ग्रहण आदि के समय गायी जाती है।

गोवर्धनलीला—इसमें एक सौ से भी ज्यादा पद है, जो श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की कथा के विस्तृत अनुवाद रूप है, अतः इस रचना का समावेश भी सूरसागर के अंतर्गत हो जाता है। इसको सरस लीला भी कहते है। सूरदास के गोवर्धन-लीला विषयक फुटकर गेय पद भी प्राप्त है, जो अन्नकूट के समय मंदिरों में गाये जाते हैं।

दान लीला—सूरदास की तीन बड़ी-बड़ी दान लीलाएँ प्राप्त हैं, जो 'ब्रजनागरी' के नाम से प्रसिद्ध है। ये मंदिरों में गायी जाती है। दानलीला के अन्य स्फुट पद भी प्राप्त होते है।

भँवर गीत—यह सूरदास की प्रसिद्ध और प्रशंसनीय रचना है। इसके भी तीन बडे-बडे पद उपलब्ध है, जो श्रीमद्भागवत दशम स्कध के विस्तृत अनुवाद है। इनका समावेश सूरसागर के ही अतर्गत हो जाता है।

नाग लीला—यह भी सूरदास की प्रामाणिक रचना है और श्रीमद्-भागवत दशम स्कध की कथा से सबधित है। इसका समावेश भी सूरसागर के अन्तर्गत हो जाता है।

ब्याहलो—इसके कई पद सूरसागर और बल्लभ सप्रदाय की कीर्तन पुस्तकों मे उपलब्ध है। इसका एक विस्तृत पद चौपाई और गीतिका छद मे भी उपलब्ध होता है। ये सब पद सप्रदाय के मंदिरो मे देव प्रबोधिनी को गाये जाते है। इस रचना मे राधाकृष्ण के विवाह का वर्णन है।

प्राणप्यारी—इस रचना को सूरसागर के अतर्गत नही पाने से डॉ० दीनदयालु गुप्त ने इसे सदिग्ध माना है, किंतु यह रचना सप्रदाय के मदिरो मे राधाष्टमी के अनंतर निश्चित समय मे और निश्चित रूप मे गायी जाती है। इसको श्याम-सगाई भी कहते है। यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है और इसका समावेश सूरसागर के अतर्गत होना चाहिए।

दृष्टिकूट के पद और सूर-शतक—ये सूरदास के दृष्टिकूट पदो के स्फुट संग्रह है। संभवतः ये दोनो एक ही रचना के उभय रूप है। सूर-शतक मे सूरदास की दृष्टिकूट शैली के १०० पदों का सूरसागर मे सग्रह किया गया है। इनकी टीका भी संग्रहकार ने ही की है। सूर-शतक के निम्न लिखित मगलाचरण से उसका परिचय इस प्रकार मिलता है—

श्री 'गोवर्धनधरन' जय करन सरन जन मोद।
वृंदारक वंदित सकल वृंदा विपिन विनोद॥
'श्रीवल्लभ' 'विट्ठल पदन वंदित विसद विचार।
बढ़त सुविद्या बुद्धि बल विनसत विकट विकार॥
भक्तन के पद हिय धरत जिय कौ प्रियकर होत।
तम तजि उत्तमता उदित विदित जगत कौ पोत॥
यह संसार असार मे हरि-कीर्तन सुखसार।
कहे करत सबहून लो बड़े उबर बिसार॥
उपकारक हे सबन कों हेतु अर्थ समुझाय।
तातें गाये भक्त जन भाषा सरल सुभाय॥

सूरदास तिनमे भए जगत 'जगत ज्यों सूर'।
गाये सब विधि करि सुजस हरिलीला रस पूर ॥
जिनके पद मे 'गूढ' बहु 'अर्थ भाव' कौ व्यग ।
सूझि परे जेते तिते संग्रह कियौ सुसग ॥
श्री बल्लभकुल सकल की कृपा पाय अनुकोस ।
'भाग नगर' दच्छिन दिसा कियौ सुमति निरदोस ॥
"बालकृष्ण" की बीनती सुनिए रसिक सुपथ ।
लीजै सुमति सुधार कै "सूर सतक" यह ग्रंथ ॥

यह बालकृष्ण कवि श्रीगुसांई जी के २५२ सेवको मे से थे। उनकी वार्ता "दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता" मे है। इसमे उनको भागनगर दच्छिण के रहने वाला ब्राह्मण कहा है। यह कवि श्रीगुसांई जी का सेवक होने के कारण सूरदास का भी समकालीन था। कवि की उपस्थिति का समय उसके माला-प्रसंग के इस पद से जाना जा सकता है—

बल्लभकुल मे कलहस कुल कलसा। भक्ति मर्यादा राखी, चारो वेद बदै साखी तिलक और माल पहरे सांचे तुलसा॥ कलियुग मे कीरत भई तिहुँ लोक जस गावै नारी नर घर-घर सरसा। 'बालकृष्ण' बलिहारी कहाँ लों कहै तिहारी गोकुलनाथ चिर जियो कोटि बरीसा॥

इस पद से कवि की स्थिति श्री गोकुलनाथ जी के माला-प्रसंग के समय अर्थात् वि० स० १६७७ पर्यंत तो अवश्य थी—ऐसा निश्चित होता है। कवि ने 'सूर-शतक' मे सूरदास के दृष्टिकूट वाले १०० पदों का अर्थ किया है। काशी नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट मे लिखा है—

"यह टीका तथा संग्रह श्रीबल्लभ संप्रदाय के आचार्य काशीस्थ गो० गोपाललाल जी के शिष्य बालकृष्ण ने अपने गुरु की आज्ञा से गुजरात भागनगर मे कियें†।"

रिपोर्ट का यह उद्धरण भ्रमात्मक है। गुजरात मे भावनगर नाम का कोई ग्राम नही है। बल्लभ संप्रदाय मे मुसलमानो के नामों से संबंधित ग्राम एवं नगरो का उच्चारण नही होता है, इसलिए जिस प्रकार अहमदाबाद को राजनगर कहते हैं, उसी तरह दच्छिण हैदराबाद को 'भागनगर' कहते है। यह नाम आज तक वहाँ की जनता मे भी प्रसिद्ध है। अत. जैसा पहले कहा

† अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृ० १७४

जा चुका है, इसका सग्रह और इसकी टीका सूरदास के प्रायः समकालीन और श्री गुसाई जी के सेवक बालकृष्ण कवि ने की है। यह रचना भी सूरसागर का ही अश है। इसकी अनेक प्रतियाँ सम्प्रदाय मे सर्वत्र प्राप्त है। इसका मुद्रण बबई से प्रकाशित ठाकोरदास वाली "दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता" के अत मे भी हो चुका है।

इस प्रकार सूर-सारावली, साहित्य-लहरी और सूरसागर सूरदास की प्रमुख रचनाएँ है। सूरदास की जिन १४ छोटी रचनाओ का ऊपर उल्लेख किया गया है, वे वास्तव मे सूरसागर के ही अतर्गत है। उपर्युक्त तीनो प्रमुख रचनाओ के अतिरिक्त सूरदास की ४ स्वतत्र रचनाएँ और है, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

४. सूरसाठी—वार्ता के अनुसार सूरदास ने इसकी रचना एक बनिया के लिए की थी, अतः यह एक स्वतत्र रचना है। सूरसागर मे जिस स्थान पर यह प्राप्त होती है, वहाँ इसकी असंगति स्पष्ट ज्ञात होती है।

५, सूर पच्चीसी—वार्ता के अनुसार इसकी रचना सूरदास और अकबर की भेंट के समय हुई थी, अतः यह भी एक स्वतत्र रचना है।

६, सेवाफल—महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के सस्कृत ग्रथ "सेवाफल" के विवरण स्वरूप सूरदास ने इसकी रचना की थी। महाप्रभु जी ने अपने 'सेवाफल विवरण' नामक सस्कृत ग्रंथ मे कहा है—

"सेवायाः फलत्रयं। अलौकिकसामर्थ्यं, सायुज्य,सेवैग्योगिर्दहो वा वैकुण्ठादिषु।'

सूरदास रचित इस सेवाफल मे भी 'वैकुण्ठादिषु' का विशेषत स्पष्टीकरण हुआ है, अतः यह भी एक स्वतत्र रचना है।

७. सूरदास के पद—इसमे सूरदास के स्फुट पदो का सग्रह है। सूरदास ने मदिर मे प्रार्थना आदि के रूप मे तथा कतिपय व्यक्तिओ को वैराग्य आदि का उपदेश देते हुए जिन छोटे-छोटे पदा की रचना की थी, उन सबका इसमे समावेश हो जाता है। सूरसागर के प्रासंगिक वैराग्यादि के पद इन पदों से भिन्न समझने चाहिए। इन दोनों प्रकार के पदो का पृथक्करण इनके अध्ययन से हो सकता है। शयन के अनंतर और मगला-आरती के पूर्व जो दीनता, आश्रय, और विनय आदि के पद मदिरो मे गाये जाते है, जिनमे कई स्थानो पर आत्म-चारित्रिक उल्लेख भी आ गये है, वही पद इस रचना के अतर्गत है।

सूरदास की समस्त रचनाओ पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वे स्वतत्र और परतंत्र दो प्रकार की है । उनकी स्वतत्र रचनाओ मे आत्मानुभूति और भावानुभूति के सजीव वर्णन मिलते है, जिनके कारण वे साहित्य-गगन के सूर्य माने गये है । उनकी परतत्र रचनाएँ श्रीमद्भागवत आदि ग्रथो के अनुवाद रूप है । इनमे भी जहाॅ मनोवैज्ञानिक ढग का कथन हुआ है, वहाॅ सूरदास की वर्णन-शैली के कारण वे परतत्र होते हुए भी चमत्कृत हो गयी है, जैसा कि भ्रमरगीत आदि से ज्ञात होता है । जिन परतत्र रचनाओं मे केवल वर्णनात्मक कथन है, वहाॅ कुछ शिथिलता भी दिखलायी देती है ।

प्रामाणिकता की परीक्षा—

सूरदास नाम के कई कवि हुए है, अत. उनकी रचनाओ का सूरसागर मे मिल जाना स्वाभाविक है। इसके लिए सूरदास कृत रचनाओ की प्रामाणिकता की जाॅच करना नितांत आवश्यक है । अष्टछापी सूरदास कृत रचनाओं की प्रामाणिकता की जाॅच उनकी रचना-शैली, भाषा-शैली, भाव, सिद्धात और विचारो की विशिष्टता के कारण सरलता पूर्वक हो सकती है । वल्लभ सप्रदाय के मदिरो मे परपरागत प्रचलन और सार्थक शब्द-योजना सूरदास के प्रामाणिक पदों की मुख्य पहचान है । सार्थक शब्द-योजना की शैली सूरदास के पदों की विशिष्टता है, जो अन्य कवियो की रचनाओ मे प्रायः कम मिलती है । सूरदास की सार्थक शब्द-योजना का कुछ परिचय हम गत पृष्ठो में उनके अधत्व के सबंध मे दे चुके है ।

रचना-परिमाण—

सूर-सारावली के 'एक लक्ष पदबद' वाले उल्लेख से अनेक विद्वानो ने अनुमान किया है कि सूरदास ने एक लाख पदों की रचना की थी । हम गत पृष्ठो मे सूर-सारावली पर लिखते हुए यह स्पष्ट कर चुके है कि उपर्युक्त उल्लेख सख्यावाची नहीं है । फिर भी परंपरागत जनश्रुतियो और वार्ता के प्रमाण से यह ज्ञात होता है कि सूरदास ने लाख-सवालाख पदों की रचना की थी ।

अनुसंधान करने पर अब तक सूरदास कृत ८-१० हजार से अधिक पद प्राप्त नही हुए है, इसलिए उनके द्वारा लाख-सवालाख पद-रचना की बात अविश्वसनीय सी ज्ञात होती है । कुछ विद्वानो ने सूरदास के रचना-काल का हिसाब लगा कर यह सिद्ध किया है कि उनकी नेत्र-विहीनता और श्रीनाथ जी के मदिर मे प्रति दिन एक नया पद गाने के कारण उनके द्वारा लाख-सवालाख पद-रचना की बात संभव भी ज्ञात नहीं होती ।

अवश्य ही इस समय सूरदास कृत ८-१० हजार से अधिक पदों प्रसिद्ध नही है । इसके अतिरिक्त इसमे भी संदेह है कि पूर्ण अनुसंधान के अनंतर भी उनके रचे हुए लाख–सवालाख पद कभी मिल सके । फिर भी हम यह देखना चाहते है कि उनके द्वारा इतने अधिक पद रचने की बात सभव भी है या नही ।

सूरदास के चरित्र-प्रकरण मे लिखा जा चुका है कि वे अपनी ३१ वर्ष की आयु मे महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के सेवक हुए थे। इससे पूर्व वे प्राय. १८ वर्ष की आयु से ३१ वर्ष की आयु तक अपनी स्वामी अवस्था मे विनय-दीनता आदि के पदो द्वारा अपने शिष्य-सेवको को उपदेश दिया करते थे । यह अवस्था यदि १३ वर्ष तक मानी जाय, और इस समय उन्होने प्रति दिन कम से कम एक पद की भी रचना की हो, तो वल्लभाचार्य जी की शरण मे आने से पूर्व वे कम से कम ४५०० पदो की रचना कर चुके थे ।

श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में आने के पश्चात् सूरदास श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा मे रहे थे । गत पृष्ठों मे लिखा जा चुका है कि उनका श्रीनाथ जी के यहाँ कीर्तन-सेवा मे रहना वि० सं० १५६७ से प्रारभ होता है । इससे पूर्व केवल कुंभनदास श्रीनाथ जी के यहाँ कीर्तन किया करते थे, किंतु वे गृहस्थ होने के कारण आठो दर्शनो मे उपस्थित नही रह सकते थे। इस आवश्यकता की पूर्ति महाप्रभु जी ने सूरदास को श्रीनाथ जी के यहाँ स्थायी रूप से कीर्तन-सेवा में रख कर की थी । तब से सूरदास श्रीनाथ जी के मुख्य कीर्तनकार हुए । इस वृत्तांत के आधार पर श्रीनाथ जी के सन्मुख तब से नित्यप्रति आठो समय के कम से कम नये आठ कीर्तन भी गाये गये मान लिये जाँय, तब भी सूरदास ने प्रति वर्ष २८८० नये कीर्तनों की रचना की होगी।

यह संभव नहीं कि आशु कवि अपने बनाये हुए अमुक पदो का ही श्रीनाथ जी के सन्मुख नित्य प्रति पाठ करते हो । यह बात सूरदास जैसे प्रकृत आशु कवि के लिए तो और भी असभव मानी जायगी । चूंकि श्रीनाथ जी सूरदास के इष्टदेव थे और सूरदास उनके सच्चे भक्त थे, इसलिए अपनी भक्ति के उद्रेक मे अनेक भावों द्वारा नित्य प्रति नये पदो की रचना कर श्रीनाथ जी को सुनाना और रिझाना ही उनका मुख्य ध्येय था । फिर सूरदास के हृदय मे भगवल्लीलाओं की अनेक तरगें भी उठती रहती थीं, जिनको वे तत्काल पद-रचना द्वारा व्यक्त करते थे। इन सब बातो का विचार करने पर यह सरलता से समझा सकता है कि सूरदास जिस पद को एक बार गा लेते थे, उसको फिर नही गाते थे ।

उक्त २८८० कीर्तनो मे यदि आधे कीर्तन कुभनदास के भी मान लिए जॉय, तब भी सूरदास प्रतिवर्ष श्रीनाथ की सेवा विषयक १४४० पद नये रचकर अवश्य गाते थे। इस सख्या का क्रम तब तक माना जायगा, जब तक कि परमानददास श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा मे नियुक्त नही हुए थे।

महाप्रभु जी ने वि० स० १५७७ मे परमानददास को सूरदास के साथ श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा करने की आज्ञा दी थी, अत. वि० स० १५६७ से १५७७ पर्यंत के ११ वर्ष मे सूरदास ने पूर्व हिसाब से कम से कम १५८४० नये पद अवश्य रचे होगे। इस प्रकार वि० सं० १५७७ तक सब मिलाकर सूरदास २०००० से भी ऊपर पदो की रचना कर चुके थे।

परमानददास की नियुक्ति के पश्चात् हम कीर्तन के पदो की सख्या को तीन भागो मे विभाजित कर देगे। परमानददास वि० स० १५७७ से श्रीनाथ जी की सेवा मे नियुक्त हुए थे, अत· तब से अष्टछाप की स्थापना तक सूरदास के प्रति वर्ष लगभग ६०० पद मान लेना आवश्यक है।

महाप्रभु जी ने कृष्णदास को श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा नही दी थी। शरण मे लेने के बाद उनको प्रारभ मे भेंट उगाहने की सेवा दी गयी थी। इसके बाद उनको भडारी और अत मे अधिकारी बनाया गया। इसलिए अष्टछाप की स्थापना के पूर्व हम उनको श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा का साझीदार नही मान सकते है।

अष्टछाप के छीतस्वामी, गोविंदस्वामी और चतुर्भुजदास को भी हम तब तक कीर्तन-सेवा का साझीदार नहीं मानेंगे, जब तक अष्टछाप की नियमित स्थापना नही हुई थी। हॉ! उनको सहायक रूप मे कीर्तन करने की आज्ञा अवश्य मिली होगी।

वि० सं० १६०२ मे गो० विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की थी, अतः वि० स० १५७७ से वि० सं० १६०२ पर्यंत के २५ वर्षो मे प्रति वर्ष के ६०० पदो के हिसाब से सूरदास ने २२५०० पद और पद रचे होगे। इस प्रकार अष्टछाप की स्थापना के समय तक सूरदास सब मिलाकर लगभग ४२५०० पदो की रचना कर चुके थे।

अष्टछाप की स्थापना के अनतर प्रति वर्ष के २८८० पदों के ८ भाग कर देने से सूरदास द्वारा गाये हुए पदो की संख्या ३६० होती है। यह क्रम सं० १६०२ से सूरदास के अतिम समय स० १६४० तक चलता रहा था, अतः इस अवधि के ३६ वर्षों मे सूरदास द्वारा रचे हुए पदों की संख्या १४०४०

होती है । इस सख्या को पूर्व सख्या मे जोड देने से सूरदास द्वारा रचे हुए पदो की कुल सख्या ५६५४० हो जाती है । यह संख्या सूरदास द्वारा नित्य गाये जाने वाले श्रीनाथ जी के आठो समय के कम से कम पदो की है ।

गो० विट्ठलनाथ जी ने वि० स० १६०२ से सेवा मार्ग का जो विस्तार किया था, उसमे अनेक वर्षोत्सव बढाये गये थे । इनके अनुसार डोल, दुतिया पाट, सवत्सर, गनगौर, रामजयती, महाप्रभु का जन्मोत्सव, अक्षय तृतीया, नृसिंह जयती, ज्येष्ठाभिषेक, षष्ठपंडगू, पवित्रा एकादशी, रक्षा, वामन जयती, साँझी, दशहरा, शरदोत्सव, धनतेरस, रूप चतुर्दशी, दिवाली, अन्नकूट, भैया-दोज, गोपाष्टमी, प्रबोधिनी, व्रतचर्या, मकर संक्रांति, बसत, होरी आदि उत्सवो का प्रचलन आरंभ हुआ । इनके अतिरिक्त फूलमडली, खसखाना, हिंडोरा, रथ और श्री विट्ठलनाथ आदि के जन्मोत्सव भी इस वर्षोत्सव की सेवा मे सम्मिलित है । रथ के उत्सव के सिवाय अन्य सब उत्सव गो० विट्ठलनाथ जी ने सं० १६०२ मे आरभ कर दिये थे ।

गो० विट्ठलनाथ जी ने इन उत्सवों के दिन भी निश्चित कर दिये थे । जैसे जन्माष्टमी की बधाई श्रावण कृष्णा ४ से आरभ होकर एक मास और चार दिन पर्यंत गायी जाती है । इस हिसाब से उक्त उत्सवो का सब मिलाकर समय प्रायः ९ मास का होता है ।

९ मास पर्यंत के इन विशेष उत्सवो का यदि एक-एक पद भी सूरदास का मान लिया जाय, तब भी उनके रचे हुए वर्ष भर के २७० पद होते है । इस हिसाब से उनके रचे हुए ३९ वर्ष के १०५३० पद और होते है । इस सख्या को पूर्व संख्या मे जोडने से सूरदास के सब मिला कर ६७०७० पद होते है ।

अब सेवा–पद्धति के अनुसार शयनोत्तर गाये जाने वाले दीनता-आश्रय के पदों का हिसाब भी लगाना चाहिये । यह प्रणाली महाप्रभु के समय से ही रखी गयी है, अतः सूरदास कृत प्रतिदिन कम से कम एक पद भी दीनता-आश्रय का माना जाय, तो उनके ७३ वर्ष के सांप्रदायिक काल मे रचे हुए २६२८० पद और होते है । पूर्व संख्या मे इस संख्या को जोडने से सूरदास द्वारा रचे हुए पदो की संख्या ९३३५० निश्चित होती है ।

अब रह जाते हैं सूरदास के आगरोक्त लीला, सिद्धांत और अनुवादात्मक पद । उन्होने श्री भागवत की तृणावर्त-अघासुर वध, माटी भक्षण, कालीयदमन आदि लीलाओं मे से प्रत्येक के अनेक पद रचे है, जिनका हिसाब लगाना

भी कठिन है। यदि इन पदो को पूर्व सख्या मे जोड़ा जाय तो सूरदास द्वारा रचे हुए लाख–सवालाख पदो की बात प्रमाणित हो जाती है। हमने सूरदास के पदो की जो आनुमानिक गणना की है, वह कम से कम है और प्रामाणिक आधार पर है, अतः उसमे शका के लिए कोई स्थान नही है।

अब यहाँ पर अष्टसखाओ कृत सांप्रदायिक सेवा के प्राप्त पदो की सक्षिप्त सूची दी जा रही है जिसमे सूरदास द्वारा रचित कई उत्सवो के आवश्यक पद भी नही मिलते है। कुछ के एक-दो ही पद मिलते है, इस लिए यह मानना होगा कि सतत खोज करने पर सूरदास के असंख्य पद और मिलने चाहिएँ। बल्लभ सम्प्रदाय के स्फुट कीर्तन ग्रंथों मे भी अभी सूरदास के ऐसे अनेक पद उपलब्ध होते है, जो सम्प्रदायिक मंदिरो के अतिरिक्त अन्यत्र प्रसिद्ध नहीं है। इनका सकलन करने से भी सूरदास के प्राप्त पदो मे कई हजार पद और बढ़ जावेगे।

अष्टछाप कृत सेवा विषयक वर्षोत्सव के पद।

वर्षोत्सव	रचयिता	पदो का प्रथम चरण
जन्माष्टमी —	सूरदास	ब्रज भयौ महरि कें पूत
,,	कुंभनदास	नंद महरि के पूत भयौ
,,	परमानंददास	जन्म फल मानत जसोदा माय
,,	कृष्णदास	गोकुल बरषत आनंद मेहा
,,	गोविंदस्वामी	नंद महरि के आज बधाई
,,	चतुर्भुजदास	नैंन भरि देखो नंदकुमार
,,	नंददास	पुत्र भयौ है आज श्री नंदराज के
पलना —	सूरदास	दिव्य कनिक कौ बन्यौ पालनौ
,,	परमानददास	झुलावै सुत को महरि पलना
,,	कृष्णदास	परम मनोहर बन्यौ है पलना
ढाढी —	सूरदास	नंद जू मेरे मन आनंद भयौ
,,	कृष्णदास	नंद जू हौ ढाढी वृषभान गोप कौ
,,	गोविंदस्वामी	आज नद-गृह कौतुक सुनिकैं
,,	चतुर्भुजदास	हौं ब्रजराज की ढाढिन
,,	नददास	रंग भीनी ढाढ़नि अति रुचि सौं चारु मंगलरा गावै हो

वर्षोत्सव	रचयिता	पदो के प्रथम चरण
मास दिना—	सूरदास	तेल भरे भरे केस सौंधे
अन्नप्राशन—	सूरदास	आज कान्ह करि हैं अन्न प्रासन
,,	परमानन्ददास	अन्न प्रासन दिन नदलाल कौ करत यसोदा माय
कर्णछेदन —	सूरदास	कान को कर्णछेदन हाथ सुहारी भेली गुर की
,,	परमानददास	गोपाल के वेध कर्ण को कीजै
,,	कृष्णदास	आयौ कर्ण वेध दिन नीकौ
नामकरण—	परमानददास	जहाँ गगन गति गर्ग कह्यौ
मृतिका भक्षण -	सूरदास	मोहन तैं माटी क्यो खाई
,,	परमानंददास	देखो गोपालजू की लीला ठाटी
करवट—	परमानददास	करवट लई प्रथम नॅदनदन
ऊखल—	सूरदास	निगम साखि देखो गोकुल हरी
,,	परमानददास	गोविंद बार-बार मुख भाखै
बाललीला—	सूरदास	आँगन स्याम नॅचावहि यसोमति रानी
,,	परमानंद	रानी तेरे लाल सौं कहा कहूँ
,,	कृष्णदास	खेउ लाल मेरे लाल खिलौना
,,	गोविंददास	गोपी नॉचति गोद लै गोविद
,,	चतुर्भुजदास	माई लौन देहु जो मेरे लालहिं भावै
,,	नंददास	माधौ जू तनिक सौ बदन सदन सोभा कौ
पूतना वध—	सूरदास	देखो यह विपरीत नई
शकटासुर वध—	सूरदास	नृपति बचन यह सबन सुनायो
तृणावर्त—	सूरदास	सोभित सुभग नंदजू की रानी
दावानल—	सूरदास	अबके राखि लेहु गोपाल
कालीयदमन—	सूर	अति कोमल तनु धरचौ कन्हाई
चंद्रावली जू की बधाई—	कृष्णदास	चद्रभान के नवनिधि आई
राधिका जी की बधाई—	सूरदास	आज बरसाने बजत बधाई
,,	कुंभनदास	प्रगटि नागरी रूप निधान
,,	परमानंद	राधा जू कौ जनम सुन्यौ मेरी माई
,,	कृष्णदास	श्रीवृषभान रायजू के आँगन
,,	गोविंददास	सुनियत रावल होत बधाई
,,		

वर्षोत्सव	रचयिता	पदो के प्रथम चरण
राधिका जी की बधाई—	छीतस्वामी	सकल लोक की सुंदरता वृषभान गोप के आई
,,	चतुर्भुजदास	तू देखि सुता वृषभान की
,,	नंददास	बरसाने ते दौरी नारी एक नद भवन मे आई
राधाजी की ढाढी—	कृष्णदास	महिर जू ! याचन तुम पै आयौ
राधिका जी कौ पलना—	सूरदास	अहो मेरी लाडिली कुँवरि
,,	परमानंददास	रसिकिनी राधा पलना झूलै
,,	कृष्णदास	लडैती पालने झूलै
राधिकाजी की बाललीला	सूरदास	खेलन के मिस कुँवरि राधिका
,,	परमानंददास	एहै पीत पट कहाँ ते पायौ
नवल नागरी—	सूरदास	नवल नागरी सब गुन आगरी
दान—	सूरदास	मोहन तुम कैसे हो दानी
,,	कुंभनदास	हमारौ दान देहो गुजरैटी
,,	परमानंददास	पिछौडी बॉहन देहो दान
,,	कृष्णदास	नीके दान निबेरत हो
,,	गोविंदस्वामी	गोरस बेचन लै चली
,,	छीतस्वामी	अहो बिधना तोपै अचरा पसार
,,	चतुर्भुजदास	कहो किन कीनो दान दही को
,,	नंददास	लाल तुम परे हमारे ख्याल
वामन जी—	सूरदास	राजा मै दानी सुनि कैं आयौ
,,	परमानंददास	वामन आये बली पै मॉगन
,,	गोविंदस्वामी	प्रगटे श्री वामन अवतार
साँझी—	सूरदास	राधाप्यारी कह्यौ सखीन सो
देवी पूजन—	सूरदास	व्रत धरि देवी पूजी
,,	परमानंददास	श्री राधे कौन गौर तै पूजी
,,	गोविंदस्वामी	पूजन चलो हो कदम बन देवी
मुरली—	सूरदास	मुरली हरि को अपने बस कीने माय
,,	परमानंददास	याते माई भवन छांडि बन जैये
,,	कृष्णदास	बाँसुरी बाजत मदनमोहन
,,	चतुर्भुजदास	नंदलाल बजाई बांसुरी श्री यमुना जू के तीर री

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
करखा—	सूरदास	परदेसनि नारि अकेली
,,	कृष्णदास	पॉय तौ पूजि चले रघुनाथ
,,	नंददास	कपि चल्यौ सीय सुधि को
दशहरा (जवहारा)—	परमानंददास	सरद रितु सुभ जान अनूपम
,,	गोविंदस्वामी	विजय दसमी और विजय महूरत
,,	चतुर्भुजदास	जवारे पहिरत श्री गोवर्धननाथ
रास—	सूरदास	हा हा हो हरी नृत्य करो
,,	कुंभनदास	यह भाँति नॉचत नॉच नई
,,	परमानंददास	बन्यौ रास मंडल मे माधौ
,,	कृष्णदास	मन लाग्यौ गिरिधर गावै
,,	गोविंदस्वामी	मदनमोहन कमलनयन
,,	छीतस्वामी	लाल संग रास रंग लेत मान
,,	चतुर्भुजदास	प्यारी भुज ग्रीवा मेलि
धन तेरस—	कुंभनदास	आज माई धन धोवत नंदरानी
,,	परमानंददास	दूध सो स्नान करो मनमोहन
रूप चतुर्दशी—	कृष्णदास	आज न्हाओ मेरे कुँवर कन्हैया
दीपावली—	परमानंददास	आज दिवारी मंगलचार
गाय खिलायबौ—	सूरदास	आज दीपत दिव्य दीपमालिका
,,	कुंभनदास	गाय खिलावत स्याम सुजान
,,	परमानंददास	किलक हँसै गिरिधर ब्रजराय
,,	कृष्णदास	ब्यार बड़ौ करि डार री सारंग
,,	छीतस्वामी	खिरक खिलावत गायन ठाडे
,,	चतुर्भुजदास	गाय खिलायौ चाहत
,,	नंददास	बडे खिरक मे घूँमरि खेलत
हटरी—	सूरदास	सुरभी कान जगाय खरिक बल मोहन बैठे राजत हटरी
,,	परमानंददास	गिरिधर हटरी भली बनाई
,,	गोविंदस्वामी	हटरी बैठे श्री गोपाल
,,	नंददास	दीपदान दै हटरी बैठे नंद बाबा के साथ

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
अन्नकूट—	सूरदास	अपने-अपने टोल कहत ब्रजवासियाँ
,,	कुंभनदास	गोवर्धन पूजन चले री गोपाल
,,	परमानंददास	छैल छबीले लाल कहत नंदराय सों
,,	गोविंदस्वामी	गोवर्धन पूजा को आये सकल ग्वाल लै संग
,,	चतुर्भुजदास	गोधन पूज सबै रँगभीने
इंद्र मान-भंग—	सूरदास	राख लेहु गोकुल के नायक
,,	कुंभनदास	आज कछु बदरन अंबर छायो
,,	परमानंददास	आवो आवो रे भैया
,,	कृष्णदास	बलिहारी गोपाल की
,,	गोविंदस्वामी	ब्रजजन लोचन ही को तारो
,,	छीतस्वामी	सब गोकुल को जीवन गोपाल लाल प्यारो
,,	चतुर्भुजदास	वारी मेरे कान्ह प्यारे
,,	नंददास	कान्ह कुँवर के कर पल्लव पर
गोचारण—	सूरदास	आज अति आनंद ब्रजराय
,,	परमानंदस्वामी	खेलन ही चले ब्रजराई
,,	गोविंदस्वामी	प्रथम गोचारन चले गुपाल
,,	चतुर्भुजदास	टेरत ऊँची टेर गोपाल
,,	नंददास	कैसे कैसे गाय चराइ गिरिधर
देव प्रबोधिनी—	परमानंददास	लाल को सिंगार करावत मैया
,,	कृष्णदास	प्रबोधिनी व्रत कीजै नीको
,,	गोविंदस्वामी	देव जगावत यसोदा मैया
,,	चतुर्भुजदास	बैठे कुंज मंडप मे आय
ब्याह—	सूरदास	मेहदी श्यामसुंदर कें रचि-रचि हाथन पाँय लगावै
,,	परमानंददास	मैया मोहि ऐसी दुलहनि भावै
,,	कृष्णदास	कंकन कुँवर कन्हैया के कर देखि री
,,	नंददास	एक दिन राधे कुँवरि नंद-गृह खेलन आई
मान—	सूरदास	ललन की बातन पर बल जैये
,,	परमानंददास	कुंज भवन में मंगलचार
,,	नंददास	लाडिली न मानें लाल

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
भोगी (मकरसंक्रांति)—	परमानददास	भोगी भोग करन सब रस कौ
,,	कृष्णदास	बन ठन भोगी रस बिलसन को भोर
,,	नददास	भोर भये भोगी रस विलस भयौ ठाडौ
अभ्यग स्नान—	सूरदास	कहत नदरानी गोपाल सो तात को बुलाय लावो बडौ परव उत्तरायन
,,	कुंभनदास	मात जसोदा परव मनावै
फूलमडली —	कुंभनदास	बैठे लाल फूलन के चौवारे
,,	परमानददास	मुकुट की छाँह मनोहर किये
,,	कृष्णदास	देख सखी फूलन अठखभा
,,	गोविंदस्वामी	फूलन की मंडली मनोहर
,,	छीतस्वामी	फूलन के भवन गिरिधरन
,,	चतुर्भुजदास	फूलन की मडली मनोहर बैठे
,,	नददास	फूलन कौ मुकुट बन्यौ फूलन कौ पिछौरा
गनगौर—	परमानददास	क्यो बैठी राधे सुकुमारी
,,	कृष्णदास	ठाडे कुंज द्वार पिय-प्यारी
,,	नददास	छबीली राधे ! तू पूजि लै री गनगौर
रामनवमी—	सूरदास	रघुकुल मे प्रगटे रघुवीर
,,	परमानददास	नौमी के दिन नौवत बाजै
,,	गोविंदस्वामी	मेरौ रामलला कौ सोहिलौ
महाप्रभु की बधाई—	कुंभनदास	बरनो श्री बल्लभ अवतार
,,	परमानददास	श्री बल्लभलाल आँगन निधि खेलन
,,	कृष्णदास	आनँद भयौ लछमण नदकुमार
,,	गोविंदस्वामी	बधाई सब मिलि गावो आज
,,	छीतस्वामी	श्रीबल्लभ जू के देखें जीजैं
,,	नंददास	लछमण-घर बाजत आज बधाई
शृंगार—	सूरदास	पीत पिछौरी कहाँ ते मानो पात अति झीनी
,,	कृष्णदास	सगुन मनाय रही ब्रजबाला
,,	छीतस्वामी	ये ही सुभाव सदा ब्रज बसिवौ

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
ब्यारू—	नंददास	चंदन भवन मधि करत बयारू परोस धरी है कंचन थारी
चंदन—	कुंभनदास	चंदन पहिरत गिरिवरनलाल
,,	गोविंदस्वामी	चंदन पहिर आय हरि बैठे कालिंदी के कूल
,	चतुर्भुजदास	आज बने नँदनंदन री नव चंदन कौ
नरसिंह चतुर्दशी—	सूरदास	तोलौं हौं बैकुंठ न जैहों
,,	परमानंददास	गोविंद तिहारो स्वरूप निगम नेति-नेति गावै
नौका—	परमानंददास	बैठे घनस्याम सुंदर खेवत है नाव
,,	नंददास	चंदन पहिर नाव हरि बैठे
गंगा दशमी—	छीतस्वामी	जय जय श्री सूरजा कलिंद-नंदिनी
,,	नंददास	जय जय श्री यमुना आनंद-कंदिनी
स्नानयात्रा—	सूरदास	यमुना-जल गिरिधर करत विहार
,,	परमानंददास	पूरनमासी पूरन तिथि श्री गिरिधर करत स्नान मन भायौ
,,	गोविंदस्वामी	ज्येष्ठ मास सुदि पून्यौ सुभ दिन करत स्नान गोवर्धनधारी
रथयात्रा—	सूरदास	तुम देखो सखी री आज नयन भर हरि जू के रथ की सोभा
,,	कुंभनदास	रथ बैठे मदनगोपाल
,,	परमानंददास	तुम देखो सखी रथ बैठे गिरिधारी
,,	कृष्णदास	तुम देखो सखी रथ बैठे ब्रजनाथ
,,	गोविंदस्वामी	तुम देखो माई हरि जू के रथ की सोभा
,,	नंददास	देखो माई नंदनंदन रथहिं बिराजे
मल्हार—	सूरदास	बोले माई गोवर्धन पर मुरवा
,,	कुंभनदास	सखी री बूँद अचानक लागी
,,	परमानंददास	उठत प्रात रसना रस लीजै
,,	कृष्णदास	करत कलेऊ किलकत दोउ भैया
,,	गोविंदस्वामी	स्यामहिं देख नाँचत मुदित मनमोहन
,,	छीतस्वामी	बादर झूमि-झूमि बरसन लागे
,,	चतुर्भुजदास	करत कलेऊ किलकत मोहन
,,	नंददास	घुमड रहे बादर सगरी निसा के अहो महरि लाले दीजै जगाय

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
कसूमी छठ—	कुंभनदास	पहरैं सुभग अंग कसूमी सारी
,,	परमानंददास	मोहन सिर धरे कसूमी पाग
,,	कृष्णदास	बरषत मेघ मोर–पिक बोलत
,,	चतुर्भुजदास	ठॉय ठॉय नॉचत मोर सुन-सुन
,,	नंददास	निकसि ठाडी भई री चढ नवल
घटा (गुलाबी)—	सूरदास	रही झुकि लाल गुलाबी पाग
,, (हरी)—	,,	आज अति राजत है री हरे
,, (श्याम)—	,,	स्याम घन कारे-कारे बादर
,, (पीली)—	कुंभनदास	झूलें माई जुगलकिसोर हिंडोरे
,, (श्याम)—	परमानंददास	बन स्याम बिहार करे
,,	कृष्णदास	देखि सखी नीलाबर कौ छोर
,, ,,	चतुर्भुजदास	देखो माई बसन ए रही चटक
,, (गुलाबी)—	नंददास	गुलाबी कुंजन छबि छाई
चूनरी लहरिया—	परमानंददास	देखो माई भींजत रस भरे दोऊ
,,	गोविंदस्वामी	लाल मेरी सुरंग चूनरी देउ
,,	चतुर्भुजदास	स्याम सुन नेरे आए मेह
,,	नंददास	लाल सिर पाग लहेरिया सोहै
हिंडोरा—	सूरदास	राधे जू देखिये बन सोभा
,,	कुंभनदास	हरि संग झूलत है ब्रजनारी
,,	परमानंददास	यह सुख सावन मे बनि आवै
,,	कृष्णदास	रोप्यौ हिंडोरौ नंद-गृह
,,	गोविंदस्वामी	दंपति झूलत सुरंग हिंडोरे
,,	चतुर्भुजदास	पावस ऋतु नीकी लागत
,,	नंददास	हिंडोरे माई झूलत गिरिधरलाल
पवित्रा—	परमानंददास	पहरि पवित्रा बैठे हिंडोरे
,,	कृष्णदास	पवित्रा पहिरे नंदकुमार
कुल्हे—	कुंभनदास	सुरंग कुल्हे रंग अरुन पिछौरा
,,	कृष्णदास	अब ही हौं आई लाल राधे को मनाय

वर्षोत्सव के उपर्युक्त पदों की सूची से ज्ञात होगा कि उसके कई मुख्य विषयों पर सूरदास के दो–एक पद ही उपलब्ध है। किसी–किसी विषय पर तो उनका एक भी पद प्राप्त नही है। अब नित्य सेवा के पदों को देखना चाहिए। नित्य सेवा के निम्न लिखित प्रमुख विषयों पर अष्टसखाओं के अनेक पद मिलते है—

१. श्री यमुना आदि की स्तुति, २ जागरण, ३ कलेवा, ४. मगला-आरती, ५. विविध शृंगार, ६. हिलग, ७ पनघट, ८ खडिता, ९. बाल-लीला आदि, १०. राजभोग, गृह-भोजन, छाक, ब्रज-भक्तों के यहाँ का कुनवारा, छप्पनभोग, बीरी आदि, ११. राजभोग दर्शन, १२. राजभोग-आरती, १३. मान १४. उत्थापन, १५. गोवर्धन, १६. भोग का मान, १७. सध्या-आरती, १८. शृंगार बडा होना, १९. बैयाँ, २० शयन-भोग, २१. शयन की बीरी, २२ शयन के दर्शन. २३. शयन-आरती, २४ पौढ़ना. २५. कहानी, २६. मान, २७. दीनता, आश्रय, विनयादि।

नित्य सेवा के उपर्युक्त विषयों पर सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवियों द्वारा रचे हुए पदों की सूची हम स्थानाभाव के कारण यहाँ पर नही दे रहे है, किंतु वर्षोत्सव की तरह नित्य सेवा के उपलब्ध पदों में भी कई प्रमुख विषयों पर सूरदास के दो-एक पद ही उपलब्ध होते हैं, अथवा किसी–किसी विषय का एक भी पद उपलब्ध नही होता है। इससे सिद्ध है कि सूरदास के असख्य पद अभी छिपे पडे है, जिनको खोज निकालने की अत्यत आवश्यकता है। अतीत की विषम परिस्थितियों ने अन्य प्राचीन कवियों की तरह सूरदास के भी अगणित पदों को अवश्य नष्ट किया होगा, किंतु परिश्रम पूर्वक अनुसंधान करने पर अब भी सूरदास के असख्य पद प्राप्त हो सकते है।

इस प्रकार सिद्ध है कि जनश्रुति और वार्ता के अनुसार सूरदास के रचे हुए चाहे लाख-सवालाख पद इस समय प्राप्त न हो सके, तब भी पूर्ण अनुसंधान होने पर उनके प्राप्त पदों की संख्या अब से कई गुना अधिक हो सकती है।

चतुर्थ परिच्छेद

सिद्धांत-निर्णय



१–सूरदास और शुद्धाद्वैत सिद्धांत

इतिहास और अतःसाक्ष्यों से सूरदास का शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुयायी एवं पुष्टिमार्गीय भक्त होना निश्चित है, तथापि सूरसागर के कतिपय पदों के कारण कुछ विद्वान प्रतिबिंबवाद और वृंदावनी सम्प्रदायों की भक्ति भावना से भी सूरदास को प्रभावित मानते हैं। शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टि–भक्ति के वास्तविक परिचय से उक्त मान्यता नितांत भ्रमात्मक सिद्ध होती है। हम निःसंकोच रूप से कह सकते हैं कि सूरदास की उपलब्ध प्रत्येक रचना शुद्धाद्वैत सिद्धांत और विशुद्ध पुष्टि–भक्ति से ही संपूर्णतः प्रभावित और संबद्ध है।

श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने वेद और भगवान् बादरायण व्यास द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रों से शुद्धाद्वैत सिद्धांत का दोहन किया है, इसलिए उन्होंने इस सिद्धांत के गुरु व्यासदेव को ही माना है†।

सूरदास के पदों में परब्रह्म, अक्षरब्रह्म, जगत्, जीव और माया आदि तत्वों का जो वर्णन किया गया है, वह शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार है। इन पदों के अध्ययन से सूरदास का शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुयायी होना निश्चित होता है। हम यहाँ पर उक्त तत्वों का विवेचन और तत्संबंधी सूरदास के पदों को उपस्थित कर यह बतलावेंगे कि सूरदास ने शुद्धाद्वैत सिद्धांत, पुष्टिमार्गीय भक्ति-भावना और सेवा-प्रणाली का किस प्रकार सफलता पूर्वक वर्णन किया है।

१. परब्रह्म

परब्रह्म का निर्गुण-सगुणत्व—वेद की श्रुतियाँ "नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन" आदि कह कर जिस आत्मा-तत्व को निर्गुण बतलाती है, उसी को शुद्धाद्वैत सिद्धांत में परब्रह्म कहा गया है।

† "व्यासोऽस्माकं गुरुः।" —श्रीवल्लभाचार्यजी

यही ब्रह्म प्रकृतिजन्य धर्मों के अभाव मे जिस प्रकार निर्गुण कहलाता है, उसी प्रकार यह आनंदात्मक दिव्य धर्मों वाला होने से सगुण भी है* । इसी लिए वेद की श्रुतियाँ इसे "आनंदमात्रकरपादमुखोदरादि" रूप मे साकार सगुण भी कहती है† ।

परब्रह्म अर्थात कृष्ण—परब्रह्म के तीन मुख्य धर्म है—सत्, चित् और आनंद, अतः यह "सच्चिदानंद" अथवा "सदानंद" भी कहलाता है । सदानंद का ही पर्यायवाची शब्द 'कृष्ण' है, अत. इसको कृष्ण भी कहा गया है‡ । इस प्रकार वेदांत में जिसको ब्रह्म, हरि, यज्ञ, स्मृति मे जिसको परमात्मा और भागवत में जिसको भगवान् कहा गया है, उसी को शुद्धाद्वैत सिद्धांत मे परब्रह्म कृष्ण कहते है† । ये परब्रह्म अपनी आत्म-माया से सदा आवृत रहते है*, इसलिए ही उनको 'श्रीकृष्ण' कहते है ।

परब्रह्म का विरुद्धधर्माश्रयत्व— शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार श्रीकृष्ण सर्व धर्मो के आश्रय रूप है, इसी लिए वे 'धर्मी" कहलाते हैं । इनमे विरुद्ध धर्म भी एक साथ रहते हैं, यही इनकी विशेषता और विचित्रता है । इनके धर्म भेद सहिष्णु अभेद रूप वाले अर्थात् तादात्म्य भाव वाले होते है, जिस प्रकार सूर्य और उसके प्रकाश की स्थिति रहती है । इनका विरुद्धधर्माश्रय इस प्रकार का है —

ये निर्धर्मक—प्राकृत धर्मों से रहित—होते हुए भी सधर्मक दिव्य आनंदात्मक धर्मो से युक्त है । इसी प्रकार निर्विशेष और निर्गुण होते हुए भी सविशेष और सगुण है । अणु से अणु है और महान् से महान् भी है । अनंत मूर्ति हैं, तथापि एक ही व्यापक हैं । कूटस्थ है, तथापि चल है ।

---

* निर्दोष पूर्णगुणविग्रह आत्मतन्त्रो । निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्चहीन ।
आनंदमात्रकरपादमुखोदरादि. । सर्वत्र च त्रिविध भेद विवर्जितात्मा ॥
(निबंध)

† तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञान मयात् । अन्योन्तर आत्मानन्दमय. । तेनैष पूर्णः ।
सर्वाग्व पुरुषविध एव । तस्य पुरुष विधताम् ।

‡ कृषिर्भूवाचक.शब्दः णश्च निवृतिवाचकः ।तयोरैक्यं परब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥

† परब्रह्म तु कृष्णो हि .. .. । (सि० मु०)

* "माययावृतः" । (पु० स० नाम)

अकर्तृ है. तथापि कर्तृ है। अविभक्त हैं, तथापि विभक्त हैं। अगम्य है, तथापि गम्य है। अदृश्य है, तथापि दृश्य है। ये नानाविध सृष्टिकर्त्ता हैं फिर भी विषम नहीं है। क्रूर कर्म कर्त्ता हैं, फिर भी निर्घृण नही है—गाढ घनीभूत सैंधववत् बाह्याभ्यंतर सदा सर्वदा एक रस है।

इसी प्रकार पूर्णावतार दशा मे—कृष्णावतार के समय मे—वे बालक होने पर भी रसिक मूर्द्धन्य है। स्ववश है, तथापि अन्य (भक्त) वश है। अभीत है, तथापि (भक्त के निकट) भीत है। भक्त सापेक्ष है, फिर भी निरपेक्ष है। चतुर है, फिर भी (भक्त के पास) मुग्ध हैं। सर्वज्ञ है, तथापि (भक्त के पास) अज्ञ है। आत्माराम हैं, फिर भी रमण कर्त्ता है। पूर्णकाम हैं, फिर भी भक्त की कामना पूर्ण करने के लिये कामार्त्त हैं। अदीन है, तथापि भक्त के सन्मुख दीन भाषण करते है। स्वयप्रकाश है, फिर भी (भक्त से अन्यत्र) अप्रकाश है। बहिःस्थ है तथापि अंतःस्थिति करते है। स्वतत्र है, तथापि (भक्त के पास) अस्वतत्र है, पराधीन हैं. परवश है, रसिकवश हैं। अवतार दशा मे वे प्रापचिक धर्म को अंगीकार करते हैं, तथापि अच्युत है, च्युतिरहित है।

इस प्रकार परब्रह्म श्रीकृष्ण विरुद्ध धर्मों के आश्रय रूप होने से* कर्तुम्, अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् सर्व भवन-समर्थ हैं। वे अपने इस रूप का भक्तो को अनुभव कराकर निःसीम माहात्म्य को जगत् मे प्रकट करते है। यही उनकी विचित्रता है। ज्यादा क्या कहे, वे अविकृत होते हुए भी कृपा द्वारा परिणाम रूप होते है†।

सपूर्ण वेदो का अक्षरश प्रामाण्य मानने पर परब्रह्म का यही स्वरूप निर्धारित होता है, और तभी वेद की निर्गुण-सगुण स्वरूप प्रतिपादक श्रुतियो का मतैक्य भी हो सकता है, पौराणिक अवतार भावनाएँ भी तभी संगत हो सकती हैं। इस प्रकार समग्र वेद और शास्त्रो के मतो को एक-वाक्य करने का सपूर्ण श्रेय श्रीमद्वल्लभाचार्य जी को ही प्राप्त हुआ है। इसीलिये उनके मत में आध्यात्मिक विचारों की परिपूर्णता और सुस्पष्टता दिखायी देती है। यही कारण है कि सूरदासादि महान् आत्माएँ भी इस सिद्धांत की अनुयायी हुईं।

सूरदास के पदो में परब्रह्म विषयक वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है—

---

* विरुद्ध सर्व धर्माणामाश्रयो युक्त्यगोचरः। (निबंध)

† "शुद्धाद्वैत सिद्धात प्रदीप"

परब्रह्म का निर्गुण-सगुणत्व—

१. करनी करुनासिंधु की कछु कहत न आवै।
कपट हेतु परसे बकी जननी गति पावै॥
वेद उपनिषद जस कहै, "निर्गुण" हि बतावै।
सोई 'सगुण" होय नंद के दाँवरी बँधावै॥

२. अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगे मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै॥
परम स्वाद सबही जू निरंतर अमित तोष उपजावै।
मनबानी को अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै॥
रूप, रेख, गुण, जाति जुगति बिनु निरालंब मन चकृत धावै।
'सब बिधि अगम' बिचारहि तातें 'सूर' 'सगुण' लीला पद गावै॥

३. अविगत, आदि, अनंत, अनूपम 'अलख' पुरुष अविनासी।
'पूरनब्रह्म', 'प्रगट पुरुषोत्तम' नित' निज लोक बिलासी॥

४. आदि सनातन 'हरि' अविनासी।
'निर्गुण-सगुण' धरैं तन दोई ॥

परब्रह्म अर्थात् कृष्ण-हरि—

कृष्ण-भक्ति करि कृष्णहि पावै।
'कृष्णहिं ते यह जगत प्रगट है 'हरि' में लय ह्वै जावै॥
यह दृढ़ ज्ञान होय जासों सो हरिलीला जग देखै।
तौ तिहि सुख-दुख निकट न आवै, 'ब्रह्म' रूप करि लेखै॥

परब्रह्म का विरुद्ध धर्माश्रयत्व—

१ बलि-बलि चरित गोकुलराय।
दावानल कौ पान कीनों पिवत दूध सिराय॥
पूतना के प्रान सोषे रहे उर लपटाय।
कहति जननि दूध डारत खीझि कछु अनखाय॥
तृणावर्त्त अकास ते गहि सिला पटक्यौ आय।
डरत लालन झुलत पलना खरे देत झुलाय॥
यमल-अर्जुन तोरि, तारे हृदय प्रेम बढाय।
झटक तात पलास पल्लव देहु देत दिखाय॥

कीर पिंजरा देत अंगुरी लेत स्याम भजाय ।
बकासुर की चोंच फारी हरि अचरज लाय ।।
बिना दीपक सदन मे हरि नैकु धरत न पाय ।
अघासुर मुख पैठि निकसे बाल बच्छ जिवाय ।।
हरे बालक बच्छ नव कृत हेत दौरी माय ।
छूटि पसु जब रहत बन मे द्रुमन ढूंढत जाय ।।
लिख्यौ द्वारे नाग कारौ देखि स्याम डराय ।
नृत्य काली-फननि ऊपर सप्त ताल बजाय ।।
धरै गिरिधर दोहनी कर धरत बाँह पिराय ।
सकट भजन प्रसूत कछु जुग कठिन लागत पाय ।।
घोष-नारिन सग मोहन रच्यौ रास बनाय ।
कहति जननी ब्याह की, तब लजत बदन दुराय ।।
वृषभ भंजन, हतन केसी हन्यौ पुच्छ फिराय ।
भजत सखन सनेह मोहन देखि ब्याई गाय ।।
सेष महिमा कहि न आवै सहस रसना पाय ।
एक रसना "सूर" कहा कहै अग अगनित भाय ।।

२. कौन सुकृत इन ब्रजबासिन कौ बदत बिरंचि-सिव-सेष ।
श्रीहरि जिनके हेत प्रगटे मानुष वेष ।।
ज्योति स्वरूप, जगन्नाथ, जगतगुरू, जगतपिता, जगदीस ।
जोग्य जग्य, जप, तप, ब्रत तीरथ सो गृह गोकुल-ईस ।।
जाके जठर लोक-त्रय जल-थल पचत व चोखॉन ।
सो बालक भूलत ब्रज-पलना जसुमति-भवन निधान ।।
एक एक रोम वैराट कूप सम अखिल लोक ब्रह्मंड ।
ताहि उछँग लिऐं मात जसोदा अपने निज भुज दंड ।।
रवि-ससि कोटि कला बिंब लोचन त्रिविध तिमिर भजि जात ।
अंजन देति हेत सुत के, चखु लै कर काजर मात ।।
छितिरति त्रिपद करि, करुनामय बलि छलि दियौ पातार ।
देहरि उलँघ सकत नही सो प्रभु खेलत नंद जू के द्वार ।।
अनुदिन श्रवत सुधारस पंदम चितामनि सी धेनु ।
सो तजि जसुमति कौ पय पीवत भक्तन को सुख दैनु ।।

वेद वेदांत-उपनिषद षट रस अरगै, भुगतै नाँय।
सो हरि ग्वाल-बाल मंडल मे हँसि-हँसि जूठन खाँय॥
वैकुंठ-दायक, कमला-नायक, सुख-दुख जाके हाथ।
काँधे कमरिया-लकुट, नगन पग, वत्स चरावन जात॥
करन हरन प्रभु दाता भुक्ता, विश्वंभर जग जानि।
ताहि लगाय माखन की चोरी बाँधे नँदजू की रानि॥
बकी बकासुर सकट तृणावर्त्त अघ धेनुक वृषभास।
केसी कंस को यह गति दीनी राखे चरनन पास॥
भक्त वत्सल प्रभु पतित उद्धारन रहे सकल भरपूर।
मारग रोकि-परयौ हठि द्वारे पतित-सिरोमनि 'सूर"॥

कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कर्तुम्—

करुनानिधि तेरी गति लखि न परै।
धर्म अधर्म, निषेध अविधहि, करन-अकरनहि करै॥
जय अरु विजय अकर्म कियौ कहँ ब्रह्म स्राप दिवायौ।
असुर योनि दीनी ता ऊपर धर्म-उच्छेद करायौ॥
मुक्ति हेतु योगी स्रम करही असुर विरोधी पावै।
अविगत गति करुनामय तेरी "सूर" कहा कहि गावै॥

परब्रह्म की शुद्ध अद्वैतता—शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार पूर्वोक्त परब्रह्म एक, अखंडित, आदि, अनादि, अद्वैत तत्व रूप है। वह अद्वैत भी पूर्ण शुद्ध रूप वाला है। अर्थात् वह सजातीय विजातीय और स्वगत भेद रहित है[1], इसलिए वह एक रस है।

सूरदास ने परब्रह्म की शुद्ध अद्वैतता का वर्णन निम्न पदों में इस प्रकार किया है—

१. पहले हौं ही हौं एक।
'अमल, अकल, अज, भेद विवर्जित' सुनि विधि विमल विवेक॥

२. राधिका-गेह हरि देह बासी। और त्रियन घर तनु प्रकासी॥
'ब्रह्म पूरन एक, द्वितीय न कोऊ'। राधिका सबै हरि सबै एऊ॥
दीप तें दीप जैसे उजारी। तैसे हि ब्रह्म घर-घर बिहारी॥

---

[1] सजातीयविजातीय स्वगत द्वैत वर्जितम्। (निबंध)

३ ब्रज ही मे बसै आपुन ही बिसरायौ।
प्रकृति पुरुष 'एक' करि जानहु वा तन भेद करायौ।
'द्वैत न जीव एक हम तुम' दोऊ सुख कारन उपजायौ॥

४ सदा 'एक रस' एक अखडित, आदि अनादि अनूप॥

पुरुषोत्तम—शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार निर्गुण परब्रह्म अपनी अनेक शक्तियों के साथ अपनी आत्मा मे निरतर आंतर रमण करता है, इसलिये वह 'आत्माराम' कहलाता है। उसको जब बाह्य प्रकार मे रमण करने की इच्छा होती है तब स्वांतः स्थित दिव्य आनद धर्मों वाले अपने "आधिदैविक" रूप से वह अपनी शक्तियो के साथ बाह्य रमण करता है। यही आनद धर्मो वाला उसका बाह्य प्रकट रूप 'पुरुषोत्तम' कहलाता है। यह परब्रह्म का ही आधिदैविक साक्षात् रूप है, अतः आचार्य श्री ने श्रुतियो मे प्रतिपादित तत्व-परब्रह्म को ही पुरुषेश्वर-पुरुषोत्तम कहा है*। यह सत्यादि सहस्रो नित्य गुणो से युक्त है†, इसलिए यह परब्रह्म का ही सगुण लीला रूप है। इसमे अपरिमित आनद है, इसलिए यह "आनदमय" अथवा 'अगणितानद' कहा गया है। यह काल-पुरुष अक्षरादि से भी पर-उत्तम है, अतः यह पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध है‡।

इसी सूरदास ने पुरुषोत्तम का इस प्रकार वर्णन किया है—

१. अविगत आदि अनत अनूपम अलख पुरुष अविनासी।
पूरनब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी॥

२. सोभा अमित अपार अखंडित आप आतमाराम।
पूरनब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम सब बिधि पूरन काम॥

पुरुषोत्तम की लीला—शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुसार परब्रह्म पुरुषोत्तम मे अनत शक्तियों की निरतर स्थिति रहती है। ये सब शक्तियाँ पुरुषोत्तम के सदा आधीन रहने वाली हैं। जब पुरुषोत्तम बाह्य रूपलीला करते हैं,

* यत्र येन यतो यस्य यस्मैयद्यद्यथा यदा।
स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधान पुरुषेश्वरः। (निबंध)

† सत्यादिगुण साहस्रैर्युक्तमौत्पत्तिकैः सदा। (निबंध)

‡ यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तम।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित पुरुषोत्तमः। (गीता)

तब उनकी शक्तियाँ भी बहिःस्थिति करती है, और विविध रूप, गुण और नामो से उनसे विलास करती है। उन अनन्त शक्तियो मे श्रिया, पुष्टि गिरा, और कांत्या आदि द्वादश शक्तियाँ मुख्य है। ये ही श्रीस्वामिनी चन्द्रावली, राधा और यमुना आदि आधिदैविक रूप और नामों से प्रकट होकर पुरुषोत्तम के साथ ही नित्य-स्थिति करती है। इन द्वादश शक्तियो मे से पुनः अनन्त भाव प्रकट होते है, जो अनेक सखी-सहचरी रूप मे उनके साथ रहते है।

इन शक्तियो के साथ क्रीडा करने के लिए पुरुषोत्तम अपने मे से श्रीवृंदावन, गोवर्धन, यमुना, श्रीगोकुल, पशु, पक्षी और वृक्षादिक को भी प्रकट करते है। ये सब पुरुषोत्तम के आधिदैविक ऐश्वर्य रूप होने से आनंदमय चैतन्य रूप हैं, फिर भी कृष्ण ललित लीला के लिए इन सब ने जडता धारण कर रखी है।

पुरुषोत्तम नित्य होने से इनके धर्म रूप मे लीलाएँ भी नित्य है। इसीलिये ऋग्वेद, तैत्तरीय उपनिषद तथा श्रीमद्भागवतादि मे वर्त्तमान काल की क्रियाओ से इनका वर्णन हुआ है‡।

अपनी इस आनंदमयी नित्यलीला का ज्ञान अन्य को भी हो, इस प्रकार की जब पुरुषोत्तम को इच्छा हुई तब सर्वप्रथम वेद की श्रुतियों की प्रार्थना से उनको इनका दर्शन हुआ। पुनः श्रुतियो की प्रार्थना से सारस्वत कल्प मे व्रज में अवतरित होकर उनको भी इस लीला का साक्षात् आनंद देने का पुरुषोत्तम ने वरदान दिया। कृपायुक्त होकर दिये हुए इस वरदान को पूर्ण करने के लिए ही पुरुषोत्तम व्रज मे श्रीकृष्ण के रूप मे साक्षात् आविर्भूत हुए और श्रुतियाँ व्रज-गोपियो रूप मे प्रकट हुई। पुरुषोत्तम के आविर्भाव से उनका समग्र लीलापरिकर और लीला के स्थान भी व्रज की गोपियों और गोवर्द्धन आदि स्थानो मे अपने आधिदैविक रूप मे प्रविष्ट हुए*। तभी इस भूतल की सामग्री पूर्ण पुरुषोत्तम के भोग-योग्य हुई। साक्षात् गोलोक ने श्रीमद्गोकुल मे प्रवेश किया। गोवर्धन ने इस गोवर्धन

---

‡ १ ता वा वास्तून्युश्मसि ... ऋग्वेद।
२. ते ते धामान्युश्मसि ... तैत्तरीय।
३. बहूनि सन्तिनामानि ... भागवत इत्यादि।

* इस विषय को विस्तृत रूप से समझने के लिए गो० श्री विट्ठलनाथजी रचित "विद्वन्मडन" ग्रंथ देखना चाहिए।

पर्वत मे प्रवेश किया और वृंदावन ने इस वृंदावन में। इस प्रकार समग्र ब्रज तद्रूप हो गया। श्रीकृष्ण–पुरुषोत्तम—और उनके धर्म नित्य होने से उनका यह अवतार और उनकी यह अवतार लीला को नित्यता प्राप्त हुई। इसीलिए श्रीमद्भागवत मे भी श्रीकृष्ण की इन लीलाओं का वर्णन वर्तमान काल का क्रियाओ से हुआ है और बृहद् वामन पुराण मे भी कहा गया है कि "स्त्रियाँ अथवा पुरुषगण भक्ति-भाव से केशव को हृदय मे धारण कर श्रुति की गति को प्राप्त होते है।" इससे यह सिद्ध होता है कि आधुनिक भक्त भी श्रुतिरूप गोपिकाओ के किये हुए भजन के अनुसार यदि श्रीकृष्ण का भजन करे तो वह श्रुतिरूप गोपिकाओं की गति को प्राप्त होता है। इससे भी इन गोपिकाओ की स्थिति का नित्यता सिद्ध होती है। इस प्रकार पुरुषोत्तम की मूल लीला और अवतार लीला का नित्य संबंध सिद्ध होता है।

सूरदास ने इन लीलाओं का वर्णन इस प्रकार किया है—

नित्य लीला का वर्णन—

जहाँ वृंदावन आदि अजर जहाँ कुंज लता विस्तार।
तहाँ विहरत प्रिय-प्रियतम दोऊ निगम भृंग गुंजार॥
रतन जटित कालिंदी के तट अति पुनीत जहाँ नीर।
सारस-हंस-चकोर मोर-खग कूजत कोकिल कीर॥
जहाँ गोवर्धन पर्वत मनिमय सघन कंदरा सार।
गोपिन मंडल मध्य बिराजत 'निसदिन करत विहार॥'

× × ×

धीर समीर बहुत त्यहीं कानन बोलत मधुकर मोर।
प्रीतम-प्रिया बदन अवलोकत उठि-उठि मिलत चकोर॥
अमित एक उपमा अविलोकत जिय मे परत बिचार।
नहिं प्रवेस अज-सिव-गनेस पुनि कितक बात संसार॥
'सहस रूप बहु रूप रूप पुनि एक रूप पुनि दोय।'
कुमुद कली विगसित अंबुजै मिलि मधुकर भागी सोय॥
नलिन पराग मेव माधुरी, सो मुकुलित अब कदंब।
मुनिमन मधुप सदारस लोभित सेवत अज-सिव-अंब॥

× × ×

सुख पर्यंक अंक ध्रुव देखियत कुसुम कद द्रुम छाये ।
मधुर मल्लिका कुसुमित कुंजन दंपति लगत सोहाये ॥
गोवर्धन गिरि रतन सिहासन दंपति रस सुख मान ।
निबिड कुंज जहाँ कोउ न आवत रस बिलसत सुखखान ॥
निसा भोर कबहू नहि जानत प्रेममत्त अनुराग ।
ललितादिक सींचत सुख नैनन जुरि सहचरि बड भाग ॥
यह निकुंज कौ बरनन करिकै वेद रहे पचिहार ।
नेति-नेति कर कहउ सहस विधि तऊ न पायौ पार ॥
दरसन दियौ कृपा करि मोहन बेग दियौ बरदान ।
आगम कल्प रमन तुव ह्वै है श्री मुख कही बखान ॥

नित्य-लीला का भूतल पर प्रागटय वर्णन—

गोपी-पद-रज-महिमा विधि भृगु सो कही । × ×
ब्रज सुंदरी नही नारि, रिचा श्रुति की आहीं ।
मै अरु सिव पुनि शेष, लक्ष्मी तिहि सम नाहीं ॥
अद्भुत है तिनकी कृपा, कहो सु मैं अवगाहीं ।
याहि सुनै जो प्रीति करि, सो हरि पदहिं समाहीं ॥
प्रकृति पुरुष लै भई, जगत सब प्रकृति समाया ।
रह्यौ एक बैकुंठ लोक, जहाँ त्रिभुवन राया ॥
अक्षर, अच्युत, निराकार अविगति है जोई ।
आदि अंत नही जाहि, आदि अंतहि प्रभु सोई ॥
श्रुति विनय करि कह्यौ, सब तुमहि देवा ।
दूरि निरतर तुमहि, जानत निज भेवा ॥
या बिधि बहुरि अस्तुति करी, भई गिरा अकास ।
माँगो बर मन-भावतौ पूरौ सो तुव आस ॥
श्रुतिन कह्यौ कर जोरि सच्चिदानंद देव तुम ।
जो नारायन आदि रूप तुमरौ सु लख्यौ हम ॥
निरगुन रहत जु निज स्वरूप लख्यौ न ताकौ एव ।
मन-बानी तें अगम अगोचर, दिखरावहु सो देव ॥
वृंदावन निज धाम कृपा करि तहाँ दिखरायौ ।
सब दिन तहाँ बसंत कल्पवृक्षन सों छायौ ॥
कुंज सुभग रमनीक तहाँ बेलि सुभग रहे छाय ।
गिरि गोवर्धन धातु मय झरना झरत सुभाय ॥

कालिंदी जल अमृत प्रफुलित कमल सुहायौ ।
नगन जटित दोऊ कूल हंस सारस तहाँ छायौ ॥
क्रीडत स्यामकिसोर तहाँ लिए गोपिका साथ ।
निरखि सुछबि सब थकि रहे तब बोले जदुनाथ ॥
जो मन इच्छा होइ कहौ सो मोहि कृपा कर ।
पूरन करौं सुकाम दियौ मैं यह तुम को वर ॥
श्रुतिन कह्यौ ह्वै गोपिका केलि करें तुव संग ।
एवमस्तु निज मुख कह्यौ . . . . . ॥
कल्प सारस्वत ब्रह्मा जब सृष्टिहि उपावै ।
अरु तिहिं लोकनि वर्ण-आश्रम धर्म चलावै ॥
बहुरि अधर्मी होय नृप, जग अधर्म बढ़ि जाय ।
तब बिधि पृथ्वी सुर सकल विनय करत मोहि आय ॥
मथुरा मंडल भरतखंड निज धाम हमारौ ।
धारौं मैं तहाँ गोप भेष सो तिन्हे निहारौ ॥
तब तुम ह्वै कर गोपिका करो हो मोसो नेह ।
करो केलि तुमसो सदा सत्य बचन मम एह ॥
श्रुति सुनि कै यह बचन, भागि अपुनौ बहु मान्यौ ।
चतवन लागे समय दिवस जो जात न जान्यौ ॥
भार भयौ जब भूमि पर तब हरि लियौ अवतार ।
वे रिचा ह्वै गोपिका हरि सो कियौ विहार ॥
'जो कोउ भरता भाव करि हरि-पद धावै ।'
नारि पुरुष कोउ होय सोई श्रुति-रिचा गति पावै ॥
'तिनकी पद-रज जो कोऊ वृंदावन भुव मांही' ।
'परसै सोऊ गोपिका-गति लहे संशय नांही ॥
भृगु ताते मैं चरन-रज गोपिन की चाहत ।
श्रुति-मत बारंबार हृदय अपने अवगाहत ॥
बंदन विधि सो यो कह्यौ दयौ विधि ऋषिन बताय ।
व्यास कह्यौ वामन पुरान मे सोई "सूर" कह्यौ गाय ॥

अवतार लीला और उसकी नित्यता का वर्णन—

सो श्रुति रूप होय ब्रज मंडल कीनो रास-विहार ।
नवल कुंज में अंस बाहु धरि कीन्ही केलि अपार ॥

पुनि ऋषि रूप राम वर पायौ हरि से प्रीतम पाय।
चरन प्रसाद राधिका देवी उन हरि कंठ लगाय ॥
वृंदावन गोवर्धन कुंजन यमुना पुलिन सुदेस।
'नित प्रति करत बिहार मधुर रस स्यामास्याम सुवेस ॥'

२. अक्षरब्रह्म

अक्षरब्रह्म परब्रह्म का आध्यात्मिक स्वरूप है, इसलिए यह परब्रह्म-पुरुषोत्तम से भिन्न नहीं माना गया है। यह "सच्चिदानंद" रूप भी कहलाता है और इसे पुरुषोत्तम का "चरणस्थान' रूप भी माना गया है। यह ओंकार ज्योति रूप होने से परब्रह्म का धाम रूप भी है, इसीलिए यह परब्रह्म के समान आदि, सनातन, अनुपम और अविगत है, फिर भी इसमें आनंद की कुछ न्यूनता रखी गयी है, अतः यह "गणितानंद' कहलाता है। आनंद की कुछ न्यूनता के कारण ही इस ब्रह्म को अपेक्षा होती है, तब यह अपने में से जीव जगत् आदि का निर्माण करता है।

प्रथम यह काल, कर्म, स्वभाव और अक्षर रूप होता है तथा प्रकृति, जीव और अनेक देवादि रूप होकर सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता रूप भी होता है*। प्रकृति, पुरुष, नारायण आदि सब इन्ही के अंश रूप है। प्रकृति के राजस, तामस और सात्विक गुणों के अधिष्ठाता ब्रह्मा, शिव और विष्णु भी इसी ब्रह्म के अंशात्मक विविध रूप है।

अक्षर ब्रह्म के ही सत् धर्म से जगत्, चित् से जीव और आनंद से अंतर्यामी का आविर्भाव होता है।

सूरदास ने अक्षरब्रह्म विषयक वर्णन सारावली आदि मे इस प्रकार किया है—

आदि, सनातन, एक अनूपम, अविगत अल्प अहार।
ॐकार आदि वेद असुरहन, निर्गुण, सगुण अपार ॥१॥

---

*(१) उत्पत्तिस्थितिनाशाना जगत कर्तृ वै बृहत्। (अणुभाष्य)
(२) व्यष्टि, समष्टि, पुरुषो जीव भेदास्त्रयो मता।
अन्तर्याम्यक्षर कृष्णो ब्रह्मभेदास्तथा परे ॥
स्वभाव कर्मकालाश्च रुद्रोब्रह्माहरिस्तथा ॥ (निबंध)
(३) अक्षरस्य स्वभाव कर्मकाला भेदा रुद्रादय। (निबंध)

अंतर्यामी रूप—

(१) हरि स्वरूप सब घट पुनि जानो।
ईख मांहि ज्यों रस है सानो॥
त्योंही तन रस आतम सार।
ऐसी विधि जानो संसार॥

(२) अपने आप करि प्रकट कियौ है हरि "पुरुष अवतार"।
माया कियौ छोभ बहु विधि करि "काल पुरुष" के अंग।
राजस तामस सात्विक बहु विधि "प्रकृति-पुरुष" कौ संग॥

ब्रह्मा-रुद्र विष्णु विषयक वर्णन —

(१) हरि सौ ठाकुर और न जन को।
तिहुँ लोक भृगु ह्वै आयौ तब कह्यौ या विधि लोगन को॥
ब्रह्मा "राजस" कौ अधिकारी, शिव "तामस" अधिकारी।
विष्णु "सत्व" केवल अधिकारी विप्र लात उर धारी॥

(२) विष्णु रुद्र विधि एकहि रूप। इन्हे जान मत 'भिन्न' स्वरूप॥

(३) यज्ञ प्रभु प्रगट दिखायौ।
विष्णु विधि रुद्र मम रूप ए तीनि हू,
दच्छ सो वचन यह कहि सुनायौ॥

(४) हरि-पद प्रीति करै सुख पावै।
उत्पत्ति, पालन, प्रलय, हेतु हरि तीन रूप धरि आवै।
विष्णु रुद्र ब्रह्मा हरि सब प्रेरक अंतरजामी सोई॥

(५) प्रभु तुम मर्म समुझि नहीं परयौ।
जग सिरजत, पालत, सहारत पुनि क्यों बहुरि करयौ॥

३. जगत्

जगत् परब्रह्म का भौतिक स्वरूप है। ब्रह्म ही अपने सत् धर्म से २८ तत्व रूप होकर इस जगत् स्वरूप हुए हैं†, इसलिए शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार यह समग्र जगत् ब्रह्मरूप है, अतः यह ब्रह्म के समान सत्य है। क्वचित् जहाँ कहीं पुराणों में जगत् को मिथ्या कहा गया है, वह केवल

† अष्टाविंशति तत्त्वानां स्वरूपं यत्र वै हरि.। (निबंध)

वैराग्य, सिद्धि अर्थ ही है—ऐसा आचार्यजी का मत है† । इस सिद्धांत के अनुसार जगत् और ससार दो भिन्न-भिन्न तथ्य है। जगत् २८ तत्त्व रूप है और ससार जीव की अविद्या से माना हुआ 'मै' और "मेरेपने" की कल्पना मात्र है, अतः आचार्यजी ने ससार को मिथ्या कहा है। ज्ञान द्वारा जीव की मुक्ति होने पर संसार की निवृत्ति होती है, किंतु जगत् ज्यो का त्यो स्थित रहता ही है* । यही इस भेद को समझने के लिए प्रबल युक्ति है। इस बात को श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के अतिरिक्त किसी और ने भी नही समझा था। प्रलय के समय जगत का तिरोभाव होना है, नाश नही। जिस प्रकार घट के भीतर का आकाश घट के टूट जाने से बृहद् आकाश मे समा जाता है, उसी प्रकार जगत् प्रलय के समय मे अपने मूल तत्व रूप से ब्रह्म मे समा जाता है। इस प्रकार वस्तुत. जगत् का नाश न होने के कारण भी उसकी ब्रह्म रूपता सिद्ध होती है।

सूरदास के पदो मे भी जगत् विषयक इसी प्रकार का वर्णन मिलता है —

२८ तत्व की उत्पत्ति—

(१) खेलत खेलत चित्त मे आई सृष्टि करन विस्तार ।
अपुन आपु करि प्रगट कियौ है हरि "पुरुष अवतार"।।
कीने तत्व प्रगट तेहि छन सबै "अष्ट अरु बीस" ।

(२) "आदि निरंजन निराकार" कोउ हतौ न दूसर ।
रचो सृष्टि विस्तार "भई इच्छा" इह औसर ।।
निर्गुण तत्व ते महतत्व महत्तत्व ते अहंकार ।
मन इंद्रिय शब्दादि पंची ताते कियौ विस्तार ।।
शब्दादिक तें पंचभूत सुंदर प्रगटाये ।
पुनि सब को रचि अंड आप मे आप समाये ।।
तीन लोक निज देह में राखे करि विस्तार ।
आदि पुरुष सोई भयौ जो प्रभु अगम अपार ।।

(३) कृष्ण-भक्ति करि कृष्णहिं पावै ।
"कृष्णहिं तें यह जगत प्रगट है,हरि मे लय ह्वै जावै" ।।

---

† मायिकत्व पुराणेषु वैराग्यार्थमुदीर्यते । (निबंध)

* संसारस्यलयौ मुक्तौ न प्रपञ्चस्य कर्हिचित् । (निबंध)

जगत का सत्यत्व—

(१) जग प्रपंच हरि रूप लहै जब दोष भाव मिटि जाही ।
"सूरदास" तब कृष्ण रूप है हरि हिय मे रहे आही ॥

(२) ब्राह्मण मुख क्षत्रिय भुज कहिये वैश्य जघनहि जान ।
शूद्र चरण यह विधि "जग हरिमय" यही ज्ञान दृढ मान ॥
दोष दृष्टि यहि विधि नही उपजै "आनदमय" दरसाय ।
"सूरदास" तब हरि हिय आवै प्रेम मगन गुन गाय ॥

वैराग्यार्थ—

हरि इच्छा करि जग प्रगटायौ ।
अरु यह जगत जदपि हरि रूप है "तउ माया कृत जानि ।"
ताते मन निकारि सब ठां ते "एक कृष्ण मन आनि ॥

ससार की नि सारता—

(१) अरे मन मूरख जनम गँवायौ ।
"यह संसार सुआ सेमर ज्यो" सुंदर देखि लुभ्यायौ ।
चाखन लाग्यौ रूई उडि गई "हाथ कछू नही आयौ ।"

(२) कहाँ तू कहाँ यह देह विचार ।
.... "स्वप्न तुल्य यह संसार" ॥
मै मेरी यह हरि की माया । सफल जीव जग यही नचाया ॥

निम्न पंक्तियो से सूरदास पर प्रतिबिबवाद का जो आरोप किया जाता है वह सर्वथा भ्रमात्मक है—

जो हरि करै सो होई कर्ता नाम हरि ।
ज्यो दर्पण प्रतिबिब त्यो सब सृष्टि करि ॥

प्रतिबिंबवाद मे, माया मे ब्रह्म का जब प्रतिबिंब पडता है, तब माया से जगत् की उत्पत्ति मानी गयी है। इससे माया का कर्तृत्व सिद्ध होता है। किंतु यहां तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "जो हरि करै सो होई कर्ता नाम हरि" इससे हरि को ही कर्ता माना गया है ।

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय मे पहले कहा जा चुका है कि परब्रह्म अपने आध्यात्मिक ज्योति स्वरूप अक्षरब्रह्म के सत् धर्म से जगत, चित् धर्म से

† प्रपञ्चो भगवत्कार्यं स्तद्रूपोमाययाऽभवत् । (निबन्ध)

जीव और आनंद धम से अंतर्यामी रूप होते है। इसी बात को "ज्यों दर्पण प्रतिबिंब त्यों सब सृष्टि करि।"—इस प्रकार कहा है। यहाँ दर्पण के स्थान पर ज्योति रूप अक्षर है और उसमे स्थित ब्रह्म के साकार रूप से इस सृष्टि की रचना की गयी है। इस साकारत्व के सूचनार्थ ही प्रतिबिंब शब्द का प्रयोग किया गया है। अपने साकारत्व के प्रतिबिंब रूप मे इस सृष्टि की रचना की है, अन्यथा प्रतिबिंबवाद मे माया को मलीन कहा गया है, इसलिए स्वच्छता के अभाव में उसमे न तो प्रतिबिंब ही पड सकता है, न उसमे साकार सृष्टि की रचना हो सकती है।

इस पद की आगे की पंक्तियाँ उक्त बात को और भी स्पष्ट कर देती है—

"आदि निरंजन निराकार" कोउ हुतौ न दूसर।
रचो सृष्टि विस्तार "भई इच्छा" इह औसर॥
"निर्गुण तत्व ते महतत्व महतत्व ते अहंकार।
मन इंद्रिय शब्दादि पंची ताते कियौ विस्तार॥
शब्दादिक ते पंचभूत "सुंदर" प्रगटाये।
पुनि सब को रचि अंड "आप मे आप समाये"॥
तीन लोक निज देह मे राखे करि विस्तार।
"आदि पुरुष सोई भयौ जो प्रभु अगम अपार"॥

इसमे "आदि निरंजन निराकार" शब्द उस ज्योति रूप अक्षर धाम के सूचक है, और 'रचौ सृष्टि विस्तार भई इच्छा इह औसर' वाला कथन उस धाम मे स्थित साकार ब्रह्म का निरूपण करता है। "महतत्व" आदि की जिससे उत्पत्ति कही गयी है, वह 'निर्गुणतत्व" ज्योति रूप अक्षर ही है। उससे तीन लोक की रचना कर उनको अपने देह मे रखा। इस कथन मे पुनः ब्रह्म के साकारत्व का सूचन हुआ है। "आदि पुरुष सोई जो प्रभु अगम अपार" इस कथन मे "आदि पुरुष" "अक्षरब्रह्म" की "अगम अपार" ऐसे पुरुषोत्तम परब्रह्म की अभेदता बतलायी गयी है। यह सिद्धांत शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद का ही है, जिसको हम पहले लिख चुके है।

इस प्रकार यह समग्र पद प्रतिबिंबवाद से असम्बद्ध है। सूरदास पर प्रतिबिंबवाद का जो आरोप किया जाता है, वह निःसंदेह भ्रमात्मक है।

४. जीव

जिस प्रकार अक्षर ब्रह्म के सदंश से जड और आनंदांश से अंतर्यामी हुए, उसी प्रकार उसके चिदंश से जीवों की उत्पत्ति हुई है†। अग्नि के विस्फुलिंगों की तरह ब्रह्म में से जीवों की उत्पत्ति होने से ये ब्रह्म के अंश रूप कहे गये हैं*, अत. विस्फुलिंगों में जिस प्रकार अग्नि की स्थिति रहती है, इसी प्रकार इस शुद्ध अवस्था में जीवों में भी भगवदैश्वर्यादि आनंदात्मक धर्मों की स्थिति रहती है, इसलिए इस अवस्था में जीव ब्रह्म रूप होता है।

ईश्वरेच्छा से जब जीवों को माया का संबंध होता है, तब उनमें से वह ऐश्वर्यादि भगवद् धर्म तिरोहित हो जाते हैं। तब वे जीव दीन, पराधीन एवं दुःखी होते हैं, और माया में बद्ध होकर संसारी बन जाते हैं‡।

पुन पंचपर्वा विद्या और भक्ति आदि से जीव जब अविद्या से निर्मुक्त हो जाता है, तब वह भगवत्कृपा से क्रमश. अपने मूल स्वरूप में स्थित हो जाता है। यह जीव की जीवन मुक्त अवस्था होती है।

इस प्रकार जीव की तीन अवस्थाएँ मानी गयी हैं। प्रथम अवस्था शुद्ध, द्वितीय संसारी और तृतीय मुक्त अवस्था है। 'यो यदंश सतां भजेत्' श्रुति के अनुसार इन तीनों अवस्थाओं में जीव के लिए अपने अंशी परमात्मा का भजन अवश्य कर्त्तव्य माना गया है।

इन तीनों अवस्था वाले जीवों का वर्णन सूरदास के निम्न लिखित पदों में उपलब्ध होता है—

---

† (१) विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि।
आनन्दांश स्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिण.। (निबंध)
(२) तदिच्छामात्रतस्तस्माद् ब्रह्मभूतांशचेतना.।
सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्वे निराकारस्तदिच्छया। (निबंध)

* ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन.। (गीता)

‡ अस्य जीवस्यैश्वर्यादि तिरोहितम्।········ तस्माद् ईश्वरेच्छया जीवस्य भगवद्धर्मतिरोभावः। ऐश्वर्यतिरोभावाद्दीनत्व, पराधीनत्व, वीर्यतिरोभावात् सर्वदुःखसहन ·····आनन्दांशस्तु पूर्वमेव तिरोहितो, येन जीवभावः अतएव काममयः। (अणुभाष्य ३ अ०)

जीव और आनंद धाम से अंतर्यामी रूप होते हैं। इसी बात को "ज्यों दर्पण प्रतिबिंब त्यों सब सृष्टि करि।"—इस प्रकार कहा है। यहाँ दर्पण के स्थान पर ज्योति रूप अक्षर है और उसमें स्थित ब्रह्म के साकार रूप से इस सृष्टि की रचना की गयी है। इस साकारत्व के सूचनार्थ ही प्रतिबिंब शब्द का प्रयोग किया गया है। अपने साकारत्व के प्रतिबिंब रूप में इस सृष्टि की रचना की है, अन्यथा प्रतिबिंबवाद में माया को मलीन कहा गया है, इसलिए स्वच्छता के अभाव में उसमें न तो प्रतिबिंब ही पड़ सकता है, न उसमें साकार सृष्टि की रचना हो सकती है।

इस पद की आगे की पंक्तियाँ उक्त बात को और भी स्पष्ट कर देती हैं—

"आदि निरंजन निराकार" कोउ हुतौ न दूसर।
रचौ सृष्टि बिस्तार "भई इच्छा" इह औसर॥
"निर्गुण तत्व ते महतत्व महतत्व ते अहंकार।
मन इंद्रिय शब्दादि पंची ताते कियौ विस्तार॥
शब्दादिक ते पंचभूत "सुंदर" प्रगटाये।
पुनि सब को रचि अंड "आप में आप समाये"॥
तीन लोक निज देह में राखे करि बिस्तार।
"आदि पुरुष सोई भयौ जो प्रभु अगम अपार"॥

इसमें "आदि निरजन निराकार" शब्द उस ज्योति रूप अक्षर धाम के सूचक है, और 'रचौ सृष्टि विस्तार भई इच्छा इह औसर' वाला कथन उस धाम में स्थित साकार ब्रह्म का निरूपण करता है। "महतत्व" आदि की जिससे उत्पत्ति कही गयी है, वह 'निर्गुणतत्व" ज्योति रूप अक्षर ही है। उससे तीन लोक की रचना कर उनको अपने देह में रखा। इस कथन से पुनः ब्रह्म के साकारत्व का सूचन हुआ है। "आदि पुरुष सोई जो प्रभु अगम अपार" इस कथन में 'आदि पुरुष" "अक्षरब्रह्म" की "अगम अपार" ऐसे पुरुषोत्तम परब्रह्म की अभेदता बतलायी गयी है। यह सिद्धांत शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद का ही है, जिसको हम पहले लिख चुके है।

इस प्रकार यह समग्र पद प्रतिबिंबवाद से असम्बद्ध है। सूरदास पर प्रतिबिंबवाद का जो आरोप किया जाता है, वह निःसंदेह भ्रमात्मक है।

४. जीव

जिस प्रकार अक्षर ब्रह्म के सदंश से जड और आनदांश से अतर्यामी हुए, उसी प्रकार उसके चिदंश से जीवो की उत्पत्ति हुई है† । अग्नि के विस्फुलिंगो की तरह ब्रह्म मे से जीवो की उत्पत्ति होने से ये ब्रह्म के अंश रूप कहे गये है*, अत. विस्फुलिंगो मे जिस प्रकार अग्नि की स्थिति रहती है, इसी प्रकार इस शुद्ध अवस्था मे जीवो मे भी भगवदैश्वर्यादि आनदात्मक धर्मों की स्थिति रहती है, इसलिए इस अवस्था मे जीव ब्रह्म रूप होता है ।

ईश्वरेच्छा से जब जीवो को माया का संबध होता है, तब उनमे से वह ऐश्वर्यादि भगवद् धर्म तिरोहित हो जाते है । तब वे जीव दीन, पराधीन एव दुःखी होते है, और माया मे बद्ध होकर संसारी बन जाते है† ।

पुन पचपर्वा विद्या और भक्ति आदि से जीव जब अविद्या से निर्मुक्त हो जाता है, तब वह भगवत्कृपा से क्रमश. अपने मूल स्वरूप मे स्थित हो जाता है । यह जीव की जीवन मुक्त अवस्था होती है ।

इस प्रकार जीव की तीन अवस्थाएँ मानी गयी है । प्रथम अवस्था शुद्ध, द्वितीय ससारी और तृतीय मुक्त अवस्था है । 'योयदंश सतांभजेत्' श्रुति के अनुसार इन तीनो अवस्थाओं मे जीव के लिए अपने अंशी परमात्मा का भजन अवश्य कर्त्तव्य माना गया है ।

इन तीनो अवस्था वाले जीवो का वर्णन सूरदास के निम्न लिखित पदो मे उपलब्ध होता है—

---

† (१) विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि ।
आनन्दांश स्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिण. । (निबध)

(२) तदिच्छामात्रतस्तस्माद् ब्रह्मभूतांशचेतना. ।
सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्वे निराकारस्तदिच्छया । (निबध)

* ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन. । (गीता)

† अस्य जीवस्यैश्वर्यादि तिरोहितम् ।........ तस्माद् ईश्वरेच्छया जीवस्य भगवद्धर्मतिरोभावः । ऐश्वर्यतिरोभावाद्दीनत्व, पराधीनत्व, वीर्यतिरोभावात् सर्वदु:खसहन ..... आनन्दांशस्तु पूर्वमेव तिरोहितो, येन जीवभावः अतएव काममयः। (अणुभाष्य ३ अ०)

शुद्ध अवस्था वाले जीवो का वर्णन —

जहाँ वृंदाबन आदि अजर जहँ कुंज-लता बिस्तार।
सारस-हंस-चकोर-मोर खग कूजत कोकिल कीर॥ × ×
गोपिन मंडल मध्य बिराजत निस-दिन करत बिहार।
'सहस रूप बहुरूप रूप पुनि एक रूप पुनि दोय'॥

संसारी जीवो का वर्णन—

(१) जब लौं सत्य स्वरूप न सूझत।
तब लौं मृगमद नाभि बिसारैं फिरत सकल बन बूझत॥
अपुनौ ही मुख मलिन मंदमति देखत दर्पन मांहि।
ता कालिमा मेटिबे कारन पचत पखारत छांहि॥

(२) अपुनपौ आपुनहिं बिसरयौ॥
जैसे स्वान काँच मंदिर मे भ्रमि-भ्रमि भूसि मरयौ।
ज्यो सपने मे रंक भूप भयौ तरकर अरि पकरयौ॥
ज्यो केहरि प्रतिबिंब देखि कै आपुन कूप परयौ।
जैसे गज लखि फटिक सिला मे दसननि आय अरयौ॥
मरकट मूठि छांडि नहीं दीनी घर-घर द्वार फिरयौ।
"सूरदास" नलिनी कौ सूआ कहि कौने जकरयौ॥

इस पद को आधार बनाकर कुछ लोग सूरदास पर प्रतिबिंबवाद का प्रभाव मानते है, किंतु पूर्व सिद्धांत के अध्ययन से उन लोगो की धारणा गलत सिद्ध होती है। जैसा कि हम उपर लिख चुके हैं शुद्धाद्वैत सिद्धांत मे जीव को उसकी शुद्ध अवस्था मे ब्रह्म रूप माना है, किंतु जब वह माया मे ग्रसित होता है, तब वह अपने सत्य स्वरूप को भूल कर भ्रमित हो जाता है, और जिस प्रकार स्वान अपने ही प्रतिबिंब को सच्चा स्वान समझ कर भूंसता है, उसी प्रकार जीव भी अपनी कल्पना द्वारा "मै" और "मेरेपने" के मिथ्या ज्ञान से अपने क्षण-भंगुर शरीर को ही आत्मा समझ कर दुखी होता है। इस प्रकार के मिथ्या ज्ञान मे जीव स्वयं फँस गया है। इसका उल्लेख इसी पद की अंतिम पंक्तियों मे "मरकट मूठि छांडि नहिं दीनी" तथा "सूरदास नलिनी कौ सूआ कहि कौने जकरयौ" इस प्रकार हुआ है। इससे यह पद शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुकूल ही स्पष्ट होता है। शुद्धाद्वैत सिद्धांत मे जीव को नित्य माना गया है। इसका उल्लेख सूरदास ने निम्न लिखित पद मे किया है—

तनु स्थूल और दूवर होइ। परम आत्म को एक नहि दोइ॥
तनु मिथ्या छन भंगुर जानो। चेतन जीव सदा थिर मानो।
जीवकौ सुख दुख तनु संग होई। जोर बिजोर तन के संग सोई॥
देह अभिमानी जीयहि जानें। ज्ञानी जीव अलिप्त करि माने॥

मुक्त अवस्थावाले जीव का वर्णन—

(१) ज्ञानी सदा एक रस जानै। तन के भेद भेद नहिं मानै॥
आत्मा सदा अजन्म अबिनासी। ताकौ देह मोह बड फाँसी॥
ताते ज्ञानी मोह न करै। तनु कुटुंब सों हित परिहरै॥
जब लग भजै न चरन मुरारी। तब लग होइ न भव-जल पारी॥

(२) अपुनपौ आपुन ही मे पायौ।
सब्द ही सब्द भयौ उजियारौ सतगुरु भेद बतायौ॥
ज्यो कुरंग नाभी कस्तूरी ढूंढत फिरत भुलायौ।
फिर चेत्यौ जब चेतन ह्वै करि आपुन ही तनु छायौ॥
राजकुमार कंठमनि भूषन भ्रम भयौ कहूँ गँवायौ।
दियौ बताइ और सतजन तब तनु कौ ताप नसायौ॥
सपने माँहि नारि को भ्रम भयौ बालक कहूँ हिरायौ।
जागि लख्यौ ज्यो कौ त्यो ही है ना कहुँ गयौ न आयौ॥
'सूरदास' समुझे की यह गति मनहि मन मुसिकायौ।
कहि न जाइ या सुख की महिमा ज्यो गूंगौ गुड़ खायौ॥

५. आत्ममाया

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार आत्ममाया परब्रह्म की "सर्वभवन समर्थ" रूपा शक्ति है। यह परब्रह्म से सदा वेष्टित रहती है। जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहक शक्ति, सूर्य और उसकी प्रकाश शक्ति भिन्न नही है, इसी प्रकार परब्रह्म में ही इस माया की स्थिति निरंतर रहती है। आत्ममाया परब्रह्म के आधीन है, परब्रह्म इसके आधीन नहीं। इसलिए यह परब्रह्म के सत्य स्वरूप को कभी आच्छादित नहीं कर सकती है। श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने सुबोधिनी मे इसके दो रूप बतलाये है—एक "व्यामोहिका" और दूसरा "करण"। व्यामोहिका भगवान् के चरण की दासी है‡, इसलिए वह

‡ इयं (माया) चरणदासी। ...... इयं मोहिका। (सु० २-७-४७)

भगवान के अनुचर के पास जाने मे लज्जित होती है*। दूसरी माया को "करण" रूप से स्वीकार कर भगवान इस समग्र जगत की उत्पत्ति, पालन और नाश करते हैं†।

माया संबंधी उपर्युक्त वर्णन सूरदास के पदो मे इस प्रकार मिलता है—

व्यामोहिका माया—

(१) सबते परे कृष्ण भगवान। × ×
सो माया है "हरि की दासी" निस दिन आज्ञाकारी।
काल कर्म हम सिव अरु विष्णुहि सब के कारन हरि धारी॥
"पालन सृजन प्रलय के कर्ता माया के गुन जानो।"
मोमे रजगुन, सिव मे तमगुन, विष्णुहि सतगुन मानो॥

(२) मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया।
मिथ्या है यह देह कहो क्यो हरि बिसराया॥

(३) हरि बिनु कोऊ काम न आयौ।
यह माया झूंठी प्रपंच लगि रतन सौ जनम गँवायौ॥

"करण रूप" योगमाया—

(१) हरि इच्छा करि जग प्रगटायौ।
अरु यह जगत जदपि हरि रूप है तऊ 'माया कृत' जानि।

सूर के पदो मे मिथ्यावाद–मायावाद-का इस प्रकार खंडन मिलता है—

(१) रूप देखि जस जानि जगत 'बिनु निरवलब कहो किन भावै ?'
(२) प्रगट ब्रह्म 'दूरयौ नहीं' तू देख नैन पसार।
(३) छांडि स्याम अमीफल अमृत 'माया विष फल' पावै।

---

* "येवाऽभिमुखश्चकारादनुचराश्चज्ञानिनो भक्ताश्चतत्र सर्वत्रैव विलज्जमाना। (सु० २–७–४७)

† माया सर्वभवन सामर्थ्यम्, शक्तिर्वा काचित, अप्रयोजिका, तामपि करणत्वेन स्वीकृत्य इद सर्वमेव जगदुत्पादयति पालयति नाशयति च। (सु० १० ५४–१५)

२—सूरदास और पुष्टिमार्गीय भक्ति

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के निर्माण के अनंतर श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने सोचा कि मस्तिष्क प्रधान मनुष्य शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद के विशुद्ध ज्ञान से शुद्ध होकर इस संसार से मुक्त हो जावेंगे, किंतु केवल हृदय प्रधान भावुक व्यक्ति किस प्रकार इस संसार से मुक्त हो सकेंगे! इस विचार के फल स्वरूप उन्होंने प्रेम को अपनाया, क्यों कि प्रेम ही एक ऐसा अनुपम तत्व है, जिससे केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी प्रभावित रहते हैं। चैतन्य स्वरूप प्रत्येक जीव का हृदय इस प्रेम की ओर सदा झुका हुआ रहता है। शास्त्रों में भी प्रेम की अगणित महिमा बतलायी गयी है। यहाँ तक कि किसी भी साधन से सर्वदा अप्राप्य ऐसे परम-तत्व रूप श्रीकृष्ण भी प्रेम से सुलभ हो जाते हैं। प्रेम से ही भगवान् कृष्ण कृपायुक्त होकर गोपीजनों के अधीन हुए हैं, इसलिए प्रेममय श्रीकृष्ण की साक्षात कृपा प्राप्त करने के लिए आचार्य जी ने इस प्रेम को ही अपनाया, ताकि जीव सरलता पूर्वक कृष्णासक्त होकर इस संसार से मुक्त हो जाँय।

आचार्य जी ने विशुद्ध प्रेम को ही शुद्ध पुष्टि कहा है†, अतएव पुष्टि भक्ति में प्रेम को अभिव्यक्त किया गया है। विशुद्ध प्रेम के दृष्टांत गोपिजन हैं, इसलिए उन्हीं को पुष्टि के गुरु मान कर आचार्य जी ने उनके प्रेमात्मक साधनों को ही पुष्टि भक्ति के मुख्य साधन माना है*।

देवादि विषयक रति—प्रेम—को भाव कहते हैं‡, अतः विशुद्ध प्रेम भाव स्वरूप होता है। आचार्य श्री के मत से इस भाव को सिद्ध करने का एक मात्र साधन उसकी भावना-सस्नेह क्रियात्मक चिंतन—है‡। इसी से भाव की प्राप्ति होती है। अन्य किसी भी साधन से उस भाव-प्रेम की सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती है। इसीलिए आचार्य जी ने भाव—तात्विक परमदेव श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए गोपीजनों की प्रेम-भावना वाली सेवा को प्रगट किया है। इसका विस्तृत वर्णन आगे किया जायगा।

---

† पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारता।
मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धा प्रेम्णाति दुर्लभा। (पुष्टिप्रवाहमर्यादा)

* ... ... गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं चतत्। (सन्यास निर्णय)

‡ रतिर्देवादिविषया भाव इत्यभिधीयते।

‡ भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते। (सन्यास निर्णय)

श्री गोपीजनों के त्रिभेद के साथ आचार्य जी ने उनकी प्रेमात्मक-भक्ति साधन रूप भावनाओं का इस प्रकार निरूपण किया है—

"गोपांगना सु पुष्टि. । गोपीपु मर्यादा । व्रजागना सु प्रवाह. ।

गोपांगनास्तु मुक्तमुक्ता: मुक्त गृहे सुख मुक्तं याभिस्ता: किं वा नाज्ञातो लोकवेदभययुक्तो याभिस्ता मुक्ता कुटुंब मायापत्यवैभव गेहाधिपतिधनवपु: पत्यादिक सकल मर्यादार्था मुक्ता याभिस्ता सर्वान् धर्मान्निराकृत्यकेवलं श्रीपुरुषोत्तममेव भजंति । तस्मात्तासां पुष्टित्वम् ।

अथ गोपीनां व्रजकुमारिणां गोपीजनवल्लभभजनेतर भजनं जातम् । किंचतद्भजनोपायेऽपि कात्यायनीभजनं कृतम् । ...

अतएव तासां मर्यादा भक्ति: । ....

तथा व्रजांगनानां मातृभावेनैव संग्रह: । तासाम् ईश्वरे पुत्र भावो वर्तते । तस्मात्तासां प्रवाहत्वम् । इति त्रिविधा गोप्य: ।

(भगवत्पीठिका)

इसका तात्पर्य यह है कि व्रज मे तीन प्रकार की गोपीजन है—एक 'गोपांगना" दूसरी "गोपी" अर्थात् "कुमारिकाएँ" तीसरी "व्रजांगनाएँ"।

इन तीनों मे 'गोपांगनाओ' ने लोक वेद भय से मुक्त होकर और सर्व धर्मों के त्याग पूर्वक शुद्ध प्रेम से केवल पुरुषोत्तम का ही 'साक्षात्' भजन किया है, इसलिए ये "पुष्टिपुष्टि" रूप है । इस प्रकार के भजन मे परकीय भावना वाले उत्कृष्ट प्रेम व्यसन की स्थिति रहती है ।

दूसरी 'गोपी' अथवा 'कुमारिकाओ' ने कात्यायनी व्रत आदि से पुरुषोत्तम का 'परोक्ष' भजन किया है, इसलिए ये "पुष्टिमर्यादा" रूप है । इस प्रकार के भजन मे माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ स्नेह–स्वकीय स्त्री भावना वाली आसक्ति की स्थिति रहती है ।

तीसरी 'व्रजांगनाओ' ने पुरुषोत्तम का लोकवत् बाल भाव से भजन किया है, इसलिए ये "पुष्टिप्रवाह" रूप है । इस प्रकार के भजन मे केवल वात्सल्य भावना की स्थिति रहती है ।

आचार्य जी ने इन तीनों भावनाओं को पुष्टि भक्ति के मुख्य साधन माना है । इसका विवेचन पुष्टिमार्गीय सेवा प्रकरण मे आगे किया जायगा ।

इन त्रिविध भावना-साधनो से जिस कलात्मक विशुद्ध प्रेम रूप शुद्ध पुष्टि की प्राप्ति होती है, उसको श्री वल्लभाचार्य जी ने "स्वाधीना" अथवा "स्वतन्त्र भक्ति" कहा है। आचार्य जी का मत है कि जब तक कृष्ण की अधीनता रहती है, तब तक 'मर्यादा' है और स्वाधीन अवस्था को 'पुष्टि' कहते है †।

जिस प्रकार एक सिद्ध योगी योग बल से अपने मे से अनेक प्रकार के ऐश्वर्य-वैभवो-को प्रकट कर उनके आनद का स्व-इच्छानुसार उपभोग करता है और पुनः उस ऐश्वर्य को हृदय मे स्थापित कर आंतर सुख का भी अनुभव करता है, उसी प्रकार स्वाधीना स्वतन्त्र भाव सम्पन्न भक्त भी भाव बल से अपने मे से अनेक प्रकार के लीलात्मक कृष्ण रूपो को प्रकट कर उनके विविध आनद का अनेक रूप होकर उपभोग करता है और पुनः उनको अपने मे स्थित कर आंतर प्रकार से भी उनके साथ विलास करता है। बाह्य स्थिति के समय वह भक्त पूर्ण-धर्मी-संयोग सुख का आनद लेता है और आंतर स्थिति के समय वह पूर्ण-धर्मी-विप्रयोगात्मक सुख का आनद भोगता है। इस प्रकार के प्रेम भक्ति योग से उस भक्त का भौतिक देह अप्राकृत हो जाता है। उसके नेत्र मे, वाणी मे, हृदय मे, मन मे, तन मे और सभी स्थानो मे परमानद स्वरूप लीलामय कृष्ण की स्थिति रहती है, इस लिए वह भाव रूप हो जाता है और भाव मे ही निरंतर विलास करता है। "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" इस श्रुत्योक्त फल का भोग 'स्वाधीना' भक्त ही पूर्ण रूप से कर सकता है। इसी को आचार्य जी ने शुद्ध पुष्टि अथवा विशुद्ध प्रेम की तन्मय अवस्था माना है।

यद्यपि पूर्वोक्त प्रेम की तीन भावना अवस्थाओ से इस सिद्ध भाव अवस्था को उत्तम माना गया है और इसी को परम फल भी कहा गया है, फिर भी उक्त तीन अवस्थाएँ भी अपने-अपने समय मे फल रूप ही मानी गयी हैं, क्यो कि ये तीनो अवस्थाएँ भी पुष्टि के अवांतर निरोध-मोक्ष रूप ही है। इनमें भी जो सुख मिलता है, वह चतुर्विध मुक्ति आदि मे भी नही है। पुष्टि भक्ति की यही विलक्षणता और पूर्णता है।

† कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते।

सूरदास के पदों में उक्त चारों प्रकार की भावनाएं और उनके निरोध सुख का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

पुष्टि प्रवाह की स्नेह रूप बाल भावना और उसका निरोध सुख—

बनी सहज यह लूट हरि केलि गोपिन के सपुने यह कृपा कमला न पावै ।
निगम निर्धार त्रिपुरारि हू बिचारि रह्यौ पचरह्यौ सेष नहि पार पावै ॥
किन्नरी बहुर अरु बहुर गंधर्वनी पनगनी चितवन नही मांझ पावै ।
देति करतार वे 'लाल गोपाल सों' पकरि ब्रजबाल कपि ज्यों नचावै ॥
कोऊ कहै'ललन'पकरावमोहि पाँवरी कोऊ कहै'लाल'बलि लाओ पीढ़ी ।
कोऊ कहै'ललन'गहाव मोहि सोहनी कोऊ कहै'लाल'चढ़ि जाऊँ सीढ़ी ॥
कोऊ कहै ललन' देखो मोर कैसे नँचै कोऊ कहै भ्रमर कैसे गुँजारै ।
कोऊ कहै पौरि लगि दौरि आवहु 'लाल' रीझि मोतिन के हार वारै ॥
जो कछु कहै ब्रजबधू सोई सोई करत, तोतरे बैन बोलन सुहावै ।
रोय परत वस्तु जब भारी न उठे तब चूम मुख 'जननी' उरसों लगावैं ॥
बैन कहि तोनी मुख चाही रहत बदन हँसि स्वभुज बीच लै लै कलोलै ।
'धाम के काम ब्रजबाम सब भूलि रही, कान्ह बलराम के संग डोलै ॥
'सूर' गिरिधरन मधु चरित्र मधुपान कै और अमृत कछू आन लागै ।
और सुख रंक की कौन इच्छा करै 'मुक्ति हू लौन सी खारी लागै' ॥

इस पद मे बाल-भावना और उसके निरोध सुख का वर्णन किया गया है । यह मातृ भाव वाली ब्रजांगनाओं की पुष्टि प्रवाह अवस्था है । इसके निरोध सुख के आगे मुक्ति भी नमक जैसी खारी लगती है । यही पुष्टि भक्ति का उत्कर्ष है ।

पुष्टि मर्यादा की आसक्ति रूप स्वकीय स्त्री भावना वाली भक्ति और उसका निरोध सुख—

भजि सखी भाव-भाविक देव ।
कोटि साधन करो कोऊ, तौऊ न मानै सेव ॥
धूम्रकेतु कुमार माँग्यौ, कौन मारग प्रीति ।
'पुरुष ते त्रिय भाव उपन्यौ' सबै उलटी रीति ॥
बसन-भूषन पलटि पहरैं भाव सों संजोय ।
उलटि मुद्रा दई अंकन बरन सूधे होय ॥
बेद विधि कौ नैम नहीं जहाँ प्रेम की पहचान ।
ब्रजबधू बस किये मोहन "सूर" चतुर सुजान ॥

प्रारंभ में अग्निकुमारों ने माहात्म्य ज्ञान से श्री रामचद्र जी का भजन किया था। इससे उनको श्री रामचद्र जी के कदर्प रूप के दर्शन हुए थे, जिसके फल स्वरूप उनमे पुरुष होते हुए भी स्त्री भाव उत्पन्न हुआ था। इसी लिए श्री रामचद्र जी के वर के अनुसार वे सब कृष्णावतार मे गोप-कुमारिकाएँ रूप से अवतरित हुए और व्रत-चर्या आदि मे "श्री कृष्ण हमारे पति हो" यह वर प्राप्त किया। इस प्रकार की स्वकीय स्त्री भावना का सुख उनको रास-लीला द्वारा प्राप्त हुआ था और उस रमेश श्रीकृष्ण को अपने वश मे कर वे निरुद्ध हुई थीं। यह पुष्टिमर्यादा अवस्था का निरोध-सुख है।

पुष्टिपुष्टि के व्यसनरूप परकीय भावना और उसका निरोध सुख—

(१) द्वै लोचन साबित नहीं तेऊ।
'बिनु देखै कल परत नही छिन ऐसे पर कीने यह टेऊ'॥
'बारंबार छवि देख्यौ चाहत' साथी निमिष मिले है येऊ॥

(२) पलक ओट नहीं होत कन्हाई।
'घर गुरुजन बहुते विधि त्रासत' लाज करावत लाज न आई॥
नैन जहाँ दरसन हरि अटके स्रवन थके सुनि बचन सुहाई।
रसना और कछू नही भाषत स्याम-स्याम रट यहै लगाई॥
चित चंचल सगहि संग डोलत 'लोक-लाज मरजाद मिटाई'।
मन हरि लियौ 'सूर' प्रभु तब ही, तन बपुरे की कहा बसाई॥

(३) नद के द्वार नंद गेह पूछति।
इतहि ते जाति उतहिं ते फिरति निकट ह्वै जाति नहीं नैक सूझति॥
भई 'बेहाल' ब्रजबाल नंदलाल हित अरपित तन-मन सबै तिन्हे दीनो।
'लोक लज्जा तजि' लाज देखति भजि स्याम को भजि कछू डर न कीनो॥
भूलि गयौ नाम दवि को कहति स्याम योनांहि सूधि धाम कछू है कि नाही।
'सूर' प्रभु कों मिली मेटि भली अनभली चुन हरदी रली देह छाहीं॥

(४) कहति नंद-घर मोहि बतावहु।
द्वारे माझ बात यह पूछति बार-बार कहि कहा दिखावहु॥
यही गॉव कैधौ और कहूँ जहॉ महरि कौ गेह।
बहुत दूरि तें मै आई हौ कहि जस काहे न लेहु॥
अति ही संभ्रम भई ग्वारिनि द्वारे ही पर ठाढ़ी।
'सूरदास' स्वामी सो अटकी 'प्रीति प्रगटत अति बाढ़ी'॥

परकीय भावना का निरोध सुख-"मान"—

रूप-रसपुंज बरनो कहा चातुरी। ।
मान मेरौ कह्यौ चतुर चंद्रावली निरखि मुख कमल उडुराज सकात री ॥
तिलक मृगमद भाल द्विरद की सी चाल, देखि मोहे लाल मंद मुसकात री
'सूर'नगधर केलि अंस भुज मेलि मुग्ध पद टेलि दे मदन सिर लात री ॥

इसमे रसेश श्रीकृष्ण की स्वाधीनता के परम सुख का सक्षिप्त मे वर्णन हुआ है। यह परकीय भावना वाली पुष्टिपुष्टि" अवस्था रूप है ।

सूरदास और माधुर्य-भक्ति—सूरदास के इस प्रकार के माधुर्य भक्ति के पद को देख कर कुछ विद्वान उन पर गौडीय, हरिदासी एव हरिवशी सम्प्रदायो की भक्ति का भी प्रभाव होना मानते है, किंतु वास्तव मे पुष्टि सप्रदाय की पूर्वोक्त भक्ति भावना का अध्ययन करने से उक्त मान्यता भ्रमात्मक सिद्ध होती है। स्वय श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के वचनो के आधार पर हम गत पृष्ठो मे देख चुके है कि पुष्टि भक्ति मे बाल, दाम्पत्य और परकीय कांता भाव की तीनो भावनाओ का भजन ग्राह्य है। श्री वल्लभाचार्य जी ने मधुराष्टक, परिवृढाष्टक और सुबोधिनी मे माधुर्य-भक्ति का जो प्रवाह बहाया है, उससे भी उक्त बात की पुष्टि होती है। आचार्य जी अपने 'परिवृढाष्टक" ग्रथ मे कहते है—

कलिंदोद्भूतायास्तटमनुचरंती पशुपजां ।
रहस्येकां दृष्ट्वा नव सुभगवक्षोजयुगलाम् ॥
दृढ नीवी ग्रंथिश्लथयति मृगाक्ष्या हठतरं ।
रति प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे ॥

इसमे श्रीराधा के साथ रहस्य लीला करने वाले परब्रह्म मे मेरी सतत रति प्रादुर्भूत हो, इस प्रकार की आचार्य जी कामना करते है। इसी

† इसी की छाया रूप मे अष्टछाप के कृष्णदास का भी एक पद मिलता है—

चतुर चारु चद्रावलि मुख चकोरै ।
अस्तु मे चरनरति ब्रज-जुवति भूषनौ कमल लोचन नंद नृप किसोरै ॥
मान मेरौ कह्यौ अति सील रसरीति क्यो करावति सखी बहु निहोरै ।
मिलै किन धाँय अब कुँवर चूडारत्न रसिकवर भूपाल चित्त चोरै ॥
नवरंग कुंज महँ तव नाम हित नाथ कुणित कल मुरलिका ठाट मोरै ।
सुनि"कृष्णदास"सुभलग्न वह धन घरी, लाल गिरिधरन सौ हाथ जोरै ॥

प्रकार अपने इष्ट देव के स्वरूप का वर्णन करते हुए आपने 'मधुराष्टक" मे कहा है—

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥

इसमे आचार्य जी अपने इष्ट को "मधुराधिपति" कह कर उनके समग्र अंग, चेष्टा आदि को भी मधुर बतलाते है। इससे भी उनकी मधुर भक्ति का ज्ञान हो सकता है।

श्री बल्लभाचार्य जी भक्तिमार्गीय सन्यास का पर्यवसान रासलीला मे ही मानते है, इसलिए आप पुष्टिपुष्टि स्वरूप श्रुतिरूपा गोपांगनाओ को ही इसकी अधिकारी कहते है। "गायत्री भाष्य" मे आचार्य जी ने लिखा है—

भक्तिमार्गीय संन्यासस्तु साक्षात्पुष्टिपुष्टिश्रुतिरूपाणां रासमंडल मडनानाम्। स्वयमेवोक्तं 'संत्यज्य सर्वं विषयांस्तव पादमूलं प्राप्ता इत्यादि चतुर्थाध्याये ताः प्रति भगवता॥

सुबोधिनी मे तो आचार्य जी ने माधुर्य-भक्ति के स्वरूप ज्ञान के लिए समग्र रतिशास्त्र को ही प्रकट कर दिया है। जैसा कि—

(१) 'अनेन विपरीत रस उच्यते बध निरोगो वा तिर्यग्भेद.।"
(१०-३१-७)

(२) "अनेन सर्व एव सुरतबन्धा आक्षिप्ताः।" (१०-३१-१३)

(३) 'अग्रे मर्यादा भगो रसपोषाय। तदुक्त "शास्त्राणां विषयस्तावद् यावदमन्द रसानराः। रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव शास्त्रं न च क्रम"। (१०-३३-२६)

उपर्युक्त वचनो के अध्ययन से ज्ञात हो सकता है कि श्री वल्लभाचार्य जी ने माधुर्य-भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख होने पर भी हिंदी साहित्य के प्राय सभी विद्वानो को यह भ्रम हो गया है कि श्री बल्लभाचार्य जी ने केवल वात्सल्य भक्ति का ही उपदेश किया था और पुष्टि सप्रदाय मे माधुर्य-भक्ति का प्रवेश श्री बल्लभाचार्य जी के अनतर उनके पुत्र गो० विट्ठलनाथ जी द्वारा चैतन्य सप्रदाय की भक्ति-भावना के अनुकरण पर हुआ। हिंदी सहित्य के अनेक विद्वानो ने बल्लभ सप्रदाय

के सिद्धांतो का गभीर अध्ययन नही किया है, इसलिए उनके उक्त मत पर हमको आश्चर्य नही होता है। हमको आश्चर्य तो तब होता है, जब हम पुष्टि सम्प्रदाय का गभीर अध्ययन करने वाले डा० दीनदयाल जी गुप्त को भी इसी प्रकार का भ्रमात्मक मत प्रकट करते हुए देखते है। उन्होने आधुनिक विद्वानो के स्वर मे स्वर मिलाते हुए लिखा है—

"मधुर भाव की भक्ति का समावेश लेखक के विचार से आचार्य जी ने भागवत के अतिरिक्त चैतन्य महाप्रभु से भी लिया†।"

पुष्टि सम्प्रदाय के इतिहास और श्री आचार्य जी रचित ग्रथो के अध्ययन से उपर्युक्त मत नितात भ्रमात्मक सिद्ध होता है। पुष्टि सम्प्रदाय के इतिहास से सिद्ध है कि अष्टछाप के कुभनदास के अतिरिक्त पद्मनाभदास और श्रीभट्ट‡ आदि आचार्य जी के सेवको ने सम्प्रदाय के आरभिक काल मे ही कवल मधुर-भावयुक्त निकुज लीला के पदो का गायन किया था, यहाँ तक कि वात्सल्य भाव का तो शायद उन्होने एक भी पद नही गाया। कुंभनदास आदि का काव्य-काल श्री चैतन्य महाप्रभु के गृह त्याग (स० १५६६) से पूर्व का निश्चित है। इसी प्रकार श्री वल्लभाचार्य जी कृत माधुर्य भक्ति पूर्ण "मधुराष्टक" और "परिवृढाष्टक" की रचना भी श्री चैतन्य के गृह त्याग से पूर्व सं० १५५० के लगभग हो चुकी थी। चैतन्य सम्प्रदाय के इतिहास से ज्ञात होता है कि उक्त सम्प्रदाय का साहित्य महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के तिरोधान (१५८७) के अनतर लिखा गया है। ऐसी दशा मे चैतन्य सम्प्रदाय की माधुर्य-भक्ति का प्रभाव पुष्टि सम्प्रदाय की भक्ति-भावना पर बतलाना असगत कल्पना है।

इसके अतिरिक्त चैतन्य सम्प्रदाय की माधुर्य भक्ति से वल्लभ सम्प्रदाय की माधुर्य-भक्ति का मौलिक मतभेद है। माधुर्य-भक्ति की मुख्य पात्र श्री राधा है, जिनको वल्लभ संप्रदाय में स्वकीया माना गया है, किंतु चैतन्य सम्प्रदाय इनको परकीया मानता है। पुष्टि सम्प्रदाय के मतानुसार परकीय भाव की पात्र श्रुतिरूपा गोपांगना—श्री चन्द्रावली हैं।

---

† अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ ५२७

‡ यह निवार्क सम्प्रदायी श्रीभट्ट से पृथक् कवि है।

श्रीराधा-सहचरी का उल्लेख श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने ग्रथ त्रिविध नामावली मे भी किया है—'राधां सहचराय नमः ।'' इसी राधा मे कृष्णावतार के रास के समय ब्रह्म की मुख्य 'राधम्' शक्ति (लक्ष्मी) का प्रवेश हुआ था, तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उनमे विशेष रूप से रमण किया था। इस बात का ज्ञान सुबोधिनी (१०-३०-१७) तथा 'राधाविशेष स भोग प्राप्तदोष निवारक'' इस प्रकार ' पुरुषोत्तम सहस्रनाम'' के अनुसधान करने पर होता है।

इन सब कथनो से यह स्पष्ट है कि माधुर्य-भक्ति और राधा शब्द के प्रयोग आदि का प्रचार पुष्टि मार्ग मे श्रीमद्वल्लभाचार्य जी द्वारा ही श्री चैतन्य के गृह-त्याग से भी पूर्व हुआ है। इसकी बृहिः पुष्टि आचार्य जी के सेवक "श्रीभट" के निम्न पद से भी होती है—

श्रीबल्लभ प्रगटत सब प्रगटी लीला स्यामघन की ।
रसिकन उर अति उल्लास उद्‌भव भयौ,
रास बिलास प्रकास प्रेम पुंज कुंज संपति वृंदावन की ॥
आनंद द्रुम उरझि रह्यौ सुरझाई लई कहि,
फेरि उरझाइ दई बातें ब्रजजन की ॥
और दिखाई ठौर ठौर दान मान नित प्रसंग,
त्रिभंग तीनो लोक मांझ प्रेम पन की ॥
कटि ते लै ग्रीव स्याम गोपीजन भाव भूषन,
सीस मुकुट जटित आभा नील पीतन की ॥
विरह बसन लसत देह यही भेष नेह गेह,
आसा सब भांति पूरी "श्रीभट" के मन की ॥

शुद्धाद्वैत सिद्धात के अनुसार श्रीराधा परब्रह्म की आत्म शक्ति होने से उससे सर्वथा अभिन्न मानी गयी है। इसीलिये पुष्टिमार्ग के परम आराध्य देव श्रीनाथ जी के साथ भिन्न रूप से स्वामिनी का स्वरूप नही रखा गया है। जहाँ कही भिन्न रूप से स्वामिनी का स्वरूप पाया जाता है, वहाँ मूल आत्मशक्ति के धमरूप से केवल लीला अनुभवार्थ है। लीला परत्वे श्रीराधा के प्राधान्य को स्वीकार करते हुए भी शुद्धाद्वैत सिद्धांत मे शक्तिवान् पुरुष का ही आधिपत्य माना गया है; क्यो कि इस मत मे तत्वतः शक्ति शक्तिवान् के अधीन ही मानी गयी है। वस्तुतः श्रीराधा और श्रीकृष्ण शुद्धाद्वैत सिद्धात के अनुसार अभिन्न और एक ही रूप है।

गो० श्री हरिराय जी के इस विषय मे निम्न श्लोक दृष्टव्य है—

(१) मुख्य शक्ति स्वरूपं तु स्त्रीभावो हरिरुच्यते ।

(भावस्वरूप नि०)

(२) तत्र स्त्र्यंश. 'पराशक्ति' र्भावांश कृष्ण शब्दित ।

(मूल रूप सशय निराकरणम्)

इस प्रकार शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार साकार पुंभाव अंश और पराशक्ति रूप स्त्री अश मिलकर ही परब्रह्म कृष्ण कहे गये है। इसके विपरीत '"द्वैत" मत मे तत्वत दोनो भिन्न माने गये है।

सूरदास के पदो मे यही शुद्ध अद्वैत सिद्धांत इस प्रकार मिलता है—

(१) ब्रज ही मे बसै आपुनहि बिसरायौ ।
'प्रकृति पुरुष एक करि जानहु' वा तन भेद करायौ ॥
जल-थल जहाँ रह्यौ तुम बिनु नही वेद-उपनिपद गायौ ।
'द्वैत न जीव एक हम तुम दोउ' सुख कारन उपजायौ ॥
ब्रह्म-रूप दुतिया नही कोई' तब मन त्रिया जनायौ ।
"सूरश्याम" मुख देखि अलय हँसि आनंद पुंज बढ़ायौ ॥

(२) राधिका-गेह हरि देह बासी । और त्रियन-घर तन प्रकासी ।
ब्रह्म पूरन एक द्वितीय न कोऊ । राधिका सबै हरि सबै एऊ ॥
दीप ते दीप जैसे उजारी । तैसे ही ब्रह्म घर-घर बिहारी ।
खंडिताबचनहित यह उपाई । कबहूँ कहूँ जात कहूँ नही कन्हाई ॥
नारीरस बचन श्रवन न सुनावै । जनमको फल हरी तब ही पावै ।
"सूर"प्रभु अनत ही गवन कीनो । तहाँ नही गये जहाँ बचन दीनों ॥

(३) घर पठई प्यारी अंक भरी ।
कर अपने मुख परस त्रिया को प्रेम सहित दोउ भुजहि धरी ॥
'राधा हरि आधा आधा तनु एक है ब्रज में हो अवतरी ।
"सूरस्याम" रस भरी उमँगि अंग यह छवि देखि रह्यौ रतिपति डरी ॥

इन पदो से राधा और कृष्ण की शुद्ध अद्वैतता तथा राधा की स्वकीय भावना स्पष्ट होती है, अतः सूरदास द्वारा किया गया राधा विषयक माधुर्य भाव का वर्णन पुष्टि संप्रदाय की भावना के ही अनुकूल है। सूरदास के पदों मे प्राप्त चंद्रावली जी की परकीय भावनासे इसकी और भी पुष्टि होती है।

पुष्टिमार्ग मे श्री चद्रावली जी परकीया रूप मे श्री कृष्ण के दक्षिण ओर स्थित रहती है, जब कि श्री राधा उनके बाई ओर रहती है। सूरदास के निम्न लिखित पद मे यह भाव स्पष्ट हुआ है—

श्रीचद्रावली जी का वर्णन—

नदनदन हँसे नागरी मुख चितै हरषि चद्रावलि' कठ लाई।
बाम भुज रवनि *,दक्षिण भुजा सखी।, प्रबल कुंज बन धाम सुख कहि न जाई।
मनो बिब दामिनी बीच नव घन सुभग, देख काम रति सहित लाजै।
किधौं कंचन लता बीच तमाल तरु भामिनी बीच गिरिधर बिराजै।।
गये गृह-कुंज अलि-गुंज सुमननि-पुज देखि आनंद भरि "सूर" स्वामी।
'राधिकाप्रान, चंद्रावलि रमन प्रिय, निरखि छवि होत मन काम कामी।।

विशुद्ध प्रेम की शुद्धि पुष्टि—तन्मय अवस्था रूप "स्वाधीना" भाव का स्वरूप और उसका स्वतत्र सयोग-विप्रयोगात्मक विलास--

(भाव-प्रेम स्वरूप वर्णन)

(१) भाव बिनु माल नफा नही पावै।
भाव बीज भक्तन कौ सर्वस भावहि हिरदै ध्यावै।।
भाव भक्ति सेवा सुमिरन करि पुष्टि पंथ मे धावै।
"सूर" भाव सब ही कौ कारन 'भाव ही मे हरि आवै'।।

(२) प्रेम मे निस-दिन बसत मुरारी।
प्रेम ही तन-धन, प्रेम ही जीवन, प्रेम पगे बनवारी।।
प्रेम—अहार बिहार निरतर, प्रेम करत व्यवहारी।
"सूरस्याम" प्रभु प्रेम रँगे हैं, और नही अधिकारी।।

(तन्मयता का वर्णन)

(१) आँखिन मे बसै, जियरे मे बसै, हियरे मे बसै निस-दिन प्यारौ।
मन मे बसै, तन मे बसै, अंग-अंग मे बसत नंदबारौ।।
सुधि मे बसै, बुधि ही मे बसै, उरजन मे बसत प्रिय प्रेम दुलारौ।
'सूरस्याम' बन हू मे बसत, घरहू मे बसत,संग ज्यो जलतरंग न होत न्यारौ।

---

* श्री राधा

‡ श्री चद्रावली

(२) गोरस को निज नाम भुलायौ ।
लेहु लेहु लेहु गोपालहि गलिन-गलिन यह सोर मचायौ ॥

स्वतंत्र भावों का विलास—

(संयोग अवस्था)

(१) लाल तेरी बंसी नैक बजाऊं ।
अपनौ भूषन पिय को पहराऊं पिय कौ पहरि बताऊं ॥
तुम वृषभान लली बनि बैठो, मैं नंदलाल कहाऊं ।
तुम तौ छिपो पिय कुंज गलिन मे, पकरि फेंट गहि लाऊं ॥
तुम तो मान मानिनि बनि बैठो, मैं गहि चरन मनाऊं ।
"सूरदास" प्रभु अचरज भारी, तुम राधे मैं माधौ कहाऊं ॥

(विप्रयोग अवस्था)

(२) हरि बिन व्यथा कौन सों कहियै ।
मनमथ मथत रहत छन-छन प्रति अंतरगति मे दहियै ॥
कानन भवन रैन अरु बासर कहूं नहि सुख लहियै ।
मोको भई यज्ञ-पसु ज्यो यह दु:ख कहाँ लों सहियै ॥
कबहुँक जिय मे ऐसी आवै जाय जमुन जल बहियै ।
"सूरदास" प्रभु कमल-नैन बिनु कहु कैसे ब्रज रहियै ॥

इस प्रकार के भावों का स्वतंत्र विलास ही पुष्टि की सर्वोच्च मोक्ष-सन्यास अथवा निरोध अवस्था है । यह सिद्ध हो जाने पर इसी देह से नित्य लीला का परम सुख निरंतर यहाँ बैठे ही बैठे प्राप्त होता है । इसमे लोक वेद के संबंधों की तो गध भी नही रहती है, कृष्ण के बाह्य स्वरूप की भी अधीनता या अपेक्षा नही होती । इस अवस्था का भक्त अपने भावानुकूल अनेक प्रकार के लीला स्वरूपों को क्षण-क्षण मे प्रकट कर विविध प्रकारो से उनके आनंद का यथेच्छ भोग करता रहता है । कभी वह अपने मे ही कृष्ण रूपता का अनुभव कर स्वयं को कृष्ण मानता है, तो कभी अपने अंतस्तल मे कृष्णानंद की खोज करता है । शुद्धाद्वैत ब्रह्म-भावना के सिद्धांत का प्रेम की इस अवस्था मे ही पर्यवसान हो जाता है ।

३—सूरदास और पुष्टिमार्गीय सेवा

श्री वल्लभाचार्य जी ने सांसारिक दुःख की निवृत्ति और ब्रह्म का बोध कराने के लिए जीव को कृष्ण-सेवा का उपदेश किया है† । जब तक सांसारिक दुःख की निवृत्ति और ब्रह्म का बोध नहीं होता, तब तक जीव को पूर्वोक्त दिव्य प्रेम की सिद्धि भी प्राप्त नहीं हो सकती । उस सिद्धि को प्राप्त किये बिना श्रुतियों की गति दुर्लभ है, अतः निरंतर कृष्ण-सेवा करना ही प्रेम-जिज्ञासु जीवों के लिए एक मात्र कर्तव्य कहा गया है ।

आचार्य जी ने कृष्ण-सेवा के दो भेद बतलाये हैं—एक क्रियात्मक और दूसरा भावनात्मक । क्रियात्मक सेवा पुनः दो प्रकार की कही गयी है—एक तनुजा और दूसरी वित्तजा । तनुजा अर्थात् इस शरीर और उसकी एकादश इंद्रियाँ एवं स्त्री, पुत्र, कुटुंब आदि द्वारा की जाने वाली सेवा और वित्तजा अर्थात् द्रव्य और उससे संबंधित पदार्थों द्वारा की जाने वाली सेवा । भावनात्मक सेवा को आचार्य जी ने मानसी कहा है । उसका स्वरूप चित्त का श्रीहरि में संपूर्ण रूपेण प्रवण होना है । इसकी सिद्धि तनुजा-वित्तजा प्रकार वाली सेवा से ही हो सकती है*, इसलिए क्रियात्मक सेवा करना ही जीव का सर्व प्रथम कर्तव्य है । इस सेवा में ब्रह्म-भावना पूर्वक पूर्वोक्त बाल-भावना, स्वकीय स्त्री-भावना और परकीय भावनाओं से स्नेहात्मक चिंतवन करना है । इस प्रकार से मानसी सेवा सिद्ध हो सकती है । इससे जीव परागति को प्राप्त होता है‡ । क्रियात्मक सेवा में इस प्रकार के चिंतवन बिना न तो एकादश इंद्रियों विशेषतः मन का ही विनियोग हो सकता है, न उससे चित्त की पूर्ण प्रवणता रूप मानसी सेवा ही सिद्ध हो सकती है ।

तनुजा-वित्तजा रूप क्रियात्मक सेवा के स्वरूप को तादृश करने के लिए आचार्य जी ने पुष्टिमार्गीय सेवा का इस प्रकार निर्माण किया है—

---

† (१) ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम् । (सिद्धांत मुक्तावली)
(२) कृष्ण सेवा सदा कार्या ...... । (सिद्धांत मुक्तावली)

* चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनु वित्तजा । (सिद्धांत मुक्तावली)

‡ युवां मां पुत्र भावेन ब्रह्म भावेन चासकृत् ।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् । (भागवत १०, अ० ४)

गुरु का आश्रय—कृष्ण-सेवा के जिज्ञासु जीव को सर्व प्रथम कृष्ण का माहात्म्य और उनके स्वरूप का ज्ञान आवश्यक रूप से होना चाहिए। इसके बिना उससे कृष्ण की कृपा को प्राप्त कराने वाली सेवा सांगोपांग रूप से नहीं हो सकती है। अतएव इस प्रकार की ज्ञान-प्राप्ति के लिए कृष्ण-सेवा मे परम-वीचय, दम्भादि रहित और श्रीभागवत-तत्त्व को जानने वाले पुरुष को गुरु करना आवश्यक है और श्रद्धा एवं जिज्ञासा पूर्वक 'सर्वात्मभाव' से इस गुरु का भजन-आश्रय करना इस जीव के लिये नितांत आवश्यक होता है*। जब तक जिज्ञासु जीव मे गुरु और ईश्वर के बीच इस प्रकार की अभेद बुद्धि नहीं स्थापित होती, तब तक उसको शास्त्रों के ज्ञान–निष्कर्ष स्वरूप कृष्ण-माहात्म्य का विशुद्ध बोध भी नहीं हो सकता है। उपनिषद् के निम्न श्लोक से इस बात की पुष्टि होती है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यै ते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

सूरदास के पदो मे सर्वात्म भाव से गुरु के भजन का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

(१) श्री बल्लभ अबकी बेर उबारौ।
सब पतितन मे विख्यात पतित हौं, पावन नाम तिहारौ॥
और पतित नहीं मेरे सम, अजामिल कौन बिचारौ।
भाज्यौ नरक नाम सुन मेरौ, जम ने दियौ हरतारौ॥
कृपासिंधु करुनानिधि केसव, अब न करोगे उधारौ।
"सूर" अधम को कहूँ ठौर नहीं,'बिना एक सरन तुम्हारौ'॥

(२) श्री बल्लभ भले–बुरे तोऊ तेरे।
तुमहि हमारी लाज बडाई, बिनती सुन प्रभु मेरे॥
अन्य देव सब रंक-भिखारी, देखे बहुत घनेरे।
हरि-प्रताप बल गिनत न काहू, निडर भये सब 'चेरे'॥
सब त्यजि तुम सरनागति आये, दृढ़ करि चरन गहेरे।
"सूरदास" प्रभु तिहारे मिले तें, पाये सुख जु घनेरे॥

(३) भरोसौ दृढ़ इन चरननि केरौ।
श्री बल्लभ नख-चंद्र छटा बिनु, सब जग माँझ अँधेरौ॥

---

* कृष्णसेवा परंवीदयं दम्भादिरहितं नरम्।
श्रीभागवत तत्त्वज्ञं भजेज्जिज्ञासुरादरात्॥ (निबंध)

साधन और नहीं या कलि मे जासो होत निबेरो।
"सूर" कहा कहै द्विविध आँधरो बिना मोल कौ 'चेरो' ॥
(४) हरि हरि-हरि सुमिरन करो। हरि-चरनारविंद उर धरो ॥
श्रीवल्लभ प्रभु के चरन। तिनके गहो सुदृढ करि सरन ॥
विट्ठलनाथ कृष्ण† सुत जाके। सरन गहे दुख नासहि ताके ॥
तिनके पद-मकरंदहि पाऊं। "सूर" कहै हरि के गुन गाऊं ॥

पूर्वोक्त शास्त्रीय आधारो से इस सेवा-मार्ग मे सर्व प्रथम गुरु का आश्रय कर्त्तव्य रूप कहा गया है। जब जीव गुरु का आश्रय करता है, तब गुरु भगवान् श्रीकृष्ण से उसका विस्मृत हुआ चिरकालीन अशात्मक सबध का ज्ञान कराते हुए उसका कृष्ण के चरणो मे आत्म-निवेदन कराता है। इससे जीव कृष्ण का दास बनकर कृष्ण-सेवा का अधिकारी होता है। जिस मंत्र से आचार्य जी ने जीव का श्रीकृष्ण के चरणो मे आत्म-समर्पण कराया है, उसका अक्षरशः अनुवाद इस प्रकार है—

"श्रीकृष्ण मेरा आश्रय (शरण) है। सहस्र परिवत्सर जितना काल व्यतीत हुआ, श्रीकृष्ण से मेरा वियोग हुआ है। उस वियोग-जन्य तापक्लेशानद का मेरे मे से तिरोभाव हुआ है, अत. भगवान कृष्ण को देह, प्राण, इंद्रियाँ, अतःकरण उसके धर्म, दारागार, पुत्र. आप्त-वित्त, इहलोक-परलोक और आत्मा सहित (मै) समर्पित करता हूँ। मै दास हूँ। कृष्ण मै तुम्हारा हूँ।"

कृष्ण के स्वरूप (मूर्ति) के समक्ष बाह्याभ्यतर शुद्ध प्रकार से आचार्य जी जीव को तुलसी की साक्षी से इस प्रकार की प्रतिज्ञा करवाते है। इसी को आत्म-निवेदन कहा जाता है।

---

† अग्निरूपो द्विजावारो भविष्यामिह भूतले।
वल्लभोह्यग्निरूप स्याद्विट्ठल पुरुषोत्तम ॥
(अग्नि पुराण का भविष्योत्तर खंड)

वल्लभोनाममेवत्म भुविसर्वे वदंतिहि।
यत्सूनु विंट्ठलेशस्तु यशोदा नंदनंदनः ॥
(नारद पचरात्र के तृतीय रात्र)

अग्निसहिता, सनत्कुमारसहिता, गौरी-तन्त्र, ब्रह्मयामल इत्यादि मे भी इसी प्रकार के उलेख मिलते है।

श्रीमद्भागवत एकादशस्कंध में भगवान श्रीकृष्ण कहते है—

ये दारागार पुत्राप्त प्राणान् वित्त मिमं परं।
हित्वा मां शरणं यात कथ तां स्त्यक्तुमुत्सहे॥

अर्थात्—जो व्यक्ति दारागार पुत्राप्त प्राण और वित्त आदि सहित मेरी शरण मे आता है, उसका मै हे उद्धव ! किस प्रकार त्याग कर सकता हूँ ?

इस प्रकार के कृष्ण-वाक्यो को प्रमाण मान कर ही आचार्यजी ने इस आत्म-निवेदन प्रणाली को प्रकट किया है और इसी से जीव अपने अशी कृष्ण से अंगीकृत होकर साक्षात् दासत्व का अधिकारी हो जाता है, इस प्रकार का विश्वास प्रकट किया है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहम्"—इस भगवद्गीता का कृष्ण-वाक्य भी इस विश्वास की पुष्टि करता है, अतः अविश्वास न करने की आज्ञा करते हुए* आचार्यजी ने इस अधिकार को प्रत्यक्ष करने के लिए वाचिक रूप मे जो प्रतिज्ञा की है, उसका क्रिया और मन से अनुसरण करने को कहा है। इसी लिये सेवामार्ग प्रकट किया गया है। सेवामार्ग द्वारा जीव मनसा-वाचा-कर्मणा भगवद्दासत्व को सिद्ध कर कृष्णानुगृहीत होता है। इससे वह परमगति को प्राप्त होता है।

इस प्रकार के आत्म-निवेदन और उसके क्रियात्मक रूप का वर्णन सूरदास के निम्न लिखित पद मे मिलता है—

यामै कहा घटेगौ तेरौ।
नंदनंदन करि घर कौ ठाकुर आपुन ह्वै रहै चेरौ॥
भली भई जो सपति बाढी बहुत कियौ घर घेरौ।
कहुँ हरि-सेवा, कहुँ हरि-कथा, कहुँ भक्तन कौ डेरौ॥
जुवती-जूथ बहुत संकेले, वैभव बढ्यौ घनेरौ।
सबै समपन "सूर" 'स्याम को' यहै साँचौ मत मेरौ॥

जो लोग "तन मन धन गुसांईजी को अर्पन' इस कहावत के कारण पुष्टिमार्ग को बदनाम करने की धृष्टता करते है, उनको पूर्वोक्त आत्मनिवेदन के मंत्र के अक्षरार्थ तथा सूरदास के इस पद पर ध्यान देना चाहिए। इन दोनों में गुरु को समर्पण करने का कही उल्लेख नही है, श्रीकृष्ण को ही सब कुछ समर्पण करने को कहा गया है।

---

* अविश्वासो न कर्त्तव्य. सर्वथा बाधकस्तु सः। (विवेक धैर्याश्रय)

नित्य की सेवाविधि—श्रीवल्लभाचार्य जी का उपदेश है कि शरणस्थ जीवों को गुरु की बतलाई हुई प्रणाली के अनुसार सेवा की कृति करनी चाहिए*, इसीलिए आचार्य जी ने स्वमार्ग की सेवा-विधि का निर्माण किया है, जिससे पुष्टिस्थ जीव इस विधि के अनुसार सेवा की कृति कर सके।

आचार्यजी ने सेवा-विधि मे दो क्रम रखे है—एक प्रातःकाल से शयन पर्यंत की नित्य विधि का और दूसरा वर्षोत्सव का।

हम पहले लिख चुके हैं कि आचार्यजी ने पुष्टि के गुरु स्वरूप गोपीजनो के भावना-साधनो को ही इस पुष्टिमार्ग के मुख्य साधन माने है, इसलिए आचार्य जी ने पूर्वोक्त ब्रजांगनाएँ, गोपी और गोपांगनाओ की विविध साधन रूप प्रेमात्मक भावनाओ के अनुसार ही इस सेवा-विधि का निर्माण किया है‡।

मातृभाव स्वरूप ब्रजांगनाओ ने भगवान् कृष्ण के प्रति बाल-भाव की भावना से प्रेरित होकर उनकी प्रातःकाल से शयन पर्यंत वात्सल्यता पूर्वक सेवा की है; इसलिए आचार्यजी ने इस नित्य की सेवा-विधि मे उन्हीं की भावना को फलित किया है। इस भावना के अनुसार आचार्य जी ने कृष्ण की सेवा के मुख्य आठ समय रखे है। इनका नाम और परिचय इस प्रकार है—

१ मगला, २. शृंगार, ३ ग्वाल, ४. राजभोग, ५ उत्थापन, ६ भोग, ७ सन्ध्याआरती, ८. शयन।

१. मगला—श्री गुरु का स्मरण और उनकी वदना कर भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप को प्रातः जगाया जाता है। फिर उनको कलेऊ कराया जाता है, जिसको मंगल भोग कहते है। समयानुसार भोग कराकर मगला-आरती होती है। ये सब प्रक्रियाएँ वात्सल्य बाल-भाव से मातृ-चरण श्री यसोदाजी की भाव-भावना से भावित होकर की जाती है। इसमे ऋतु अनुसार वस्त्र, सामग्री आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है।

२. शृंगार—मंगला-आरती के अनतर श्रीकृष्ण के स्वरूप का उष्ण जल से स्नान कराया जाता है और तेल फुलेल लगाकर वस्त्र, आभरण आदि धराये जाते है।

---

* सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा (नवरत्न)

‡ सेवा-रीति प्रीति ब्रज जन की जन हित जग प्रगटाई। (बधाई)

३ ग्वाल—शृंगार के अनंतर शृंगार-भोग आता है। फिर ग्वाल के भाव मे 'घैया§' अरोगाई जाती है।

४ राजभोग—शीतकाल मे ठंड के कारण भगवान् कृष्ण नंदादिक के साथ घर मे भोजन करते है और उष्णकाल मे धूप शीघ्र होने से माता यशोदा अपने पुत्र को शीघ्र गायों के साथ वन मे भेज देती है और पीछे से भोजन सामग्री सखियों के द्वारा भेजती है। इसे 'छाक' कहते है। फिर राजभोग आरती होकर 'अनोसर' होता है।

५ उत्थापन—छै घड़ी दिन रहे पुनः प्रभु को जगाया जाता है।

६ भोग—जगाने के अनंतर फल-फूलादि का भोग आता है। फिर दर्शन होते है।

७ संध्या-आरती--वन से गायों को लेकर श्री कृष्ण घर आते हैं इस समय घर मे आरती की जाती है।

८ शयन—ब्यारू-शयन भोग आता है, फिर दर्शन आरती होती है। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण के स्वरूप को पौढाया जाता है।

इस प्रकार की दैनिक प्रक्रियाओ को नित्य की सेवा विधि कहते हैं। इसमें मातृचरण श्री यशोदा जी की वात्सल्य-भावना की ही प्रधानता रहती है।

सूरदास ने उक्त नित्य की सेवा-विधि का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया है—

भजो गोपाल भूलि जिनि जावो। मनुषा देह कौ यहि है ल्हावो॥
'गुरु सेवा' करि भक्ति कमाई। कृपा भई तब मन मे आई॥
यही देह सों सुमरो देवा†। देह धारि करिऐ यह सेवा॥
सुनो संत सेवा की 'रीति'। करै कृपा 'मन राखै प्रीति'॥
उठिकैं प्रात गुरन सिर नावें। प्रात समै श्रीकृष्ण ही ध्यावें॥
जोई फल माँगे सोई फल पावें। हरि-चरनन मे जो चित लावे॥
जिन ठाकुर कौ दरसन कियौ। जीवन जन्म सुफल करि लियौ॥

§ दूध के फैन का पदार्थ।

† एको देवो देवकी पुत्रएव। ''''''कर्माप्येक तस्य देवस्य सेवा।

(निबंध)

जो ठाकुर की आरति करे * । तीन लोक वाके पाँयन परें ॥
जो ठाकुर को करे प्रनाम । विष्णु लोक तिनकौ निज धाम‡ ॥
जो हरि आगे वाद्य बजावें । तीन लोक रजधानी पावें ॥
जो जन हरि को ध्यान करावें । गरभ वास मे कबहू न आवें ॥
जो हरि कौ नित करें सिंगार। । ताकौ पूरन है अगीकार ॥
जो दरपन ठाकुरहि दिखावें । चद सूर्य ताको सिर नावे ॥
जो ठाकुरहि सु तुलसी चढावैं† । ताकी महिमा कहत न आवै ॥
जो कीर्तन ठाकुर ही सुनावे । ताको ठाकुर निकट बुलावे ॥
हरि-मंदिर मे दीपक धरे । अंध-कूप मे कबहू न परे ॥
जो ठाकुर की सेज बिछावे । निज पद पाय, दास सो कहावें ॥
पलना जो ठाकुरहि झुलावे । वैकुंठ-सुख अपने घर लावे ॥
जो ठाकुरहि झूलावें डोल । नित लीला मे करे कलोल ॥
उत्सव करि मन आरती करें‖ । ता आधीन रहे श्रीहरे ॥
जो ठाकुर को भोग धरावें । सदा परम नित आनद पावें ॥
जो पद दीन्ह जसोदा मात¶ । ता सुख की कछू कही न जात ॥
ग्वालन सहित गोपाल जिमावे§ । सो ठाकुर के सखा कहावें ॥
जो ठाकुर को स्वाद करावें । सो ताकौ फल तब ही पावें ॥
गोवर्धन की लीला गावे । चरन-कमल-रज तब ही पावें ॥
श्री जमुना जल करे जो पान । सो ठाकुर के रहे सन्निधान ॥
जहाँ समाज वैष्णवी होवै । ताकी संगति नित-प्रति जोवै ॥

---

* मगला-आरती ।

‡ सेवाया फल त्रयम । अलौकिक सामर्थ्यं, सायुज्य, सेवौपयिक देहो वा वैकुंठादिषु । (सेवाफल विवरणम)

। शृगार का समय ।

† शृगार अनंतर ग्वाल के समय मे तुलसी समर्पण करने की रीति है । इससे ग्वाल का सकेत है ।

‖ राजभोग आरती का सकेत है ।

उत्थापन भोग ।

¶ बाल-भावना का सकेत है ।

§ सध्या-आरती का सकेत है ।

शयन भोग ।

श्री भागवत सुनै आनंद करि । ताके हृदै बसे नितही श्रीहरि ॥
जो ठाकुर कों देह समर्पै । उत्तम श्रेष्ठ जानि कै अरपे ॥
जिनि हरि की गागर भरि आनी । तिन वैकुंठ अपनी स्थिति ठानी ॥
जो ठाकुर कौ मंदिर लेपे । माया ताको कबहू न लेपे ॥
जो ठाकुर कौ सीधौ बीनें । जितने तीरथ तितने कीनें ॥
जो ठाकुर की माला पोवै । सोई परम भक्त नित होवै ॥
जो ठाकुर को चंदन लावै । त्रिविध ताप संताप मिटावै ॥
जो ठाकुर के पात्रन धोवै । सदा-सर्वदा निरमल होवै ॥
जो हरि-कीर्तन सुख सो करै । मुक्ति चारि हू पाँयन परै ॥
सेवा मे जो आलस करै । कूकर ह्वै कै फिरि-फिर मरै ।
"मनसा जो सेवा आचरै । तब ही सेवा पूरी परै ॥"
सेवा कौ आश्रय करि रहै । दुख सुख बचन सबन के सहै ॥
जो सेवा मे आलस लावै । सो जड़ जनम प्रेत कौ पावै ॥
वेद पुरानन मे यों भाख्यौ । 'सेवारस ब्रज गोपिन[1] चाख्यौ' ॥
सेवा की यह अद्भुत रीति । श्री विट्ठलेश सों राखो प्रीति ॥
श्री आचार्य महाप्रभु प्रगट बताई । कृपा भई तब मन मे आई ॥
सेवा कौ फल कह्यौ न जाई । सुख सुमरे श्री वल्लभ राई ॥
सेवा कौ फल सेवा पावै । "सूरदास" प्रभु हृदै समावै ॥

सूरदास के निम्न पदों मे आठो समय की बाल-भावनाओ का इस प्रकार वर्णन किया गया है —

मंगला

जगाने का —

लालैं नाहि जगाय सकत, सुन सो बात सजनी ।
अपने जान अजहू कान्ह, मानत सुख रजनी ॥
जब-जब हौं निकट जाऊँ, रहत लागि लोभा ।
तन की सुधि बिसरि गई, देखत मुख-सोभा ॥
बचनन को जिय बहुत करत, सोचत मन ठाढ़ी ।
नयनन नयन बिचारि परें, निरखत रुचि बाढ़ी ॥
यह बिधि बदनारबिंद, यसुमति जिय भावै ।
"सूरदास" सुख की रासि, कहत न बनि आवै ॥

---

[1] वीथिन

कलेऊ का—

(१) दोऊ भैया माँगत मैया पै, देरी मैया दधि माखन रोटी।
सुनि जसुमति यह बात सुतन की, झूठे ही धामके काम अंगोटी।।
बलभद्र गह्यौ नासा कौ मोती, कान्ह कुवर गही दृढ़ करि चोटी।
मानो हंस मोर भख लीने, कहा बरनो उपमा मति छोटी।।
यह देखत नंद आनंदे, प्रेम-मगन भये लोटा-पोटी।
"सूरदास" प्रभु मुदित यसोदा, भाग्य बडे, करमन की मोटी।।

(२) अबही जसोदा माखन लाई।
मैं मथिकैं अब ही जू निकाम्यौ तुम कारन मेरे कुँवर कन्हाई।
माँगि लेहु ऐसे ही मोपै मेरे ही आगे खाहु।
और कहूँ जिन खैहों मोहन, दीठ लगेगी काहु।।
तनक-तनक ही खाउ लाल मेरे, ज्यों बढ़ि आवै देह।
"सूर" स्याम कछु होउ बडे से, बैरिन के मुख खेह।।

आरती का —

ब्रज मंगल की मंगल आरती।
रतन जटित कनक थार लै ता मधि चित्र कपूर लै बारती।।
लेति बलाइ करति न्यौछावरि तन मन-प्रान वारनै वारती।
'सूरदास" भरी है जसोदा मगन भई तन-मन न सॅवारती।।

शृंगार

न्हवायवे का—

यसोपति जब ही कह्यौ न्हवावन, रोय गये हरि लोटत री।
तेल उबटनौ लै आगे धरि, लाल ही चोटी पोतत री।।
मै बलि जाऊं इन मोहन की, कित रोवत बिन काजै।
पाछे धरि राख्यौ चुराय कै, उबटनौ तेल समाजै।।
महेरि बहुरि विनती करि राखत, मानत नही कन्हाई।
"सूर" स्याम अति ही बिरझाने, सुर-मुनि अंत न पाई।।

शृंगार का—

करति शृंगार मैया मन भावत।
सीतल जल उष्ण करि राख्यौ+ लै लालन को बैठि न्हवावत।।

+ केवल पुष्टि संप्रदाय में ही भगवत्स्वरूप उष्ण जल से बारहों मास न्हवाये जाते है। अन्य संप्रदायों मे बारहो मास ठंडे जल में ही न्हवाये जाते है।

देखो मेरे लाल और सब बालक घर-घर ते कैसे बनि आवत ॥
पहरौ लाल झगा अति सुंदर, आँख आँजि के तिलक बनावति ।
"सूरदास" प्रभु खेलत आंगन, लेति बलैया मोद बढ़ावति ॥

ग्वाल

गैया का—

दै मैयारी दोहिनी, दुहि लाऊं गैया ।
माखन खाय बल भयौ तोहि नंद दुहैया ॥
सेदुर-काजर धूमर-धौरी मेरी ये गैया ।
दुहि लाऊं तुरतहि तब मोहि करिदै घैया ॥
ग्वालन के संग दूहत हौ बूझहु बलभैया ।
'सूर''निरखि जननी हँसी तब लेति बलैया ॥

राजभोग

शीतकाल भोजन का —

जेवत कान्ह नंदजू की कनियाँ ।
कछुक खात, कछु धरनि गिरावत, छबि निरखति नंदरनियाँ ॥
बरी-बरा बेसन बहु भाँतिन, व्यंजन विविध अँगनियाँ ।
आपन खात नंदमुख लावत, यह सुख कहत न बनियाँ ॥
आपुन खात खवावत ग्वालन, कर माखन दधि दुनियाँ ।
सद माखन मिश्री मिश्रित करि, मुख नावत छबि धनियाँ ॥
जो सुख महरि-यसोदा बिलसत, सो नहि तीन भवनियाँ ।
भोजन करि अचवन जब कीनो, माँगत "सूर" जुठनियाँ ॥

उष्ण काल छाक का—

बहुत फिरी तुम काज कन्हाई ।
टेरि-टेरि हौ भई बावरी, दोऊ भैया तुम रहे लुकाई ॥
जे सब ग्वाल गये घर-घर को, तिनसो कहि तुम छाक मँगाई ।
लोनी दधि मिष्टान्न जोरिकैं, यसुमति मेरे हाथ पठाई ॥
ऐसी भूख मांझ तू लाई, तेरी वहि विधि करों बड़ाई ।
"सूर"स्याम सब सखन पुकारत, आवत क्यो न छाक ही आई ॥

राजभोग सन्मुख का—

चक्र के धरनहार, गरुड़ के असवार,
नंद के कुमार मेरौ संकट निवारौ ।

यमला-अर्जुन तारयौ, गज ग्राह तें उबारयौ,
नाग कौ नाथन हार मेरौ प्रान प्यारौ ॥
गिरिवर कर धारयौ, इंद्र हू कौ गर्व गारयौ,
ब्रज के रखन हार बिरद बिचारौ।
द्रुपद सुता की बेर, नैक हू ना कीनी बेर,
अब क्यों अबेर "सूर" सेवक तिहारौ ॥

उत्थापन

नट—

बड़ौ निठुर बिधना यह देख्यौ।
जब ते आजु नदनदन छबि, बार-बार करि पेख्यौ ॥
नख, अंगुरी, पग, जानु, जंघ, कटि, रचि कीन्हो निरमान।
हृदय, बाहु, कर, हस्त, अंग-अँग, मुख अति सुंदर बान ॥
अधर, दसन, रसना, रस बानी, स्रवन, नैन अरु भाल।
"सूर" रोम प्रति लोचन देतौ देखत बनै गोपाल ॥

संध्या-आरती

गौरा—

(१) वह देखो नद कौ नंदन आवत।
वृंदाबन ते गाय चराय कै कर धर बैनु बजावत ॥
सुदर स्याम कमल दल लोचन जसोदा के जिय भावत।
कारी, धौरी, धुमरी, पियरी, लै-लै नाम बुलावत ॥
बाल-गोपाल सखा संग लीने, पतुवन दूध पिवावत।
"सूरदास" प्रभु वेग धरत पग, जुवती प्रेम बढ़ावत ॥

(२) जसोदा मैया काहे न मंगल गावै।
पूरन ब्रह्म सकल अविनासी, ताकौ गोद खिलावै ॥
कोटि-कोटि ब्रह्मांड कौ कर्त्ता, मुनि जन जाको धावै।
ना जानो यह कौन पुन्य ते, तेरी धैनु चरावै ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, जप-तप ध्यान न आवै।
सेष-सहसमुख रटत निरंतर, हरि कौ पार न पावै ॥
सुंदर बदन कमल-दल लोचन, गोधन के सँग धावै।
करत आरती मात जसोदा, "सूरदास" बलि जावै ॥

शयन

ब्यारू का—

माखन रोटी लेउ कान्ह बारे ।
ताती रुचि उपजावत त्रिभुवन के उजियारे ।।
और लेउ पकवान मिठाई मेवा बहु विधि सारे ।
औटयौ दूध सद्य घृत मधुर रुचि सो खाउ मेरे प्यारे ।।
तब हरि उठिकै करी ब्यारू भक्तन प्रान पियारे ।
"सूरदास' प्रभु भोजन करिकै सुचि जल सो वदन पखारे ।।

शयन के दर्शन का—

कुडल मंडित कपोल, अति लोल डोलनि, बडरे नैन चपल सरस सजल भरे । नासा सुकवर सुढार, अधर बिंब बिच प्रबाल, हसन दसन लसनि मानो फूल झरे ।। कंबु कंठ मुक्त-माल, नगन जटित पदक लाल, कंठ बाँह भुज मृनाल, सखा अंस धरे । नाभि नलिन कीर त्तीर, पाइन ज्वलत चटक-मटक, चरन कमल चित्त दै "सूर" बिनती करे ।।

पौढने का—

(१) गिरिधन सैन कीजै आय ।
चाँदनी यह घटत नाही कहत जसोदा माय ।।
खेल सोई खेलियै बलि जो हमही सुहाय ।
जो खेल मे तेरै चोट लागै सो खेल देहु बहाय ।।
खेलि मदन गोपाल आये जननी लेति बलाय ।
पियौ पय तुम धौरी धेनु कौ सुख कर हू माखन खाय ।।
स्वच्छ सेज सुगंध बहु बिधि लाल पौढ़ आय ।
मदन मोहन लाल के "सूर" चरन चांपत माय ।।

(२) सोवत नीद आय गई स्यामहिं ।
महरि उठी पौढाय दुहन को, आपन लगी गृह कामहिं ।।
बरजति है घर के लोगन को, हरुवे लै-लै नामहि ।
गाढ़े बोल न पावत कोऊ डर मोहन बलरामहिं ।।
सिव-सनकादिक अंत नहि पावत ध्यावत है दिन-यामहिं ।
"सूरदास" प्रभु ब्रह्म सनातन सो सोवत नंद-धामहिं ।।

---

† यह साम्प्रदायिक परिपाटी आज भी श्रीनाथजी प्रभृति के यहाँ प्रचलित है ।

वर्षोत्सव विधि—नित्य सेवा विधि के अतिरिक्त आचार्य जी ने सेवा-मार्ग मे वर्षोत्सव विधि का भी समावेश किया है। श्रीकृष्ण के नित्य और अवतार लीलाओ के वर्ष भर के उत्सव तथा षट् ऋतुओं के उत्सवो का इसमे प्राधान्य है। इन्ही उत्सवो के साथ यह समग्र जगत् ईश्वर कृत होने से सत्य है। इस सिद्धांत के आधार पर लोक-त्यौहारो को भी स्थान दिया गया है। इसी प्रकार ब्रह्म-भावना के माहात्म्य ज्ञान को स्पष्ट करने के लिए वैदिक पर्व तथा भक्ति प्राधान्य कृष्ण के अन्य अवतारो की जयती आदि को भी इस सेवा मार्ग मे स्वीकार किया गया है। इन सब का परिचय इस प्रकार है—

नित्य एव अवतार लीलाओं के उत्सव--सवत्सर, गनगौर अक्षय तृतीया, रथयात्रा, पवित्रा, जन्माष्टमी, राधाष्टमी, दान, सांझी, नवरात्रि रास अन्नकूट, गोपाष्टमी, व्रतचर्या।

षट् ऋतुओं के उत्सव--बसत ऋतु का उत्सव डोल, ग्रीष्म ऋतु का उत्सव फूल-मडली, वर्षा ऋतु का उत्सव हिंडोरा, शरद ऋतु का उत्सव रास (द्वितीय दिन का), हेमंत ऋतु का उत्सव देवप्रबोधिनी का जागरण, शिशिर ऋतु का उत्सव होली।

लोक त्यौहार--रक्षा बधन (ब्राह्मणो का) दशहरा (क्षत्रियो का) दिवाली (वैश्यो की) होली (शूद्रो की) इत्यादि।

वैदिक पर्व- मकर संक्रांति, ज्येष्ठाभिषेक आदि

अन्य अवतारों की जयतियाँ-राम जयती, नृसिंह जयती, वामन जयंती।

इन उत्सवों मे आसक्ति रूप स्वकीय स्त्री भावना वाली भक्ति तथा व्यसन रूप परकीय भावनाएँ व्यक्त हुई है। त्यौहार और वैदिक पर्वों मे लोक-भावना और वेद की ब्रह्म-भावना का आधार लिया गया है। लोक-भावना वाले त्यौहारों का समावेश बाल-भावना में तथा ब्रह्म भावना वाले पर्वों का समावेश माहात्म्य ज्ञान से संबधित स्वकीय स्त्री भावना वाली भक्ति में हो जाता है।

इन उत्सवों की भावनाएँ सूरदास के निम्न लिखित पदों से जानी जा सकती है—

१ **संवत्सर**-(चैत्र शु० १) "चक्र के धरन हार गरुड के असवार" यह माहात्म्य ज्ञान वाला पूर्वोक्त पद उपलब्ध है। भक्ति का हेतु माहात्म्य ज्ञान

होने से इसका गान नये वर्ष के प्रारंभ में होता है। इसमें भक्ति रूप 'संवत्सर की सरस लीला' में जीव का अधिकार प्राप्त होता है।

२. गनगौर— (चैत्र शु० ३) यह ब्रज की कन्याओं का त्यौहार है। श्रीराधिका प्रभृति ने जिस प्रकार "नंद-सुत हमारे पति हों" इस मनोरथ की सिद्धि के लिये मार्गशीर्ष और पौष में व्रतचर्या कात्यायनी और भद्रकाल का आराधन किया था, इसी प्रकार चैत्र में गनगौर के रूप में ब्रज की आध्यात्मिक शक्ति रूपा 'गौरी' को पूजा है। 'कोन गौर ते पूजी राधा' आदि अष्टछाप के परमानन्ददास के कई पद इस विषय के उपलब्ध हैं। सूरदास का पद इस विषय का उपलब्ध नहीं होता है। फिर भी निम्न लिखित पद से उक्त बात की पुष्टि होती है—

सिव सों विनय करति कुमारि।
सीत भीतर जोरि कर मुख स्तुति करत त्रिपुरारि॥
व्रत संयम करति सुंदरि कृस भई सुकुमारि।
"छैहों ऋतु तप करति नीके," गृह कौ नेह बिसारि॥
ध्यान धरि कर जोरि, लोचन मूंदि यक-यक याम।
विनय अंचल छोरि रवि सों करति है सब बाम॥
हमहिं होउ कृपालु दिनमनि, तुम विदित संसार।
काम अति तनु दहत, दीजै "सूर" स्याम भरतार॥

इसमें 'छहों ऋतु तप करति नीके' वाले कथन में चैत-बसन्त ऋतु की गनगौर-आराधना का भी समावेश हो जाता है।

३. अक्षय तृतीया-(वैशाख शु० ३) नित्य लीला का उत्सव है—

(१) आजु बने नंदनंदन री नव चदन अंग अरगजा लाये।
हरकत हार सुढार जलज मनि, गुंजत अलि अलकन समुदाये॥
पीत बसन तन बन्यौ पिछौरा, टेढ़ी पाग तोर लटकाये।
अक्षय तृतीया, अक्षय लीला, अक्षय "सूरदास" सुख पाये॥

(२) कैसें कैसे आये हो पिय, ऐसी दुपहरी तपन में।
भवन बिराजो बिजना ढुराऊं, स्रम झलकन सगरी देह में॥
स्रम निवारिये, अरगजा धारिये, जिय तें टारिये और संदेह।
चतुर सिरोमनि याही तें कहियत "सूर" सुफल करो नेह॥

४ रथयात्रा—(आषाढ शु० २) इस उत्सव का प्रचलन सम्प्रदाय में गो० श्री विट्ठलनाथ जी ने किया था। इसका प्रधान सबंध श्री कृष्ण की द्वारिका-लीला से है। फिर भी इस मे ब्रज की बाल तथा किशोर भावनाओं को भी इस प्रकार स्थापित किया गया है-

बाल-भावना से—

देखो माई रथ बैठे हरि आजु।
आगे 'ब्रजजन सखा स्यामघन' सबै मनोहर साजु॥
हाटक कलसा, धुजा-पताका, छत्र-चँवर सिरताज।
चपल अस्व चालहिं अति चालिहै, देखि पवन मन लाज॥
आषाढ सुदी दुतिया 'नक्षत्र पुष्य' अचल नदसुत राज।
"सूरदास" हरषत ब्रजबासी, रह्यौ घोष सिरताज॥

किशोर भावना से—

देखो माई रथ बैठे गिरधारी।
छतरी अनुपम हाटक-जराय की, झूमक-लर मुक्तारी॥
गादी सुरंग ताफता सुंदर, फेर बाज छवि न्यारी।
डोरी दिव्य पाट पचरंग की, कर गहे 'कुंज बिहारी'॥
चपल अस्व वर चलत हंस गति, बुधि नहि परति बिचारी।
लाल पाग सिर लाल छबिकर, जुही-माल गरे भारी॥
नीलमनी तन, कमल नैन को सोहै पीत पट धारी।
बिहरत ब्रज-बीथिन वृंदावन, 'गोपीजन' मनुहारी॥
देखि-देखि फूले ब्रजबासी, सुख की रासि अपारी।
कुमसुावलि बरषत इंद्रादिक, "सूरदास" बलिहारी॥

द्वारिका लीला के भाव से—

वा पट पीत की फहरानि।
कर गहि चक्र चरन की धावनि, नहिं बिसरत वह बानि॥
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच-रज की लपटानि।
मानो सिंधु सैल ते निकस्यौ, महा मत्त गज जानि॥
'जिन गोपाल मेरौ प्रन राख्यौ, मेटि वेद की कानि*'।
'सोई अब "सूर" सहाय हमारे निकट भए प्रभु आनि॥

* मर्यादा के उल्लंघन को ही पुष्टि कार्य कहा गया है इसलिए यहाँ पुष्टि पुरुषोत्तम का वर्णन है।

५ पवित्रा--(श्रा० शु० ११)यह नित्य लीला तथा वल्लभ-अवतार लीला का उत्सव है । श्रा० शु०११ को अर्धरात्रि को साक्षात पुरुषोत्तम ने प्रकट होकर श्रीगोकुल के ठकुरानी-गोविंद घाट पर श्री वल्लभाचार्य जी को ब्रह्मसबंध का उपदेश दिया था¶ । तब आचार्य जी ने नित्य लीला के सबंध से उन पुरुषोत्तम को पवित्रा धराया था । तब से यह उत्सव प्रति वर्ष संप्रदाय में मनाया जाता है ।

सूरदास के निम्न लिखित पद मे उसका वर्णन इस प्रकार हुआ है—

पवित्रा पहेरन कौ दिन आयौ ।
केसर कुमकुम रंग रस बागौ, फूँदना हार बनायौ ॥
जै-जैकार होत बसुधा पर सुर-मुनि मंगल गायौ ।
पहरि पवित्रा लिगें नंद-सुत 'सूरदास" जस गायौ ॥

६. जन्माष्टमी--(भाद्र० कृ० ८) यह कृष्णावतार लीला का उत्सव है । सूरदास ने अनेक पदों मे अनेक प्रकार से इसका वर्णन किया है । इस विषय का एक पद यहाँ दिया जाता है—

आज गृह नंद-महिर कै बधाई ।
प्रात समै मोहन मुख निरखत, कोटि चंद छबि छाई ॥
मिलि ब्रजनारी मंगल गावति, नंद-भवन मे आई ।
देति असीस जियौ जसुमति सुत,कोटि बरीस कन्हाई ॥
नित्य आनंद बढत वृंदावन, उपमा कही न जाई ।
"सूरदास" धन्य धन्य नँदरानी, देखत नैन सिराई ॥

७. राधाष्टमी--(भाद्र० शु० ८) यह राधिकावतार लीला का उत्सव है ।

सूरदास ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है--

आज वृषभान कै आनंद ।
बदन प्रभा ऐसी लागत मानो प्रगटयौ पूरन चंद ॥
एक जूत्थ बधावत गावत एक सुनावत हेल ।
सुनि सब नारि बधाई आई अपुने-अपुने मेल ॥

¶ श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्या महानिशि ।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥ (सि० र०)

जो आवत सो करत न्यौछावरि, तन तोरत बलि जात।
परम भाग दंपति कहियत हैं†, फूली अग न समात ॥
अपुने-अपुने मन कौ भायौ भयौ, कहत सब लोग।
"सूरदास" प्रगटी मुख ऊपर, भक्तन के हित जोग ॥

८. दान--(भाद्र० शु० ११) यह नित्य लीला और कृष्णावतार लीला का उत्सव है। इस लीला के सूरदास के असंख्य पद मिलते है। उनमे से एक पद यहाँ दिया जाता है—

गढ ते ग्वालिनि उतरी हो सीस मही कौ माट।
आड़ौ कन्हैया ह्वै रह्यौ सोतौ रोकत ब्रजबधू बाट ॥ मोहन जान दै ॥टेक
कहाँ की हो तुम ग्वालिनी हो,कहा तिहारौ नाम।
बरसाने की ग्वालिनी सोतौ, चंद्रावलि मेरौ नाम ॥ मोहन०
वृंदाबन की कुंज मे हो, अचरा पकरयौ दौरि।
नाम दान कौ लेत हो, लाल चाहत हो कछु औरि ॥ मोहन०
मेरे संग की दूरि गई हो, तुम रोकी बन मांझ।
घर तौ दारुन सास है सोतौ, होन लगी है सांझ ॥ मोहन०
तुम एकेले हम अकेली हो, बात नहीं कछु जोग।
तुम तौ चतुर प्रवीन हो, लाल कहा कहेंगे लोग ॥ मोहन०
तुम ओढ़ी है चूनरी हो, हम पहरयौ है चीर।
उमड़ घुमड़ आई बादरी अब कहा बरषावत नीर ॥ मोहन०
लै मटुकी आगे धरी हो, परी है स्याम के पाँय।
मन भावै सो लीजिये, लाल बचै सो बेचन जाँय ॥ मोहन०
प्रेम मगन भई ग्वालिनी हो,हरि कौ दरसन पाय।
मुख सो बचन न आवही, सो तौ रही ठगोरी लाय ॥ मोहन०
सुख बाढयौ आनंद भयौ हो,रही स्याम-गुन गाय।
सुंदर सोभा देखिकै "सूरदास" बलि जाय ॥ मोहन जान दै ॥

९. सांझी--(भाद्र शु० १५ से) यह नित्य और अवतार लीला का उत्सव है।

सूरदास के एक पद में इसका इस प्रकार वर्णन हुआ है,—

† स्वकीय भावना

सखियन संग राधिका बीनत, सुमनन बन मांह।
सांझी पूजन को आतुर ही, ठाडे कदंब की छांह॥
सखी भेष दै मोहन को, लै चली आपुने गेह।
पूछी कीरति, यह को सुंदरि?, तब कह्यौ मेरी सनेह॥
सांझी खेल बिदा करि सब को, दोउ पौढ़े सेज मँझार।
सगरी राति "सूर" के स्वामी, बसि सुख कियौ अपार॥

१०. नवरात्रि देवी पूजन (आश्विन शु० १ से ६ तक) यह अवतार लीला का उत्सव है। सूरदास ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है—

व्रत धरि देवी पूजी। जाके मन अभिलाष न दूजी॥
कीजै नंद-पुत्र पति मेरे। पैहों जो अनुग्रह तेरे॥
छंद—कर अनुग्रह बर दियौ जब बरस भर लो तप कियौ।
त्रैलोक सुंदर पुरुष भूषन रूप गुन नाहिंन बियौ॥
इत उबटि सोलह सिंगार सखियनि कुंवरि चौरी जहाँ बनी।
जा हित के व्रत नैम संयम सो घरी बिधिना ठनी॥

मुकुट रचि मोर बनायौ। माथे धरि हरि बर आयौ।
तन सांवल पीत दुकूले। देखत ही घन दामिनि भूले॥
छंद—दामिनी घन कोटि वारो जब निहारो मुख छवि।
कुंडल बिराजत गंड मंडल नहीं सोभा ससि रवि॥
और कौन समान त्रिभुवन सकल गुन जा मांहि है।
मानो मोर नाँचत, संग डोलत मुकुट की परछांहि है॥

गोपी सब न्यौते आईं। मुरली धुनि पठै बुलाईं।
जहाँ सब मिलि मंगल गाये। नव फूलन के मंडप छाये॥
छंद—छाये जु फूलन कुंज-मंडप पुलिन मे वेदी रची।
बैठे जु स्यामा-स्याम बर त्रैलोक की सोभा सची॥
उत कोकिला गन करे कुलाहल इत सबे ब्रज-नारियाँ।
आईं जु न्यौते दुहू दिस ते देत आनंद गारियाँ॥

रास मंडल भुज जोरी। स्याम सांवरे श्री राधा गोरी।
पानिग्रहन-विधि कीनी। तब मंडप भ्रम भाँवर दीनी॥
छंद—दीनीं जु भाँवर कुंज मंडप प्रीति गांठ हृदय परी।
सरद निस पून्यौ बिमल ससि निकट वृंदा सुभ घरी॥

गाये जु गीत पुनीत सखियन वेद रुचि मंगल ध्वनी ।
नंद सुत वृषभान-तनया रास मे जोरी बनी ॥
जहाँ मन्मथ सेन बरानी । तहाँ द्रुम फूले नाना भाँती ।
सुर बंदीजन यस गाये । तहाँ मघवा वाजित्र बजाये ॥

छंद—वाजित्र बाजे सब्द नभ सुर पुष्प अंजलि बरष ही ।
देव व्यौम विमान बैठे जय सब्द करके हरष ही ॥
" सूरदास " हिं भयौ आनद पूजी मन की माधिका ।
मदनमोहन लाल दूल्हे, दुलहनी श्रीराधिका ॥

११. रास—(आश्विन शु० १५) यह नित्य और अवतार लीला का उत्सव है। सूरदास के पदो मे इसका इस प्रकार वर्णन हुआ है—

हा हा हो हरि नृत्य करो ।
जैसे कै मै तुमहि रिझाऊं त्यो मेरौ मन तुम हू हरो ॥
तुम जैसे स्रम बाहु करत हो तैसे मै हू डुलाऊंगी ।
मै स्रम देखि तिहारे उर को भुज भरि कठ लगाऊंगी ॥
मै हारी त्योही तुम हारे चरन चाँपि स्रम मेटोगी ।
'सूर'स्याम ज्यो उछंग लेहु मोहि,त्योहि हँसि मै भेटोगी ॥

घोष-नागरी मडल मध्य नाँचत गिरिधारी लाल,
लेत गति अनेक भाँति चरन पटकनी ।
गिडगिडता गिडगिडता ताता तत ततत‌त थेई थेई,
बीच बीच अधर मधुर मुरलिका मटकनी ।
भुज सो भुज जोरि-जोरि लेत तान नव किशोर,
गावत श्रीराग मिलि ग्रीव लटकनी ।
"सूरदास" प्रभु सुजान नंदनंदन कुंवर कान्ह,
मदनमोहन छबि निरखि काम सटकनी ॥

१२. अन्नकूट—(का० शु० १) यह उत्सव श्रीकृष्ण की अवतार लीला का है। सूरदास ने इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया है—

अपने अपने टोलि ,कहत ब्रजबासियाँ ॥ टेक ॥
सरद कुहू निस जानि दीपमालिका जो आई ।
गोपन मन आनंद फिरत उन मंद अधिकाई ॥

एपन थापे दीजिये घर-घर मंगल-चार।
सात बरस कौ सांवरौ हो खेलत नंद दुवार॥ कहत०

बैठ नंद-उपनंद बोलि बृषभान पठाये।
सुरपति पूजा जानि तहाँ चलि गोविंद आये॥
बारबार हा हा करें कहो बाबा यह बात।
घर घर गोरस संचिऐ कौन देव की जात॥ कहत०

कान्ह तुम्हारी कुसल जानि यह मत्र उपेहै।
खटरस व्यंजन साज भोग सुरपति को देहैं॥
नद कह्यौ चुमकार कै जा दामोदर सोय।
बरस द्यौस कौ द्यौस है महा महोत्सव होय॥ कहत०

तब हँसि बोले लाल मत्र बहोर्यौ फिर कीनो।
आदि पुरुष निज जानि रैन सुपनौ मोहि दीनो॥
सब देवन कौ देवता गिरि गोबर्धन राज।
ताहि भोग किनि दीजिऐ सुरपति कौ कहा काज॥ कहत०

बाढ़ै गोधन वृंद दूध दधि कौ कहा लेखो।
यह परचौ विद्यमान नयन अपने किन देखो।
तुम देखत बलि खायगौ मोहो माँग्यौ फल देय।
गोप कुसल जो चाहिऐ तो गिरि गोबर्धन सेय॥ कहत०

गोपन कियौ बिचारि सबन मिलि सकट जो साजे।
बहु बिधि कर पकवान चले जहाँ बाजत बाजे॥
एक बनही बन को चले एक नदी सुर भीर।
एकन पेड़ौ पावही फूले फिरत अहीर॥ कहत०

एक उबट ह्वै चले एक बनहिं बन छाये।
एक गावे गुन गोविंद प्रेम उमँगे न समाये॥
गोपन कौ सागर भयौ गिरि भयौ मंदरा चार।
रत्न भई सब गोपिका कान्ह बिलोवन हार॥ कहत०

ब्रज चौरासी कोस परे गोपन के डेरा।
लंबे चौवन कोस जहाँ ब्रज-बास बसेरा॥
सबहिन के मन सांवरौ देखियत सबन मझार।
कौतुक भूले देवता आये लोक बिसार॥ कहत०

लीने विप्र बुलाय यज्ञ आरंभन कीनों।
सुरपति पूजा मेटि राज गोवर्धन दीनो॥
देव दिवारी स्यामही सब मिलि पूजन जाय।
नंद प्रतीत जो चाहिऐ तौ तुम देखत बलि-खाय॥ कहत०

प्रथमहिं दूध न्हवाय, बहुरि गंगाजल डारयौ।
बड़ौ देवता जानि, कान्ह कौ मतौ बिचारयौ।
जैसे हैं गिरिराज जू, तैसे अन्न कौ कोट।
मगन भए पूजा करे, नर-नारी बड-छोट॥ कहत०

सहस्र भुजा उर धरें, करें भोजन अधिकाई।
नख-सिख लों अनुहार, मानो दूसरौ कन्हाई॥
ललिता राधा सों कहै, तेरे ह्वै सँमाय।
गहै अंगुरिया नंद की, सो ढोटा पूजा खाय॥ कहत०

पीत 'दुमालौ' बन्यौ कंठ मोतिन की माला।
सुंदर सुभग सरीर, झलमले नयन बिसाला॥
स्याम की सोभा गिरि भयौ, गिरि की सोभा स्याम।
जैसौ परवत भात कौ, ढिंग भैया बलराम॥ कहत०

व्यंजन बहुत बनाय, कहां लों नाम बखानो।
भयौ भात कौ कोट, ओट गिरिराज छिपानो॥
बरा बिराजै भात पै, चंदा पटतर सोय।
यज्ञ पुरुष भोजन करे, सो सब देवन सुख होय॥ कहत०

जैसी कंचनपुरी दिव्य रतनन सो छाई।
बलि दीनी है प्रात, छांह चलि पूरब आई॥
बदरौला बृषभान की, रही बिलोवन हार।
ताकी बलि उन देवता, लीनी भुजा पसार॥ कहत०

सब सामग्री अरपि, गोप-गोपिन कर जोरे।
अगनित कीने स्वाद, दास बरने कहा थोरे॥
यह बिधि पूजा कीजिये, कह्यौ सबन समझाय।
स्याम कह्यौ "सूरदास" सो मेरी लीला-सरस बनाय॥ कहत०

१३-गोपाष्टमी - (का० शु० ८) यह उत्सव कृष्ण की अवतार—लीला का है—

आज हौ गाय चरावन जैहों ।
वृंदावन के भांति-भांति फल अपने कर मैं खैहों ।।
ऐसी अबहिं कहौ जिनि बारे! देखो अपनी भाँति ।
तनक तनक पां चलि हौ कैसे, आवत ह्वै है राति ।।
प्रात जात गैया लै चारन, घर आवत है सांझ ।
तुम्हरौ बदन कमल कुम्हलैहै रेगत घामहिं मांझ ।।
तेरी सो मोहिं घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक ।
"सूरदास" प्रभु कह्यौ न मानत, परे आपनी टेक ।।

१४-व्रतचर्या—(मार्गशीर्ष कृ० ११ से) यह उत्सव कृष्ण की अवतार लीला का है—

ब्रज-बनिता रवि को कर जोरें ।
सीत भीत नहिं करति छहौ ऋतु, त्रिविध काल यमुना जल खोरें ।।
गौरी-पति पूजति, तप साधति, करति रहति नित नेम ।
भोग रहित निसि जागि चतुर्दसि यसुमति सुत के प्रेम ।।
हम को देहु कृष्ण पति ईश्वर, और नहीं मन आन ।
मनसा-बाचा-कर्मणा हमरे, "सूर" स्याम कौ ध्यान ।।

षट् ऋतुओं के उत्सव—भिन्न भिन्न ऋतुओं के उत्सवों का गायन सूरदास ने अपने पदों मे इस प्रकार किया है—

१-डोल—(फा० शु० १) यह बसंत ऋतु का उत्सव है—

गोकुल नाथ बिराजत डोल ।
संग लिऐं वृषभान नंदिनी पहर नील निचोल ।।
कंचन खचित लाल-मनि-मोती हीरा जटित अमोल ।
झुलवत यूथ मिलि ब्रज सुंदरी, हरषत करत कलोल ।।
खेलत हँसत परस्पर गावत, हो-हो बोलत बोल ।
"सूरदास" स्वामी पिय प्यारी, झूलत झुलवत झोल ।।

२-फूल मंडली,—यह ग्रीष्म ऋतु का उत्सव है—

फूलन कौ महल, फूलन की सिज्या, फूले कुंज बिहारी, फूली राधा प्यारी ।
फूले वे दंपति नवल मगन फूले, करैं केलि न्यारी-न्यारी ।

फूली लता-बेलि, बिबिध सुमन गन फूले, आनन दोऊ हैं सुखकारी।
"सूरदास" प्रभु प्यारी पै वारत, फूले फूल चंपक-बेलि निवारी॥

३-हिंडोरा—(श्रा० कृ० १ से) यह वर्षा ऋतु का उत्सव है–

झूलें माई गिरिधर सुरग हिंडोरे।
रतन जटित पटुली पर बैठे, नागर नंद किसोरे॥
पीत बसन घनस्याम मनोहर, सारी सुरंग ही बोरे।
अंसन बाहु परस्पर जोरे, मद हसन पिय ओरे॥
घोष-नारि मिलि गावें चहुँ दिस, झुलवति थोरे-थोरे।
"सूर" प्रभु गिरिधरन लाल छबि ब्रजजुवतिन चित्त चोरे॥

४-रास—(आश्विन शु० १५) यह शरद् ऋतु का उत्सव है।

(१) रिझवति पिय ही बारंबार।
निरखि नयन लजात पिय के, नहीं सोभा पार॥
चाल स्वल्प, गज-हंस मोहत, कोक-कला प्रवीन।
हँसि परस्पर तान गावत, करत पिय आधीन॥
सुनत बन-मृग होत व्याकुल, रहत चित्रित आय।
"सूर" प्रभु बस किए नागर महा जाति सिरोमन राय॥

(२) रीझे परसपर नर-नारि।
कंठ भुज भुज धरे दोऊ, सकत नहिं निरवारि॥
गौर-स्याम कपोल सोभा, अधर अमृत धार।
परसपर दोउ पीय-प्यारी, रीझि लेत उगार॥
'प्रान एक द्वै देह कीनी,' भक्ति-प्रीति प्रकास।
"सूर" स्वामी-स्वामिनी मिलि, करत रंग बिलास॥

-जागरण ब्याह—(कार्तिक शु० ११) यह हेमन्त ऋतु का उत्सव है—

अहो मेरी प्रानपियारी। भोर ही खेलन कहाँ सिधारी॥
कुमकुम भाल तिलक किन कीनो। किन मृगमद कौ बेंदा दीनो॥
बेदा जू मृगमद दियौ मस्तक, निरखि ससि संसय परयौ।
सरद निसा कौ कला पूरन, मैन नृप कौ मद हरयौ॥
बिहँसि कै मुख कहति जननी, अलप बैनी किन गुही।
"सूर" के प्रभु मोहिबे को, रची मनमथ ही तुही॥

नंदमहरि की तरुनीय सोहै । मेरौ बदन फिरि-फिर करि जोहै ॥
खेलत डोलत ढिंग बैठारी । कछु मन मे आनँद कियौ भारी ॥

आँनंद मन मे कियौ भारी, निरख सुत विह्वल भई ।
बाबाजू कौ नाम लै-लै, तोहि हँसि गारी दई ॥
पाटी जु पाग, सँवार भूषन, गोद मे मेवा भरी ।
"सूर" के प्रभु निरखि मन मे, बिधना सो बिनती करी ॥

सुनि यह बात कीरति मुसिकानी । मै ब्रजरानी के जिय की जानी ॥
मेरी सुता है रूप की रासी । वेतौ कान्ह बनबासी उपासी ॥

कान्ह बनबासी उपासी, रंग-ढंग ये क्यों बनें ।
मेरे ढिग तौ रत्न अमोलक, काँच कंचन क्यो सने ॥
ललिता-विसाखा सो कह्यौ, तुम लली त्यजि कित हू गईं ।
"सूर" के प्रभु भवन बाहिर जान दीजो मति कही ॥

दिन दस-पाँच अटक जब कीनी । सुंदर स्याम दिखाई दीनी ॥
मुरझि परी तब सुधि न सवारे । प्यारी डसी भुजंगम कारे ॥

कारे भुजगम डसी प्यारी, गारुड़ी हारे सबै ।
नदनदन मत्र बिन सखि, यह विष क्यो हू ना दबै ॥
मनुहार करि मोहन को लाई, सकल विष देखत हने ।
"सूर"के प्रभु जोरि अविचल,जीवो जुग-जुग दोउ जने ॥

उठि बैठी तब बदन सभारे । कछु मोहन तन हँसत निहारे ॥
मुर बैठी मन भयौ हुलासा । कीर्ति गई पति अपने जू पासा ॥

अपने जु पति पै गई कीर्ति, प्रीत की रीति बिचार ही ।
मंत्र कीयौ ब्याह कौ सब सखी मंगल गावही ॥
वृंदा जु बन में रच्यौ स्वयंबर, पुष्प मडप छाइयो ।
"सूर" के प्रभु स्याम दूल्हे, श्री राधिका बर पाइयो ॥

बिधिना बिधि सब कीनीं । मंडप करिकैं भाँवर दीनी ॥
विविध कुसुम बरषाये । तहाँ मानिनी मंगल गाये ॥

गावे जु भानिनी मिलि कै मंगल कहत कंकन छोरियो ।
नही होय यह गिरि उचकलेवो लाल,हँसि मुख मोरियो ।
छोरयौ न छूटै डोरना यह, प्रीति-रीति ग्रंथी कही ।
"सूर" के प्रभु युवति-जन मिलि,गारी मन भामति दई ॥

६ होली- (फाल्गुन शु० १५) यह शिशिर ऋतु का उत्सव है।

स्यामाजू होरी खेलन आई।
ललिता चंद्रभागा चंद्रावलि, सखी अनेक सुहाई॥
जब यह बात सुनी जसोदा जू, अरघ पाँमड़े दीने।
लाल भाँमती जोरी लखि, मन मांझ बधाई कीने॥
फूली-फूली फिरत सखी सब, पकरन मदन गोपाले।
फिरि-फिरि कहति रोहिनी अब जिन,भरो नंद के लालै॥
यह सुनि ललिता और चंद्रावलि, बलदाऊ गहि लीने।
मृगमद-आड़ सँवार मांड मुख, भू पर बिदा दीने॥
भीजी नाना बिधि के रंगनि, बोलत हो-हो होरी।
अब गहि लेहु चलो मोहन को,यो दुर कहति किसोरी॥
चली दौरि चहुँ दिस ते सुंदरि,चढि गईं अटा अटारी।
बैठे हुते जहाँ मनमोहन, घेर लिए चित्रसारी॥
पकरयौ प्यारौ प्यारी छल करि, भेष सखी कौ कीनो।
आंख आंजि केसर मुख मांड्यौ, मृगमद बेंदा दीनो॥
एक सखी कुसुमन सो कबरी, नाना बिधि जु सँवारी।
सिंदुर माग भरी ता ऊपर, मोतिन की लर न्यारी॥
नीलांबर पहरायौ रीझि, पहराई मनि-माला।
स्यामा याकौ नाम धरयौ है,यो कहति मुदित ब्रजबाला॥
सब सहचरि मिलि लाई ताको, नंदरानी के पास।
यह संुदरि हम लाई है जू, घनस्याम मिलन की आस॥
देखि रूप ललचाय जसोदा, करति बहुत मनुहारी।
बार-बार न्यौछावरि करिकै, पीवत है जलवारी॥
जब यह भाव लख्यौ सबही मिलि,सखी भेष यह कीनो।
नाना बिधि पट वारि और मन मान्यौ फगुवा दीनो॥
भए दुहुन के भाये मन के, पिय-प्यारी रस भीने।
जे-जे हुती कामना मन मे, जैसी बिधि सुख दीने॥
छाय रह्यौ अनुराग परस्पर, कहा बरने, कवि कौन।
देव विमानन फूलन बरषत, सोभित है नंद-भौन॥
चतुर सखा श्रीदामा तब एक, भेष सखी कौ लायौ।
सखी यूथ मे आय मिल्यौ, यह भेद न काहू पायौ॥

मिली दौरि चंद्रावलि तासों भटू-भटू कहि टेरी।
आलिंगन दै ढिग बैठारी, मुदित बदन तन हेरी॥
जानि गई बक भेष कपट कौ, सकुच रही मन ही में।
बिहँसि मिली प्यारी प्रीतम सो, ज्यों दामिनि घन ही में॥
स्यामा-स्याम दोऊ सुख बिलसत, प्रेम बुद्धि अरुझाने।
"सूरदास" ब्रजबासिन के बस, और कछू नहीं जाने॥

लोक-त्यौहार—सूरदास ने लोक-त्यौहारों का वर्णन अपने पदों में इस प्रकार किया है—

१. रक्षाबंधन—(श्रावण शु० १५) यह मुख्य रूप से ब्राह्मणों का त्यौहार माना जाता है।

राखी बंधावत मगन भए।
दछिना बहुत द्विजन को दीनी, गोप हँकार लए॥
कुंज-निकुंज श्रीवृंदाबन के, बिहरत अनत ठए।
नाँचत, गावत, करत कुलाहल, उपजत मोद नए॥
यह कौतिक देखत सुर-नर-मुनि, बरषत कुसुम छए।
"सूरदास" राधा-ललितादिक, देखत ओट दए॥

२. दशहरा—(आश्विन शु १०) यह मुख्य रूप से क्षत्रियों का त्यौहार माना जाता है।

गयौ कूदि हनुमंत जब सिंधु पार
सिव के सीम लागे, कमठ पीठ पर धम गिरिवर सबै तासु भार।
सोच लाग्यौ करन कहाँ जानकी कोउ या ठौर नहिं मोहिं चिन्हार।
लंक गढ मांहिं आकास मारग गयौ, चहुं दिस बज्र लागे किवार॥
पौरि सब देखि, असोक बन मे गयौ, निरखि सीता छिप्यौ वृक्ष-डार।
"सूर" तहाँ आकास-बानी भई, तहाँ है इहाँ जानकी करि जुहार॥

३. दीपावली—(कार्तिक कृ० १५) यह मुख्य रूप से वैश्यों का त्यौहार माना जाता है।

आज दिपत दिव्य दीपमालिका।
मानो कोटि रवि, कोटि चंद छवि बिमल भई निसि कालिका॥
गज-मोतिन के चौक पुराये, बिच-बिच बज्र प्रवालिका।
गोकुल सकल चित्र मनि मंडित, सोभित झाल झमालिका॥
पहरि सिंगार बनी राधा जू, संग लिऐं ब्रज-बालिका।

झलमल दीप समीप, सोज भर कर लिये कचन-थालिका ॥
पाये निकट मदन मोहन पिय, मानो कमल अलि-मालिका।
आपुन हँसत, हँसावत ग्वालन, पटक-पटक दै तालिका ॥
नद-भवन आनद बढ्यौ अति, देखत परम रसालिका।
"सूरदास" कुसुमन सुर बरसत, कर अजुलि पुटि भालिका॥

४ हटरी—

सुरभी कान्ह जगाय खरिक, बल-मोहन बैठे राजत हठरी।
पिस्ता, दाख, बदाम, छुहारे, खुरमा, खाजा, गुंजा, मठरी ॥
घर-घर ते नर-नारि मुदित मन, गोपी-ग्वाल जुरे बहु ठठरी।
टेर-टेर लै देत सबन कों, लै-लै नाम बुलाय निकट री ॥
देति असीस सकल गोपीजन, यसोमति देति हरषि बहु पट री।
"सूर" रसिक गिरिधर चिरजीवो, नद-महरि कौ नागर नट री ॥

होली—(फाल्गुन शु० १५) यह मुख्य रूप से शूद्रों का त्यौहार माना जाता है।

सब दिन तुम ब्रज मे रहो हरि, होरी है, कबहुँ न मथुरा जाइ।
पर्व करो घर आपने हरि, होरी है, कुमल केलि निबाहु ॥ हरि०

परवा पिय चलिऐ नहीं हरि०। सब सुख कौ फल फाग। अहो०
प्रगट करो अब आपुनौ हरि०। अंतर कौ अनुराग ॥ अहो०
मानो द्विज दिन सोधि कै हरि०। भूपति कीयौ काम। अहो०
ससि रेखा सिर तिलक दै हरि०। सब कोउ करै प्रनाम ॥ अहो०
कनक सिंहासन बैठिकै हरि०। युवतिन के उर आन। अहो०
अलक चमर अंचल ध्वजा हरि०। घू घट आन पतान ॥ अहो०
फागुन मदन महीपति हरि०। इहि विधि करि हैरान। अहो०
'पंद्रह तिथि भर' बरन हो हरि०। सादर क्रिया समाज ॥ अहो०
तीज तिहूँ पुर प्रगट्यौ हरि०। अपनी आन नरेस। अहो०
सुन मग-मग डफ दुंदुभी हरि०। सोई करिऐ सब देस ॥ अहो०
चौथ चहूँ दिस चालिऐ हरि०। यह अपनी इक रीति। अहो०
मेरे गुन कहे निर्लज्ज ह्वै हरि०। छाँड़ि सकुच कुल नीति ॥ अहो०
पांचै परमित परिहरो हरि०। चलहु सकल इक चाल। अहो०
नारि-पुरुष एकत्र करो हरि०। बचन प्रीति प्रतिपाल ॥ अहो०

छट्ठ छै राग छै रागिनी हरि० । ताल तान बधान । अहो०
चटुल चरित रतिनाथ के हरि० । सिखवो अति अभिधान ।। अहो०
मातै सुन सब सज चले हरि० । राजा की रुचि जान । अहो०
करत क्रिया तैसी सबै हरि० । आयुष माथे मान ।। अहो०
आठैं डर उन मान कैं हरि० । सबन मतौ मत्यौ एक । अहो०
नृप जु कहै सोई कीजिगे हरि० । क्यो राखिए बिबेक ।। अहो०
नवमी नवमत साजि कै हरि० । कर सुगध उपहार । अहो०
मानो चले मिलि मेटकै हरि० । मनसिज भवन जुहार ।। अहो०
दसै दसो दिसि सोधि कै हरि० । बोले राजा राग । अहो०
जग जीत्यौ बल आपुने हरि० । ज्ञान वैराग्य छुड़ाय ।। अहो०
सुन आई एकादसी हरि० । बोले सब सिर नाय । अहो०
ढोल भेरि डफ बांसुरी हरि० । पटह निसान बजाय ।। अहो०
देख भले भट्ट आपने हरि० । द्वादशी भौम बिचारि । अहो०
काज करौ रुचि आपने हरि० । ह्वै निसंक नर-नारि ।। अहो०
रथ रावक पावक सजे हरि० । खरन भये असवार । अहो०
धूर धातु घट रंग भरे हरि० । करम यत्र हथियार ।। अहो०
जहाँ तहाँ सेना चली हरि० । मुक्त कच्छ सिर केस । अहो०
आप आप सूझै नही हरि० । राजा रक आवेस ।। अहो०
जहाँ सुनत तपी संयमी हरि० । धर्म धीर आचार । अहो०
छिरकें जाय निसक ह्वै हरि० । तोरे पकरि किवार ।। अहो०
जे कबहू देखी नही हरि० । कबहू सुनी नहि कान । अहो०
तिन कुल-बधू नारीन के हरि० । लागे पुरुष परान ।। अहो०
धाय धरे बल कुल-बधू हरि० । पर-पुरुष नही पहचान । अहो०
मात पिता पति बंधु की हरि० । छूटि गई सब कान ।। अहो०
भस्म भरे अंजन करे हरि० । छिरकत [illegible] वार । अहो०
मर्यादा राखें नही हरि० । कटि पट लेहि उतार ।। अहो०
तेरस चौदस मास में हरि० । जग जीत्यौ डर डार । अहो०
सठ पंडित वेस्या बधू हरि० । सबै भए इकसार ।। अहो०
पून्यौ प्रगट प्रताप ते हरि० । दुरे मिले पाँ लाग । अहो०
जहाँ तहाँ होरी लगी हरि० । मानो मवासिन आग ।। अहो०
सब नाँचैं, गावें सबै हरि० । सबहि उड़ावे छार । अहो०
साधु-असाधुन पेख ही हरि० । बोले बचन बिकार ।। अहो०

अति अनीति मति देखिके हरि० । परिवा प्रगटी आन । अहो०
विमल बसन ज्यों स्याम को हरि० । मर्यादा की कान ।। अहो०
आवत ही बिनती करी हरि० । उठि जोरे हँसि हाथ । अहो०
बर्न धर्म सब राखिऐ हरि० । कृपा करहु रतिनाथ ।। अहो०
आज्ञा दई रतिनाथ ने हरि० । नृप समुझो मन ॥ । अहो०
जाय धर्म अपुने चलो हरि० । बसो हमारी दांह ।। अहो०
"सूर" कहाँ लगि बरनिऐ हरि० । मनभिज के गुन ग्राम । अहो०
सुनो स्याम यह मास मे हरि० । कियो जु कारन काम ।। अहो०
कान्ह कृपा करि घर रहे हरि० । बरजे मथुरा जात । अहो०
सरस रसिकमनि राधिका हरि० । कही कृष्ण सो बात ।। अहो०

वैदिक पर्व—सूरदास ने वैदिक पर्वों का वर्णन अपने काव्य में इस प्रकार किया है—

१. **मकर संक्रांति-** (गेंद के भाव का)

ग्वालिन तै मेरी गेंद चुराई ।
खेलत आन परी पलका बिच, अँगिया मांझ दुराई ।।
भुज पकरत,मेरी अँगिया टटोवत, छूवत छतियाँ पराई ।
"सूरदास" मोहि यही अचभौ, एक गई द्वै पाई ।।

२. **ज्येष्ठाभिषेक--स्नान यात्रा -** (जलविहार के भाव का)

यमुना जल गिरिधर करत विहार ।
आसपास युवती मिलि छिरकति हंसनि, कमल मुख चारु ।।
काहू की कंचुकी बंद टूटे, काहू के टूटे हार ।।
काहू के बसन पलट मनमोहन, काहू अंग न संवार ।।
काहू की खूभी, काहू की नकबेसरि, काहू के बिथुरे बार ।
"सूरदास" प्रभु कहाँ लौ बरनौ, लीला अगम अपार ।।

अन्य अवतारों की जयंतियाँ—भगवान् श्री कृष्ण के मुख्य २४ अवतार माने गये हैं । इनमें भक्तिमार्ग से संबधित केवल चार अवतार प्रधान हैं—राम,नृसिंह वामन और कृष्ण । इन चारों ने भक्तो के उद्धार के कई पुष्टि-कार्य किये हैं, इसलिए इन चारों की जयंतियाँ पुष्टि–मार्ग मे भी मानी जाती हैं ।

सूरदास ने इन जयंतियों का वर्णन अपने पदों में इस प्रकार किया है—

राम जयंती—(चैत्र शु० ९)

आज दसरथ के आनद भीर।
आए भुव-भार उतारन कारन, प्रगटे स्याम सरीर॥
फूले फिरत अयोध्यावासी, गनत न त्यागत चीर।
परिरंभन हँसि देत परस्पर, आनद नैननि नीर॥
त्रिदश नृपति ऋषि व्योम विमाननि देखत रहे न धीर।
त्रिभुवननाथ दयालु दरस दै हरी सबन की पीर॥
देत दान राख्यो न भूप कछु, महा बड़े नग हीर।
भए निहाल 'सूर' सब याचक, जे याचे रघुबीर॥

२ नृसिंह जयंती—(वैशाख शु० १४)

तौलौं हौं बैकुंठ न जैहों।
सुनि प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी जौलौं तो सिर छत्र न दैहों॥
मन कर्म बचन मान जिय अपने, जहाँ जहाँ जाने तहाँ तहाँ लैहों।
निर्गुन सगुन हेरि सब देखे, तो सौ भक्त मैं कबहू न पैहों॥
मो देखत मेरो दास दुखित भयौ, यह कलंक अब ही जु चुकैहों।
हृदय कठिन पाषान है मेरौ, अब ही दीन-दयाल कहैहों॥
गहि तन हिरनकस्यपु को चीरों, उदर फारि नख रुधिर बहैहों।
यह सुनि बात तात अब "सूरज", यह कृत कौ फल तुरत चखैहों॥

३ वामन जयंती—

द्वारें ठाढ़े हैं द्विज बामन।
सुनत बचन हिरदै सुख उपज्यौ, भयौ कहाँते आवन॥
चरन धोइ चरनोदक लीनौं कह्यौ विप्र मन भावन।
तीन पैड़ धरती हौं मांगों, परम कुटी एक छावन॥
अहो विप्र! कहा तुम मांग्यौ, बहुत रत्न देहुं गाँवन।
"सूर" सुबल हरि सर्वस्व लीनो, दियौ पीठ पग पावन॥

४. कृष्ण जयंती—(भाद्रपद कृ० ८)

देखो अद्भुत अविगत की गति कैसौ रूप धरयौ है।
तीन लोक जाके उदर बसत हैं, सो सूप के कोन परयौ है॥

नारदादि-ब्रह्मादिक सब जाकौं सकल विश्व सर साधे ॥
ताको नार छेदत ब्रज-जुवती, बांटि तगा सो बांधे ॥
जा मुख का सनकादिक लोचन, सकल चातुरी ठानें।
सोइ मुख निरखति महरि जसोदा दूध लार लपटाने ॥
जिन स्रवनन सुनि गज की आपदा, गरुडासन बिसराए।
तिन स्रवनन के निकट जसोदा गाए अरु हुलराए ॥
जिन भुजन प्रहलाद उबार्यो, हिरनाकुस उर फारे।
तेई भुज पकरि कहति ब्रज गोपी, नाचो नैंक पियारे ॥
अखिल लोक जाकी आस करत हैं, सो माखन देखि अरे हैं।
सोई अद्भुत गिरिवरहु ते भारे, पलना माझ परे हैं ॥
सुर-नर-मुनि जाको ध्यान धरत हैं, संभु समाधि न टारी।
सोई प्रभु "सूरदास" को ठाकुर, गोकुल गोप बिहारी ॥

सेवा के विविध अंग—पुष्टिमार्गीय सेवा के प्रधान अंग तीन हैं—भोग, राग और शृंगार। प्रत्येक मनुष्य का जीवन इन तीन विषयों से सदा-सर्वदा येन केन प्रकारेण संबंधित रहता ही है, इसलिए श्रीवल्लभाचार्य जी ने इन तीनों विषयों को भगवान की सेवा में लगा कर इनको भी भगवद्रूप कर दिया है। श्रीकृष्ण से संबंधित इन विषयों के कारण प्रत्येक व्यक्ति गृहस्थ में रहते हुए भी जीवनमुक्त हो सकता है। श्रीमद्भागवत में कहा है—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ (१०-२९-१५)

अर्थात्—काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य और सुहृद्भाव इनमें से कोई भी भाव भगवान् हरि के साथ लगाया जाय, तो वह लौकिक रूप छोड़ कर ईश्वर मय होजाता है। इसी आधार पर आचार्य जी ने काम स्वरूप उक्त भोग राग और शृंगार को श्री कृष्ण की सेवा में लगाकर उन्हें इस प्रकार से भगवद्रूप कर दिया है। यहाँ पर इन तीनों का कुछ परिचय दिया जाता है—

१. भोग—खान-पानादि के उत्तमोत्तम पदार्थों को सुंदर प्रकार और शुद्ध रूप से तैयार कर बाल-किशोर भावनानुसार इन्हें विधि पूर्वक श्रीकृष्ण को समर्पित करना 'भोग' कहलाता है। समर्पित होजाने के अनन्तर इसे 'प्रसाद'

कहते है । इससे भक्त अपना जीवन निर्वाह कर सकता है । इस प्रकार के निर्वाह मात्र से वह सहज मे इस दुर्जय माया को भी पार कर जाता है । उद्धव जी श्रीमद्भागवत के ११ वें स्कन्ध मे श्रीकृष्ण के प्रति कहते है कि—

"उच्छिष्ट भोजिनोदासास्तव मायां जयेमहि ।"

इस आधार पर आचार्यजी ने सेवा मे भोग को प्राधान्य दिया है ।

सूरदास के पद मे भोग की विविध सामग्रियों के नाम तथा उनकी विधि इस प्रकार उपलब्ध होती है—

भोजन भयौ भाँवते मोहन । तातौ ही जेंय जाहुगे गोहन ॥
खीर खाड खीचरी सँवारी । मधुर महेरि गोपन को प्यारी॥
'रायभोग' लीनो भात पसाय । मूंग ढरहरी हींगु लगाय ॥
सद माखन तुलसी दै छायौ । घृत सुवास कचौरिन नायौ ॥
पापर बरी अचार परम सुचि । अद्रक अरु निबुअनि ह्वै है रुचि ॥
सूरन करि तरि सरिस तोरई । सेम सांगरी छमकि छोरई ॥
भरता भटा खटाई दीनीं । भाजी भली भाँति दस दीनी॥
साग चना मरसा चौराई । सोवा अरु सरसो सरसाई ॥
बथुवा भली भाँति रचि राँध्यौ । हींग लगाय त्यायदधिमँध्यौ॥
पोई परवर साग फरी चनि । टेंटी ढ़ढस छौंकि लए पुनि ॥
कदुरी और कँकोरा कोरे । कचरी चारि चँचेंडा सोरे ॥
बने बनाय करेला कीने । लोंन लगाय तुरत तरि लीने ॥
फूले फूल सहेजना छौंके । मन रुचि होय नाज के औंके॥
फूल करील कली पाकरि नम । फरी अगस्त करी अमृत सम ॥
अरु यह आमली दई खटाई । जेवन कटुरस जात लटाई ॥
पेठा बहुत प्रकारन कीने । तिनतो सबै स्वाद हरि लीने ॥
खीरा रामतुरैयो तामे । अरु बिन रुचि अंकुर जिय जामे ॥
सुंदर रूप रतालू रातौ । तरि है लीनौ अबही तातौ ॥
ककरी,ककरा अरु कचनारयौ । सरस निमोमनि स्वाद सँवारयो ॥
कैइक भाँति केरा करि लीनों । दै करि ऽब हरदी रंगभीनों ॥
बरी बरिल अरु बरा बहुत बिधि । खारे खाटे मीठे पय निधि ॥
पानी नारायतौ पकौरी । डभकौरी मुगछी सुठि सौरी ॥
अमृत इंदरह रहे रस सागर । बेसन सालम अधिकौ नागर॥

खाटी कढ़ी विचित्र बनाई । बहुत बार जेंवत रुचि आई ॥
रोटी रुचिर कनिक बेसन करी । अजवाइन सैंधो मिल घी भरी ॥
अब ही अँगाकरी तुरत बनाई । जे भजि-भजि ग्वालन सग खाई ॥
मांडो मांड़ दुनेरे चुरी । बहु घृत पाइ आपही उपरी ॥
पुरी सपूरि कचौरी कोरी । सद्लस उज्ज्वल सुंदर सोरी ॥
लुचई ललित लापसी सोहै । स्वाद सुवास सहज मन मोहै ॥
मालपुवा माखन मथि कीने । ग्राह ग्रमित रवि सासर लीने ॥
लावन लाडू लागत नीके । सेव सुहारी घेवर घी के ॥
गूझा गूदे गात्त मसूरी । मेस मिले कपूरन पूरी ॥
ससि सम सुंदर सजल इंदरसौ । ऊपर कनी अजनु जनु बरसौ ॥
बहुत जलेब-जलेबी बोरी । नांहिन घटत सुधा सो थोरी ॥
देखन हरषत हात हैं सभी । मनहुँ बुद बुदा उपजे अमी ।
फैनी मिली धूरि पय सगा । मिश्री मिश्रित भई एक रगा ॥
स ज्यौ दही अधिक सुखदाई । ता ऊपर पुनि मधुर मलाई ॥
ख वा खाई अँबटि ही राख्यौ । सोहै मधुर मीठौ रस चाख्यौ ॥
छाछि छबीली छबि धुगारी । झर है उठत झार की न्यारी ॥
इतने यतन यसोद। कीने । तब मोहन बालक सग लीने ॥
बैठे आय हँसत दोऊ भैया । प्रेम मुदित परसति है मया ॥
थार कटोरा जटित रतन के । भरि सब सालन विविध यतन के ॥
पहिले पनवारौ परुसायौ । तब आपुन कर कौर उठायौ ॥
जेंवत रुचि अधिकौ अधिकैया । भोजन बहुर बिसरत नहीं गैया ॥
सोनल जल कपूर रस रच्यौ । सो मोहन निज कर रुचि अचयौ ॥
महरि मुदित मन लाड़ लडावै । ये सुख कहाँ देवकी पावै ॥
धरि तष्टि गडुवा जल लाई । भर्यौ चुरू खरिका लै आई ॥
पीरे पान पुराने बीरा । खात भई दुति दाँतन हीरा ॥
मृग मद फन कपूर कर लीनों । बाँटि बाँटि ग्वालन को दीनों ॥
चन्दन और अरगजा आन्यौ ! अपुने कर बल के अंग बान्यौ ॥
ता पाछै आपुन हू लायौ । उबरयौ बहुत सखन पुनि पायौ ॥
"सूरदास" देख्यौ गिरिधारी । बालि दई हँसि जूठन थारी ॥

२. राग—यह कीर्तन-भक्ति का मुख्य अग है । भगवान् का कीर्तन राग में करने से मन की शीघ्र एकाग्रता होती है, इसलिए, यह निरोध का साधक

है। इससे जो सुख मिलता है, वह जप, तप, तीर्थ आदि से भी प्राप्त नहीं हो सकता। आचार्य जी ने निरोध के उद्देश्य वाली पुष्टिमार्गीय सेवा को कीर्तन-प्रणाली मे राग का प्राधान्य रखा है। नाना प्रकार के वाद्य-यंत्रो द्वारा विविध रागो मे श्री कृष्ण का गुणानुवाद गाना ही कीर्तन कहलाता है। सूरदास ने कीर्तन की महिमा को इस पद मे इस प्रकार गाया है—

जो सुख होत गोपालहि गाये।
सो नहि होत जप-तप-व्रत सयम, कोटिक तीरथ न्हाये॥
दिये लेत नहीं चार पदारथ, चरन कमल चित लाये।
तीन लोक तृन सम करि लेखत, नंदनदन उर आये॥
बसीबट वृंदावन यमुना, तजि बैकुंठ को जाये।
"सूरदास" हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव चलि आये॥

सूरदास ने प्रायः प्रत्येक राग मे हरि-यश वर्णन किया है। उन्होंने कीर्तन मे विविध शैलियो और छदो का भी उपयोग किया है। 'सूरसारावली' में निम्नलिखित रागो के नाम मिलते है—

ललिता ललित[१] बजाय रिझावत, मधुर बीन कर लीने।
जानि प्रभात राग पचम[२], षट[३], मालकोस[४] रसभीने॥
सुर हिंडोल[५], मेघमालव[६] पुनि, सारग[७], सुर नट[८] जान।
सुर सावन[९], भूपाली[१०], ईमन[११] करत कान्हरौ[१२] गान॥
ऊछ अडाने[१३] के सुर सुनियत, निपट नायकी[१४] लीन।
करत बिहार[१५]*, मधुर केदारौ[१६], सकल सुरन सुख दीन॥
सोरठ[१७], गौड मलहार[१८] सोहावन, भैरव[१९] ललित[२०] बजायौ।
मधुर बिभास[२१], सुनत बेलावल[२२]‡ दंपति अति सुख पायौ॥
देवगिरी[२३], देशाक[२४], देव[२५]†, पुनि गौरी[२६], श्री[२७] सुखवास।
जैतश्री[२८] अरु पुर्वी[२९], टोडी[३०], आसावरी[३१] सुखरास॥
रामकली[३२], गुनकली[३३], केतकी[३४] सुर सुघराई[३५] गाये।
जैजैवंती[३६], जगत मोहनी, सुर सों बीन बजाये॥
सूआ[३७] सरस, मिलत प्रीतम, सुखसिंधु वीर-रस मान्यौ।
जान प्रभात प्रभाती[३८] गायौ, भोर भयौ दोउ जान्यौ॥

---

* बिहाग ‡ बिलावल † देवगंधार।

३. श्रृंगार— श्री वल्लभाचार्यजी ने सेवा मे श्रृगार को भी स्थान दिया है। विविध अलकारो मे भगवान श्रीकृष्ण के स्वरूप को सुदर प्रकार से अलकृत करने से चित्त का आकर्षण होता है। इससे उस स्वरूप मे चित्त निरुद्ध होजाता है। आचार्यजी कहते है—

श्रीकृष्ण पूजयेद्भक्त्या यथालब्धोपचारकैः।
यथा सुंदरतां याति वस्त्राभरणैरपि।
अलङ्कुर्वीत सप्रेम तथा स्थान पुरःसरम्॥ (निबंध)

अर्थात्—यथालब्ध द्रव्य से उपचारो द्वारा श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिए। वस्त्रो और आभरणो से भी जिस प्रकार श्रीकृष्ण के स्वरूप का सुंदर दर्शन हो, उस प्रकार अंगो के स्थान पुरःसर अलकारादि श्रृंगार सप्रेम करना चाहिए।

बाल भाव और किशोर भाव को प्रकट करने के लिए सप्रदाय मे विविध श्रृगार की व्यवस्था की गयी है। इनमे मुख्य आठ है, जिनके नाम ये है—

१ मुकुट, २ सेहरा, ३ टिपारा, ४ कुल्हे ५ पाग, ६ दुमाला, ७ फेंटा और ८ पगा (ग्वालपगा)। ये आठ श्रृगार भगवान के श्रीमस्तक के है।

इन आठ श्रृंगारो के अतर्गत क्रीट, खूप, चद्रिका, तुर्रा, कतरा आदि और भी श्रृंगार श्रीमस्तक पर धराये जाते है। इसी प्रकार भगवान के कंठ, हस्त, कटि, चरण और मुख आदि के भी श्रृंगार है, जिनके नाम ये है—

कंठ के—कठश्री, दुलरी, तिलरी, हमेल, हॉस, बघनखा, पचलरा हार सतलरा हार, नौलर हार, चौकी, पदक आदि।

हस्त के—बाजू, पहोची, ककन, मुद्रिका, हस्त फूल आदि।

कटि के—क्षुद्र घटिका, कटिपेच आदि।

चरण के—पायल, नूपुर, जेहर, बिछिया, पग पान, अनवट आदि।

मुख के—नकबेसर (नासिका मे) चिबुक (ठोडी पर) मकराकृत आदि कुडल, ताटक, सीसफूल आदि।

वस्त्रो के नाम—आडबद, परदनी, मल्लकाछ, काछनी, पीतांबर, तनिया, पिछोरा, चाकदार, घेरदार, खुलेबद, चोली आदि।

सूरदास ने शृंगार संबंधी अनेक पदों की रचना की है। इनमे से कुछ पद यहाँ पर दिये जाते है—

१. मुकुट का—

(१) मोर-मुकुट कटि काछनी, जननी पहरावै।
स्याम अंग भूषन सजे, बिन्दुका जु बनावै॥
पग नूपुर, कटि किंकिनी, कर वेनु गहावै।
मुसकानि मे मन हरि लियौ, सिसुताई जनावै॥
ब्रज-बनिता आई तहाँ, दर्पन दरसावै।
भोग अरु बीरा दिए, सुख "सूर" बढ़ावै॥

(२) मोर-मुकुट मकराकृत कुंडल, नैन बिसाल कमल ते आछे।
मुरली अधर धरे सीखत है, बनमाला पीतांबर काछे॥
(बाट)

(३) सुंदर बदन देख्यौ आज।
क्रीट-मुकुट सुहावनौ, मन भावनौ ब्रजराज॥
लियौ मन आकर्ष, मुरली रहि अधर पर गाज।
पलक ओट न चाह चित, लखि महा मनोहर साज॥
गोपीजन तन-त्रान वारति, रह्यौ मनमथ लाज।
"सूर" सुत यह नंदकौ, श्री बल्लभ-कुल† सिरताज॥

२. सेहरा का—

(१) ललित लाल कौ सेहरौ, जगमग रह्यौ मेरी माई।
हरषि-हरषि गोपी गावही, यह सुख देखौरी माई॥
अलके ललके बदन पर, मरवट मुख ही बनाई।
सोभा सीमा हुलसि कै, उमगी सुंदरताई॥
कुमकुम बेंदी भाल पर, ससी उद्योत सुहाई।
मुक्ता आछे तन जलद मे, उडुगन देत दिखाई॥
भ्रकुटी कुटिल मन मोहिनी, मोहन है सुखदाई।
बागे बीरे अति बने, छबि सो चतुराई ठाई॥
जननी नौछावरि करै, बजि बजत बधाई।
सुर-बनिता विथकित भई, रस मूरति है पाई॥

---

† श्री बल्लभ-कुल से यहाँ पर गोप-कुल का अभिप्राय है।

धनि जसोमति-सुत सांवरौ, दूलह कुँवर कन्हाई।
राजकुमारी प्यारी राधिका, नव दूलह हो वर पाई॥
यह जस गावै सारदा, जिनके भाग बड़ाई।
यह आनद जिनके हिऐ "सूरदास" बलि जाई॥

(सेहरा का भाव)

(२) आज बने गिरिधारी दूल्है, चंदन कौ तन लेप किऐ।
सकल सिंगार बने मोतिन के बिबिध कुसुम की माल हिऐ॥
खासा कौ कटि बन्यौ है पिछौरा, मोतिन सेहरौ सीस धरे।
राते नैन बंक अनियारे, चंचल खंजन मान हरे॥
ठाढ़े कमल फिरावत गावत, कुंडल स्रम-कन बिंदु परे।
"सूरदास" मदन मोहन मिलि, राधा सों रति-केलि करें॥

३. कुल्हे का—

बलि-बलि मदन गोपाल।
रंग महल मे आज बिराजत, सीस कुल्हे सोहै लाल॥
प्यारी सँग बतियाँ रतियाँ की, करत हँसावत बाल।
"सूरदास" प्रभु आतुर बिलसन, पहिरत अंक उरमाल॥

४. फेंटा का—

(१) लाल कौ फेटा ऐटा अमेंटा बन्यौ,
भ्रकुटी भाल पर नवल नंदलाल के।
आवत बनतें बने सांझ सुरभीन मांझ,
अटक लटकन रही डगन ब्रजबाल के॥
चलत गजगति चाल, मन हरत,
बाहु अंस धरे सखा प्रिय ग्वाल के।
"सूर" गोपीजन-जूथ, जुरि द्वार-द्वार खरी,
निरखि नंदलाल जुबती-जन जाल के॥

(२) भयौ सिर फेटा आज पचरंगी।
एक छोर दच्छिन सिर सोभित, ता पर कतरा कलंगी॥
बागे गाढ़े प्रेम रंग बाढ़े, आवत गोधन संगी।
"सूरदास" प्रभु गोकुल जीवन, मोहन लाल त्रिभंगी॥

है। द्वितीय सर्व धर्मों के त्याग वाला शरण केवल धर्मी-भाव को ही प्रकट करने से फलात्मक है। आचार्यजी ने इस फलात्मक शरण की अनन्य भावना का प्राधान्य दे कर निष्काम कर्मयोग की प्रक्रियाओं से तनुजा-वित्तजा सेवा की सिद्धि की है।

भगवान् कृष्ण में अनन्य भक्ति स्थापित करने से ही भक्त पर उनकी कृपा होती है। आचार्यजी का दृढ़ मंतव्य है कि शरणस्थों पर ही भगवान् श्री कृष्ण कृपा करते हैं*। और श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त होने पर ही मानसी प्रक्रिया रूप पूर्वोक्त प्रकार की प्रेम-भावनाओं की सिद्धि होती है। इसी लिए आचार्यजी ने इस प्रकार के शरण-तत्व को सेवा-मार्ग में स्वीकार किया और उससे पराभक्ति रूप मानसी सेवा को सुलभ बनाया।

इस शरण-तत्व के मुख्य दो अंग माने गये हैं। एक सर्व समर्पण, दूसरा अनन्य भाव। आचार्य जी कहते हैं—

"सर्वं समर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखी भव"। (अं० प्र०)

अर्थात्—भगवान् कृष्ण को सर्व समर्पण करने से ही भक्त कृतार्थ और सुखी होता है।

अनन्य भाव के संबंध में आचार्यजी का मत है—

"अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च।
प्रार्थनाकार्य मात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत्॥" (वि० धै० आ०)

इसका तात्पर्य यह है कि अन्य देवादि का भजन, वहाँ का गमन तथा प्रार्थना कार्य आदि भी श्रीकृष्ण-भक्तों के लिए विवर्जित है। आचार्यजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण के सिवाय सभी देव प्रकृति धर्म वाले है, अक्षरब्रह्म भी गणितानंद है, एक श्रीकृष्ण ही पूर्णानंद हरि स्वरूप है, इसलिए श्रीकृष्ण ही एकमात्र आश्रय है †।

इस प्रकार के सर्व समर्पण और अनन्यभाव पतिव्रत धर्म रूप है, अतः इस देह आदि का यदि उसके स्वामी श्रीकृष्ण में इस प्रकार से विनियोग नहीं

* शरणागतश्चेत्क्लिष्टः, यदा तत्र कृपा भवति। .... भगवान्स्वकृपां शरणागतेष्वेवार्पितवान् बृहत्। (२—२१—३८ सु० बो०)

† प्राकृता सकला देवा गणितानंदक बृहत्।
पूर्णानंदो हरिस्तस्मात्कृष्ण एव गतिर्मम। (श्रीकृष्णाश्रय)

कराया जाय, तो जिस प्रकार बालक नवोढ़ा को अपने पति के पास स्नेह वश न भेजने से उसका पति उस पर प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार इस भक्त पर भी श्रीकृष्ण प्रसन्न होते है * । इसलिए पतिव्रत धर्म के सदृश सर्व समर्पण वाली अनन्य भक्ति से भक्त को श्रीकृष्ण की तनुजा-वित्तजा सेवा करनी चाहिए, तभी श्रीकृष्ण की उस भक्त पर कृपा होती है। आचार्य जी का मत है कि इस प्रकार की सेवा से कृष्ण से विमुख करने वालों का त्याग इस मार्ग मे दूषण रूप नहीं है†, अतः पिता, पुत्र, पति आदि जो भी कोई इसमे अतराय रूप होता हो, उसका त्याग कर देना चाहिए। सदा-सर्वदा और सर्व-भाव से जीव का एकमात्र कर्तव्य श्रीकृष्ण सेवा ही होना चाहिए। इससे आत्म निवेदन के समय वाचिक रूप से किया हुआ समर्पण स्पष्ट और पुष्ट होता है और श्रीकृष्ण की दुर्लभ कृपा को प्राप्त करने वाले शरण की सिद्धि होती है। श्री कृष्ण की इच्छा के अधीन रहते हुए श्रीकृष्ण के चरण को ही दृढता पूर्वक ग्रहण करना इस शरण का परम लक्ष्य है।

सूरदास के पदो मे शरण के अग रूप सर्वसमर्पण और अनन्य भाव का इस प्रकार वर्णन प्राप्त होता है—

१ सर्वसमर्पण—

यामे कहा घटैगौ तेरौ।
सबै समर्पन "सूर" स्याम को, यह साँचौ मत मेरौ॥

२ अनन्य भाव—

(१) श्रीवल्लभ भले-बुरे तोऊ तेरे।
अन्य देव सब रंक भिखारी, देखे बहोत घनेरे॥
हरि-प्रताप बल गिनत न काहू, निडर भए सब चेरे।
सब त्यजि तुम सरनागत आए, दृढ करि चरन गहेरे॥

(२) बिनती जन कासो करै गुसांई।
तुम बिनु दीन दयाल देव-मुनि, सब फीकी ठकुराई॥
अपने से कर, चरन, नैन, मुख, अपनी सी बुधि पाई।
काल-करम बस फिरत सकल प्रभु, ते हमरी सी नाईं॥

* प्रौढापि दुहिता यद्वत्स्नेहान्न प्रेष्यते वरे।
तथा देहे न कर्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा। (अंतःकरण प्रबोध)
† "तत्त्यागे दूषणं नास्ति यतः कृष्णबहिर्मुखाः। (पचश्लोकी)

पराधीन, पर-बदन निहारत, मानत मोह बड़ाई।
हँसे हँसे बिलखे दुख बिनु दुख ज्यों जल दर्पन भाँई॥
लिए दियौ चाहे ते कोऊ प्रभु, सुन समर्थ जदुराई।
'देव सकल व्यापार परस्पर' ज्यों पसु दूध चराई।
तुम बिनु और कोऊ न कृपानिधि, पावै पीर पराई।
"सूरदास" के त्रास हरन को, कृष्ण 'नाथ' प्रभु आई॥

(३) हरि के जन सब ते अधिकारी।
ब्रह्मा महादेव ते को बड़, ताकी सेवा कछु न सुधारी।
जाचक पै जाचक कहा जाचै, जो जाचै तो रसना हारी
गनिका-पूत सोभा नहीं पावत, जिनके कुल में कोउ न पिता री।

(४) अब क्यों दूजे हाथ बिकाऊं।
"सूरदास" प्रभु सिंधु चरन तजि नदी सरन कत जाऊं॥

(५) गोविंद से पति पाय, कहा मन अनत ही लावै।
पति कौ ब्रत जो धरै त्रिय तौ सोभा पावै॥

(६) यह विधि स्याम लग्यौ मन मोर।
ज्यों पतिव्रता नारि अपने मन, पिय को सर्वस्व देहै॥

(७) जाकौ मन लाग्यौ नंदलाल सों, ताहि और नहीं भावै हो
ले करि मीन दूध में राखो, जल बिन नहीं सचुपावै हो।

कृष्ण विमुखों के त्याग करने का उल्लेख—

(१) त्यजो मन हरि-विमुखन कौ संग।
जाके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग॥

(२) जाके हृदै हरि-धर्म नाँहीं।
ताके तजे कौ दोष नाँहीं, बसिए नहीं उन माँहीं॥
मात, पिता, गुरू, बंधुन, तजि संग न पानी पीजै।
जाके हृदै हरि-धर्म नाँहीं, ताकौ कह्यौ न कीजै॥
जन प्रहलाद पिता-पन मेटयौ, बलि गुरु कह्यौ न कीनो।
भरत बचन परिहरयौ मात के, राज त्याग, तप कीनो॥

त्यागे दूषणं नास्ति यत कृष्णबहिर्मुखा। (श्रीवल्लभाचार्य)

अति ही दुष्ट देखि हरि-द्रोही, तज्यौ विभीषन भाई।
छत्र-चॅमर ढुराय सीस पर, कियौ लंक कौ राई॥
वेद मर्याद मेटि ब्रज-बनिता, पति तजि हरि पै आई।
"सूर" पुनीत भई वे गोपी, वासुदेव विमल जस गाई॥

कृष्णाधीनता और चरणाश्रय का वर्णन--

(१) राखो तैसे रहो जैसे, तुम राखो तैसे रहों।
जानत हो सब जन के सुख-दुख मुख काहे कहा कहों॥
कबहुँक भोजन देहु कृपा करि, कबहुँक भूख सहो।
कबहुँक तुरग-हय-गज असवारी, कबहुक भार बहो॥
कमलनयन घनश्याम मनोहर, अनुचर भयौ रहो।
"सूरदास" प्रभु भक्त-कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहो॥

सेवा मार्ग का आचार-तत्त्व—सेवा मार्ग मे आचार्यजी ने आचार तत्त्व को भी स्थान दिया है। इसमे सदाचार और भक्त्याचार का समावेश हुआ है। सदाचार से मन पवित्र होता है और भक्ति के आचार भक्ति-प्रेम-को बढाते हैं।

(१) सदाचार—सदाचार मे बहिरंग और अतरंग दो भेद रखे गये हैं। सदाचार के बहिरंग भेद मे वर्णाश्रमानुसार शौचादि कर्मों द्वारा स्नानादिक से पवित्र होकर जीव को परम पवित्र, निर्दोष और शुद्ध भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करने की व्यवस्था है। इसको संप्रदाय की भाषा मे "अस्पर्शता" (अपरस) कहते है। इसमे बाह्य पवित्रता की सीमा परिस्थिति अनुसार मानसिक पवित्र और निष्काम वृत्ति से अंकित की जाती है। इसमे अति-आचार भी निषिद्ध है। जिस आचार से भगवान् श्रीकृष्ण की तत्सुखात्मक सेवा मे किसी भी प्रकार से विक्षेप होता हो, उसका त्याग पुष्टिमार्ग मे अभीष्ट है। इसलिए सूरदासादि भक्तो ने अति-आचार की निंदा भी की है,किंतु इसका यह अर्थ नही है कि इसमे स्वेच्छाचार स्थापित किया जाय। कूवा का शुद्ध जल, शुद्ध पात्र और शुद्ध वस्त्र आदि सदाचार के मुख्य आधार है। "आचारः प्रथमो धर्मः"—यह स्मृति वाक्य इस सदाचार का मुख्य सूत्र है। सदाचार

† विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति।
प्रार्थिते वा ततः किं स्यात्स्वाम्यभिप्राय संशयात्। (वि० धै० आ०)

और शुद्ध आचार से ही मन पवित्र होता है, इसलिए साधन अवस्था में इस पर विशेष बल दिया जाता है। इसी प्रकार अंतरंग आचारों की भी नितांत आवश्यकता मानी गयी है। अंतरंग आचारों में सत्य, दया, अहिंसा आदि स्मृत्योक्त धर्मों का समावेश होता है। इन अंतरंग आचारों से ही बहिरंग सदाचार शोभास्पद और सफल होते हैं। अंतरंग आचारों के बिना केवल बहिरंग आचार पाखंड की वृद्धि करने वाला होने से निंदनीय हो जाता है।

सूरदास ने अंतरंग आचार रहित बहिरंग आचार करने वाले पाखंडियों की इस प्रकार निंदा की है—

(१) कथा सुनि तजी मसूर की दाल।
काम न बिसरयौ, क्रोध न बिसरयौ, न बिसरयौ मोह जंजाल॥
अभ्यागत कोऊ द्वारे आवत, ताकूं बतावत काल।
घर में जाय बड़ाई करत है, कैसै दियौ निकाल॥
'लकड़ी धोय चौका मे धरत है, चलत देत मानो फाल।'
"सूरदास" ऐसे कपटी को, कैसै मिलेगे गोपाल॥

(२) हरि मैं तुमसों कहा दुराऊं। × ×
जानत को 'पुष्टि-पथ मोंसों', कहि-कहि जस प्रगटाऊं।
मद-अभिमान भरयौ तन मेरे, साधु संग छिटकाऊं॥
'मारग रीति' उदर के काजे, सीख सकल भरमाऊं।
'अति आचार' 'चारु सेवा रचि' नीके करि-करि पच रिझाऊं॥

<u>(२) भक्त्याचार</u>—जिस प्रकार मर्यादा-भक्ति के आचार यज्ञादि हैं, उसी प्रकार पुष्टि-भक्ति के आचार वैराग्य, संतोष, सत्संग, दीनता, आश्रय, गुरु-भक्ति और निरंतर कृष्ण का स्मरण आदि है। इनसे प्रेमात्मक पुष्टि-भक्ति की वृद्धि एवं दृढ़ता होती है।

१ वैराग्य संतोष—आचार्य जी वैराग्य-संतोष के लिए इस प्रकार कथन करते हैं—

(१) "अत्र (भागवते) हि यथा यथा विरक्तस्तथातथाऽधिकारी।"
(सु० १-२-२)

अर्थात्—इस भागवत स्वरूप भगवत्मार्ग में जैसे जैसे वैराग्यशील होता है, वैसे-वैसे ही इसका अधिकारी होता है।

(२) वैराग्यं परितोषं च सर्वथा न परित्यजन्। (सर्व निर्णय)

अर्थात्—वैराग्य और परितोष का सर्वथा परित्याग न करना चाहिए। सूरदास ने इन दोनों का इस प्रकार वर्णन किया है—

(१) कहा चाकरी अटकी जन की।
वैश्यन के द्वारे पर भटकत जात जन्म आसा करि धन की।
जाय धरम, धन आवै न आवै, छाया है रवि-पीठ करन की।
दिनकर पुनः फिरत सर सांझै, बांधि कमर नित चाह लरन की॥
'आयुष नेम नहीं या कलि में, छन भंगुर जानो या तन की'।
तजौ बड़ाई तिरलोकी की, सोज करो भवसिंधु तरन की॥
'कहा परतीति सक्ति संपति की, करो पालना गर्भ बचन की'।
ऐसो समय बहुरि नहीं पैहै, यह विरियाँ नहीं नाद करन की॥

(२) मन रे न वृक्षन कौ मत लै।
काटे ता पर क्रोध न कीजै 'सींचे करै न सनेह'। × ×

(३) जब संतोष हाकिम आवै, तब काया नगर सुख पावै।
ज्ञान-वैराग्य की चढ़ि गई फौजा, अज्ञान कूँ मार भजावै॥
छमा कोतवाल बैठो चौतरा, कुबुद्धि कहाँ ते आवै।
साँच ढिंढोरा फिरत नगर में, झूठ चोर भजि जावै॥
धर्म कौ झंडा गड्यौ खेत में, निर्भय राज कमावै।
"सूरदास" अज्ञानी हाकिम, बांधे जमपुर जावै॥

(४) जो दस-बीस पचास मिलै, सत होय हजार, तौ लाख माँगैगी।
कोटि अरब औ खरब मिलें तो धरापति होन की चाह चहैगी॥
स्वर्ग-पताल कौ राज मिलें, तृष्णा अधिक-अति आग लगैगी।
"सूरदास" 'संतोष बिना' सठ, तेरी तौ भूख कबहू न भगैगी॥

२. सत्संग—श्री बल्लभाचार्य जी का सत्संग के विषय में यह मत है—

"निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः।" (नवरत्न)

अर्थात्—निवेदन का स्मरण तादृशीजनों से सर्वदा करना चाहिए। सूरदास ने भी सत्संग के लिए इस प्रकार कहा है—

(१) मन तू समझ सोच बिचार।
भक्ति बिना भगवंत दुर्लभ, कहत निगम पुकार॥
साधु-संगत डारि पासा, फेर रसना सार। × ×

(२) 'करो मन हरि-भक्तन कौ संग।'
जाके संग ते सुबुद्धि उपजत, बढ़त भजन में रंग॥ × ×
(३) 'हरिजन संग छिनक जो होई।× ×

२. दीनता—नि:साधन पुष्टि-भक्ति में दीनता की परम आवश्यकता है। आचार्यजी ने कहा है—

"दैन्य त्वेव साधनम्।" (निबंध)

अर्थात्—दीनता ही हरि को संतुष्ट करने का एक मात्र साधन है। सूरदास ने अपने अनेक पदों में दीनता का कथन किया है। निम्न लिखित पद में उन्होंने दीनता का विस्तृत वर्णन कर पाखंड के विरुद्ध मत प्रगट किया है।

हरि मैं तुमसों कहा दुराऊं।
तुम जानत अंतर की बातें, जो-जो उर उपजाऊं॥
द्वादस तिलक लगाइ अंग में, फिरि-फिर सबै दिखाऊं।
करि उपदेस सबन के आगे, अपुनौ पेट भराऊं॥
हरि-सेवा मांडी प्रभुता को, कीरति बहुत बढ़ाऊं।
निंदा करो और की मुख सों, आपुन भलौ कहाऊं॥
जो कोऊ करत आय अपुनौ जस, फूलौ अंग न समाऊं।
दुष्ट भाव भरपूर रह्यौ उर, औरहिं कथा सुनाऊं॥
भाँति-भाँति के पाक जुगति सों, रुचि-रुचि हाथ बनाऊं।
जो कोउ संग आय मिलि बैठे, तासों दूर लुकाऊं॥
भाव-भक्ति करि सब के आगे, नैननि नीर बहाऊं।
आसा मत्रै एक लेवे की, काहू नाहिं लखाऊं॥
विषै रह्यौ लपटाय अंग सों, करि पाखंड छिपाऊं।
बातें करूं बनाय प्रेम सों, सगरौ अंग नचाऊं॥
भूख-प्यास, दुख-सुख सब व्यापत, त्यागी बहुत कहाऊं।
माया-धारी देखि हरषि मन, भजन भाव उपजाऊं॥
सब के बीच बैठि लोगन में, हरि-जस स्वाँग धराऊं।
लै-लै कहत सुनाइ सबन को, पर हथ धर्म बिकाऊं॥
विषय-वासना पर्यौ पेट बस, तन-मन सबै लड़ाऊं।
धन के हेत सदा जग डोलत, छिनु-छिनु पाप बढ़ाऊं॥
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ कों, पलक नाँहिं बिसराऊं।
उत्कर्ष दृग देखि औरन कौ, अंतर बहुत जराऊं॥

अति छल भर्यौ, कुटिलता तन मे, दंभ अधिक बिसराऊं।
सेवा नाम भाव-भक्तिन को, कबहू न मन परसाऊं॥
हरष, सोक, इतरता तन मे, नैंक न तिन बिछुराऊं।
रसना-स्वाद सरस रस भोगी, पलक नाँहि बिसराऊं॥
अति अभिमान जानि जीय अपुने, औरन मन नहिं लाऊं।
करूं दीनता मधुर बोलिकै, अंतर सीस नवाऊं॥
सुनि पुरान बातन को छीलूं, लोगन सकल हराऊं।
इन बातन ते दूर रहत हरि, सदा करऊं॥
धारि स्वाँग साधुन कौ लोक मे, गूढ़ बात मुख गाऊं।
आपुन वाट चलो अधरम की, औरन धर्म सिखाऊं॥
करि मुख मौन बैठि औरन मे, बन-केलि हू बचवाऊं।
दंभ देखि मत्सरता भीनी, कबहू नांहिं टराऊं॥
बसन डार, कर लई तूमरी, बन-बन मांझ फिराऊं।
नाँहिंन मिटी बासना उर की, प्रभुता प्रगट जनाऊं॥
तजूं खान, पय पान करूं मुख, लै सिर बार रखाऊं।
जा-जा भाँति होय जस जग मे, सोई करि कृत्य दिखाऊं॥
छाँड़ि भवन सुख-संपति सगरौ, चित बन बास बसाऊं।
निश्चै एक बासना उर मे, सब ते अधिक कहाऊं॥
सब संग छांड़ि फिरो तीरथ मे, अंग भभूत लगाऊं।
नांही गई मत्सरता मन की, दिन-दिन अधिक पगाऊं॥
काम, लोभ, मद, मोह जरायौ, सो काहू ते न जनाऊं।
देखूं जबै आपु ते ऊँचौ, सहज सकल दुख छाऊं॥
अनपरकास सबन के आगें, करि-करि जुगत बनाऊं।
को जानत भीतर की बातें, तुम बिनु जगत खिलाऊं॥
सदा रहों निर्लेप जगत सों, सब ही दूर फिराऊं।
अंतर रह्यौ बिगरि सब बिधि सों, परम कुटी नहिं छाऊं॥
बैठत नहीं कहूँ लोगन मे, काहू न मन अटकाऊं।
ऊँचे पद के हेत भक्ति करि, सब जगत में भटकाऊं॥
पूछत भेद सकल प्रभुजन कौ, परमुख सुनत हसाऊं।
साँची बात कहत कोऊ अपनी, जाते नाँहि सिखाऊं॥
खोटी बात बसत मुख मेरे, कहि-कहि सबन दुखाऊं।
देखत फिरो छिद्र हरिजन के, सुनत सदा सुख पाऊं॥

सुनि-सुनि सीख बताई उनकी, बहु बिधि तरक उठाऊं।
करि-करि अधिक कल्पना मन की, पंडित जनहिं झुठाऊं॥
आपुन कृत्य करूँ सो साँचौ, अंतर अति हरषाऊं।
मो सम जानत कौन सकल बिधि, औरन दोष लगाऊं॥
मानो आप अपनकों ऊँचौ, ताते जग समजाऊं।
यहै सब सोज भरी है उर मे, मुख ते कहत लजाऊं॥
पास बैठि करि करत बडाई, तासो मन परचाऊं।
सुनि कीरति कानन सुख उपजत, फूल्यौ रंग रचाऊं॥
पढ़ि पुरान बांचों सब आगे, कौटिक तरक मिलाऊं।
जोरि मंडली बैठि बीच मे, अपुनौ पंथ चलाऊं॥
अस्तुति करत आप अपनी जब, अति मन हरष बढाऊं।
सगरी बात एक प्रभुता हित, मन चित्त सकल नमाऊं॥
जानत को पुष्टि-पथ मोसों, कहि-कहि जस प्रगटाऊं।
मद अभिमान भयौ तन मेरे, साधु संग छिटकाऊं॥
'मारग-रीति' उदर के काजें, सीख सकल भरमाऊं।
'अतिआचार' चारु सेवा करि, नीके करि-करि पंच रिझाऊं॥
कथा, वारता, कीरतन करि, करि सुर ताल बजाऊं।
बदो नही काहू उर अपुने, उमँगि-उमँगि कै गाऊं॥
इत-उत की बात करि बासर, रजनी वृथा गमाऊं।
मन चित करि हरि उर नहिं आने, दुरमत कथूं, कथाऊं॥
सब सिद्धांत एक धन जानो, करि पाखंड मंगाऊं।
नाना भाव, चाव चित कौ करि, गानहिं खरज सुनाऊं॥
दौरत फिरो लोभ के काजें, भजन करत अलसाऊं।
प्रगट प्रमाद असुरता उर मे, देखत कुल हुलसाऊं॥
पर-नारी, पर-धन, पर-निंदा, करत न हरत दुराऊं।
अपने दोष सबै गुन मानो, पर-गुन दोष मिलाऊं॥
सेवा के हित जाय भूप सों, कहि बंधान बँधाऊं।
इंद्री-भोग भगत कौ बानों, आपुन साध सधाऊं॥
जो कछु कृपा करो सब ऊपर, भीतर मन न छुवाऊं।
कोऊ लखत नाँहिं चतुराई, निपट कपट बरताऊं॥
ताल, मृदंग, झाँझ लै कर में, ऊधम बहुत मचाऊं।
राग रंग ऊपर की बातें, करि-करि रंग रचाऊं॥

बहु धन जोरि कियौ एक ठौरै, घरनी सुतहि लड़ाऊं।
विषय रच्यौ मन लपट रैन-दिन, दिन-दिन अधिक बढाऊं॥
ना हरि-हेत लगाऊ पैसा, ना जन हित खरचाऊं।
बात बनाइ कहूँ कछु मीठी, वृथा बेल परचाऊं॥
तब घर काज होइ उनमत ज्यों, खरचत नाँहि लजाऊं।
हरि-मदिर में रंच भोग धरि, बहुरि न सत खवाऊं॥
जब कोऊ माँगन आवै हरिजन, गृह-दुख ताहि जताऊं।
साक-पात करि दिवस बितायौ, बातें बहुत बनाऊं॥
इतनी सब सपति है मेरे, तिनको नित बिलछाऊं।
ऐसौ नहीं और त्रिभुवन में, मो सम काछ कछाऊं॥
जिभ्या झूंठ असत मुख भाखों, अगनित कहा गिनाऊं।
दोष-रासि साधन बल नाहीं, कहाँ लों तुम्हें सुनाऊं॥
बाहर कहूं आज उच्छव है, करि पकवान अघाऊं।
रसना स्वाद मूदि घर अपुनौ, बैठि अकेलौ खाऊं॥
करो बीनती 'नाथ' सुनो अब, कब लगि बको बकाऊं।
यह मांगो दीजै करुनानिधि, नितप्रति तुम पद धाऊं॥
चरन सरन राखो करि अपनी, चिंता कलह बहाऊं।
श्री बल्लभ की कानि मानि कै, लै गैया बलदाऊ॥
उभै लोक के साधन मेरे, तुम तजि कापै जाऊं।
कृपा-दृष्टि कस हरी दयानिधि, अब जिय अति अकुलाऊं॥
पतित-सिरोमनि, सब कौ नायक, निर्भै फिरो फिराऊं।
अधम भूप सैना सब मेरी, दोप न करत अघाऊं॥
जो इच्छा सो करहु कृपानिधि, वहाँ लौं जान बचाऊं।
मेरौ बल बस नाँहि नैक हू, मै तुम हाथ बिकाऊं॥
यह अभिलाप आस पूरन करि, 'दासन-दास' कहाऊं।
स्वर्ग-नरक की नाँहि अपेक्षा, तुव पद सरन रहाऊं॥
सदा सरन दृढ़ एक आसरौ, रसना नाम रटाऊं।
अपुनौ बिरद बिचारि दीजिऐ, यातें कहा घटाऊं॥
परयौ हौं दरबार देखि तुव, तन-मन-धन वारनै जाऊं।
जाचो जाय कौन पै तुम बिनु, कापै नाम कढ़ाऊं॥
दीजो मोहि कृपा करि माधौ, चरन कमल चितलाऊं।
"सूरदास" को भक्ति दान दै, श्री बल्लभ गुन गाऊं॥

इस पद के अतिरिक्त और भी अनेक पदों में दीनता प्रकट की गयी है। ऐसे कुछ पदों की प्रारंभिक टेक इस प्रकार है--

(१) हरि ! मैं सब पतितन कौ नायक।
(२) मैं तौ महा पतित उरगानौ।
(३) हरि जू ! मो सो पतित न आन।
(४) माधौ ! हौ पतित सिरोमनि।
(५) हरि ! हौं सब पतितन कौ राजा।
(६) हौ पतितन मे परधान।
(७) मो सो पतित न और गुसाई।
(८) प्रभु मेरे ! मो सौ पतित उधारो।

भक्ति-मार्ग मे भक्ति से विमुख होना ही पतित कहलाता है। जब जीव तनिक भी ईश्वर को भूलता है, तब वह पतित होता है। श्री कृष्ण के सबंध बिना किसी अन्य की मन से भी कामना करने वाला कामी कहलाता है। इसी प्रकार कृष्ण से संबधित किये बिना सब कार्य क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर रूप हो जाते है। सूरदास ने इसी दृष्टि से अपने को कामी, कुटिल आदि कहा है।

भक्त जन दीनता की सिद्धि के लिए जगत के सभी दृश्यमान दोषों की भी अपने मे सत्य भाव से कल्पना करता है, जिसके कारण दूसरे मे हीनत्व बुद्धि नहीं होती है और अपने मे अभिमान नहीं होता है। सूरदास के पदो में प्राप्त अतिशय दीनता का यही रहस्य है। निम्न पद मे भी उक्त बात की पुष्टि होती है—

मो कहा जू मै न कियौ, जोपै तुम सोई सोई चित्त धरि हौ।
पतित पावन बिरद, कौन भांति करि हौ॥
जब ते जग जनम पाए, जीव नाम कहायौ।
तब ते सब औगुन करि, गुन ना कहिं आयौ॥
सुकृति सुचि सेवक जन, काहै न जिय भावै।
प्रभु की प्रभुताई यहै, दीन सरन पावै॥
स्वाद-लंपट, संत निंदक, कपटी, गुरु--द्रोही।
"जेते कछु अपराध कहियत, लागे सब मोही"॥
स्यामसुंदर, कमल-नयन, सकल अंतर्यामी।
बिनती कहा करै 'सूर", क्रूर, कुटिल कामी

४. आश्रय—भक्ति का अनन्य भाव ही आश्रय कहलाता है। इसका वर्णन गत पृष्ठों मे हो चुका है। सूरदास ने श्री कृष्ण के अतिरिक्त इतर देव और मनुष्य आदि की अनन्य भक्ति के प्रति सर्वथा उपेक्षा की है। श्री कृष्ण के समक्ष वे सभी देव आदि को गौण समझते थे। उनके निम्न प्रकार के उल्लेख इस बात की पुष्टि करते है—

(१) अन्य देव सब रंक भिखारी, देखे बहोत घनेरे।
हरि-प्रताप बल गिनत न काहू, निडर भए सब चेरे॥

(२)'बिनती जन कासो करें गुमांई।
तुम बिनु दीन दयाल देव मुनि, सब फीकी ठकुराई।
लिए दियौ चाहे ते कोऊ प्रभु, सुन समर्थ जदुराई।
देव सकल व्यौपार परस्पर, ज्यो पसु-दूध चराई॥

आश्रय की सिद्धि और प्रकार—

(४) हरि के जन की अति ठकुराई।
देवराज ऋषिराज महामुनि देखत रहे लजाई॥
दृढ विश्वास कियौ सिंघासन ता पर बैठे भूप।
हरि गुन विमल छत्र सिर राजत, सोभा परम अनूप॥
निस्पृह देस कौ राज करै, ताकौ लोक बड़ौ उत्साह।
काम क्रोध मद लोभ मोह, 'तहाँ भये चोर ते साह॥
बने विवेक विचित्र पौरिया, औसर कोऊ न पावै।
अर्थ काम तहाँ रहें दूरि-दूरि, मोक्ष धर्म सिर नावै॥
अष्टसिधि नव-निधि द्वारें ठाड़ीं, कर जोरैं डर लीनीं।
छड़ीदार वैराग्य विनोदी, झटकी बाहर कीनीं॥
हरिपद पंकज प्रेम परम रुचि, ताही सो रंग राते।
मंत्री ज्ञान औसर नहीं पावै, करत बात सकुचाते॥
माया काल व्यापै नहीं कबहूँ, जो या रीतै जानै।
"सूरदास" यह नर तन पायौ, गुरु प्रसाद पहिचानै॥

५. गुरु-भक्ति—सूरदास ने गुरु-भक्ति पर बड़ा जोर दिया है। वे गुरु और ईश्वर मे अभेद बुद्धि रखते थे। जैसी श्रीकृष्ण देव में परा-भक्ति हो, वैसी ही गुरु में रखने वाले व्यक्ति के हृदय में वेदादि का वास्तविक रहस्य स्फुरायमान होता है। इस उपनिषद वाक्य के आधार पर सूरदास अपने ज्ञान को गुरु-प्रसाद रूप समझते थे।

सूरदास के निम्न लिखित पदांशों मे गुरु-भक्ति की महिमा इस प्रकार बतलायी गयी है—

(१) हरि-हरि, हरि-हरि सुमिरन करो। हरि चरनारविंद उर धरो॥
हरि-गुरु एक रूप नृप जान। तामे कछु संदेह न आन॥
गुरु प्रसन्न हरि प्रसन्न जोई। गुरु के दुखित दुखित हरि होई॥

(२) धनि सुक मुनि भागवत् बखान्यौ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना करि गान्यौ।

(३) अपुनपौ आपुन जरि मरि है।
काम, क्रोध, तृष्णा, मद, ममता, बिनु बिवेक क्यो तरि है॥
ज्यों दीपक सहज ज्योति में लौलत हरि, तरग भ्रम परि है॥
"सूरदास" सतन की संगति, 'गुरु-प्रसाद' निस्तरि है॥

(४) गुरु बिनु ऐसी कौन करे।
भवसागर तें बूरत राखे दीपक हाथ धरे॥

(५) भजो गोपाल भूल जिनि जावो। मानुष देह कौ यही है ल्हावो॥
गुरु-सेवा करि भक्ति कमाई। कृपा भई तब मन मे आई॥

६. **श्रीकृष्ण नाम स्मरण**—श्री वल्लभाचार्य का मत है कि यदि जीव से सेवा आदि कुछ भी न हो, तो उसे सर्वात्म-भाव से निरंतर "श्रीकृष्ण शरण मम" इस अष्टाक्षर मंत्र का स्मरण करना चाहिए* ।

सूरदास के निम्न पद मे उक्त मत का इस प्रकार वर्णन मिलता है--

श्री कृष्ण नाम रसना रटै, सोई धन्य कलि मे।
जाके पद पंकज की, रेणु की बलि मैं॥
सोई सुकृत सोइ पुनीत, सोई कुलवंता।
जाके निस-दिना रहै, श्री कृष्ण नाम चिंता॥
जोग, जज्ञ, तीरथ, व्रत, श्री कृष्ण नाम माँहीं।
बिना एक कृष्ण-नाम, कलि उद्धार और नाँहीं॥
सब सुखन कौ सार, 'श्रीकृष्ण कबहू न बिसरिऐ।'
कृष्ण नाम लै-लै, भवसागर सों तरिऐ॥
श्रीगोवर्धन धर प्रभु, परम मंगल कारी।
उद्धरे जन "सूरदास", ताकी बलिहारी॥

---

* तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः॥ (नवरत्न)

४—सूरदास और पुष्टिमार्गीय तत्व

गत पृष्ठों के विवेचन से यह भलीभाँति सिद्ध हो गया है कि सूरदास की प्रायः समस्त रचनाएँ पुष्टि-मार्गीय सिद्धांत के अनुकूल है। ऐसा होने पर भी कुछ विद्वानो ने आश्चर्यपूर्वक लिखा है कि सूरदास ने पुष्टि-मार्ग का प्रत्यक्ष उल्लेख कहीं नहीं किया है। हिंदी साहित्य के अनेक विद्वानो ने सूरदास की रचनाओं का भलीभाँति अध्ययन नहीं किया है, इसीलिए उनका सूरदास विषयक मत कभी-कभी भ्रमात्मक हो जाता है। हम यहाँ पर कुछ ऐसे पद देते है, जिनमे सूरदास ने पुष्टि-मार्गका स्पष्ट उल्लेख किया है—

पुष्टि-मार्ग का स्पष्ट उल्लेख—

(१) हरि मै तुम सो कहा दुराऊँ।
जानत को 'पुष्टि-पथ' मोसो, कहि-कहि जस प्रगटाऊँ ॥
मारग-रीति उदर के काजै, सीख सकल भरमाऊँ।
अति-आचार, चारु सेवा करि, नीके करि-करि पंच रिझाऊँ ॥

(२) नाम महिमा ऐसी जो जानो।
मर्यादादिक कहै, लौकिक सुख लहै,
पुष्टि को 'पुष्टि-पथ' निश्चय जो मानो ॥

(३) "भावभक्ति सेवा सुमिरन करि 'पुष्टि-पंथ' मे धावै"।

स्वमार्ग के प्रति आत्म विश्वास—

हौं पतित-सिरोमनि सरन परयौ।
कह्यौ कछु और, करयौ कछु औरै, ताते तिहारे मन ते उतरयौ॥
यह 'ऊँचौ संतन कौ मारग, ता मारग मे पैंड धरयौ'।
नैन स्रवन नासिका इंद्रिय, बस ह्वै खिसत परयौ ॥
और पतित ह्वै है बहुतेरे, तिनकी छोलन हौं जु धरौ।
"सूरदास" प्रभु पतित पावन हो, बिरद की लाज करौ तौ करौ॥

पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरूप—पुष्टि-मार्ग मे परब्रह्म श्रीकृष्ण को ही परम दैवत और आराध्य माना गया है। ये द्वादशांग पुरुष और साकार रूप हैं। पुष्टिमार्ग की मान्यता के अनुसार ये ही इस अनवतार दशा में श्रीनाथ

द्वादशाङ्गोह वै पुरुषः"। (श्रुति)

जी के रूप में सं० १५३५ की वैशाख कृ० ११ को ब्रज के अंतर्गत गोवर्धन पर्वत से प्रादुर्भूत हुए है। इसीलिए उनको श्रीगोवर्धननाथजी अथवा श्री गोवर्धनधर कहा जाता है। श्री वल्लभाचार्यजी ने प्रत्यक्ष भजन के लिए इन श्रीनाथ जी को ही साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्ण माना है,* इसीलिए पुष्टि संप्रदाय के सेव्य स्वरूपो मे श्रीनाथ जी का प्राधान्य है। श्रीनाथ जी को गाये अत्यंत प्रिय है, इसलिए उनको 'गोपाल' भी कहा जाता है। श्री वल्लभाचार्य जी के समय मे श्रीनाथ जी के प्राकट्य-स्थान का निकटवर्ती गाँव इसीलिए 'गोपालपुर' के नाम से प्रसिद्ध था। यह'गोपालपुर'आजकल'जतीपुरा'के नाम से प्रसिद्ध है।

सूरदास ने पुष्टिमार्ग के परम आराध्य देव श्रीनाथजी का स्मरण निम्न लिखित पदांशो मे इस प्रकार किया है—

श्रीनाथजी का उल्लेख—

(१) मोसो पतित न और गुसांई। × ×
सेवि 'नाथ' चरन 'गिरिवर' के बहुत करी अपनाई। × ×

(२) बरु मेरी प्रतिज्ञा जाउ। × ×
निकट आय 'श्रीनाथ' प्रचार्यौ, परी तिलक तन दीठ। × ×

(३) यह लज्जा नृप कहा करो। × ×
·· तब 'श्रीनाथ' सहाय हमारे। × ×

(४) तात बचन रघुनाथ जबै बन गवन कियौ।
'सूरदास' 'श्रीनाथ' विरह सब पतिव्रत सब ही कियौ॥

(५) 'श्रीनाथ' सकौ तौ मोहि उधारो।

(६) 'श्रीनाथ' मुरलीधर कृपाकरि दीन पर ।

(७) ब्रज कौ 'नाथ गोवर्धनधारी' सुभग भुजन नख रेख जुनौ॥

(८) अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी। × ×
'श्रीनाथ' सारंगधर कृपा करि मोहि ··· · ॥

---

* 'इतीदं द्वादशस्कन्ध पुराण हरिरेव सः। पुरुषे द्वादशत्वं हि सक्थौ बाहू शिरोऽन्तरम्। हस्तौ पादौ स्तनौ चैव पूर्वपादौ करौ तत.। सक्थौ हस्तस्तत-श्चैको द्वादशश्चापर. स्मृत। 'उत्क्षिप्त' हस्त पुरुषो भक्तमोकाग्यत्युत। स्तनौ मध्यं शिरश्चैव द्वादशाङ्ग तनुर्हरि:। (निबंध)'

इसमे वर्णित उत्क्षिप्त—ऊंचा हस्त केवल श्रीनाथजी का ही है। इससे श्री नाथजी को ही आचार्य ने द्वादशाग हरि रूप कहा है। यह निश्चित होता है।

(६) 'नाथ मोहि अब की बेर उबारो।
तुम नाथन के नाथ सुवामी, दाता नाम तिहारो ॥

सूरदास ने 'गोपाल' नाम का उल्लेख अपने अनेक पदो मे किया है।

पुष्टिमार्ग के द्वितीय प्रधान स्वरूप श्री नवनीत प्रिय जी है। सूरदास ने इनका उल्लेख भी अपने कई पदो मे किया है।

नवनीत प्रियजी का उल्लेख—

(१) सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरूवन चलत, रेनु तन, मंडित, मुख, दधि लेप किऐं ॥
चारु कपोल, लोल लोचन छबि, गोरोचन को तिलक दिऐं।
लर लटकन मानो मत्त मधुप गन, मादक मधुहि पिऐं ॥
कठुला कंठ वज्र केहरि-नख, राजत है सखि रुचिर हिऐं।
धन्य "सूर" एकौ पल यह सुख, कहा भयौ सत कल्प जिऐं ॥

(२) देखेरी ! हरि नंगम नगा।
जलसुत भूषन अंग विराजति, बसन हीन छबि उठत तरंगा ॥
कहा कहूँ अँग-अंग की सोभा, निरखत लज्जित कोटि अनंगा।
कछु दधि हाथ कछू मुख माखन, 'सूर' हँसत ब्रज युवतिन संगा ॥

पुष्टि-मार्ग के तृतीय प्रधान स्वरूप श्री मथुरेश जी हैं, जो शख, चक्र, गदा और पद्म के धारण करने वाले चतुर्भुज स्वरूप हैं। ये यज्ञोपवीत से भी अकित हैं। सूरदास के निम्न लिखित पद मे मथुरेश जी का वर्णन मिलता है—

श्री मथुरेशजी का उल्लेख —

बनी मोतिन की माल मनोहर।
सोभित सुभग स्याम-उर ऊपर, मनो गिरि तें सुरसरी धसी धर ॥
अति भुज दंड भ्रमर भृगु रेखा, चंदन चित्र तरगनि सुंदर।
रवि की किरनि मीन कुंडल छबि, मकर मिलन आये मनों त्यागिसर॥
'जज्ञपवीत" सुदेश "सूर" प्रभु, मध्य बारि धारा जु बनी धर*।
संख, चक्र, गदा, पद्म' बिराजत, कमल बीच कल हंस किऐं घर ॥

* श्री चतुर्भुजदास कथित "खट ऋतु की वार्ता" से ज्ञान होता है कि सप्तस्वरूप के साथ श्रीनाथ जी के प्रथम अन्नकूट के अवसर पर गोसाई बिट्ठलनाथ जी ने सूरदास को मथुरेश जी की कीर्तन-सेवा दी थी, उस समय उन्होने उक्त पद का गायन किया था।

पुष्टि सम्प्रदाय मे पुष्टि शक्ति रूपा श्री यमुना जी की बडी महिमा है। श्रीवल्लभाचार्य जी के मतानुसार श्री यमुना जी पुष्टि-भक्ति की साधन रूप* और मुकुंद मे रति बढाने वाली है। सूरदास के निम्न लिखित पदो में यमुना जी का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

श्री यमुना जी का उल्लेख—

(१) श्रीयमुनाजी अपुनौ दरस मोहि दीजै।
आस करो गिरिधरन लाल की, इतनी कृपा मोहि कीजै॥
हौ चेरी महारानी तेरी, चरन-कमल रखि लीजै।
बिलंब करो जिन बोलि लेहु मोहि, दरस परस वारि पीजै॥
करो निवास उर अंतर मेरे स्रवन सुजस सुनि लीजै।
प्रान पिया की खरी ये प्यारी, पानि पकरि मेरौ लीजै॥
हौ अबूझ मूढमति मेरी, अनत नही चित्त भीजै।
"सूरदास" मोहि यह आस, है निरखि-निरखि मुख जीजै॥

(२) नाम महिमा ऐसी जू जानों।
मर्यादादिक कहै, लौकिक-सुख लहै,
पुष्टि कौ पुष्टिपथ निश्चै जो मानो।
स्वांतिजल बूंद जब परत है जाहि मे,
ताहि मे होत तैसो जू बानो।
यमुने कृपा सिंधु जानि, जल महिमा आनि,
"सूर" गुनपूर कहाँ लौं बखानो॥

(३) श्री यमुने पतित पावन करेउ।
प्रथमहिं जब दियौ दरसन, सकल पातक हरेउ॥
जल-तरंगन परस कर, पय-पान सो सुख भरेउ।
नाम लेतहिं गई दुरमति कृष्ण-रस विस्तरेउ॥
गोपकन्या कियौ मज्जन, लाल गिरिधर बरेउ।
"सूर" श्रीगोपाल निरखत, सकल काज सरेउ॥

† "भक्ति हेतुस्तु यमुना"। (सुबो० ३-१-२१)

* "मुकुन्दरति वर्द्धिनी"। (श्रीयमुनाष्टक)

अन्य अवतार और देवी-देवता—शुद्धाद्वैत पुष्टि-मार्ग के अनुसार समस्त अवतार और देवी देवता श्रीकृष्ण के ही अंश है । इस मान्यता के कारण राम, नृसिंह, वामन आदि भक्तोद्धारक अवतारो मे श्रीकृष्ण की ही स्थिति मानी गयी है, अतः पुष्टि-मार्गीय सेवा-प्रणाली में उक्त अवतारो की जयंतियो के अवसर पर श्री कृष्ण के स्वरूप तथा अक्षर ब्रह्मात्मक शालिग्राम जी का पंचामृत स्नान होता है ।

इसी भावना को लेकर सूरदास ने अन्य अवतारों के पदो मे अपने इष्ट श्री गोवर्धन नाथ का इस प्रकार स्मरण किया है—

(१) "सूरदास" प्रभु गोवर्धन धर, नर हरि-वपु धार्यौ ।

(२) कृष्ण-भक्ति सीतल निज पानौ ।

'रघुकुल-राघव' कृष्ण सदा ही, गोकुल कीन्यो थान्यौ ॥

इसी प्रकार अन्य देवी-देवताओ को भी श्री कृष्ण के अंश मान कर पुष्टि-प्रवाह और पुष्टि-मर्यादा वाली सेवा मे 'श्रीकृष्ण के हितार्थ' उनकी भी पूजा की जाती है । यह पूजा, नंद-यशोदा की भावना से श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव पर उनकी छटी के अवसर पर होती है

सूरदास ने श्रीकृष्ण की छटी के वर्णन मे उक्त देवी-देवताओ का इस प्रकार स्मरण किया है—

गौरी, गनेस, सुर बिनै हौं, देवी सारदा तोही ।
गाऊँ हरि जू कौ सोहलौ, मन और न आवे मोही ॥

सूरदास के राम विषयक-पद—सूरदास के राम विषयक अनेक पद मिलते हैं । ये सब शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टि सम्प्रदाय की सेवा-प्रणाली के अनुसार रचे हुए है । श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने अपनी सुबोधिनी मे लिखा है कि "कृष्ण एव रघुनाथः" (१०-४३-२२) तथा "भगवान्पूर्ण एव रघुनाथोऽवतीर्णः ।" (२-७-२३) इन सूत्रो के अनुसार सूरदास ने राम कृष्ण की अभेदता सूचक निम्न प्रकार के अनेक पद रचे है—

(१) जै गोविंद माधौ मुकुंद हरि । कृपा सिंधु कल्यान कंस अरि ।
कृपनिपाल केसव कमलापति । कृष्ण कमल लोंचन अविगत गति ॥
रामचंद्र राजीव नयन वर । सरन साधु श्रीपति सारंग धर ॥
बनमाली बामन विट्ठल वर । वासुदेव बासी ब्रज भूतल ॥
खरदूषन त्रिसिरा सिर खंडन । चरनारविंद दंडक भुव मंडन ॥
बकी दमन, बक-बकिन बिदारन । वरुन विषाद नंद निस्तारन ॥

ऋषि मख त्रान, ताड़का तारक। बन बसि तात बचन प्रतिपालक॥
गोकुलपति, गिरिधर गुन सागर। गोपी रमन, रास-रति-नागर॥
रघुपति प्रबल पिनाक बिभंजन। जग-हित जनकसुता-मनरंजन॥
काली दमन, केसि कर पातन। अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन॥
करुनामय कपि-कुल-हितकारी। बालि बिरोध कपट मृगहारी॥
गुप्त गोप-कन्या ब्रत पूरन। द्विज नारी दरसन दुख चूरन॥
रावन कुंभकरन सिर छेदन। तरुवर सात एक सर भेदन॥
संख चक्र चाणूर सँहारन। सक्र कहै मेरौ रच्छन कारन॥
उत्तर कृपा गीध कृत हारी। दरसन दै सबरी उद्धारी॥
जे पद सदा संभु हितकारी। जे पद परम सुरसरी गारी॥
जे पद रमा हृदय नहीं टारी। जिन पद ते तिहु भवन तयारी॥
जे पद वृंदावन ही बिहारी। जे पद पांडव गृह पग धारी॥
जिन पद सकटासुर सहारी। जे पद अहिफन-फन प्रति धारी॥
जे पद भक्तन के सुखकारी। जिन पद-रज गौतम-त्रिय तारी॥
"सूरदास" सुर याचत वे पद। करहु कृपा अपने जन पर सद॥

(२) कृष्ण-भक्ति सीतल निज पान्यौ।
'रघुकुल-राघव कृष्ण सदाही', गोकुल कीनौ थान्यौ॥ × ×

पुष्टि भक्ति का स्वरूप—हम पहले लिख चुके है कि पुष्टि-भक्ति प्रेम-रूपित है। प्रेम की सिद्धि विरह से होती है, इसलिए इस भक्ति के श्रवण, कीर्तन और स्मरण आदि सभी साधन विरहात्मक है। भगवान् के विरह मे पतिव्रता की तरह अनन्य होकर पुष्टिस्थ भक्त उनका यश-श्रवण, कीर्तन और स्मरण आदि करते हैं। तब भक्त को क्लेश युक्त देख कर हृदयस्थ प्रभु बाह्य रूप मे आविर्भूत होते हैं। श्री वल्लभाचार्यजी ने लिखा है—

१ एक किंवदती के अनुसार जब तुलसीदास अपने भाई नंददास से मिलने के लिए ब्रज मे आये थे, तब चंद्रसरोवर पर सूरदास से भी मिले थे। तुलसीदास को श्रीरामचंद्रजी का इष्ट था, अतः उनको श्रीनाथ जी के प्रति भक्ति-भाव प्रकट करने में संकोच होता था। कहते हैं सूरदास ने उक्त पद का गायन करते हुए उस समय श्रीनाथ जी से प्रार्थना की थी कि वे तुलसीदास को रामचंद्र के रूप मे दर्शन दें। उक्त पद की अंतिम टेक 'करहु कृपा अपने जन पर सद' सूरदास के अतिरिक्त किसी अन्य भक्त के लिए ही प्रयुक्त हुई ज्ञात होती है।

विलश्यमानाञ्जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत्।
तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहि ॥ (नि० ल०)

इस प्रकार विरह से ही प्रेम की सिद्धि होती है और प्रेम सिद्ध होने पर लोक और वेद दोनो से भक्त विरक्त हो जाता है। सूरदास ने निम्नलिखित पदों में इस बात को इस प्रकार कहा है—

विरह का स्वरूप —

विरह बिनु नाहिन प्रीति की खोज।
लागे बिनु कहो कैसे आवै, इन अँखियन मे गोज ॥
जब तें दूरि भए-नँदनंदन, बैरी भयौ मनोज।
"सूरदास" प्रभु निसंक जे जन, ते है राजा भोज ॥

शुद्ध प्रेम का स्वरूप—

मिलै गोपाल सोई दिन नीकौ।
'जोतिष, निगम, पुरान बड़े ठग, जानो फांसी जी कौ' ॥
जो बूझै तौ उत्तर दैहो, बिन बूझै मत फीकौ।
कमल मीन दादुर यो तरसत, सब घन बरप अमी कौ ॥
भद्रा भली भरनी भय हरनी, चलत मेघ अरु छीकौ।
अपने ठौर सबै ग्रह नीके, हरन भयौ क्यो सीय कौ ॥
सूनि मूढ मधुकर ब्रज आयौ, लै अपयस कौ टीकौ।
" सूर " जहाँ लो नैम, धरम, व्रत, सो प्रेमी कौड़ी कौ ' ॥

पुष्टि-भक्ति की तीन अवस्थाएँ हैं--स्वरूपासक्ति, लीलासक्ति और भावासक्ति। सूरदास के पदो मे इन तीनों का इस प्रकार वर्णन मिलता है

१. स्वरूपासक्ति—

(१) कहूँ देख्यौ माई, श्री गोकुल कौ बासी।
तनिकसी बांसुरी बजाइ बाँस की, लै गयौ प्रान निकासी ॥
देख्यौ होय तौ दिखाय सखीरी, अँखियाँ रूप की प्यासी।
"सूरदास" प्रभु तुम्हारे मिलन-बिनु, मेरौ मरन, जग हाँसी ॥

(२) मिलिबौ नैंनन ही कौ नीकौ।
नंद कौ लाल हमारौ जीवन, और जगत सब फीकौ ॥
वेद, पुरान, भागवत अरु गीता, गूढ ज्ञान पोथी कौ।
खाटी छाछ कहा रुचि उपजै, " सूर " खवैया घी कौ ॥

(३) गोकुल के गोंडे एक साँवरौ ढुटौना माई,
अँखियन के पैंडे पैठि, जी के पैड परयौ है ।
कल न परत छिनु, गृह भयौ बन सम,
तन, मन, धन, प्रान सरबस हरयौ है ॥
भवन न भावै माई, आंगन रह्यौ न जाई,
करै फिरै हाय-हाय देखो कैसौ हाल करयौ है ।
'सूरदास' प्रभु नीके गावत मधुर सुर,
मानो मुरली मे लै पीयूष भरयौ है ॥

(४) उठो इन नैनन अंजन देहु । -
आनो क्यों न स्याम रंग काजर, जासों जुरयौ सनेह ।
तपत रहत निस-बासर मधुकर, नहिं सुहात बन-गेह ।
पहले तौ नैनन अपराधी, बरजत कियौ सनेह ॥
सब बिधि बाँधि ठानि कर राख्यौ, ज्यो कपूर की खेह ।
बार इक स्याम मिलाय "सूर" प्रभु, क्यों न सुजस-जस लेह ॥

(५) नाहिन रह्यौ मन मे ठौर ।
नदनदन बिना कैसै आनिऐ उर और ॥
चलत चितवत, द्यौस जागत, स्वप्न सोवत रात ।
हृदय ते वह मदन मूरति, छिनु न इत-उत जात ॥
कहत कथा अनेक ऊधौ, लाख लोभ दिखाय ।
कहा करो 'चित्त प्रेम पूरन', घट न सिंधु समाय ॥
स्याम गात, सरोज आनन, ललित गति मृदु हास ।
"सूर" ऐसे दरस कों, ये मरत लोचन प्यास ॥

२. लीलासक्ति –

चकई री चलि चरन-सरोबर, जहाँ नही प्रेम-वियोग ।
जहाँ भ्रम निसा होत नहिं कबहू, सो सायर सुख योग ॥
सनक से हस, मीन सिवमुनिजन,नख रवि-प्रभा प्रकास ।
प्रफुलित कमल निमिष नही ससि डर,गुंजत निगम सुवास ॥
जिहिं सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल,बिमल सुकृत जल पीजै ।
सो सर छाँड़ि कयो कुबुद्धि बिहगम,इहाँ रहै कहा कीजै ॥
जहाँ श्री सहस्र सहित नित क्रीडत,सोभित "सूरजदास",
अब न सुहाय विषय रस छिल्लर, वा समुद्र की आस ॥

भावासक्ति—

(१) भजि सखी भाव-भाविक देवा।

(२) भाव बिनु माल नफा नहिं पावै।

बाल-भाव में किशोर-भाव—सूरदासादि पुष्टि-संप्रदायी कवियों की रचनाओं में किशोर-भाव को देख कर कुछ व्यक्तियों को आश्चर्य होता है। उनके विचारानुसार उक्त कवियों की रचनाएँ केवल बाल-भाव की होनी चाहिए थीं। हम गत पृष्ठों में लिख चुके है कि श्री वल्लभाचार्य जी ने केवल वात्सल्य भक्ति का ही उपदेश नहीं दिया है बल्कि उनके मत में कांता-भाव की माधुर्य-भक्ति भी ग्राह्य है। बाल-भाव में किशोर-भाव का समावेश पुष्टि संप्रदाय की विशिष्टता है। श्रीवल्लभाचार्यजी ने श्रीमद्भागवत दशमस्कंध पूर्वार्ध अध्याय १२ में वर्णित उक्त विषय का विवेचन "सुबोधिनी" में किया है।

सूरदास ने निम्न लिखित पदों में बाल-भाव के अंतर्गत किशोर भाव का इस प्रकार वर्णन किया है—

(१) निपट छोटे कान्ह सुनि, जननी कहूँ बात।
होत जब समुदाय, करत तब सिसु-भाय,
एकांत पाइ कें नैन भरि मुसिकात॥
देखि रस-रीति की प्रीति बिपरीत गति,
मतिमान छाँड़ि, सग लग्यौ रह्यौ निसि-प्रात।
जात नहीं बिसरि देखि, बहुत जतन धरि समुझि,
कहूँ चंद देखै कमल हू बिकसात॥
दुरत घूंघट जबै लाल जसुमति हृदै,
उझकि धँसि धरनि, पाँउ धरि मुख किलकात।
मनहुँ आषाढ़ घन बादरी "सूर" तजि,
होत आनद, सब फूले अति जलजात॥

(२) ग्वालिन आपु तन देखि, मेरे लाल तन देखिए।
भीत जो होय तौ, चित्र अबरेखिए॥
मेरौ तौ साँवरौ पाँच ही बरस कौ, अजहू यह रोय पय-पान माँगै।
तुम हो मस्त अति ढीठ री ग्वालिनी, फिरत अठलाति गोपाल आगै॥
मेरे तौ स्याम की तनिक सी अंगुरियाँ, ए बड़े नखन के दाग तेरे।
मष्ट करि, सुनैगौ लोग अगवार को, क्हाँ पाई भुजा स्याम मेरें॥
ठगठगे नैन बैंनन हँसी ग्वालिनी, मुखि देखै सोभा अति ही बाढ़ी।
सुन सखी "सूर" सरबस हरै सांवरे, अन-उत्तर महरि के द्वार ठाढ़ी॥

श्री वल्लभाचार्य जी के वचनों का अनुसरण—गत पृष्ठो के विवेचन द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि सूरदास ने श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग की भक्ति-भावना को स्पष्ट करने के लिए ही अपने अधिकांश पदो की रचना की है। उन्होने आचार्य जी रचित ग्रंथो के नामोल्लेख और उनके वचनो का अनुसरण करते हुए अपना मत प्रकट किया है। सूरदास ने अपने निम्न पद मे आचार्यजी कृत "सुबोधिनी' ग्रंथ का नामोल्लेख करते हुए उसके मर्म को श्रवण करने का उपदेश दिया है—

कहा चाकरी अटकी जनकी। × ×
करम ज्ञान आसय सब देखे, वहाँ ठौर नहीं पाँव धरन की।
श्री सुकदेव के बचन आश्रय,'सुनौं सुबोधिनी' टीका जिन की॥
नित्य संग करौ वैष्णव कौ, सेवा करौ नंद-सुवन की।
"सूर"कहै मन सेवा त्यजि कै, चिंता कहा करै उदर भरन की॥

इससे यह समझा जा सकता है कि सूरदास ने आचार्यजी कृत 'सुबोधिनी' आदि ग्रंथों का अध्ययन अवश्य किया होगा। इसकी पुष्टि आचार्य जी के कथनो के अनुसरण रूप कुछ उद्धरणो से भी होती है।

आचार्यजी ने वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भागवत की समाधि-भाषा को 'प्रस्थान चतुष्टय' के रूप मे स्वीकार किया है। इन चारो मे भी शरण और भक्ति के लिए उन्होने गीता और भागवत पर विशेष बल दिया है।

सूरदास के कई पदो मे गीता और भागवत का इस प्रकार उल्लेख हुआ है—

गीता—

हमारैं सब रस गोबिंद गीता।
गाय-गाय रसना जो लड़ाऊं, हरि-रस अमृत पीता॥
श्रीमुख बचन कहत कुंतीसुत, सुनि-सुनि होत प्रतीता।
या गीता के तेज प्रताप ते, दुरयोधन-दल जीता॥
जे नर गीता-पाठ करत हैं, युग युग रहत निहचीता।
तिनकों कौन बात कौ संसय, तरे कुटुंब सहीता॥
सार कौ सार, सबन को सुख है, चारो वेद मथि लीता‡।
"सूरदास" प्रभु अघ-मोचन को, सद्गुरु दियौ पलीता॥

‡ सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः।
पार्थोवत्स सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

भागवत—

(१) निगम कल्पतरु पक्‍व फल सुक मुख ते जु दयौ† ।

(२) श्रीभागवत सकल गुन-खानि* ।

(३) निगम कल्पतरु सीतल छाया ।

द्वादस पेड़, पुष्टि घन पल्लव, त्रिगुन तरुष ब्यापै नहीं माया ॥
फल अति मधुर, सरस पुष्प युत, अध्याय तीन सत पैंतीस साखा ।
सुंदर श्लोक सहस्र अष्टादस, श्रीमद्भागवत उत्तम भाषा ॥
पाँच लाख पुन. सहस्र छहत्तर, अच्छर प्रांत हैं जु पत्रा ।
अघ अरु अज्ञान दूर करन को, एक-एक अच्छर है निज मंत्रा ॥
नवधा भक्ति चार मुक्ति फल, ज्ञान-बीज अरु ब्रह्म रस मीता ।
"सूरदास" श्रीमद्भागवत-भक्ति, गदगद कंठ कोउ प्रेमी जन पीता ॥

अब हम श्रीवल्लभाचार्य जी कृत ग्रंथों के कतिपय उद्धरण और सूरदास के पद उपस्थित कर यह बतलावेंगे कि सूरदास ने आचार्य जी के वचनों का किस प्रकार अनुसरण किया है ।

आचार्य जी कृत "कृष्णाश्रय" का अनुसरण—

अब तौ साँचौ कलियुग आयौ‡ ।
पुत्र-पिता कौ कह्यौ न मानत, करत आपु मन भायौ ॥
पुत्री बेचि पिता धन खायौ, दिन-दिन मोल सवायौ ।
यातैं बरषा अल्प भई री, कालैं सब जग खायौ ॥
छिपत गोवर्धन, घटत वृंदाबन, कालिंदी रूप छिपायौ ।
"सूरदास" प्रभु या कलियुग मे, मौहै काहेको जिवायौ ॥

आचार्य जी कृत "यमुनाष्टक" का अनुसरण—

हंस-सुता°, जल स्वरूप‡, पुष्टि रूप*, अति अनूप,
करत स्नान अंग पाप कटत है ।
सिव-बिरंचि-सुक-सेस रटत❀, वेद बिदित स्रवन गनेस,
नारद, ध्रुव, व्यास आदि गुन गनत है ॥

---

† पृ. १२२ की पाद टिप्पणी मे दिया गया है ।

* पृ. १२३ पर दिया गया है ।

‡ "कलौ च खल धर्मिणी"

° 'जयति पद्मबंधो सुता'

* 'तुर्यप्रियाम्'

‡ 'सर्वगतिदन्तुरा' आदि

❀ 'शिव विरिञ्चि देव स्तुते'

भक्त रीति-प्रीति, श्यामसुंदर पास रहत नित,
काम धर्म-अर्थ-मोक्ष† देत,जमदूत निरखि दूर ही ते हटत है‖।
यह जिय दृढ़ प्रेम ज्ञान, परम पद लहत नरा,
श्री जमुना जी की महिमा भनत'सूर'जस नाँहि घटत। है ॥

आचार्य जी कृत "विवेक धैर्याश्रय" का अनुसरण—

हरि भक्तन को गर्व न करनौ°।
यह अपराध, परम पद हू ते उतर नरक मे परनौ ॥
हौं कुलीन धनवान, ये भिक्षुक, ये मन मे नहि धरनौ।
राज-सिंहासन,अश्व पालकी,तासों भवसागर नहीं तरनौ ॥
खान पान बनाए भले जू, बदन पैसार फेर हू मरनौ।
"सूरदास" यह सत्य कहत हौ,हरि भक्तन के संग उबरनौ ॥

आचार्य जी कृत "पंचश्लोकी" का अनुसरण—

जाके हृदय हरि-धर्म नाही।
ताके तजे कौ दोष नाँहीं, बसिगे नहीं उन माही$ ॥ × ×

आचार्य जी कृत "सुबोधिनी" का अनुसरण—

(१) चकई री चलि चरन-सरोवर, जहाँ नहि प्रेम-वियोग¶ । × ×
जहाँ श्री सहस्र सहित नित क्रीड़त, सोभित सूरजदास ॥
अब न सुहाय विषय रस छिल्लर, वा समुद्र की आस ॥
(२) एक निस रामकृष्ण बन जाँय‡।
सुंदर सोभा देखि रमन की, अति ही आनँद पाँय ॥

---

† 'सकल सिद्धि हेतु'
‖ 'न जातु यमयातना भवति ते पयः पानत.'
। 'मुकुन्द रति वर्द्धिना' तथा 'भवति वै मुकुन्दे रति'
† 'स्तुति तव करोति क.' आदि
° 'अभिमानश्च सत्याज्य:'
$ तत्त्यागे दूषण नास्ति यत: कृष्ण बहिर्मुखा'
¶ 'नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धि शायिनम्।
लक्ष्मी सहस्र लीलाभि: सेव्यमानं कलानिधिम् ॥
‡ शखचूण बध वर्णन

बेनु बजाय कृष्ण तब गोपी, सबकों वहाँ बुलाय।
'मर्यादा श्रुति सो बलदेवहि, पुष्टि कृष्ण ढिग आय' ॥
तहाँ प्रेम सो दोउ जन बिहरत, मन हरि लीनो सोई।
गान तान मानहि सुर साँचे, तन सुधि रही न कोई॥
भूषन बसन सिंगार सकल अँग, चन्दन लेप किये। × ×
"सूरदास" हरि के गुन गावत, भव दुख सबहि भाजे॥

(खंडिता*)

(१) मेरे आए भोर प्यारे, वा कैं सब निसि जागे।
साँची कहो तुम वाही त्रिया की सोंह, पाये प्रेम रस चोर॥
कहुँ अजन, कहुँ पीक लागि रही, काहे को दुरावत नंदकिसोर॥
"सूरदास" प्रभु तुम बहु नायक, रंग रंगे चहुँ ओर॥

(२) जरी को जरायवे को, तती तन तायवे को,
कटी लौन ल्यायवे को, द्वार आय खरे हो।
रैन बसे और ठौर, अब आये मेरी ओर,
वाही पै पधारो कान्ह, जाके बस परे हो॥
बिन गुन माल, सोहैं अधर अंजन रेख,
मेरी सोह कान्ह, अब जाओ तुम भरे हो।
चार जाम बीते, मोय घड़ी भर कल्प नांही,
'सूरस्याम' हिरे हू ते नैक हू न टरे हो॥

(३) पाये हो जू जान, लाल तुम पाये हो जू जान।
तुम सो कौन बलैया बोलै, निपट कपट की खान॥
औरन सो तुम हँसत खेलत हो, हमसे रहे मुख तान।
"सूरदास" प्रभु अपनी गरज को, कहियत परम सुजान॥

स्वभावत एव खिन्ना-तां त्यक्त्वा अन्यया सह स्थित रतिं।
ततश्चैर् समागत्य प्रकर्षेण हसति, रतरा लाभं प्राप्नोति॥ (१०-३१-१०

पंचम परिच्छेद

काव्य-निर्णय

★

 १. सूर-काव्य की भाषा

काव्य का कलेवर—

प्रत्येक महाकवि के काव्य की एक विशिष्ट शैली होती है। उस शैली को हृदयगम किये बिना हम उस महाकवि के काव्य को समुचित रूप से नही समझ सकते। सूरदास की भी एक निजी शैली है, जिसके कारण उनको समस्त कवि समुदाय मे से सरलता पूर्वक पहचाना जा सकता है।

शैली का सौन्दर्य और महत्व काव्य के कलेवर अर्थात् भाषा की समृद्धि पर भी आधारित है। सूरदास के काव्य-महत्व का मूल्याकन करते समय उनकी भाषा-शैली पर सर्व प्रथम दृष्टि जाती है।

सूरदास से पहले की ब्रजभाषा—

सूरदास के काव्य की भाषा ब्रजभाषा है, जो हिंदी का एक विशिष्ट रूप है। यद्यपि सूरदास के पूर्ववर्ती कतिपय कवियो के काव्य मे भी ब्रजभाषा के तत्व दिखलायी देते है, तथापि व्यवस्थित एवं साहित्यिक भाषा के प्रयोग के कारण सूरदास ही ब्रजभाषा के आरंभिक कवि माने जाते हैं। सौरसेनी अपभ्रंश के विकसित रूप मे ब्रज बोली का प्रचलन विक्रम की बारहवीं शताब्दी से ही सूरसेन प्रदेश एवं उसके निकटवर्ती बडे भू-भाग में था। सौरसेनी से सबधित होने के कारण इस बोली मे स्वाभाविक रूप से माधुर्य गुण की विशेषता था, जिसके कारण यह अपने क्षेत्र के लोक-गीतकारों, साधु-सतों की मडलियो और सगीतज्ञो द्वारा शीघ्र ही अपनाली गयी। साधु-संतो को धर्म-प्रचार एवं तीर्थ-यात्रा के लिए और संगीतज्ञों को अपनी गायन कला के प्रदर्शन के लिए दूर दूर तक भ्रमण करना पडता था, जिसके कारण ब्रज की इस मधुर वाणी का परिचय ब्रज प्रदेश से बाहर के व्यक्तियों को भी होने लगा। ब्रज बोली के माधुर्य ने ब्रज प्रदेश एवं उसके सुदूरवर्ती स्थानों के कवियों को विशेष रूप से आकर्षित किया और उन्होने अपनी कविता मे इसका उपयोग करना आरंभ कर दिया।

सूरदास के पूर्ववर्ती ऐसे अनेक कवि होगे, जिन्होने ब्रज की बोली मे काव्य-रचना की होगी, किंतु उनमे से अधिकांश व्यक्तियो के नाम तक आज कल अज्ञात है। हिंदी के इतिहासकारो ने सूरदास के पूर्ववर्ती जिन कवियो का नामोल्लेख किया है, उनमे से खुसरो की पहेलियां, नामदेव की बानियो, कबीर की साखियो और लालचदास हलवाई कृत भागवत-भाषा की दोहा-चौपाइयो मे ब्रज-बोली का एक साहित्यिक रूप दिखलायी देता है, किंतु वे कवि न तो एक मात्र ब्रजभाषा के कवि थे और न उन्होंने ब्रजभाषा के व्यवस्थित रूप का उपयोग किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि सूरदास से पहले ही ब्रज की बोली ने भाषा का रूप धारण कर साहित्य मे स्थान तो प्राप्त कर लिया था किंतु उसे साहित्यिक भाषा का समुचित सामर्थ्य सूरदास एव उनके सहयोगियों की रचनाओ द्वारा ही प्राप्त हुआ है।

सूरदास की ब्रजभाषा—

सूरदास के काव्य मे जिस ब्रजभाषा का उपयोग हुआ है, उसमे समस्त साहित्यिक गुण विद्यमान है। यह ठीक है कि उनकी भाषा का रूप वैसा शुद्ध एव परिमार्जित नही है, जैसा उनके परवर्ती रसखान, मतिराम बिहारी घनानंद और देव आदि कवियों की भाषा का है, किंतु अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा उन्होने आरभिक अवस्था मे ही इसको इतना समृद्ध एवं वैभवपूर्ण बना दिया यह क्या कम आश्चर्य की बात है! सूरदास और उनके सहयोगियो की रचनाओ ने ब्रज की इस साधारण बोली मे वह चमत्कार पैदा कर दिया था कि वह शीघ्र ही उत्तर भारत की सामान्य काव्य-भाषा के रूप मे समस्त कवि-समुदाय के आकर्षण का केन्द्र बन गया।

सूरदास की भाषा मे ब्रज के ठेठ शब्दो के साथ ही साथ संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द भी प्रचुर परिमाण मे मिलते है। उनके विशालकाय काव्य-साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उनके पास शब्दो का अक्षय भडार था, जिसके कारण वे किसी भी प्रकार के भाव को किसी भी प्रकार से व्यक्त करने मे सर्वथा समर्थ थे। उन्होने एक ही बात को अनेक प्रकार और अनेक ढंगों से कहा है, जिसके कारण उनके कथन में पुनरुक्ति का सा आभास होने लगता है, किंतु वास्तव मे यह सूरदास के कथन की विशिष्ट शैली है, जिसकी सफलता उनकी भाषा-समृद्धि पर आधारित है। सूरदास जैसे शब्दों के धनी ही इस प्रकार की काव्य-रचना कर सकते थे।

सूरदास की भाषा विषयक विशेषताएँ—

सूरदास की कविता के अधिकांश विषय शृंगार एवं वात्सल्य से संबंधित है, अत: उनके काव्य मे ओज की अपेक्षा प्रसाद एवं माधुर्य गुण अधिक परिमाण मे है। इन गुणो के कारण कोमल-कांत पदावली का बाहुल्य उनकी भाषा की पहली विशेषता है। उनकी भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि इसमे भावों के अनुरूप उपयुक्त शब्दो का संगठन है, जिसके कारण उनका कथन चित्र के समान पाठको को आनंदित करता है। उनकी भाषा की तीसरी विशेषता उनकी सार्थक शब्द-योजना है, जिसका सफलता पूर्वक निर्वाह उनके पदो मे आरंभ से अंत तक किया गया है। उनकी चौथी विशेषता भाषा का धारावाही प्रवाह है, जो संगीत के ताल-स्वरो के कारण और भी आनंददायक हो गया है। उनकी भाषा की पाँचवी विशेषता यह है कि यह अत्यंत बलवती और सजीव है। भावो के अनुरूप विशिष्ट शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा को बल एवं सजीवता प्राप्त होती है। ये बाते सूरदास की भाषा में प्रचुरता से मिलती है।

सूरदास की मिश्रित भाषा—

जैसा पहले लिखा जा चुका है कि सूरदास के काव्य की भाषा ब्रजभाषा है, जिसमे संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा मे खडी बोली, पूर्वी, बुंदेलखडी, पंजाबी, गुजराती और अरबी-फारसी के शब्द भी प्रचुर परिमाण में मिलते है। इससे ज्ञात होता है कि वे कई भाषाओ के ज्ञाता थे।

उन्होने अरबी फारसी शब्दो का बडी स्वतन्त्रता पूर्वक उपयोग किया है। मुसलमानी संसर्ग के प्रभाव से जो शब्द यहाँ की बोलचाल की भाषा मे सम्मिलित होगये थे सूरदास ने उनका बहिष्कार नही किया, बल्कि उनको अपनी भाषा के अनुकूल बना लिया। इन शब्दो के उपयोग से उनकी भाषा मिश्रित होगयी है, किंतु साथ ही वह बलवती एवं प्रभावशालिनी भी बन गयी है।

सूरदास की कुछ रचनाओ मे खड़ी बोली का मिश्रण भी मिलता है। यहाँ पर उनका एक खडी बोली मिश्रित भाषा का पद दिया जाता है, जिसमे खडी बोली का प्राचीन रूप जाना सकता है। अकबर के समय मे खडी बोली का भी एक व्यवस्थित रूप बन रहा था। परमानंददास, नंददास और

रसखान की कतिपय रचनाओ मे भी खडी बोली का एक रूप दिखलायी देता है। स० १७४२ की "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" मे कहीं-कहीं पर शुद्ध खडी बोली के गद्य का रूप भी दिखलायी देता है। सूरदास का खडी बोली मिश्रित एक पद इस प्रकार है—

मै योगी यस गाया, रे बाला मै योगी यस गाया।
तेरे सुत के दरसन कारन, मै कासी से धाया ॥ रे बाला०
परब्रह्म पूरन पुरुषोत्तम सकल लोक जामाया।
अलख निरंजन देखन कारन, तीन लोक फिरि आया ॥ रे बाला०
धन तेरा भाग यसोदा रानी, जिन ऐसा सुत जाया।
गुनन बडा छोटा मत जानो, अलख रूप धरि आया ॥ रे बाला०
जो भावे सो लीजे रावर, करो आपुनी दाया।
देहु असीस मेरे बालक को, अविचल बाढ़ै काया ॥ रे बाला०
ना मै लैहों पाट-पटम्बर, न लैहों कंचन-माया।
मुख देखो तेरे बालक कौ, यह मेरे गुरु-ने बताया ॥ रे बाला०
कर जोरे बिनवै नंदरानी, सुनि योगिन के राया।
मुख देखन नहि दैहों रावरे, बालक जात डराया ॥ रे बाला०
काला पीला गौर रूप है, बाघम्बर ओढाया।
कहुँ डायन सी दृष्टी लागे, बालक जात डराया ॥ रे बाला०
जाकी दृष्टि सकल जग ऊपर, सो क्यो जात डराया।
तीन लोक का स्वामी मेरा, सो तेरे भवन छिपाया ॥ रे बाला०
बाल कृष्ण को ल्याइ यसोदा, कर अचल मुख छाया।
कर पसार चरनन रज लीन्हो, सिंगी-नाद बजाया ॥ रे बाला०
अलख-अलख करि पाँय छूये है, हँसि बालक किलकाया।
पाच बेर परिक्रमा कीनी, अति आनन्द बढाया ॥ रे बाला०
हरि की लीला हर मन अटक्यौ, चित नहि चलत चलाया।
अखिल ब्रह्मांड के नायक कहिये, नंद घरहिं प्रगटाया ॥ रे बाला०
इन्द्र-चंद्र-सूरज-सनकादिक, सारद पार न पाया।
तुमही ब्रह्मा, तुमही विष्णु, तुम्ही ईस बताया। रे बाला०
तुम विश्वभर, तुम जग-पालक, तुमही करत सहाया।
कहाँ बास, यह कहत यसोदा, सुन योगिन के राया ॥ रे बाला०
कौन देस के योगी तुम हो, कैसे नाम धराया।
"सूरदास" कहै सुनो यसोदा, शंकर नाम बताया ॥ रे बाला०

३. सूर-काव्य की सरसता

काव्य की आत्मा—

यदि भाषा काव्यका कलेवर है, तो रसपूर्ण कथन काव्य की आत्मा है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने सरस काव्य को ही वास्तविक काव्य बतलाया है। जिस काव्य मे रस नही, वह शब्दाडबर मात्र है। सूरदास के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमे सर्वत्र रसपूर्ण कथन प्रचुर परिमाण में मिलते हैं।

सूरदास के काव्य में रस-परिपाक—

रसों मे शृंगार रस प्रमुख है, जिसका पूर्ण परिपाक सूरदास के काव्य में हुआ है। शृंगार रस के सयोग और विप्रलभ दो पक्ष होते है। सूरदास ने दोनों प्रकार के शृंगार का ऐसी विदग्धता से वर्णन किया है कि पाठक का मन तन्मय होकर भाव-लोक मे विचरने लगता है। आचार्यों ने शृंगारिक कथन के जितने अग बतलाये है, सूरदास के काव्य मे उनका पूर्ण रूपेण समावेश है।

प्राचीन रस-शास्त्रियों के मतानुसार वात्सल्य भी शृंगार रस के अतर्गत है। सूरदास के काव्य मे वात्सल्य का जैसा स्वाभाविक और मर्म-स्पर्शी कथन हुआ है, वैसा किसी भी भाषा के कवि ने आज तक नहीं किया। उन्होंने वात्सल्य का ऐसा सांगोपांग एव पूर्ण कथन किया है कि वह शृंगार के अतर्गत "भाव" की कोटि से निकल कर विभाव, अनुभाव, सचारी आदि से परिपुष्ट स्वय एक "रस" बन गया है। सूरदास ने शृंगार की तरह वात्सल्य के भी सयोग एव वियोग पक्षो का कथन किया है। नद-यशोदा द्वारा बाल कृष्ण की विविध क्रीड़ाओ के सुखानुभव में वात्सल्य के संयोग पक्ष का निरूपण है, तो उनके मथुरा चले जाने के पश्चात् नद यशोदा के करुण क्रदन मे वात्सल्य के वियोग पक्ष का प्रतिपादन है।

हास्य रस शृंगार रस का सहयोगी और मित्र रस है। सूरदास के काव्य में शिष्ट हास्य का भी सफलता पूर्वक कथन हुआ है। अपनी भक्ति भावना के कारण सूरदास की दृष्टि मे "निर्वेद" का विशेष महत्व नही है अतः उन्होने शांत रस के कथन अपेक्षाकृत कम किये है, तब भी उनके "विनय" के पदो मे शांत रस का भी यथेष्ट आभास मिल जाता है। इन रसों के

अतिरिक्त अन्य रसों का भी सूरदास ने बड़ी मार्मिकता के साथ कथन किया है। यहाँ पर सूरदास द्वारा रचे हुए विभिन्न रसों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं, जिनसे उनकी काव्य-प्रतिभा का कुछ ज्ञान हो सकता है।

१. शृंगार रस—

(संयोग शृंगार)

नवल निकुंज, नवल नवला मिलि, नवल निकेतनि रुचिर बनाए।
विलसत विपिन विलास विविध वर,वारिज बदन विकच सचुपाए॥
लागत चंद्र मयूख गुती तनु, लता-भवन-रंध्रनि मग आए।
मनहुँ मदन बल्ली पर हिमकर, सींचत सुधा धार सत नाए॥
सुनि-सुनि सूचति स्रवन सुंदरी, मौन किए मोरति मन लाए।
"सूर" सखी राधा-माधौ मिलि, क्रीड़त हैं रति-पतिहिं लजाए॥

नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम-भुजा अपने उर धरिया॥
क्रीड़ा करत तमाल तरुन तर, स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया।
यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों, मरकत मनि कंचन में जरिया॥
उपमा काहि देउँ, को लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया।
"सूरदास" बलि-बलि जोरी पर, नंद-कुँवर बृषभानु-कुँवरिया॥

(विप्रलंभ शृंगार)

बिन गोपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल,अब भईं विषम-ज्वाल की पुंजैं॥
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं।
पवन पानि घनसार संजीवनि, दधिसुत-किरन भानु भईं भुंजैं॥
ए ऊधौ! कहियो माधव सों, बिरह-कदन करि मारत लुंजैं।
"सूरदास" प्रभु कौ मग जोवत, अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंज॥

निसि-दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस ऋतु हम पै, जब ते स्याम सिधारे॥
दृग अंजन लागत नहिं कबहू, उर कपोल भए कारे।
कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी! उर बिच बहत पनारे॥
"सूरदास" प्रभु अंबु बढ़यौ है, गोकुल लहु उबारे।
कहँ लौं कहौं स्याम-घन सुंदर, बिकल होत अति भारे॥

वियोग की दस दशाएँ—काव्यशास्त्र के आचार्यों ने विप्रलम्भ शृंगार मे वियोग की निम्न लिखित दस दशाएँ मानी है—

१ अभिलाषा, २. चिंता, ३ स्मरण, ४. गुण-कथन, ५. उद्वेग
५. प्रलाप, ७. उन्माद, ८ व्याधि, ६ जड़ता और १० मूर्च्छा

सूरदास ने इन दसो दशाओ का बडा मार्मिक कथन किया है। यहाँ पर हम उनके तत्सबंधी पद उपस्थित करते है।

(१ अभिलाषा)

ऊधौ! स्याम इहाँ लै आवहु।
ब्रज-जन चातक मरत पियासे, स्वाँति बूंद बरसावहु॥
ह्याँ ते जाहु, बिलंब करहु जिनि, हमरी दसा जनावहु।
घोष सरोज भये है संपुट, होइ दिनमनि बिगसावहु॥
जो ऊधौ हरि इहाँ न आवहि, तौ हमै वहाँ बुलावहु।
"सूरदास" प्रभु हमहि मिलावहु, तब तिहुँ पुर यस पावहु॥

(२. चिंता)

मधुकर! ये नयना पै हारे।
निरखि-निरखि मग कमल-नयन कौ, प्रेम-मगन भए भारे॥
ता दिन तें नींदौ पुनि नासी, चौंकि परत अधिकारे।
सपन, तुरी, जागत पुनि सोई, जो है हृदय हमारे॥
यह निर्गुन लै ताहि बतावो, जो जानै याके सारे।
"सूरदास" गोपाल छाँड़ि कै, चूसैं टेटी खारे॥

(३. स्मरण)

मेरे मन इतनी सूल रही।
वै बतियाँ छतियाँ लिखि राखी, जे नँदलाल कही॥
एक दिवस मेरे गृह आए, मै ही मथति दही।
देखि तिन्है मै मान कियौ सखि, सो हरि गुसा गही॥
सोचति अति पछिताति राधिका, मुर्छित धरनि ढही।
"सूरदास" प्रभु के बिछुरे ते, बिथा न जाति सही॥

(४ गुण-कथन)

इहि बिरियाँ बन तें ब्रज आवते ।
दूरहि तें वह बैनु अधर धरि, बारंबार बजावते ।।
कबहुँक काहू भाँति चतुर चित, अति ऊँचे सुर गावते ।
कबहुँक लै-लै नाम मनोहर, धवरी धेनु बुलावते ।।
इहि विधि बचन सुनाय स्यामघन,मुरछे मदन जगावते ।
आगम सुख उपचार विरह-ज्वर,बामर-ताप नसावते ।।
रुचि-रुचि प्रेम पियासे नैनन, क्रम क्रम बलहि बढावते ।
'सूरदास'स्वामी तिहि अवसर,पुनि-पुनि प्रगट करावते ।।

(५. उद्वेग)

हमारे माई ! मोरउ बैर परे ।
घन गरजै, बरजै नहिं मानत, त्यों-त्यों रटत खरे ।।
करि एक ठौर बीनि इनके पंख, मोहन सीस धरे ।
याही ते हम ही को मारत, हरि ही ढीठ करे ।।
कह जानिए कौन गुन, सखि री ! हम सों रहत अरे ।
"सूरदास" पर देस बसत हरि, ये बन ते न टरे ।।

(६. प्रलाप)

मधुबन ! तुम कत रहत हरे !
बिरह-वियोग स्यामसुंदर के ठाढ़े क्यों न जरे ?
तुम हौ निलज, लाज नहिं तुम कौं, फिर सिर पुहुप धरे ।
ससा, स्यार और बन के पखेरू, धिक-धिक सबन करे ।।
कौन काज ठाढ़े रहे बन मे, काहे न उकठि परे ?

(७. उन्माद)

कर धनु लै किन चंदहिं मारि ?
तू हरुवाय जाय मदिर चढ़ि, ससि सन्मुख दरपन विस्तारि ।
याही भाँति बुलाय, मुकुर अति खंड-खंड कर डारि ।।

(८. व्याधि)

और सकल अंगन ते ऊधौ !, अँखियाँ बहुत दुखारी ।
अधिक पिराति, सिराति न कबहूँ, अनेक जतन करि हारी ।।

चितवत मग,सुनिमेष न मिलवत विरह विकल भई भारी।
भरि गई विरह-वाय माधौ के, इकटक रहत उघारी ॥
अलि आली गुरु ज्ञान सलाका, क्यो सहि सकति तुम्हारी।
"सूर" सु अंजन आँजि रूप-रस, आरति हरो हमारी ॥

(९. जडता)

रही जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी।
हरि के चलत देखिअत ऐसी, मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी ॥
सूखे बदन, स्रवत नैनन ते जल-धारा उर बाढी।
कंधनि बाँह धरे चितवति द्रुम, मनहुँ बेलि दव डाढी ॥
नीरस करि छाँड़ी सुफलक-सुत, जैसे दूध बिन साढी।
"सूरदास" अक्रूर-कृपा ते, सही विपति तनु गाढ़ी ॥

(१० मूर्च्छा)

जबहिं कह्यौ ये स्याम नहीं।
परी मुरछि धरनी ब्रज-बाला, जो जहँ रही सु तहीं ॥
सपने की रजधानी ह्वै गई, जो जागी कछु नाँही।
बार-बार रथ ओर निहारहीं, स्याम बिना अकुलाहीं ॥
कहा आय करि है ब्रज मोहन, मिली कूबरी नारी।
"सूर" कहत सब ऊधौ आए, गईं स्याम-सर मारी ॥

वात्सल्य—

(संयोग)

(१) सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया ॥
कबहुँक सुंदर बदन बिलोकति, उर आनंद भरि लेति बलैया।
कबहुँक कुल-देवता मनावति,चीरजीवहु मेरौ कुँवर कन्हैया ॥
कबहुँक बल को टेरि बुलावति, इहि आँगन खेलौ दोउ भैया।
"सूरदास" स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया ॥

(२) जसुमति लै पलिका पौढ़ावति।
मेरौ आजु अति ही बिरुझानौ, यह कहि-कहि मधुरै सुर गावति ॥
पौढ़ि गई हरुऐ करि आपुन, अंग मोरि तब हरि जँभुआने।
कर सो ठोंकि सुतहिं दुलरावति, चटपटाइ बैठे अतुराने ॥
पौढ़ौ लाल, कथा इक कहि हौं, अति मीठी, स्रवननि को प्यारी।
यह सुनि "सूर" स्याम मन हरषे, पौढ़ि गए हँसि देत हुँकारी ॥

(३) आँगन स्याम नचावही, जसुमति नँदरानी।
तारी दै-दै गावही, मधुरी मृदु बानी॥
पाइनि नूपुर बाजई, कटि किंकिनि कूजै।
नान्हीं एड़ियनि अरुनता, फल-बिंब न पूजै॥
जसुमति गान सुनै स्रवन, तब आपुन गावै।
तारी बजावत देखई, पुनि आपु बजावै॥
केहरि-नख उर पर रुरै, सुठि सोभा कारी।
मनो स्याम घन मध्य में, नव ससि उजियारी॥
गभुआरे सिर केस है, बर घूँघर वारे।
लटकन लटकत भाल पर, बिधु मधि गन तारे॥
कठुला कंठ चिबुक-तरै, मुख दसन बिराजै।
खंजन बिच सुक आनि कै, मनु परयौ दुराजै॥
जसुमति सुतहिं नचावई, छबि देखत जिय तें।
"सूरदास" प्रभु स्याम कौ, मुख टरत न हिय तें॥

(वियोग)

(१) यद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि, मेरे मोहन के मुख जोग॥
प्रात काल उठि माखन-रोटी, को बिनु माँगे दैहै।
अब उहि मेरे कुँवर कान्ह कों, छिन-छिन अंकम लैहै॥
कहियौ पथिक! जाइ घर आवहु, राम-कृष्ण दोउ भैया।
"सूर" स्याम कत होत दुखारी, जिनके मो सी मैया॥

(२) सँदेसौ देवकी सो कहियो।
हौं तौ धाय तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियो॥
उबटन, तेल और तातौ जल, देखत ही भजि जाते।
जोइ-जोइ माँगत, सोइ-सोइ देती, करम-करम करि न्हाते॥
तुम तौ टेब जानतिहिं ह्वैहौ, तऊ मोहि कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतेहिं, माखन-रोटी भावै॥
अब यह 'सूर' मोहि निसि-बासर, बड़ौ रहत जिय सोच।
अब मेरे अलक-लड़ैते लालन, ह्वै है करत सँकोच॥

(३) मेरे कुँवर कान्ह बिन सब, कछु वैसैहि धर्यौ रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै॥
सूने भवन यसोदा सुत के गुन गनि सूल सहै।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै॥
जो ब्रज मे आनंद हुतौ, मुनि मनसाहू न गहै।
'सूरदास' स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हू न लहै॥

२. हास्य रस—

सूरदास ने कृष्ण की बाल-लीला के प्रसगों मे ही कई स्थानो पर स्मित हास्य की बड़ी सुंदर व्यजना की है। जब बालक कृष्ण माखन चुरा कर खाते हुए पकड लिये जाते है, तब वे अपने मुँह पर लगे हुए माखन को पोछते हुए और हाथ के दोना को पीठ के पीछे छिपाते हुए किस प्रकार अपनी सफाई दे रहे हैं। उनकी इस चेष्टा पर स्वाभाविक रूप से मद हास्य की छटा छा जाती है—

मैया! मै नहीं माखन खायौ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ॥
देखि तु ही छींके पर भाजन, ऊँचै धरि लटकायौ।
तु ही निरखि नन्हे कर अपनै, मै कैसै करि पायौ॥
मुखि दधि पोंछि, बुद्धि एक कीन्ही, दौना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहि कंठ लगायौ॥
बाल-बिनोद-मोद मन मोह्यौ, भक्ति-प्रताप दिखायौ।
"सूरदास" जसुमति कौ यह सुख, सिव-विरचि नहीं पायौ॥

इसी प्रकार स्मित हास्य का एक दूसरा प्रसग देखिये। राधिका अपनी माता से यशोदा के साथ अपने वार्तालाप की कथा कह रही है और उसकी माता अपनी पुत्री की बालोचित चपलता पर मन ही मन हँस रही है—

मेरे आगे महरि यसोदा, मैया री! तोहिं गारी दीन्ही।
वाकी बात सबै मै जानति, वै जैसी, तैसी मै चीन्ही॥
तो को कहि, पुनि कह्यौ बबा को, बड़ौ धूर्त्त बृषभान।
तब मै कह्यौ, ठग्यौ कब तुम को, हँसि लागी लपटान॥
भली कही तै मेरी बेटी! लयौ आपुनौ दाउ।
जो मुहिं कह्यौ, सबै उनके गुन, हँसि-हँसि कहति सुभाउ॥
फेरि-फेरि बूझति राधा सो, सुनति हँसति सब नारि।
"सूरदास" बृषभान-घरनि, यसुमति को गावति गारि॥

उद्धव-गोपी संवाद में सूरदास ने गोपियों द्वारा उद्धव के निर्गुण ज्ञान का मजाक उड़ाते हुए भी हास्य रस का सुंदर प्रदर्शन किया है—

निर्गुन कौन देस कौ बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच न हाँसी ।।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसौ बरन, भेस है कैसौ, केहि रस के अभिलासी ?
पावैगौ पुनि कियौ आपुनौ, जो रे ! गहैगो गाँसी ।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठग्यौ सौ, "सूर" सबै मति नासी ।

३. वीर रस—

(१) गह्यौ कर स्याम भुज मल्ल अपने धाइ,
झटकि लीन्हो तुरत पटकि धरनी ।
भटक अति अति सब्द भयौ, खुटक नृप के हिऐ,
अटक प्रानन परयौ चटक करनी ।।
लटकि निरखन लग्यौ, मटकि सब भूलि गयौ,
हटकि गयौ गटक सब, मीच जागी ।
मुष्टिकै मरदि, चाणूर चुरकट करयौ,
कंस को कंप भयौ,उई रग भूमि अनुराग रागी ।।

(२) देखि नृप तमकि, हरि चमक तहाँई गए,
दमकि लीन्हो गिरह बाज जैसैं ।
धमकि मारयौ, घाउ गुमकि हृदयै रह्यौ,
झमकि गहि केस, लै चले ऐसैं ।।
ठेल हलधर दियौ, झेल तब हरि लियौ,
महल के तरैं, धरनी गिरायौ ।
अमर जय-ध्वनि भई, धरन त्रिभुवन गई,
कंस मारयौ निदरि देवरायौ ।।
धन्य बानी गगन, धरनि-पाताल धन्य,
धन्य हो धन्य बसुदेव-ताता ।
धन्य अवतार सुर-धरत्नि उपकार को,
"सूर" प्रभु धन्य बलराम भ्राता ।।

(३) आजु जो हरिहि न सस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजौ गगा-जननी को, सांतनु-सुत न कहाऊँ॥
स्यंदन खंडि, महारथ खंडौ, कपिध्वज सहित डुलाऊँ।
इती न करौं सपथ मोहि हरि की,छत्रिय-गतिहिं न पाऊँ॥
पांडव दल सनमुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ।
"सूरदास" रन-भूमि बिजय बिनु,जियत न पीठ दिखाऊँ॥

(शृगार में वीर रस)

रूँधे रति-संग्राम खेत नीके।
एक ते एक रनबीर जोधा प्रबल, मुरत नहि नैंक, अति सबल जी के॥
भोह कोदंड, सर नैंन जोधान की, काम छूटनि कटाच्छनि निहारे।
हँसनि द्विज चमक,करि बरनि लोहन झलक,नखन-छत-घात नेजा सँभारे॥
पीत पट डारि कंचुकी मोचति करनि, कैंबच सन्नाह ए छुटे तन ते।
भुजा भुज धरति,मनो द्विरद सुंडनि लरति,उर-उरन भिरे,दोउ जुरे मनते।
लटकि लपटानि मानो सुभट लरि परे खेत रति-सेज चुम बितान कीन्हो।
'सूर'प्रभु रसिक प्रिय,राधिका रसिकिनी,कोक-गुन सहित सुख लूटि लीन्हो॥

४. करुण रस—

(१) अति मलीन वृषभानु-कुमारी।
हरि-स्रम जल अंतर तनु भीजे, ता लालच न धुवावति सारी॥
अधोमुख रहति.उरधि नहि चितवति, ज्यो गथ हारे थकित जुवारी।
छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यो नलिनी हिमकर की मारी॥
हरि-सदेस सुनि सहज मृतक भई, इक बिरहिन दूजै अलि जारी।
"सूर" स्याम बिनु यो जीवति है, ब्रज-बनिता सब स्याम-दुलारी॥

(२) देखी मै लोचन चुअत अचेत।
द्वार खड़ी इकटक मग जोवत, ऊरध स्वांस न लेत।
स्रवन न सुनत चित्र-पुतरी लौं, समुझावत जितनेत॥
कहुँ कंकन, कहुँ गिरी मुद्रिका, कहूँ ताटंक, कहुँ नेत।
धुज होइ सूखि रही "सूरज" प्रभु, बँधी तुम्हारे हेत॥

५. वीभत्स रस—

सूरदास की कविता के विषय और उनकी प्रकृति वीभत्स रस के सवथा प्रतिकूल है, अतः विशाल काय सूर-सहित्य में वीभत्स रस के उल्लेखनीय उदाहरण कठिनता से ही मिलेंगे।

६. अद्भुत रस—

(१) कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत।
प्रभु पौढे पालनैं अकेले, हरषि-हरषि अपने रँग खेलत॥
सिव सोचत, विधि बुद्धि विचारत, बट बाढ्यौ,सागर-जल झेलत।
विडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग-दंतीनि सकेलत॥
मुनि-मन भीत भए, भुवि कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रज-बासिनि बात न जानी, समुझे "सूर" सकट पग ठेलत॥

(२) मुरली सुनत अचल चले।
थके चर, जल झरत पाहन, बिफल वृच्छहु फले॥
पय स्रवत गोधननि थन ते, प्रेम पुलकित गात।
झुरे द्रुम, अंकुरित पल्लव, विटप चंचल पात॥
सुनत खग-मृग मौन साध्यौ, चित्र की अनुहारि।
धरनि उमँगि, न रहति थिर चित जती जोग बिसारि॥
ग्वाल घर-घर सहज सोवत, रहे सहज सुभाय।
"सूर" प्रभु रस-रास के हित, सुखद रैनि बढाय॥

(३) देखौ अद्भुत अविगत की गति, कैसौ रूप धरयौ है।
तीन लोक जाके उदर बसत, सो सूप के कौन परयौ है।
जाके नाल भए ब्रह्मादिक, सकल जोग ब्रत साध्यौ।
ताकौ नाल छीनि ब्रज-जुबती, बाँटि तगा सों बाँध्यौ॥
जिहि मुख को समाधि सिव साधी, आराधन ठहराने।
सो मुख चूमति महरि जसोदा, दूध-लार लपटाने॥
जिन स्रवननि जन की विपदा सुनि,गरुड़ासन तजि धावै।
तिन स्रवनन ह्वै निकट जसोदा, हलरावै अरु गावै॥
बिस्व भरन-पोषन, सब समरथ, माखन-काज अरे है।
रूप विराट कोटि प्रति रोमन, पलना माँझ परे है॥
जिहि भुज-बल प्रहलाद उबारयौ,हिरनकसिप उर फारे।
सो भुज पकरि कहत ब्रज-नारी, ठाढ़े होहु लला रे॥
जाकौ ध्यान न पायौ सुर-मुनि, संभु समाधि न टारी।
सोई "सूर" प्रगट या ब्रज में, गोकुल-गोप बिहारी॥

७. भयानक रस—

(१) झहरात झहरात दाबानल आयौ।
घेरि चहुँ ओर करि सोर अंदोर बन,
धरनि आकास चहुँ पास छायौ॥
बरत बन बाँस, थरहरत कुस-काँस,
जरि उड़त बहु झाँस, अति प्रबल धायौ।
झपटि झपटत लपट, फूल फूटत पटकि,
द्रुम चटकि लट लटकि, फटि नवायौ॥
अति अगनि भार भंभार धुंधार करि,
उचटि अंगार • झंझार • छायौ।
बरत बन-पात, भहरात, झहरात,
अररात तरु महा धरनी गिरायौ॥

(२) मेघ दल प्रबल ब्रज-लोग देखे।
चकित जहँ-तहँ भये, निरखि बादर नये,
ग्वाल-गोपाल डरि गगन पेखे॥
ऐसे बादर सजल, करत अति महा बल,
चलत घहरात करि अंध काला।
चकृत भये नद, सब महर चकृत भये,
चकृत नर-नारि, हरि करत ख्याला॥
घटा घनघोर घहरात, अररात,
दररात सररात, ब्रज-लोग डरपै।
तड़ित आघात, तरात, उतपात सुनि,
नर-नारि सकुचि तनु-प्रान अरपै॥

८. रौद्र रस—

प्रथमहि देउँ गिरिहि बहाइ।
बज्र-घातनि करौ चूरन, देउँ धरनि मिलाइ॥
मेरी इन महिमा न जानी, प्रगट देउँ दिखाइ।
जल बरसि ब्रज धोइ डारौं, लोग देउँ बहाइ॥
खात खेलत रहैं नीके, करि उपाधि बनाइ।
बरस दिवस मोहि देत पूजा, दई सोउ मिटाइ॥
रिस सहित सुरराज लीन्हे, प्रबल मेघ बुलाइ।
"सूर" सुरपति कहत पुनि-पुनि, परौ ब्रज पर धाइ॥

६. शांत रस—

(१) नर ! तै जनम पाइ कह कीनौ ?
उदर भर्यौ कूकर-सूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ ।।
श्री भागवत सुनी नहिं स्रवनान, गुरुगोविंद नहिं कीनौ ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषया मे दीनौ ।।
झूठौ सुख अपनौ करि जान्यौ, परस प्रिया कै भीनौ ।
अघ कौ मेरु बढाइ अधम तू, अंत भयौ बल हीनौ ।।
लख चौरासी जोनि भरमि कै, फिरि वाही मन दीनौ ।
"सूरदास" भगवंत-भजन बिनु, ज्यो अंजलि-जल छीनौ ।।

(२) माधौ जू ! मन माया बस कीन्हौ ।
लाभ-हानि कछु समुझत नाँही, ज्यो पतग तन दीन्हौ ।।
गृह दीपक धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर ।
मै मति-हीन मरम नहि जान्यौ, पर्यौ अधिक करि दौर ।।
विवस भयौ निलिनी के सुक ज्यो, बिन गुन मोहि गह्यौ ।
मै अज्ञान कछू नहि समुझ्यौ, परि दुख-पुंज सह्यौ ।।
बहुतक दिवस भए या जग मे, भ्रमत फिर्यौ मति-हीन ।
"सूर" स्यामसुंदर जो सेवै, क्यो होवै गति दीन ।

(३) थोरे जीवन भयौ तन भारौ ।
कियौ न सत समागम कबहूँ, लियौ न नाम तुम्हारौ ।।
अति उनमत्त मोह-माया बस, नहि कछु बात विचारौ ।
करत उपाव न पूछत काहू, गनत न खाटौ-खारौ ।।
इंद्री-स्वाद विवस निसि-बासर, आप अपुनपौ हारौ ।
जल औंड़े मे चहुँ दिसि पैर्यौ, पाउँ कुल्हारौ मारौ ।।
बाँधी मोट पसारि त्रिबिधि गुन, नहि कहुँ बीच उतारौ ।
देख्यौ "सूर" विचारि सीस परी, तब तुम सरन पुकारौ ।।

(४) जनम सिरानौ अटकै-अटकै ।
राज-काज, सुत, बित की डोरी, बिन विवेक फिर्यौ भटकै ।।
कठिन जु गाँठि परी माया की, तोरी जाति न झटकै ।
ना हरि-भक्ति, न साधु-समागम, रह्यौ बीच ही लटकै ।।
ज्यो बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नट कै ।
"सूरदास" सोभा क्यो पावै, पिय बिहीन धनि मटकै ।।

सूर-काव्य का नायिकाभेद—

काव्य शास्त्र के अनुसार शृंगार रस के आलंबन विभाव के अंतर्गत नायिकाभेद का स्थान है, इसलिए वह रस प्रकरण का ही एक अंग है, किंतु रीति कालीन कवियों ने उसका ऐसा विस्तृत एवं सांगोपांग कथन किया है कि वह एक स्वतन्त्र विषय बन गया है।

भक्ति कालीन कवियों ने अपने भक्ति भाव की अभिव्यक्ति के लिए अपने इष्ट देव का शृंगार रस पूर्ण कथन करने की पद्धति प्रचलित की जिसमे नायिकाभेद का स्वतः समावेश होगया। रीति कालीन कवियों को भक्त कवियों के नायिका-वर्णन के रूप मे शृंगारिक कथन की एक आकर्षक शैली प्राप्त हुई, जिसमे आलंबन का भेद कर उन्होने अपना चमत्कारिक कवित्व उपस्थित किया। उन्होने लक्षण और उदाहरण के रूप मे नायिकाभेद का ऐसा व्यापक वर्णन किया कि वह शृंगार रस के उपांग की कोटि से निकल कर स्वय एक शास्त्र बन गया।

भक्ति कालीन कवि होने के कारण सूरदास ने नायिकाभेद का शास्त्रीय रूप प्रस्तुत नहीं किया है, किंतु उनके शृंगारिक कथन में नायिकाभेद का स्वाभाविक विकास है। कुछ विद्वान "साहित्य-लहरी" की रचना में रीति कालीन कवियो की सी प्रवृत्ति पाते हैं, किंतु इसमे भी नायिकाओं का लक्षण रहित वर्णन है, जो रीति कालीन प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है।

सूरदास ने राधा-कृष्ण की शृंगारिक लीलाओ का ऐसा विशद वर्णन किया है कि इसमें नायिकाभेदोक्त कथन भी प्रचुर परिमाण में आ गये हैं। राधा-कृष्ण के पारस्परिक अनुराग के क्रमिक विकास, उनके संयोग एवं वियोग की अनेक चेष्टाओ तथा उनके मान, उपालंभ, मिलन आदि के विविध कथनों मे नायिका के अधिकांश भेदोपभेदों के तत्व आगये है।

पुष्टि संप्रदाय में स्वकीया भक्ति का महत्व है, अतः सूर-काव्य में स्वकीया नायिका के अनुकूल अज्ञातयौवना से लेकर मध्या, प्रौढा नायिकाओं के प्रायः समस्त भेदोपभेदों का समावेश हो गया है। चैतन्य सप्रदाय की भाँति वल्लभ संप्रदाय मे परकीया भक्ति ग्राह्य नहीं है, अतः सूर काव्य में परकीया नायिका के कथन कम मिलते हैं। वल्लभ संप्रदाय की भक्ति-भावना के अनुसार राधाजी स्वकीया और चंद्रावली जी परकीया है। गोपियों में अधिकांश

ने स्वकीया भाव से ही श्री कृष्ण से प्रेम किया था, इसलिए उनके वर्णन से भी स्वकीया तत्व का प्राधान्य है, किंतु उनके प्रेमानुराग और तत्सबधी उनकी विविध चेष्टाओं में कही-कही परकीया तत्व की भी अभिव्यंजना हो जाती है। इसके अतिरिक्त सूर-काव्य मे गर्विता, मानवती आदि दशानुसार तथा प्रोषितपतिका, अभिसारिका, खडिता आदि अवस्थानुसार नायिकाओं के बडे विस्तृत वर्णन मिलते है। रीति कालीन कवियों की भाँति सूरदास ने लक्षण सहित नायिकाओं का नामोल्लेख नहीं किया है, तब भी उनके पदों मे नायिकाभेद की अधिकांश नायिकाओं का कथन होगया है। यहाँ पर हम उनके कुछ ऐसे पद उपस्थित करेंगे, जिनमे नायिकाभेद के अनुकूल कथन मिलते है।

दान-लीला मे श्रीकृष्ण ने ब्रज-बालाओं के विकसित अगों का ध्यान उनके उपमानो द्वारा दिलाया है, किंतु उनको इनका ज्ञान नही है। इस प्रकार निम्न पद मे 'अज्ञातयौवना' के अनुकूल कथन मिलता है—

यह सुनि चकृत भईं ब्रज-बाला।
तरुनी सब आपुस मे बूझति, कहा कहत गोपाला॥
कहाँ तुरग, कहाँ गज-केहरि, कहाँ हस-सरोवर सुनिए।
कचन कलस गढ़ाए कब हम, देखे धौं यह गुनिए॥
कोकिल, कीर, कपोत बनन मे, मृग, खंजन, सुक संग।
तिनकौ दान लेत है हम सो, देखहु इनकौ रंग॥
चंदन, चौर, सुगध बतावत कहाँ हमारे पास।
"सूरदास" जो ऐसे दानी, देखि लेहु चहुँ पास॥

निम्न लिखित पदो मे प्रौढा के अतगत 'रतिप्रीता' और 'आनद संमोहिता' नायिकाओं के अनुकूल तत्व मिलते है—

(१) नवल गुपाल, नवेली राधा, नये प्रेम रस पागे।
नव तरुवर बिहार दोउ क्रीड़त, आपु-आपु अनुरागे॥
सोभित सिथिल बसन मनमोहन, सुखवत स्रम के पागे।
मानहुँ बुझी मदन की ज्वाला, बहुरि प्रजारन लागे॥
कबहुँक बैठि अंस भुज धरिकैं, पीक कपोलनि दागे।
अति रस-रासि लुटावत लटत, लालचि लाल सभागे॥
मानहुँ "सूर" कल्पद्रुम की निधि, लै उतरी फल आगे।
नहि छूटति रति रुचिर भामिनी, वा सुख मे दोउ पागे॥

(२) नवल किसोर नवल नागरिया ।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया ।
क्रीडा करत तमाल तरुन तर, स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया ।
यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों, मरकतमनि कंचन में जरिया ॥
उपमा काहि देउँ, को लाइक, मनमथ कोटि वारनै करिया ।
"सूरदास" बलि-बलि जोरी पर, नंदकुँवर बृषभानु कुँवरिया ॥

निम्न लिखित पद में अधीरा नायिका के अनुकूल कथन हुआ है—

मोहि छुवौ जिनि दूरि रहौ जू ।
जाको हृदय लगाइ लई है, ताकी बाँह गहौ जू ॥
तुम सर्वज्ञ और सब मूरख, सो रानी और दासी ।
मैं देखति हिरदै वह बैठी, हम तुमको भई हाँसी ॥
बाँह गहत कछु सरम न आवत, सुख पावत मन माँहीं ।
सुनहुँ 'सूर' मो तनको इकटक चितवति, डरपति नाँहीं ॥

परकीया प्रेम के उदाहरण सूर-काव्य मे कम मिलते हैं, फिर भी निम्न पदों में परकीया नायिका के अनुकूल कथन ज्ञात होता है—

(१) पलक ओट नहि होत कन्हाई ।
घर गुरुजन बहुतै बिधि त्रासत, लाज करावत लाज न आई ।
नयन जहाँ दरसन हरि अटके, स्रवन थके सुनि बचन सोहाई ।
रसना और नहीं कछु भाषत, , स्याम स्याम रट रहै लगाई ॥
चित चंचल सँगहिं संग डोलत, लोक-लाज मर्याद मिटाई ।
मन हरि लियौ "सूर" प्रभु तबहीं, तनु बपुरे की कहा बसाई ॥

(२) थकित भए मोहन-मुख नैन ।
घूँघट ओट न मानत कैसैहुँ, बरजत बरजत कीन्हौ गौन ॥
निदरि गई मर्यादा कुल की, अपनौ भायौ कीन्हौ ।
मिले जाय हरि आतुर ह्वै कै, लूटि सुधा-रस लीन्हौ ॥

नायिकाभेद के आचार्योंने परकीया नायिका के अंतर्गत 'वचन विदग्धा' और 'क्रिया विदग्धा' का वर्णन किया है । सूरदास ने राधा और गोपियों की चेष्टाओं मे कई स्थानो पर वचन और क्रिया की विदग्धता दिखलायी है । चाहे इन पदों मे परकीयत्व की भावना न हो, किंतु इनमे विदग्धता अवश्य है । निम्न लिखित पद में 'वचन विदग्धा' नायिका के अनुकूल कथन हुआ है--

तब राधा इक भाव बतावति ।
मुरु मुसुकाइ सकुचि पुनि लीन्हौ, सहज चली अलकै निरुवारति ।।
एक सखी आवत जल लीन्हे, तासों कहति सुनावति ।
टेरि कह्यौ घर मेरे जैहौ, मै जमुना ते आवति ।।
तब सुख पाइ चले हरि घर को, हरि प्यारीहि मनावत ।
"सूरज" प्रभु वितपन्न कोक-गुन, ताते हरि-हरि ध्यावत ।।

निम्न लिखित पद मे 'क्रिया विदग्धा'के अनुकूल कथन ज्ञात होता है--

स्यांम अचानक आय गये री ।
मै बैठी गुरु जन बिच सजनी, देखत ही मेरे नैन नये री ।।
तब इक बुद्धि करी मैं ऐसी, बेदी सो कर परस किये री ।
आपु हँसे उत पाग मसकि हरि, अंतरयामी जान लिये री ।।
लै कर कमल अधर परसायौ,देखि हरषि पुनि हृदय धरयौ री ।
चरन छुवै दोउ नैन लगाये, मै अपुने भुज अंक भरयौ री ।।
ठाढ़े रहे द्वार अति हित करि, तब ही ते मन चोरि गयौ री ।
"सूरदास" कछु दोष न मेरौ, उत गुरुजन, इत हेतु नयौ री ।।

नायिका के दशानुसार भेदों मे 'अन्यसभोग दुःखिता'के अनुकूल कथन सूरदास के निम्न पद मे इस प्रकार प्राप्त होता है —

यह कहि मुख, मन सोचई, भई सौति हमारी ।
ऐसी सुंदर नारि को, जब ही वे पैहै ।
दोउ भुज भरि अँकवारि कै, हँसि कंठ लगै है ।।
यह बैरिन मो को भई, धौ कहँ ते आई ।
स्यामहि बस करि लेइगी, मै जानी माई ।।

दशानुसार भेदों मे मानवती नायिका का प्रमुख स्थान है । नायक के दोष का अनुमान कर नायिका का कोप पूर्वक मान करना और नायक द्वारा उसे मनाना शृंगारिक प्रकरण का महत्वपूर्ण अग है । सूरदास ने 'मानवती' नायिका का इस प्रकार कथन किया है—

कहा भई धन बावरी, कहि तुमहि सुनाऊँ ।
तुमतें को है भावती, सो हृदय बसाऊँ ।।
तुमहिं स्रवन, तुम नैन हौ, तुम प्रान अधारा ।
वृथा क्रोध तिय क्यो करौ, कहि बारंबारा ।।
भुज गहि ताहि बतावहू, जो हृदय बतावति ।
"सूरज" प्रभु कहै नागरी, तुम ते को भावति ।।

शृंगार रस के अंतर्गत "दूती" का भी कथन किया जाता है। नायक-नायिका को मिलाना उसका मुख्य कार्य है। एक दूती मानवती नायिका से अपना मान छोड़ कर प्रियतम से मिलने का किस प्रकार आग्रह कर रही है, यह निम्न लिखित पद में देखिए। इस पद में बसंत ऋतु का उद्दीपक प्रभाव बतलाया गया है—

यह ऋतु रूसिबे की नाँहीं।
बरसत मेघ मेदिनी के हित, प्रीतम हरषि मिलाहीं॥
जे तमाल ग्रीषम ऋतु डाही, ते तरुवर लपटाहीं।
जे जल बिनु सरिता ते पूरन, मिलन समुद्रहिं जाहीं॥
जोबन-धन है दिवस चारि कौ, ज्यों बदरी की छाहीं।
मैं दंपति-रस-रीति कही है, समुझि चतुर मन माहीं॥

अवस्था के अनुसार दश विध नायिकाओं का कथन किया जाता है। निम्न लिखित पद में 'वासकसज्जा' नायिका के अनुकूल कथन किया गया है—

राधा रचि-रचि सेज सँभारति।
भवन गमन करि है हरि मेरे, हरषि दुखहिं निरवारति।
ता पर सुमन सुगंध बिछावति, बारबार निहारति॥ ×

निम्न लिखित पद में "उत्कंठिता" नायिका की प्रिय मिलन विषयक उत्सुकता दिखलायी गयी है—

चंद्रावली स्याम-मग जोवति।
कबहुँ सेज कर झारि सँवारति, कबहुँ मलय-रज भोवति॥
कबहुँ नैन अलसात जानि कै, जल लै-लै पुनि धोवति।
कबहुँ भवन, कबहूँ आँगन ह्वै, ऐसैं रैनि बिगोवति॥
कबहुँक विरह जरति अति व्याकुल, आकुलता मन में अति।
"सूरस्याम" बहु रमनि-रमन पिय, यह कहि तब गुन तोवति॥

निम्न लिखित पद 'अभिसारिका' नायिका का उदाहरण है—

प्यारी अंग शृंगार कियौ।
बैनी रची सुभग कर अपने, टीकौ भाल दियौ॥
मोतियन माँग सँवारि प्रथम ही, केसरि-आड़ सँवारि।
लोचन आँजि, स्रवन तरवन छवि, को कवि कहै निवारि॥
नासा नथ अति ही छवि राजत, बीरा अधरन रंग।
नवसत साजि चली चौली बनि, "सूर" मिलन हरि संग॥

निम्न लिखित पद मे 'विप्रलब्धा' के अनुकूल कथन ज्ञात होता है—

सोचति चली कुँवर घर ही ते, खरिकहि गइ ममुहाइ।
कब देखौं वह मोहन मूरति, जिन मन लियौ चुराइ॥
देखौ जाइ तहाँ हरि नाँही, चकृत भई सुकुमारि।
कबहूँ इत, कबहूँ उत डोलत, लागी प्रीति खुम्हारि॥

सूरदास के पदों मे 'खंडिता' नायिका के अनुकूल कथन प्रचुर परिमाण मे मिलते है। निम्न लिखित पद में प्रात काल आये हुए नायक के तन पर पर-स्त्री-संसर्ग के चिह्नों का कथन किया गया है—

जानति हौं जैसे गुननि भरे हो।
काहे को दुराव करत मनमोहन, सोइ पै कहौ तुम जहाँ ढरे हो।
निसि जागत, निज भवन न भावत आलसवंत सब अंग धरे हो।
चंदन तिलक मिल्यौ कहाँ बंदन, काम कुटिल कुच उर उघरे हो॥
तुम अति कुसल किसोर नंद-सुत, कहो कौन के चित्त हरे हो।
औचक ही जिय जानि "सूर" प्रभु, सौंह करन को होत खरे हो॥

सूरदास ने वियोग शृंगार का बड़ा मार्मिक कथन किया है। इन्होंने ऐसे अनेक पदों की रचना की है, जिनमें 'प्रोषितपतिका' विरहणी नायिका के अनुकूल कथन प्राप्त होता है। श्री कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् गोपियों का करुण क्रंदन इसी प्रकार का है।

(१) हरि! परदेस बहुत दिन लाये।
कारी घटा देखि बादर की, नैन नीर भरि आये॥
बीर बटाऊ पंथी हौ तुम, कौन देस ते आये?
इह पाती हमरी लै दीजो, जहाँ साँवरे छाये॥
दादर, मोर, पपीहा बोलत, सोवत मदन जगाये।
"सूरदास" गोकुल के बिछुरे, आपुन भये पराये॥

(२) बिछुरत श्री ब्रजराज आज सखि नैनन की परतीति गई।
उड़ि न मिले हरि संग विहंगम, ह्वै न गए घनस्याम मई॥
याते क्रूर कुटिल सह मेचक, वृथा मीन-छवि छीनि लई।
रूप-रसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौ न भई॥
अब काहें सोचत, जल मोचत, समय गए नित सूल नई।
"सूरदास" याही ते जड़ भए, जब ते पलकन दगा दई॥

३. सूर-काव्य की कलात्मकता

भक्ति और कला का मिश्रण—

यद्यपि सूरदास अपने काव्य महत्व के कारण हिंदी कवियो के मुकुट-मणि माने जाते है, तब भी यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने कवि के दृष्टिकोण से अपने काव्य की रचना नहीं की है। उनके काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे पहले भक्त है और बाद मे कवि। अपने इष्टदेव की भक्ति भावना मे आनंद विभोर होकर उन्होंने जो कुछ गाया है वह भक्ति-काव्य की श्रेष्ठतम कृति है, इसलिए वह भक्ति रस से ओत-प्रोत है; किंतु साथ ही साथ उसमे काव्य-कला के भी समस्त गुण विद्यमान है। इन गुणो को लाने के लिए उनको अपनी ओर से कुछ चेष्टा नही करनी पड़ी है। उनके स्वाभाविक भक्ति-काव्य के धारावाही महानद मे काव्य-कला के अनेक गुण छोटे-बडे नदी-नालों की तरह स्वय आकर मिल गये है। अवश्य ही इनके कारण उनके काव्य का महत्व और भी अधिक हो गया है। यहाँ पर हम कला की दृष्टि से सूर काव्य की आलोचना करेंगे।

कोई कवि अपने भावो को किस प्रकार चमत्कारिक ढग से व्यक्त करता है, इसकी छान-बीन करना उक्त कवि के कला-कौशल की आलोचना कहलाती है। कवि शब्द द्वारा अथवा अर्थ द्वारा अपने काव्य मे चमत्कार उत्पन्न करता है इस काव्योक्त चमत्कार को काव्य शास्त्रियो ने 'अलकार' कहा है, जो शब्दालकार और अर्थालकार के नाम से दो वर्गों मे विभाजित है। शब्द और अर्थ दोनो का चमत्कार होने से उभयालकार कहा जाता है। कविता-कामिनी की शोभा-वृद्धि के लिए अलकार रूपी वस्त्राभूषण यदि अनिवार्य नही, तो कुछ न कुछ आवश्यक अवश्य है। दडी आदि प्राचीन आचार्यों ने अलकार को काव्य की आत्मा बतलाया है। अन्य आचार्यों ने भी किसी न किसी रूप में इसका महत्व माना है।

हिंदी कवियो मे दो प्रकार के कवि पाये जाते है। इनको भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष के रूप मे दो श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है। साधारणतया भक्ति कालीन कवि भाव-पक्ष के एव रीति-कालीन कवि कला-पक्ष के कवि कहे जाते है। सूरदास यद्यपि भाव-पक्ष के कवि हैं, तथापि उनकी भाव रूपी भागीरथी मे कला रूपी कालिंदी भी आ मिली है। इस सगम के फल स्वरूप उनका काव्य अतीव आनंददायक हो गया है।

काव्य-कला और अलंकार—

काव्य की कलात्मकता अथवा उसकी चमत्कारिक शैली के विवेचन के लिए अलंकारो पर सर्व प्रथम दृष्टि जाती है । सूर-काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमे अलंकारो के सर्वोत्कृष्ट रूप का भी समावेश है। सूरदास की अलंकार-योजना केशवदास जैसे चमत्कारवादी कवि की भाँति साध्य रूप मे नही है, वरन् वह भाव-पक्ष की अभिव्यंजना का साधन मात्र बन कर आयी है।

रीति काल के कुछ कवियो ने अलंकारो के अपरिमित आग्रह मे अपने काव्य के स्वरूप को ही बिगाड लिया है । उनके काव्य मे अलंकारो की इतनी अधिकता है कि वे कविता-कामिनी की शोभा-वृद्धि करने की अपेक्षा उसके लिए भार स्वरूप हो गये हैं ! इस प्रकार के कवियो की भाँति सूरदास अलंकारो के पीछे नहीं पडे है; वरन् स्वयं अलंकार ही भावुक भक्तों की भाँति उनकी कविता-देवी का शृंगार करने को उपस्थित हो गये है !

वास्तविक बात यह है कि अंधे कवि सूरदास को सप्रयास कविता लिखने का सुयोग ही कहाँ था ! वे तो नियमित कीर्तन के रूप मे अपनी भक्ति-भावना के प्रसूनो की श्रद्धांजलि श्रीनाथ जी के चरणो मे प्रति दिन अर्पित किया करते थे । इस कीर्तन के फल स्वरूप धारावाही रूप मे जो काव्य-रचना हो जाती थी, उसमे अलंकारो का भी उचित रूप से स्वत. समावेश हो जाता था । इसके लिए उनके मस्तिष्क को कठिन व्यायाम करने की आवश्यकता नही होती थी ।

दृष्टकूट पदों की कलात्मकता—

उनके दृष्टकूट पदो को उपर्युक्त कथन के अपवाद स्वरूप उपस्थित किया जा सकता है । इस प्रकार के पद सूरसागर में भी है, किंतु उनकी 'साहित्य-लहरी' तो इसी प्रकार की शैली मे रची गयी रचना है । 'साहित्य-लहरी' के दृष्टकूट पदो मे सूरदास भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष का आग्रह करते हुए दिखलायी देते हैं, इस लिए कुछ विद्वान इसे सूरदास की रचना ही नहीं मानते हैं । हम गत पृष्ठो मे बतला चुके हैं कि साहित्य-लहरी निश्चय पूर्वक सूरदास की कृति है, किंतु इसकी रचना का एक विशेष हेतु था, इसलिए यहाँ पर उसके कलात्मक रूप के विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है ।

जहाँ तक 'सूरसागर' के दृष्टकूट पदों का संबंध है, उनकी सार्थकता भी स्वयंसिद्ध है। "परोक्ष प्रियाह वै देवा" —देव को परोक्ष गानादि प्रिय होते है —इस श्रुति वाक्य के अनुसार सूरदास ने दृष्टकूट पदों द्वारा अपने इष्टदेव का परोक्ष गायन किया है, अतः इन पदों को कला-प्रदर्शन की अपेक्षा परोक्ष गायन के साधन मानना उचित है। तभी हम सूरदास के साथ वास्तविक न्याय कर सकते हैं।

सूरदास का एक दृष्टकूट पद देखिए—

देख री ! एक अद्भुत रूप।
एक अंबुज मध्य देखियत, बीस दधिसुत जूप॥
एक अवली, दोय जलचर, उभय एक सरूप।
पाँच वारिज, ढिंग सोभित, कहौ कौन स्वरूप?
सिसु गति में भई सोभा, देखो चित्त विचार।
"सूर" श्री गोपाल की छवि, राखिऐ उर धार॥

इस पद के आरंभ मे जो समस्या उपस्थित की गयी है, उसका अंत मे उत्तर भी दे दिया गया है। इस पद के अलंकारिक कथन द्वारा सूरदास ने बुद्धि-वादियों के सन्मुख एक पहेली सी उपस्थित की है, किंतु वास्तव में उनका अभिप्राय भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-छवि का गायन करना है।

सूर-काव्य के अलंकार—

वैसे तो सूरदास के काव्य मे सभी प्रमुख अलंकारो का समावेश है, तथापि कुछ चुने हुए अलंकार उनको विशेष प्रिय ज्ञात होते है। ये अलंकार उनके काव्य मे पग-पग पर दिखलायी देते हैं। भावपक्ष के कवि होने के कारण उनके काव्य में शब्दालंकारो की अपेक्षा अर्थालंकारो का आधिक्य है। अर्थालंकारो मे भी सादृश्यमूलक—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि—अलंकारो का विशेष रूप से उपयोग किया गया है। इन अलंकारों के द्वारा उन्होने अपने भावो का चित्र सा खींच दिया है।

सूर-काव्य मे भाव-सौन्दर्य के साथ ही साथ भाषा का लालित्य भी दर्शनीय है, इसलिए इसमें शब्दालंकार भी जहाँ-तहाँ मिल जाते है। शब्दालंकारो मे अनुप्रास और यमक प्रधान हैं। इन अलंकारो का उत्कृष्ट रूप सूर-काव्य में मिलता है। कुछ आचार्यों ने श्लेष और वक्रोक्ति को भी शब्दालंकारो के अंतर्गत माना है, किंतु उनको अर्थालंकारों में ही रखना उचित है। 'साहित्य-लहरी' में श्लेष एवं यमक का प्राधान्य है और 'भ्रमरगीत' में वक्रोक्ति की छटा दिखलायी देती है।

सूरदास के निम्न लिखित पदों में अनुप्रासों की छटा देखिए—

(१) जागिऐ गोपाल लाल, आनँदनिधि नंद-बाल,
जसुमति कहै बार बार भोर भयौ प्यारे।
नैन कमल-दल विसाल, प्रीति-वापिका-मराल,
मदन ललित बदन ऊपर कोटि वारि डारे॥×
सुनत बचन प्रिय रसाल, जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल-जाल, दुख-कदंब टारे।
त्यागे भ्रम-फंद-द्वंद, निरखि कै मुखारविंद,
"सूरदास" अति अनंद, मेटे मद भारे॥

(२) जागिऐ गोपाल लाल, प्रगट भई हंस-माल,
मिट्यौ अंध-काल, उठौ जननि मुख दिखाई।
मुकुलित भए कमल-जाल, कुमुद वृंद बन बिहाल,
मेटहु जंजाल, त्रिविध ताप तन नसाई॥
ठाड़े सब सखा द्वार, कहत नंद के कुमार,
टेरत हैं बार-बार, आइए कन्हाई।×
धेनु दुहन चले धाइ, रोहिनी तब लै बुलाइ,
दोहिनी मुहि दै मँगाइ, तब ही लै आई॥×

(३) चटकीलौ पट, लपटानौ कट, बंसीवट—
यमुना के तट नागर नट।
मुकुट लटक अत भ्रकुटी मटक देखौ,
कुंडल की चटक सों अटकि परी दृगनि लपट॥
आछी कंचन लकुट, ठटकीली बन-माल, कर टेके द्रुम डार,
टेढ़े ठाड़े नँदलाल छवि छाई घट-घट।
"सूरदास" प्रभु की बनक देखे गोपी-ग्वाल,
टारे न टरत, निपट आवै सौंधे की लपट॥

(४) ब्रज घर-घर सब होत बधाये।
कंचन कलस दूब दधि रोचन, महरि-महर वृंदाबन आये॥×
सकसकात तन, धकधकात उर, अकबकात सब ठाढ़े।
"सूर" उपंग-सुत बोलत नाँहीं, अति हिरदै ह्वै गाढ़े॥

सूरदास के कथन की शैली ही इस प्रकार की है कि इसमे सादृश्य मूलक अलंकारो के समावेश का अधिक अवसर रहता है। सादृश्यमूलक अलंकारों मे उपमा और उत्प्रेक्षा का प्रमुख स्थान है, अत सूर-काव्य मे इनके अगणित उदाहरण भरे पडे है। यहाँ पर उपमा अलंकार के कुछ उदाहरण दिये जाते है, जिनसे सूरदास की कल्पना की उडान जानी जा सकती है—

(१) राधे ! तेरौ बदन बिराजत नीकौ।
जब तू इत उत बंक बिलोकति, होत निसापति फीकौ ॥
भ्रकुटी धनुष, नैन सर साधे, सिर केसरि कौ टीकौ। ×
"सूरदास" प्रभु बिबिध भाँति करि, मन रिझयौ हरि पी कौ ॥

(२) सुधा सरोवर छिटकि अनूपम।
ग्रीव कपोत मनो नास कीर सम ॥
कीर नासा, इद्र धनु भ्रू, भँवर से अलकावली।
अधर बिद्रुम, बज्र कन दाड़िम किधौ दसनावली ॥
खौर केसरि अति बिराजति, तिलक मृगमद कौ दियौ।
काम रूप बिलोकि मोह्यौ, बास पद अबुज कियौ ॥१॥
हरि स्याम घन तन परम सुंदर, तड़ित बसन विराजई।
अँग-अंग भूषन सुरस ससि-पूरनकला मनो भ्राजई ॥
कमल मुख-कर, कमल लोचन, कमल मृदु पद सोहही।
कमल नाभिः, कमल सुंदर निरखि सुर-मुनि मोहही ॥२॥

निम्न लिखित पद में सूरदास ने उपमाओं की झडी लगादी है, अतः इसमे 'मालोपमा' अलंकार है—

स्याम भए राधा बस ऐसे।
चातक स्वाँति, चकोर चंद्र ज्यो, चक्रवाक रवि जैसे ॥ ×
ज्यो चकोर बस सरद चंद्र के, चक्रवाक बस भान।
जैसे मधुकर कमल कोस बस, त्यो बस स्याम सुजान ॥
ज्यो चातक बस स्वांति बूंद है, तन के बस ज्यो जीय।
"सूरदास" प्रभु अति बस तेरे, समझि देखि धौ हीय ॥

सूरदास के काव्य मे उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार स्थान स्थान पर दिखलायी देते है। इन अलंकारों के सहारे उन्होने, अपने कथन को बडी सुंदरता से व्यक्त किया है। निम्नलिखित पद मे उन्होने उत्प्रेक्षाओं की भी माला सी पिरो दी है—

देखत बन ब्रजनाथ आजु, अति उपजत है अनुराग।
मानहुँ मदन-बसंत मिले दोउ, खेलत फूले फाग॥
झांझ झालरन झर निसान डफ, भँवर, भेर गुंजार।
मानहुँ मदन मंडली रचि, पुर-बीथिन विपुल विहार॥
द्रुम गन मध्य पलास-मंजरी, उड़त अगिन की नाईं।
अपने-अपने घरै मनोहर होरी हरपि लगाईं॥
केकी, काग, कपोत और खग करत कुलाहल भारी।
मानहुँ लै-लै नाम परस्पर, देत-दिवावत गारी॥
कुंज-कुंज प्रति कोकिल कूजत, अति रस विमल बढ़ी।
मनौ कुल-बधू बन लज्जित भई गृह-गृह गावति अटन चढ़ी॥
प्रफुलित लता जहाँ तहाँ देखियत, तहाँ तहाँ अलि जात।
मानहुँ बिटप बहुत अवलोकत, परसत गनिका गात॥
बहु विधि सुमन अनेक रंग छवि, उत्तम भाँति धरे।
मनु रतिनाथ हाथ में सबहुन, लौने रंग भरे।
और कहाँ लौं कहौं कृपानिधि! वृंदा-विपिन विराज।
"सूरदास" प्रभु सब सुख क्रीड़त, स्याम तुम्हारे काज॥

कथन की दृष्टि से इस पद मे ऋतुराज बसंत की शोभा का वर्णन किया गया है, जो प्रकृति-चित्रण का एक सुंदर उदाहरण है। इसमे उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे वर्णन की पूर्ति की गयी है। इस पद मे कवि ने उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है। मालोपमा की तरह मालोत्प्रेक्षा लिखने में भी सूरदास को कमाल हासिल है। समस्त पद में अनुप्रास का सौन्दर्य दृष्टव्य है। इस प्रकार यह पद उत्प्रेक्षा और अनुप्रास का सुंदर उदाहरण है।

आगे के कुछ पदो में उत्प्रेक्षाओं की और भी बहार देखिए—

(१) नागरि नागरि लिए पनघट ते चली घरहिं आवै।
ग्रीवा डोलत, लोचन लोलत, हरि के चितहि चुरावै॥
ठठकति चलै, मटकि मुख मोरै, बंकट भौंह चलावै।
मनहुँ काम-सैना अँग सोभा, अंचल ध्वज फहरावै॥
गति गयद, कुच कुंभ किंकिनी मनहुँ घंट फहरावै।
मोतिन-हार जलाजल मानौं, खुभी दंत झलकावै॥

मानहुँ चंद्र महावत मुख पर, अंकुस बेसरि लावै।
रोमावली सुंडि तिरनीलौं, नाभि सरोसर आवै॥
पग जेहरि जंजीरनि जकर्यौ, यह उपमा कछु पावै।
घट-जल झलकि, कपोलनि कनुका, मानौ मदहि चुआवै॥
बैनी डोलत दुहुँ नितंब पर, मानहुँ पूंछ हलावै।
गज सिरदार "सूर" कौ स्वामी, देखि-देखि सुख पावै॥

(२) कहाँ लौं बरनौं सुंदरताई।
खेलत कुँवर कनक-आँगन मे नैन निरखि छवि पाई॥
कुलही लसत सिर स्याम सुभग अति, बहु बिधि सुरंग बनाई।
मानहुँ नव घन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाई॥
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन, मोहन-मुख बगराई।
मानहुँ प्रगट कंज पर मंजुल, अलि-अवली फिर आई॥
नील-सेत अरु पीत-लाल मनि, लटकन भाल रुलाई।
सनि, गुरु-असुर, देव-गुरु मिलि, मनु भौम सहित समुदाई॥

(३) रसना जुगल रसनिधि बोल।
कनक बेलि तमाल अरुझी, सुभुज बंधन खोल॥
भृंग-जूथ सुधाकरनि, मनौ घन मे आवत जात।
सुरसरी पर तरनि-तनया उमँगि तट न समात॥
कोकनद पर तरनि तांडव मीन खंजन संग।
करनि लाजै सिखिर मिलिकै, युग्म संगम रंग॥
जलद ते तारा गिरत मानौं, परत पयनिधि माँहिं।
युग भुजंग प्रसन्न ह्वै फर, कनक-घट लपटाहिं॥

सूरदास के कुछ अपूर्व शब्द-चित्र देखिए। इनमें उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे श्री कृष्ण और राधिका के स्वरूप का कैसा भव्य चित्र खींचा गया है--

नटवर वेष काछे स्याम।
पद कमल नख इंदु सोभा, ध्यान पूरन काम॥
जानु जंघ सुघटनि करभा, नाँहि रंभा तूल।
पीट पट काछिनी मानहुँ, जलज केसर झूल॥
कनक छुद्रावली सोभित, नाभि कटि के भीर।
मनहुँ हंस रसाल पंगति, रहे है ह्रद तीर॥

झलक रोमावली सोभा, ग्रीव मोतिन हार।
मनहुँ गगा बीच जमुना, चली मिलि त्रय धार॥
बाहु दड विसाल तट दोउ, अंग चदन रेनु।
तार तरु बन माल की छवि, ब्रज-जुवति सुख देनु॥
चिबुक पर अधरनि हसन दुति, बिंब बीज लजाइ।
नासिका सुक, नयन खंजन, कहत कवि सरमाइ॥
स्रवन कुंडल, कोटि रवि-छवि, भृकुटि काम कोदंड।
"सूर" प्रभु है नीप के तट, सिर धरे श्रीखंड॥

निम्न पद मे सूरदास ने राधिका के स्वरूप वर्णन मे उत्प्रेक्षा अलकार के सहारे अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर दिया है—

बरनौं श्री वृषभानु-कुमारि।
चित दै सुनहु स्माम सुंदर, छवि रति नाँहीं अनुहारि॥
प्रथमहिं सुभग स्याम बैनी की, सोभा कही विचारि।
मानहुँ फनिग रह्यौ पीवन को, ससि-मुख सुधा निहारि॥
कहिऐ कहा सीस सेंदुर कौ, कितौ रही पचि हारि।
मानहुँ अरुन किरनि दिनकर की, परसी तिमिर विदारि॥
भृकुटी विकट निकट नैननि के, राजत अति वर नारि।
मनहुँ मदन जग जीति जेर करि, राख्यौ धनुष उतारि॥
ता बिच बनी आड़ केसरि की, दीन्ही सखिन सँवारि।
मानहुँ बँधी इंदु-मडल मे, रूप-सुधा की पारि॥
चपल नैन नासा बिच सोभा, अधर सुरग सुनारि।
मनहुँ मध्य खजन सुक बैठ्यौ, लड़्यौ बिब बिचारि॥
तरिवन सुघर अधर नकबेसरि, चिबुक चारि रुचिकारि।
कठसिरी, दुलरी, तिलरी पर, नहिं उपमा कहुँ चारि॥
सुरंग गुलाल भाल कुच मडल, निरखत तन-मन वारि।
मानहुँ निसि निर्धूम अगिन के, तप बैठे त्रिपुरारि॥

सूरदास के पदों में रूपक अलकार भी प्रचुरता से मिलता है। रूपक का एक भेद सांग अथवा सावयव रूपक होता है। रूप वर्णन में सूरदास ने सांग रूपक अलकार की बड़ी सुंदर योजना की है। नीचे उदाहरणों मे साग रूपक के भव्य चित्र देखिए—

(१) बरनौ बाल-भेष मुरारि।
थकित जित तित अमर-मुनि गन, नंदलाल निहारि॥
केस सिर बिन पवन के, चहुँ दिसा छिटके झारि।
सीस पर धरे जटा मानौ, रूप किय त्रिपुरारि॥
तिलक ललित ललाट, केसरि-बिंदु सोभाकारि।
अरुन रेखा जनु त्रिलोचन रह्यौ निज रिपु जारि॥
कठ कठुला नील मनि, अंभोजमाल सँवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर, यहि भाय भये मदनारि॥
कुटिल हरिनख हिऐ हरि के, हरषि निरखत नारि।
ईस जनु रजनीस राख्यौ, भाल हू तें उतारि॥
सदन रज तन स्याम सोभित, सुभग यहि अनुहारि।
मनहुँ अंग विभूति राजत, संभु सो मधु हारि॥
त्रिदसपति-पति असन को अति, जननि सो कर आरि।
"सूरदास" विरंचि जाको, जपत निज मुख चारि॥

(२) सखी री! नंदनदन देखु।
धूरि धूसरि जटा जूटनि हरि किऐ हर भेषु॥
नील पाट पिरोइ मनिगन फनिस धोखौ जाइ।
खुनखुनाकर हँसत मोहन नँचत डौरु बजाइ॥
जलज-माल गोपाल पहिरै कहौं कहा बनाय।
मुंडमाल मनो हर गर ऐसि सोभा पाइ॥
स्वांति सुत माला बिराजत स्याम-तन यो भाइ।
मनौ गंगा गौरि डर हर लिऐं कंठ लगाइ॥
केहरी के नखहि निरखत रही नारि विचारि।
बाल ससि मनौ भाल ते लै उर धरयौ त्रिपुरारि॥
देखि अंग अनंग डरयौ नंदसुत को जान।
"सूर" हियरे बसौ यह स्याम सिब कौ ध्यान॥

निम्नांकित पद मे श्याम के शरीर की सागर से उपमा देते हुए कवि ने सांग रूपक का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

देखौ माई सुंदरता कौ सागर।
बुधि विवेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर॥
तनु अति स्याम अगाध अबुनिधि कटि पटपीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत भँवर परत अँग अंग॥

मीन नैन, मकराकृत कुंडल, भुजबल सुभग भुजग।
मकृत-माल मिलि मानौ सुरसरि, द्वै सरिता लिए संग॥
मोर मुकुट मनिगन आभूपन, कटिकिंकिन नख चंद।
मनु अडोल बारिधि मे बिंबित, राका उडगन वृंद॥
वदन चंद्रमडल की सोभा, अवलोकत सुख देत।
जनु जलनिधि मथि प्रगट कियौ ससि, श्री अरु सुधा समेत॥
देखि सुरूप सकल गोपीजन, रही निहारि-निहारि।
तदपि "सूर" तर सकी न सोभा, रही प्रेम पचिहार॥

विनय सबधी पदो मे भी उन्होंने दार्शनिकता के साथ ही साथ कई अति सुंदर सांग रूपक उपस्थित किये हैं। भक्तवर सूरदास संसार-सागर का सांगोपाग चित्रण करते हुए अपने पतित-पावन प्रभु से प्रार्थना करते है—

अब कै नाथ! मोहि उधारि।
मगन हौं भव-अंबुनिधि मे, कृपासिधु मुरारि!
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल कौं, गहे ग्राह अनंग॥
मीन इद्री तनहि काटत, मोट अघ सिर भार।
पग न इत-उत धरन पावत, उरभि मोह सिवार॥
क्रोध-दंभ-गुमान-तृष्ना पवन अति झकझोर।
नॉहि चितवन देत सुत-तिय, नाम नौका ओर॥
थक्यौ बीच बिहाल, बिह्वल, सुनौ करुनामूल!
स्याम! भुज गहि काढ़ि लीजे, "सूर" ब्रज कै कूल॥

नीचे के पदों मे अपने को पतितराज बतलाते हुए उन्होने तदनुरूप राजसी ठाट-बाट का कैसा शानदार कथन किया है—

हरि हौं! सब पतितनि कौ राजा।
पर निंदा मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान नित बाजा॥
तृष्ना देस रु सुभट मनोरथ, इद्री खड्ग हमारी।
मंत्री काम कुमति दीबै कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी॥
गज-अहंकार चढ्यौ दिग-विजयी, लोभ छत्र धरि सीस।
फौज असत-संगति की मेरैं, ऐसौ हौं मै ईस॥
मोह-मया बदी गुन गावत, मागध दोष अपार।
"सूर" पाप कौ गढ़ दृढ़ कीन्हौ, मुहकम लाइ किंवार॥

नीचे के पद में उन्होने नृत्यकार के सांग रूपक द्वारा अपने दोषो का विस्तृत विवरण देते हुए उनके दूर करने की भगवान् से प्रार्थना की है—

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महा मोह के नुपूर बाजत, निंदा सब्द रसाल।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखाबज, चलत असगत चाल॥
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया कौ कटि फेटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहि काल।
"सूरदास" की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल॥

सूरदास ने 'रूपकातिशयोक्ति' अलकार के सहारे राधा-कृष्ण के स्वरूप सबधी कितने ही अद्भुत शब्द-चित्र खीचे हैं। निम्न लिखित प्रसिद्ध पद म राधा के शरीर को अनुपम बाग बतलाते हुए उन्होने उपमान द्वारा ही उपमेय का बोध कराया है—

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज वर क्रीडत, ता पर सिंह करत अनुराग॥
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कज पराग।
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक पिक, मृगमद, काग।
खजन धनुष चद्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मनिधर नाग॥
अग-अंग प्रति और-और छबि, उपमा ताकौ करत न त्याग।
"सूरदास" प्रभु! पियहु सुधारस, मानहुँ अधरनि के बड़ भाग॥

निम्न लिखित पद मे रूपकातिशयोक्ति द्वारा श्री कृष्ण की रूप-माधुरी का वर्णन किया गया है। इसमे नेत्र, नासिका, ओष्ठ, दत आदि उपमेयों का बोध उनके उपमान मीन, कीर, विद्रुम, दाडिम-कण द्वारा ही कराया गया है—

नदनँदन-मुख देखौ माई। × ×
खंजन, मीन, कुरंग, भृंग वारिज पर अति रुचि पाई।
स्रुति मंडल कुंडल विवि मकर सु, बिलसत मदन सहाई॥
कंठ कपोत, कीर, विद्रुम पर, दारिम-कननि चुनाई।
दुइ सारँग बाहन पर मुरली, आई देत दुहाई॥

उपर्युक्त अलकारों के अतिरिक्त सूर-काव्य मे अन्य अलकारों के भी उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं, जिनको स्थानाभाव से यहाँ पर देना सभव नही है।

नख-शिख वर्णन—

सूरदास ने काल, अवस्था और परिस्थिति के अनुसार तो राधा कृष्ण की रूप-माधुरी के अनेक शब्द-चित्र खींचे ही है, किंतु उन्होंने उनके विविध अंगों के पृथक पृथक् वर्णन भी किये है। सूरदासादि भक्त कवियों ने अपने मन को रमाने के लिए अपने उपास्य देव की अंग-छवि के वर्णन करने की पद्धति प्रचलित की थी, जो आगे चलकर नायिका-शास्त्र के 'नख-शिख' के नाम से एक पृथक् विशाल साहित्य निर्माण का कारण हुई।

वैसे तो सूरदास ने राधा-कृष्ण के अनेक अंगों का आकर्षक वर्णन किया है, किंतु उन्होंने सब से अधिक नेत्रों का कथन किया है। विविध उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और रूपकों के सहारे उन्होंने नेत्रों का ऐसा अपूर्व चित्रण किया है कि उनकी अद्भुत उद्भावना और कल्पना की भूरि-भूरि प्रशंसा करनी पड़ती है।

छंद विधान—

सूरदास ने अपने अधिकांश काव्य की रचना गायन अथवा कीर्तन के लिए की थी, अतः इसमें पिंगल शास्त्रोक्त छंदों की अपेक्षा संगीत शास्त्रानुकूल गेय पदों की अधिकता है। उन्होंने अपने काव्य के वर्णनात्मक भाग में कुछ छंदों का भी प्रयोग किया है। यह भाग काव्य-परिमाण और काव्योत्कर्ष दोनों दृष्टियों से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है।

सूर काव्य मे जिन थोड़े छंदों का प्रयोग किया गया है, उनमे चौपाई, चौबोला, चौपई, दोहा, सोरठा, रोला और लावनी मुख्य है। इनके अतिरिक्त और भी कुछ छंदों का प्रयोग किया गया है। इन छंदों के प्रयोग मे उन्होंने यथेष्ट स्वच्छंदता से काम लिया है।

कला पक्ष की अन्य बातें—

काव्य शास्त्र के आचार्यों ने काव्य कला संबंधी जिन विषयों का उल्लेख किया है, वे न्यूनाधिक रूप मे प्रायः सभी सूर-काव्य मे मिल जाते है। विभिन्न विषयों पर अनोखी उद्भावनाएँ चमत्कार पूर्ण कल्पनाएँ और सूक्तियाँ सूर-काव्य मे भरी पड़ी हैं। सूर के व्यंग्यात्मक कथन और उनकी वक्रोक्तियों ने उनके काव्य को अपूर्व सजीवता प्रदान की है, जिसके कारण पाठक का मन खिल उठता है। उनके कथन की शैली में प्रसाद एवं माधुर्य गुणों की अधिकता है, जिनके कारण उनके काव्य की सरलता और सरसता दर्शनीय है। सूर-काव्य की प्रवाहमयी एवं सजीव भाषा ने उसे और भी गौरव प्रदान किया है। सारांश यह है कि भाव पक्ष के कवि होते हुए भी सूरदास के काव्य मे अलंकरण और कलात्मकता की भी कमी नहीं है।

४. सूर-काव्य की कुछ विशेषताएँ

सूर-काव्य धार्मिक एवं साहित्यिक विशेषताओं का भंडार है। इसकी प्रत्येक विशेषता पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है, किंतु इस पुस्तक में उन सब पर संक्षिप्त रूप से विचार करने के लिए भी स्थान का अभाव है। हमने गत पृष्ठों में प्रसंग वश इनमें से कुछ पर प्रकाश डाला है। यहाँ पर कुछ अन्य विशेषताओं पर संक्षिप्त रूप से विचार किया जाता है।

ब्रजभाषा के वाल्मीकि—

संस्कृत साहित्य में जो स्थान आदि कवि वाल्मीकि का है, ब्रजभाषा साहित्य में वही स्थान सूरदास को भी दिया जा सकता है। ब्रजभाषा साहित्य के आरंभिक काल में ही सूरदास ने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा जैसा सर्वांगपूर्ण काव्य उपस्थित किया, वैसा कई शताब्दियों के साहित्यिक विकास के उपरांत भी कोई कवि नहीं कर सका। यही एक बात सूर-काव्य की विशेषता को चरम सीमा पर पहुँचा देने वाली है।

परंपरा के निर्माता—

जहाँ तक ब्रजभाषा काव्य का संबंध है, सूरदास को अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्राय. कुछ भी प्रेरणा नहीं मिली है। सूरदास से पहले ब्रज के लोक गायकारों एवं संगीतज्ञों के गायनों में भाषा और भाव का जो रूप था, वह उच्च साहित्य के लिए नगण्य था। स्वयं सूरदास ने अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा व्यवस्थित भाषा में सर्वांगपूर्ण काव्य की रचना कर परवर्ती कवियों के लिए परंपरा बनानी थी।

सूरदास ने कृष्ण-चरित्र के गायन द्वारा धार्मिक एवं साहित्यिक जगत् में मौलिक उद्भावनाओं को जन्म दिया, जिनका अनुकरण उनके समकालीन एवं परवर्ती कवियों ने किया था। सूरदास के पूर्ववर्ती कवियों में से जयदेव, विद्यापति और चंडीदास ने क्रमशः संस्कृत, मैथिल और बंग भाषाओं में कृष्ण-चरित्र का गायन किया था, किंतु सूर का वर्णन उनसे भिन्न है। जयदेव के काव्य में संगीत-लहरी और कोमल-कांत पदावली का गौरव तो है, किंतु उनमें सूरदास की सी कथन की विविधता नहीं है। विद्यापति ने राधा-कृष्ण को केवल नायिका-नायक के रूप में चित्रित कर विलासिता को अधिक प्रश्रय दिया है। वे सूरदास की तरह राधा-कृष्ण को अलौकिक धरातल पर स्थापित

नहीं कर सके है । चंडीदास के काव्य मे राधा-कृष्ण के विशुद्ध प्रेम का दर्शन तो होता है, किंतु उसमे सूरदास की सी लीला-भावना का अभाव है। इस प्रकार इन तीनो पूर्ववर्ती कवियो का काव्य सूर-काव्य की तुलना मे पीछे रह जाता है। सूर-काव्य की यह विशेषता है कि इसमे उक्त तीनो कवियो के विशिष्ट गुण तो अपने सर्वोत्तम रूप मे विद्यमान हैं ही, इनके अतिरिक्त इसमे और भी बहुत कुछ है, जो सूरदास की स्वतंत्र उद्भावना और मौलिकता पर निर्भर है। इस प्रकार सूर-काव्य की परंपरा पूर्ववर्ती कवियो की ऋणी नहीं है, वरन् वह स्वयं सूरदास की बनायी हुई है।

सूर का गीति-काव्य—

जहाँ तक गीति-काव्य की परंपरा का संबंध है, वह सूरदास से बहुत पहले की है। सूरदास ने अपने पूर्ववर्ती जयदेव, विद्यापति के गीति-काव्य की शैली को अपनाकर उसे और भी गौरवान्वित किया है।

हिंदी साहित्य मे गीति-काव्य की परंपरा वीर-गीतो से आरंभ होती है। उस समय के कवि अपने आश्रय दाताओ के यशोगान अथवा युद्धोन्मुख वीरो को उत्साह-प्रदान करने के लिए वीर-गीतो की रचना किया करते थे। देश की परतंत्रता के कारण जब वीरता का लोप हुआ, तब वीर-गीतो की ध्वनि भी मंद पड गयी। इसके बाद संत कवियों ने निर्गुण भक्ति के गीत गाये, जो सूर के समय तक और उनके बाद भी गूंजते रहे। इस प्रकार सूरदास के समय से गीति-काव्य की एक परंपरागत शैली विद्यमान थी। उन्होने सगुण भक्ति के गायन द्वारा उसे और भी उन्नत एवं परिष्कृत किया।

सूरदास का अधिकांश काव्य कीर्तन के लिए रचा गया है, इसलिए यह मुक्तक गेय पदों मे है। ये गेय पद विभिन्न राग-रागनियों मे सधे हुए हैं। अब तक सूर-काव्य की साहित्यिकता और धार्मिकता पर ही विचार किया गया है, किंतु इसके संगीत विषयक पक्ष पर जब पूरी तरह विचार हो सकेगा, तब कहीं सूर-काव्य की विशेषता का यथार्थ स्वरूप समझ मे आवेगा।

संगीत कला की दृष्टि से भी सूर-काव्य का अनुपम महत्व है। यह संगीत शास्त्रोक्त विविध राग-रागनियों का विपुल भंडार है। इसमें जिन अगणित राग-रागनियों का समावेश है, उनमें से कुछ के लक्षण भी आज-कल के संगीतज्ञों को अज्ञात हैं। ऐसा मालूम होता है कि या तो वे राग-रागनियाँ सूरदास के समय में प्रचलित थीं, या स्वयं उन्होंने ही उनका आविष्कार किया था; जिनका प्रचलन बाद में बंद हो गया।

गीति-काव्यकारों मे भी सूरदास का स्थान बेजोड़ है। उन्होने जितने अधिक गीत रचे है, उतने ससार की किसी भाषा मे शायद ही किसी एक व्यक्ति ने रचे हो। उनके द्वारा प्रयुक्त राग-रागनियो की विविधता को देखकर तो आश्चर्य होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि वे सगीत शास्त्र के भी महान् पडित थे। विभिन्न राग-रागनियो मे अपने पदो की रचना के अतिरिक्त 'सूर सारावली' मे उन्होने कतिपय राग रागनियो के नामो का भी उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

ललिता ललित वजाय रिझावत मधुर बीन कर लीने।
जान प्रभात राग पंचम षट मालकोस रस भीने॥
सुर हिडोल मेघ मालव पुनि सारँग सुर नट जान।
सुर सावंत भूपाली ईमन करत कान्हरौ गान॥
ऊंच अडाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन।
करत विहार मधुर केदारौ सकल सुरन सुख दीन॥
सोरठ गौड़ मलार सोहावन भैरव ललित बजायौ।
मधुर विभास सुनत बेलावल :पति अति सुख पायौ॥
देवगिरी देसाक देव पुनि गौरी श्री सुखबास।
जैतश्री अरु पूर्वी टोड़ी आसावरि सुखरास॥
रामकली गुनकली केनकीं सुर सुघराई गाये।
जैजैवती जगतमोहनी सुर सौ बीन बजाये॥

सूर और तुलसी—

सूर और तुलसी हिंदी साहित्याकाश के दो परमोज्ज्वल नक्षत्र है। इनमे से किसका प्रकाश अधिक और किसका कम है, यह बतलाना बड़े से बडे समालोचक के लिए भी बड़ा कठिन कार्य है। इन दोनो महात्माओं के उपस्थिति-काल से अब तक अनेक विद्वानो ने इनके महत्त्व की तुलना की है। उनमें से किसी ने सूर को और किसी ने तुलसी को बडा बतलाया है, किंतु उनका कथन सदैव विवादग्रस्त रहा है और आगे भी रहेगा। हमारी दृष्टि मे ये दोनों ही महानुभाव हिंदी कवियो के मुकुटमणि है और अपने-अपने क्षेत्रो मे एक दूसरे से बढ कर है। हिंदी का कोई तीसरा कवि किसी प्रकार इनकी समता नहीं कर सकता है।

इन दोनों महाकवियो के काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इनकी कई रचनाओ में अद्भुत साम्य है। यह साम्य भाव-विषयक ही नहीं, वरन् शब्द विषयक भी है। इससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों कवि एक दूसरे से प्रभावित हैं। अब यह विचार करना है कि इसका कारण क्या है।

साहित्य शोधकों के प्रयत्न से अब यह भली भाँति सिद्ध हो गया है कि सूरदास पूर्ववर्ती और तुलसीदास परवर्ती कवि है। सूरदास का जन्म-काल और काव्य-काल दोनो ही तुलसीदास की अपेक्षा पहले आते है। कुछ समय तक ये दोनो कवि समकालीन भी थे, किंतु उस समय सूरदास वृद्ध थे और अपने अधिकांश काव्य की रचना कर चुके थे, जब कि तुलसीदास युवक थे और उन्होने अपनी काव्य-रचना का आरंभ ही किया था। सूरदास का देहावसान भी तुलसीदास की अपेक्षा पहले हुआ था। गत पृष्ठों मे हम सूरदास के देहावसान का समय सं० १६४० लिख चुके हैं, जब कि तुलसीदास का निधन सं० १६८० मे बतलाया जाता है। अब यदि इनके काव्य मे किसी प्रकार का साम्य अथवा एक का दूसरे पर प्रभाव ज्ञात होता है, तो यह निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि परवर्ती कवि ने पूर्ववर्ती कवि से किसी न किसी रूप मे लाभ अवश्य उठाया है।

गत पृष्ठो मे हम भली भाँति सिद्ध कर चुके है कि सं० १६२६ में तुलसीदास अपने छोटे भाई नंददास से मिलने के लिए ब्रज मे आये थे। उस समय उन्होंने ब्रज के प्रमुख स्थानों का भ्रमण किया था और वहाँ पर कुछ समय तक निवास भी किया था। उस यात्रा मे उन्होने गोवर्द्धन के निकटवर्ती परासौली स्थान पर सूरदास से भेंट की थी। उस समय दोनों कवियों ने एक दूसरे के काव्य का रसास्वादन अवश्य किया होगा। सूरदास उस समय तक सहस्रों पदों की रचना द्वारा अक्षय कीर्ति प्राप्त कर चुके थे, किंतु तुलसीदास ने तब तक 'रामलला नहछू', वैराग्य सदीपनी', 'रामाज्ञा प्रश्न' और 'जानकी मंगल' जैसी छोटी एव साधारण रचनाएँ ही की थी *। काव्य-जगत् मे प्रवेश करने वाले युवक कवि तुलसीदास पर वयोवृद्ध सूरदास के प्रौढ काव्य का प्रभाव पडना स्वाभाविक था। यह प्रभाव तुलसीदास की रचनाओ मे स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है।

ब्रज-यात्रा के अनंतर गो० तुलसीदास ने सं० १६३१ मे अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'रामचरितमानस' की रचना की थी। इस प्रशंसनीय ग्रंथ के कई प्रसंग ऐसे हैं, जो सूर-काव्य से निश्चय पूर्वक प्रभावित है। उदाहरण के लिए 'मानस' का एक परम रमणीक प्रसंग उपस्थित किया जाता है। जिस समय बनोवास में सीता अपने पति और देवर राम-लक्ष्मण के साथ जा रही थी, उस समय ग्रामीण स्त्रियों ने उनका परिचय जानना चाहा। सीता जी ने

* तुलसीदास (डा० माताप्रसाद गुप्त) पृ० २१३

जिस भाव-भंगी के साथ अपने देवर और पति का परिचय दिया है, उसे पढ़कर 'मानस' के पाठक आनन्द-विभोर हो जाते हैं। वास्तव में यह प्रसंग 'मानस' के परम रमणीक प्रसंगों में से है जिससे तुलसीदास जी के काव्योत्कर्ष का ज्ञान हो सकता है। किंतु यह प्रसंग सूर-काव्य से प्रभावित है जैसा कि निम्न उद्धरणों से ज्ञात होगा।

"रामचरित मानस' में यह प्रसंग इस प्रकार लिखा गया है—

कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेह मय मंजुल बानी। सकुचि सीय मन महँ मुसुकानी॥
तिनहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सँकोच सकुचति बर बरनी॥
सकुचि सप्रेम बालमृग-नैनी। बोली मधुर बचन पिकबैनी॥
सहज सुभाव सुभग तनु गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनबिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितै भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिनहि पिय सैननि॥

यही प्रसंग तुलसीदास कृत "कवितावली' में इस प्रकार मिलता है—

पूछति ग्राम बधू सिय सों "कहो साँवरे से सखि! रावरे को है?"
सुनि सुंदर बानि सुधा-रस सानि, सयानी है जानकी जानि भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें, समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥

सूर-काव्य में यह प्रसंग इस प्रकार मिलता है—

कहिधौं सखी! बटोही को है?
अद्भुत बधू लिऐं सँग डोलत, देखत त्रिभुवन मोहै॥
यहि में को पति प्रिया तिहारे, पुर तिय पूछैं धाइ।
राजिव नैन मैन की मूरति, सैननि दियौ बताइ॥

सूरदास का निम्न पद तुलसीदास के एक प्रसिद्ध बरवा से मिलाइये तो आपको स्पष्ट प्रभाव दिखलायी देगा—

देखि री! हरि के चंचल नैन।
राजिवदल, इंदीवर, सतदल कमल कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित, प्रातहि वे बिकसित, ये बिकसित दिन-राति॥
—सूरदास

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह, निसि दिन यह बिगसाइ॥
—तुलसीदास

उपर्युक्त उद्धरणों मे दोनों कवियों के कथन का आशय एक सा है। अतर केवल इतना है कि जहाँ सूरदास ने कमल की कई जातियों का नामोल्लेख किया है, वहाँ तुलसीदास ने केवल शरद-कमल से काम ले लिया है। स्वागत, पूजा तथा अभिनदन के समय नारियाँ किस सामग्री का सचय करती है और उनके चलने का ढग किस प्रकार का होता है, इसके वर्णन मे दोनों कवियों का साम्य देखिए—

दूध, दधि, रोचन कनक-थार लै-लै चलीं,
मानो इंद्रबधू जुरि पाँतिन पहर के॥
—सूरदास

दूध, दधि, रोचन कनक-थार भरि-भरि,
आरती सँवारि बर नारि चलीं गावती॥
—तुलसीदास

उपर्युक्त उद्धरणों मे विषय और भाव की तो समता है ही, किंतु "दूध, दधि, रोचन, कनकथार" ये चारों शब्द दोनों कवियों ने एक क्रम से भी रखे है। सूर काव्य का स्पष्ट प्रभाव तुलसी कृत बाल-छवि वर्णन मे दिखलायी देता है। इस प्रकार के कथन मे दोनों कवियों द्वारा प्रयुक्त बहुत सी उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ आपस मे मिल जाती है। उदाहरण देखिए—

नील, सेत पर पीत, लाल मनि, लटकन भाल रुलाई।
सनि गुरु-असुर, देव-गुरु मिलि, मनौ भौम सहित समुदाई॥
—सूरदास

भाल बिसाल ललित लटकन बर, बाल दसा के चिकुर सोहाए।
मनु दोउ गुरु-सनि कुज आगे करि, ससिहि मिलन तम के गन आए॥
—तुलसीदास

सूर-काव्य का और भी स्पष्ट प्रभाव तुलसीदास कृत 'गीतावली' मे दिखलायी देता है। सूरदास ने श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं का जैसा सरस वर्णन किया है, प्रायः वैसा ही गीतावली के कतिपय पदों मे भी मिलता है—

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोई-सोइ कछु गावै॥
—सूरदास

पालने रघुपतिहिं झुलावै।
लै-लै नाम सप्रेम सरस स्वर, कौसिल्या कल कीरति गावै॥
—तुलसीदास

'सूरसागर' और 'गीतावली' के निम्न पदों में भाव ही नही, वरन् शब्दों का भी अद्भुत साम्य है। दोनो पदो के पढने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये एक ही कवि की रचनाएँ हैं, जो किंचित हेर-फेर के साथ दोनो ग्रंथो में लिखी गयी हैं। 'गीतावली' के पद मे 'सूरसागर' के पद की अपेक्षा दो पंक्तियाँ अधिक है। गीतावली के पद का राग 'केदारा' और सूरसागर के पद का राग नटनारायन' लिखा गया है। दोनो ग्रथो के पद इस प्रकार हैं—

हरि जू की बाल-छबि कहौ बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज-सोभा-हरनि॥
भुज भुजग, सरोज नैननि, बदन बिधु जित लरनि।
रहे बिवरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि॥
मजु मेचक मृदुल तनु, अनुहरत भूषन भरनि।
मनहुँ सुभग सिंगार-सिसु-तरु, फर्यौ अदभुत फरनि॥
चलत पद-प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुवनि करनि।
जलज-संपुट-सुभग-छबि भरि लेत उर जनु धरनि॥
पुन्य फल अनुभवति सुतहि बिलोकि कै नँद-घरनि।
"सूर" प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि॥

(सूरसागर, दशम स्कंध, पद संख्या १०६)

रघुवर-बाल-छबि कहौ बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज-सोभा-हरनि॥
बसी मानहुँ चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रुनझुन करनि॥
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरति भूषन भरनि।
जनु सुभग सिगार-सिसु-तरु फर्यौ अदभुत फरनि॥
भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यौ लरनि।
रहे कुहरनि सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि॥
लसत कर प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुवनि चरनि।
जलज-संपुट-सुछबि भरि-भरि धरनि जनु उर धरनि॥
पुन्य फल अनुभवति सुतहि बिलोकि दशरथ-घरनि।
बसति "तुलसी"-हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि॥

(गीतावली, पद संख्या २४)

अब हम 'सूरसागर' और 'गीतावली' के ऐसे पद देते हैं, जो प्रायः एक से हैं। इनके भाव ही नहीं, वरन् शब्दों में भी कोई महत्व का अंतर नहीं है। पाठकों को आश्चर्य हो सकता है कि इस प्रकारका अद्भुत साम्य कैसे हो गया—

आँगन खेलै नंद के नंदा। जदुकुल-कमुद सुखद चारु चंदा ॥
संग संग बल-मोहन सोहैं। सिसु-भूपन सुब कौ मन मोहैं ॥
तन-दुति मोर-चंद जिमि झलकै। उमँगि-उमँगि अँग-अँग छबि छलकै ॥
कटि किंकिनि, पग पैजनि बाजै। पंकज पानि पहुँचिया राजै ॥
कठुला कंठ बघनहाँ नीके। नैन-सरोज मैन-सरसी के ॥
लटकति ललित ललाट लटूरी। दमकति दूध दँतुरियाँ रूरी ॥
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बिंदा। ललित बदन बल-बालगुबिंदा ॥
कुलही चित्र विचित्र झँगूली। निरखि जसोदा-रोहिनि फूली ॥
गहि मनि-खंभ डिंभ डग डोलै। कल-बल बचन तोतरे बोलै ॥
निरखत झुकि, झाँकत प्रतिबिंबहि। देत परम सुख पितु अरु अंबहि ॥
ब्रज-जन निरखत हिय हुलसाने। "सूर" स्याम-महिमा को जाने ॥
(सूरसागर दशमस्कंध, पद सं० ११७)

आँगन खेलत आनँदकंद। रघुकुल-कुमुद सुखद चारु चंद ॥
सानुज भरत लखन-सँग सोहैं। सिसु-भूपन भूपित मन मोहैं ॥
तन-दुति मोर चंद जिमि झलकै। मनहु उमँगि अँग-अँग छबि छलकै ॥
कटि किंकिनि, पग पैजनि बाजै। पंकज-पानि पहुँचियाँ राजै ॥
कठुला कंठ बघनहा नीके। नयन-सरोज मयन सरसी के ॥
लटकन लसत ललाट लटूरी। दमकति द्वै-द्वै दँतुरियाँ रूरी ॥
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बुंदा। ललित बदन बलि-बालमुकुंदा ॥
कुलही चित्र-बिचित्र झँगूली। निरखत मातु मुदित मन फूली ॥
गहि मनि-खंभ डिंभ डगि डोलत। कल बल बचन तोतरे बोलत ॥
किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि। देत परम सुख पितु अरु अंबनि ॥
सुमिरत सुखमा हिय हुलसी है। गावत प्रेम पुलकि "तुलसी" है ॥
(गीतावली, पद सं० २८)

निम्न पद तो केवल नाम भेद से दोनो के काव्य मे प्राय: एक सा मिलता है। दोनो ग्रथों के पद देखिए—

छोटी-छोटी गोडियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी,
नख-ज्योती, मोती मानो कमल-दलनि पर।
ललित आँगन खेलैं, ठुमुकि-ठुमुकि डोलैं,
झुनुकु-झुनुकु बोलैं पैजनी मृदु मुखर॥
किंकिनी कलित कटि, हाटक रतन जटि,
मृदु कर-कमलनि पहुँची रुचिर बर।
पियरी पिछौरी झीनी, और उपमा न भीनी
बालक दामिनि मानौं ओढ़ै बारौ बारिधर॥
उर बघनहाँ, कठ कठुला, झँडूले बार,
बेनी लटकन मसि-बुंदा मुनि-मनहर।
अजन रंजित नैन, चितवन चित चोरै,
मुख-सोभा पर वारौं, अमित असम-सर॥
चुटकी बजावति, नचावति जसोदा रानी,
बाल-केलि गावति मल्हावति सप्रेम भर।
किलकि-किलकि हँसै, द्वै-द्वै दँतुरियाँ लसैं,
"सूरदास" मन बसै तोतरे बचन बर॥

(सूरसागर, दशम स्कध, पद स० १५१)

छोटी-छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी,
नख-जोति मोती मानो कमल-दलनि पर।
ललित आँगन खेलै ठुमुक-ठुमुक चलै,
झँझुनु-झुँझुनु पाँय पैजनी मृदु मुखर॥
किंकिनी कलित कटि, हाटक जटित मनि,
मजु कर-कंजनि पहुँचियाँ रुचिर तर।
पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली,
बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारिधर॥
उर बघनहा, कंठ कठुला, झँडूले केस,
मेढ़ी लटकन मसि-बिंदु मुनि-मनहर।
अंजन रंजित नैन चित चोरै चितवनि,
मुख-सोभा पर वारौं अमित असम-सर॥

चुटकी बजावती, नचावती कौसल्या माता,
बाल-केलि गावति मल्हावति सुप्रेम-भर ।
किलकि-किलकि हँसै, द्वै-द्वै दँतुरियाँ लसै,
"तुलसी" के मन बसै तौतरे बचन वर ॥
(गीतावली, पद सं० ३०)

यहाँ पर यह विचार करने की आवश्यकता है कि दोनो कवियो की इन रचनाओं मे इस प्रकार के अद्भुत साम्य का कारण क्या है । जहाँ तक भाव-साम्य का संबंध है, वहाँ तक हमारा निश्चित मत है कि तुलसीदास ने अपने पूर्ववर्ती सूरदास के काव्य से लाभ उठाया है । यह भाव-साम्य अधिकतर कृष्ण और राम के बाल-लीला वर्णन मे मिलता है । यह बतलाने की आवश्यकता नही है कि सूरदास वात्सल्य रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं । उन्होंने श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं का अपूर्व कवित्वपूर्ण कथन किया है, जिसका अनुकरण अनेक कवियो ने किया है । यह दूसरी बात है कि वे सूर-काव्य के उच्च धरातल तक पहुँचने मे कहाँ तक सफल हो सके हैं। ब्रज यात्रा मे ब्रज के वातावरण से आकर्षित होकर और सूरदास कृत कृष्ण-लीला के पदो को सुन कर तुलसीदास इतने प्रभावित हुए कि उन्होने बाद में उसी शैली मे अपने आराध्य देव रामचंद्र की बाल-लीलाओ का भी वर्णन किया, जिसमे सूर-काव्य के कतिपय भावो का आजाना कोई आश्चर्य की बात नही है ।

लेकिन जो कविताएँ दोनो कवियों के काव्य में प्राय ज्यों की त्यों मिलती है, उनके विषय मे पाठकों को अवश्य आश्चर्य हो सकता है । वे शंका कर सकते है कि क्या तुलसीदास ने सूर की रचनाओ का अपहरण कर उन्हे अपने नाम से प्रचारित किया था ! तुलसीदास जैसे सर्वोत्कृष्ट सिद्ध कवि के विषय मे इस प्रकार की शंका करना भी मूर्खता की बात है । असल बात यह है कि लिपिकारों की असावधानी अथवा उनके कुचक्र के कारण ये कविताएँ दोनो कवियो के काव्य मे मिल गयी हैं । आश्चर्य इस बात का है कि उनका संपादन करते समय हमारे धुरंधर विद्वान संपादकों का ध्यान उन पर क्यो नहीं गया !

आज-कल की सी मुद्रण विषयक सुविधाओ के अभाव में अथवा सांप्रदायिक खींचातानी की दौड़ धूप मे उस समय के लिपिकारो को इन रचनाओं के लिए क्षमा भी किया जा सकता है; किंतु जब हम दिग्गज विद्वानो द्वारा संपादित और मान्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित प्रामाणिक संस्करणों में इस प्रकार की गड़बड़ी देखते हैं, तो आश्चर्यपूर्ण खेद होता है । हमने

उपर्युक्त उद्धरण 'सूरसागर' और 'गीतावली' के जिन संस्करणो से लिए है, वे दोनों काशी की सर्वमान्य नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हैं। 'सूरसागर' के संपादक ब्रजभाषा साहित्य के सुप्रसिद्ध महारथी स्वर्गीय श्री जगन्नाथ दास "रत्नाकर" है। 'गीतावली' तुलसी ग्रंथावली, द्वितीय खंड, मे संकलित है, जिसका संपादन हिंदी के धुरंधर विद्वान सर्वश्री रामचंद्र शुक्ल, भगवानदीन और ब्रजरत्न दास ने किया है। 'गीतावली का यह संस्करण 'सूरसागर' के उपर्युक्त संस्करण की अपेक्षा प्रायः १२ वर्ष पश्चात् छपा है। इसके विद्वान संपादको से यह आशा की जा सकती है कि उन्होने 'सूरसागर' के उक्त संस्करण को अवश्य देखा होगा। ऐसी दशा मे एक ही स्थान से प्रकाशित दोनो कवियो के प्रसिद्ध ग्रंथो मे एक सी कविताएं छप जाना सुसंपादन के महत्व को निश्चय ही कम करने वाली बात है!

यह तो मान लिया गया कि लिपिकारों एवं संपादकों की असावधानी से इस प्रकार की कविताएँ दोनो कवियो के ग्रंथों मे सम्मिलित हो गयी है, अब यह प्रश्न हो सकता है उनका मूल रचयिता सूरदास को ही क्यो माना जाय, तुलसीदास को क्यो नहीं? इसके संबंध मे हम पहले ही लिख चुके है कि सूरदास पूववर्ती एवं बाल-लीला वर्णन के विशिष्ट कवि है, अतः इन कविताओ का सर्व प्रथम उन्ही के द्वारा रचा जाना और बाद मे किंचित् परिवतन के साथ उनका तुलसीदास के काव्य मे सम्मिलित किया जाना सर्वथा संभव है। यह कथन केवल अनुमान पर ही आधारित नही है, वरन् दोनो कवियो की भाषा, शैली, उनके भाव और आगे-पीछे के पदानुगत क्रम से भी इसकी पुष्टि होती है। सूर-काव्य मे जहाँ पर ये पद दिये गये है, वहाँ पर आगे पीछे के पदो के देखने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ये पद भी सूरदास कृत है।

रूप-वर्णन—

काव्य मे मानवीय और प्राकृतिक दो प्रकार के रूप का वर्णन होता है। मानवीय रूप का जैसा अपूर्व कथन सूर-काव्य मे हुआ है, वैसा अन्यत्र मिलना कठिन है। सूरदास ने कृष्ण, राधा और गोपियो के स्वरूप वर्णन मे मानवीय सौन्दर्य की चरम सीमा दिखला दी है। उन्होने भौतिक चक्षुओं के अभाव मे भी मानव के सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य को जितनी बारीकी से देखा है, वैसा कोई नेत्र वाला कवि भी आज तक नही देख सका है। यही कारण है कि सूर-काव्य के साधारण पाठक को ही नहीं, वरन् बडे-बडे विद्वानों को भी यह संदेह होने लगता है कि इस प्रकार के सांगोपांग वर्णन करने वाला कवि जन्मांध

कैसे हो सकता है ! सूर-काव्य के रूप-वर्णन की यह विशेषता किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखती ।

सूरदास ने राधा-कृष्ण के सौन्दर्य सूचक अगणित शब्द-चित्रों में सोफियानी और चटकीले सभी प्रकार के रंगों का उपयोग किया है। उनके बहुरंगी चित्रों में कहीं प्रसाद गुण युक्त सीधे-सादे कथन का सोफियानापन है, तो कहीं अलंकृत एवं चमत्कृत उक्तियों का चटकीलापन भी है। सूर-काव्य के पाठकों पर इन बहुरंगी शब्द-चित्रों का ऐसा अद्भुत प्रभाव पड़ता है कि उनका रसास्वादन करते हुए वे स्वयं चित्रवत् हो जाते हैं !

मानवीय रूप-वर्णन में सूरदास ने प्रायः परंपरागत उपमानों का उपयोग किया है, किंतु उनकी बहुमुखी प्रतिभा और उद्भावनापूर्ण कल्पना के कारण उनके कथन में अपूर्व चमत्कार उत्पन्न हो गया है। उनकी सौन्दर्यानुभूति और निरीक्षण शक्ति के कारण उनके काव्य में मानव-सौन्दर्य के साथ ही साथ मानव प्रकृति का भी जैसा स्वाभाविक कथन हुआ है, उसने सूरदास को संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में आदर पूर्ण स्थान दिया है।

सूरदास ने राधा-कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर बार-बार इतना अधिक लिखा है कि कतिपय अरसिक व्यक्तियों को उसमें पुनरुक्ति का आभास होने लगता है ! ऐसे व्यक्ति शायद यह नहीं जानते कि सौन्दर्य कि विशेषता ही इसमें है कि वह प्रति क्षण नवीन दिखलाई दे—' क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताय "। सूरदास अपने आराध्य देव के प्रति क्षण नवीनता प्राप्त रूप की रमणीयता का आस्वादन करते हुए कभी तृप्त ही नहीं होते थे। उनकी अतृप्त वाणी आकुलता पूर्वक बार-बार कुछ कहने के लिए छटपटाती रहती थी। इस छटपटाहट के कारण वे नित्य नये पदों की रचना द्वारा अपने इष्टदेव के स्वरूप का गायन किया करते थे, किन्तु इतना अधिक कथन करने पर भी उनको ऐसा लगता था कि उनकी वाणी में कहने की सामर्थ्य ही नहीं है। अपनी मानसिक दशा को उन्होंने स्वयं निम्न पद में इस प्रकार व्यक्त किया है—

सखी री ! सुंदरता कौ रंग।
छिन-छिन माँहि परत छवि औरै, कमल-नैन के अंग ।।
परमित करि राख्यौ चाहति हौ, तुम्ह लगि डोलै संग।
चलत निमेष विसेष जानियत, भूलि भई मति भंग ।।
स्याम सुभग के ऊपर वारौं, आली कोटि अनंग।
"सूरदास" कछु कहत न आवै, गिरा भई गति पंग ।।

अपने आराध्य देव की रूप रस-माधुरी मे मत्त होकर वे जीवन भर इसी प्रकार के गीत गाते रहे। जब उनके इस कथन मे शिथिलता आने लगी, तब निम्न पद का गायन करते हुए उनके प्राण-पखेरू भी उड गये—

खंजन नैन रूप-रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते॥
चलि-चलि जात निकट स्रवनन के, उलटि पलटि ताटंक फँदाते।
"सूरदास" अंजन गुन अटके, नतरु अबहि उडि जाते॥

सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाल-छवि कथन के साथ अपने रूप वर्णन का आरंभ किया है। प्रारंभ मे उन्होने बाल-लीला जनित स्वाभाविक सौन्दर्य के सीधे-सादे चित्र अंकित किये हैं। इसके उपरांत उनकी मति अपने इष्टदेव के रूप-वर्णन मे अधिकाधिक रमती गयी, जिसके फल स्वरूप उनके कथन की शैली ने भी अधिकाधिक चमत्कृत और अलंकृत रूप धारण किया। उनकी प्रतिभा पग पग पर नवीन उद्भावनाओं द्वारा नित्य नूतन सौन्दर्य की सृष्टि करती थी। भावो की तीव्रता ने कही कही पर उनकी कल्पना को दुरूहता भी प्रदान की है। ऐसे प्रसगो पर उन्होने गूढ दृष्टकूटो मे अपना रहस्यपूर्ण कथन किया है। उन्होने उपमा, उत्प्रेक्षा, साग रूपक और रूपकातिशयोक्ति द्वारा अपने कथन को सजीवता प्रदान की है। इस प्रकार की उक्तियो मे उनका कलात्मक रूप निखर आया है।

सूर-काव्य का मानवीय रूप वर्णन अपनी काव्यगत विशेषताओं के लिए जग विख्यात् है। सूर-सहित्य के विद्वानो ने विस्तृत रूप से इसकी आलोचना की है। हमने भी गत पृष्ठो मे इस पर कुछ प्रकाश डाला है। ऐसी दशा मे तत्सबधी सूर-काव्य की विशेषता पर और अधिक लिखना पिष्ट पेषण करना है।

प्रकृति-निरीक्षण—

सूर-काव्य के मानवीय रूप-वर्णन के पश्चात् मानवेतर अर्थात् प्राकृतिक रूप-वर्णन के सबध मे लिखने की आवश्यकता है। सूरदास ने मानवीय रूप का जैसा व्यापक कथन किया है, वैसा प्राकृतिक रूप का नहीं किया है। फिर भी उन्होने इस सबध मे जो कुछ कहा है, उसका महत्व इसलिए अधिक है कि ब्रजभाषा साहित्य मे इस विषय पर सर्व प्रथम उन्हीं का विस्तृत विवरण प्राप्त है।

सूरदास ने स्वतत्र रूप से प्रकृत्ति-निरीक्षण नही किया है, वरन् उन्होने अपने प्रमुख विषयो के सहायक रूप मे इसका कथन किया है। काव्य शास्त्र के अनुसार प्राकृत्तिक दृश्य श्रृंगार रस के उद्दीपन विभाव के अतर्गत आते है क्यो कि प्राकृत्तिक सौन्दर्य से नायक-नायिका के रति भाव को उत्तेजना प्राप्त होती है। सूरदास ने भी अधिकतर प्रकृति के उद्दीपक रूप का ही कथन किया है। उनके पश्चात् इस प्रकार के कथन की परपरा ही चल पडी, जिसके कारण ब्रजभाषा के विशाल श्रृंगार साहित्य मे प्रकृत्ति निरीक्षण के कथन प्राय. उद्दीपक रूप मे ही प्राप्त होते है।

सूरदास के निम्न लिखित पद मे प्रकृत्ति के उत्तेजक प्रभाव का कैसा स्पष्ट वर्णन मिलता है—

बात बूझतहिं यो बहरावति।
सुनहु स्याम वै सखी सयानी, पावस रितु राधहिं न बतावति।
घन गरजत तौ कहत कुसलमति, गूंजत गुहा सिंह समुझावति॥
नहि दामिनि, द्रुम-दवा सैल चढ़ी, फिरि बयारि उलटी झर लावति।
नाहिन मोर रटत पिक-दादुर, ग्वाल-मंडली खगन खेलावति॥

सूर-काव्य के अधिकांश भाग का विकास प्रकृत्ति देवी के कामनीय क्रीडा-स्थल ब्रजभूमि के विस्तृत प्रागण मे हुआ है; जहाँ पर जमुना है और उसके निकटवर्ती वृदावन के रमणीक बन-उपवन है, जहाँ पर गिरि गोवर्द्धन और उसकी सुंदर कंदराएँ है, जहाँ पर करील के सघन कुज और कदब के सुवासित वृक्ष है, जहाँ पर मोर-कोकिल आदि पक्षियो का मधुर कल रव गूंजा करता है। ऐसे प्राकृत्तिक वातावरण से सूर काव्य का प्रभावित होना स्वाभाविक है। सूरदास ने अपने कथन मे जिन उपमाओ, उत्प्रेक्षाओं और रूपकों का प्रयोग किया है, उनमे ब्रज का प्राकृत्तिक रूप झलका पड़ता है।

राधा-कृष्ण के संयोग श्रृंगार का विकास वृदावन के निकटवर्ती यमुना-पुलिन के लता-कुंजों में होता है, जहाँ का प्राकृत्तिक वैभव युगल प्रेमियो के संयोग-सुख में स्वाभाविक वृद्धि करता है। राधा और गोपियों का वियोग श्रृंगार भी उसी क्षेत्र में विकसित होता है, जहाँ के प्राकृत्तिक दृश्य उनके विरह को तीव्रतर करने की क्षमता रखते हैं। इस प्रकार सूर का प्रकृत्ति निरीक्षण उनके लीलात्मक कथन का सदैव सहायक रहा है।

चरित्र–चित्रण—

सूर-काव्य का अधिकांश भाग श्रीनाथ जी के कीर्तन के लिए रचा गया था, अतः वह मूल रूप मे मुक्तक काव्य जैसा है। मुक्तक काव्य मे प्रबंध काव्य की तरह कथा के क्रमबद्ध कथन और पात्रो के चारित्रिक विकास पर ध्यान नही दिया जाता है, किंतु सूर-काव्य मे कृष्ण-लीला गायन के कारण कथा का संयोजन और चरित्रों का कथन भी हुआ है।

सूरदास ने कृष्ण-लीला का क्रमबद्ध गायन किया हो, इसकी संभावना कम है, किंतु पुष्टि संप्रदाय की नित्य और नैमित्तिक सेवा-विधि तथा भागवत की कथा के अनुसार विविध अवसरों पर सहस्त्रों पदो के गायन द्वारा उनके काव्य मे कृष्ण-लीला के प्रायः सभी प्रसंगों का वर्णन हो गया था, जिनका बाद में क्रमबद्ध संकलन हुआ होगा। यह संकलन सूरदास के समय में हुआ अथवा उनके पश्चात्–यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता; किंतु इस समय सूर-काव्य का जो स्वरूप उपलब्ध है, उसमें कथा का क्रम और चरित्रो का विकास भी दिखलायी देता है।

भक्त कवि होने के कारण सूरदास ने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर ही अपने काव्य की रचना की थी। फलत उनके पात्रों के चारित्रिक विकास में भी इसी भावना का प्राधान्य है। सूर-काव्य के पात्रो मे नंद-यशोदा वात्सल्य भक्ति के, गोप गण सख्य भक्ति के और राधा-गोपी मधुर भक्ति के प्रतीक है। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि भक्ति के ये विविध रूप पुष्टि संप्रदाय मे मान्य है। उक्त पात्रो के चारित्रिक कथन के कारण ही सूर-काव्य इतना रोचक और उपादेय बन सका है। सूर-काव्य की विशेषताओ में इन पात्रों के चरित्र चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान है। सूरदास के प्रधान पात्र श्रीकृष्ण, राधा-गोपी, नंद-यशोदा, बलराम तथा गोप गण है, जिनके चरित्रो की यहाँ पर संक्षिप्त आलोचना की जाती है।

श्री कृष्ण—सूर-काव्य के नायक ही नहीं, वरन् सूरदास के आराध्य देव भी हैं, इसलिए कवि ने इनके चरित्र का गायन बडे मनोयोग पूर्वक किया है। सूर-काव्य के समस्त पात्रो मे श्री कृष्ण की प्रधानता ही नहीं है, वरन् उन पात्रो के चरित्र भी कृष्ण-चरित्र में गुथे हुए है। सूर-काव्य में से कृष्ण-चरित्र को निकाल देने से अन्य पात्रो के चरित्र-कथन का कोई महत्व नही रह जाता है।

सूरदास के कृष्ण परम सुंदर, स्वस्थ और चंचल प्रकृति के नटखट बालक है। एक समृद्ध ग्रामीण परिवार के बालक की तरह उनका लालन-

पालन बडे लाड-चाव से हुआ है। वृद्धावस्था की सतान होने के कारण वे अपने माता-पिता के तो दुलारे है ही साथ ही उनके श्याम सुदर स्वरूप मे कुछ ऐसा अद्भुत आकर्षण है कि वे ब्रज के समस्त नर-नारी, यहाँ तक कि पशु पक्षियो को भी, अपनी ओर इतना आकर्षित कर लेते है कि उनको देखे बिना उन्हे चैन नहीं पडता है। जब तक कृष्ण ब्रज मे रहे, वहाँ के निवासी गण उनके सहवास-सुख से परमानदित होते हुए अपने को भूले रहे। जब वे ब्रज को छोड कर मथुरा और द्वारिका चले गये तब उनकी विरह-व्यथा मे व्यथित ब्रजवासी अपने जीवन को भार समझने लगे।

श्री कृष्ण की बाल लीलाओ के कथन मे सूरदास ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। इस सबध की कोई बात उनसे छूटने नहीं पाई है। बालक कृष्ण की प्रत्येक चेष्टा का उन्होने अत्यत स्वाभाविक और विशद वर्णन किया है। कृष्ण अपनी बाल-क्रीडाओ से नद-यशोदा को परम आनदित करते है। वे नाना भाँति के खेल कूद और आमोद-प्रमोद द्वारा गोप-बालको को और अपने रूप लावण्य एव चचल प्रकृति से गोप बालिकाओ एव गोपागनाओ को परम सुख प्रदान करते है। वे ब्रज नारियो के घरो मे घुस कर उनका दही माखन चुरा कर खा जाते है। वे पनघट और यमुना-तट पर उनको परेशान करते है। वे एकात बन मे जाती हुई गोपियो को रोक कर उनसे 'दान' माँगते है और उनके आना-कानी करने पर उनके दधि-भाजनो को तोड डालते है। कृष्ण की इन छेडखानियो के कारण गोपियाँ बाहरी मन से रोष भी प्रकट करती है, किंतु वास्तव मे उनको इनसे सुख मिलता है और वे बार-बार इस प्रकार तग होने मे अपना अहो भाग्य मानती है।

कृष्ण वशी बजाने की कला में अत्यत निपुण है। वे जब वशी बजाते है, तब समस्त ब्रज को आनद-विभोर कर देते है। उनकी वशी के मधुर स्वर को सुन कर ब्रज-गोपियाँ मत्र-मुग्ध की तरह उनकी ओर खिंची चली आती है। वे शरद ऋतु की उजेली रात मे नाना प्रकार के गायन, वादन और नृत्य द्वारा उनका मनोरंजन करते है। वे यशोदा के लिए अबोध बालक है, किंतु गोपियो के साथ प्रगल्भ तरुण नायक का सा व्यवहार करते है

उन्होने अल्पायु मे ही बलशाली दैत्यो का सहार और खेल-कूद मे ही कालिय-दमन जैसा भयानक कार्य कर डाला था। उन्होने बात की बात मे कंस जैसे पराक्रमी योद्धा को उसके प्रबल साथियो सहित मार डाला था।

उनके अमानुषी कृत्यों से प्रभावित होकर ब्रजवासी उनको एक क्षण के लिए अवतारी पुरुष समझने लगते है, किंतु दूसरे ही क्षण उनके साधारण बालोचित कार्यों से मोहित होकर उनको अपना सखा और साथी ही मानते है।

जब कृष्ण अक्रूर के साथ ब्रज से मथुरा जाने लगते है, तो उनके स्वभाव मे अद्भुत परिवर्तन दिखलायी देता है। उनके बिछुडने से ब्रज के समस्त नर-नारी परम दुखित होकर आर्त्त-नाद करते है, किंतु कृष्ण अपने बालपन के साथियो को छोडने पर तनिक भी विचलित होते हुए दिखलायी नही देते है। उनका चंचल और अनुरागी स्वभाव सहसा धीर, गभीर और अनासक्त बन जाता है। मथुरा मे कंस को मारने के उपरात वे नद और गोपो को अत्यत निठुर भाव से ब्रज को वापिस भेज देते है और आप मथुरा की राजनीति मे रम जाते हे। ब्रज के अत्यत निकट रहते हुए भी वे वहाँ जाने का नाम भी नही लेते है।

कृष्ण की अनुपस्थिति मे ब्रज की दयनीय दशा का सूरदास ने अति करुणापूर्ण वर्णन किया है। नद-यशोदा, गोप-गोपियाँ और राधा—सभी ब्रजवासी कृष्ण के विरह-सताप से व्याकुल है, किंतु कृष्ण को उनकी याद तक नहीं आती है। बहुत दिनो बाद जब उनको ब्रज की याद आयी, तब उन्होंने ब्रजवासियो के परितोष के लिए उद्धव को वहाँ पर भेज दिया। उद्धव-गोपी सवाद का कथन सूरदास ने बडे विस्तार पूर्वक किया है। इस अवसर पर गोपियों ने जो मार्मिक वचन कहे है, उनसे कृष्ण के प्रति उनका निश्छल अनुराग प्रकट होता है। उद्धव गोपियो को समझाने आये थे, किंतु उनकी दशा को देख कर वे इतने प्रभावित हुए कि वापिस पहुँचने पर वे स्वय कृष्ण से ब्रज जाने का आग्रह करने लगे। कृष्ण तब भी ब्रज नहीं गये, किंतु उस समय उन्होंने ब्रजवासियो के प्रति जो शब्द कहे है, उनमे उनकी सहृदयता का फिर परिचय मिलता है।

मथुरा से सुदूर द्वारिका जाते हुए भी वे ब्रजवासियों से नहीं मिले। द्वारिका मे रहते हुए उन्होंने रुक्मिणी से विवाह किया और वे दाम्पत्य एव गार्हस्थिक सुखो का उपभोग करने लगे। द्वारिका के राजाधिराज रूप का वर्णन सूरदास ने अत्यत सक्षिप्त रीति से किया है। उनके वर्णन को पढने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कृष्ण के इस रूप के प्रति सूरदास को कोई आकर्षण नही है। सुदामा के दारिद्र-भजन प्रसग मे सूरदास का मन कुछ रमता हुआ सा ज्ञात होता है, क्यो कि इससे उनको कृष्ण की भक्त वत्सलता के कथन करने का अवसर मिलता है।

बहुत वर्षों बाद द्वारिका मे रुक्मिणी ने बातों ही बातो मे कृष्ण को ब्रज की याद दिलादी थी। उस समय वे पुरानी बातो को याद कर विह्वल से हो जाते हैं। वे ब्रजवासियो से मिलने का सुयोग सोचने लगते है। उस समय सूर्य-ग्रहण पर्व पर वे यादवो सहित कुरुक्षेत्र जाते है और अपना दूत भेज कर वहीं पर ब्रजवासियो को भी बुलवा लेते है। वर्षो बाद नंद, यशोदा, राधा और गोप-गोपियो को श्रीकृष्ण से पुन मिलने का क्षणिक सौभाग्य प्राप्त होता है। उनको विदा करते समय श्रीकृष्ण उनसे अपने दैवी रूप के अनुकूल कथन करते है। सूरदास ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है —

ब्रजवासिन सो कह्यौ, सबन ते ब्रज-हित मेरे।
तुम सो मै नहिं दूर, रहत सबहिन के नियरे॥
भजै मोहि जो कोइ, भजौ मै तिनको भाई।
मुकुर मॉहि ज्यो रूप, आपुने सम दरसाई॥
ये कहि सुमरे सकल जन, नैन रहे जल छाय।
"सूर" स्याम कौ प्रेम कछु, मोपै कह्यौ न जाय॥

सूरदास द्वारा कथित कृष्ण-चरित्र की यह संक्षिप्त रूप-रेखा है। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास ने श्रीकृष्ण की ब्रज-लीलाओ का जैसा उत्कृष्ट एव विस्तृत कथन किया है, वैसा उनके मथुरा एव द्वारिका के चरित्रों का नहीं। वास्तव मे सूर-काव्य के नायक ब्रजवल्लभ कृष्ण है, मथुरानाथ अथवा द्वारिकाधीश कृष्ण नहीं।

सूरदास ने श्रीकृष्ण के अद्भुत चरित्र का विचित्र ढंग से कथन किया है। एक ओर वे साधारण बालक के समान श्रीकृष्ण के कार्य-कलाप का कथन करते है, तो दूसरी ओर वे उनके अलौकिक कृत्यों का वर्णन करते है। एक ओर वे उनके अनुरागी और सहृदय स्वभाव का परिचय देते हैं, तो दूसरी ओर वे उनके विरक्त और निठुर रूप का कथन करते हैं।

श्रीकृष्ण के परस्पर विरुद्ध चरित्र-कथन का कारण सूरदास की सैद्धांतिक मान्यता है। श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य होने के कारण सूरदास शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुयायी थे। इस सिद्धांत के अनुसार श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म है। वे निर्गुण और निराकार होते हुए भी सगुण और साकार हैं। उनमे समस्त परस्पर विरुद्ध धर्मों का आश्रय है, इसलिए उनकी लीलाएँ अद्भुत और विचित्र हैं। सूरदास ने उनके चरित्र में दैवी और मानुषी गुणों का सम्मिश्रण कर उनके इसी रूप का प्रतिपादन किया है। उन्होंने स्वय कहा है—

वेद-उपनिषद् जस कहैं, निर्गुणहिं बतावै। सोइ सगुण होय नंद के, दॉवरी बँधावै॥

राधा और गोपियाँ—सूर-काव्य के पात्रो मे कृष्ण के उपरांत राधा और फिर गोपियो का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । सूरदास ने अपनें अधिकांश कथन की प्रेरणा भागवत से प्राप्त की थी—"सूर कहौ क्यो कहि सकै, जन्म-कर्म अवतार । कहै कछुक गुरु-कृपा नें श्रीभागवत अनुसार ॥" भागवत में गोपियो का कथन बड़े विस्तार पूर्वक किया गया है, किंतु उसमे राधा के विषय मे कुछ भी नही लिखा गया है । सूरदास से पहले "ब्रह्मवैवर्त पुराण" तथा कुछ अन्य धार्मिक ग्रथो मे राधा के लिए निश्चित स्थान बन चुका था । ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होने उक्त ग्रथो के आधार-सूत्रो मे अपनी मौलिक उद्भावनाओ को जोड कर राधा के चरित्र को पिरोया है । सूर-काव्य मे राधा के चरित्र का ऐसा आकर्षक और सरस ढाँचा प्रस्तुत किया गया कि बाद में वह कृष्ण-चरित्र का एक आवश्यक अग माना जाने लगा । यहाँ तक कि ब्रजवल्लभ कृष्ण के चरित्र की पूर्णता राधा के बिना असभव ज्ञात होने लगी ।

सूर-काव्य की प्रधान नायिका राधा है, जो परम सुंदरी गोप-बालिका है । उसका वर्ण गौर है और उसके प्रत्येक अंग की शोभा अनुपम है । सूरदास ने अगणित पदो मे राधा के रूप-लावण्य का गायन किया है । उन्होने उसके प्रत्येक अंग का विस्तृत कथन किया है, किंतु उसके नेत्रो की छवि का वर्णन करने मे उनके कथन की चरम सीमा है ।

राधा का आरंभिक चित्रण एक चचल और वाचाल किशोरी के रूप मे हुआ है । बचपन के खेल-कूद मे ही राधा और कृष्ण परस्पर आकर्षित हो जाते है । धीरे-धीरे यह आकर्षण सुदृढ़ प्रेम मे परिवर्तित हो जाता है । सूरदास ने युगल प्रेमियो की विविध चेष्टाओ के अगणित मनोरम शब्द-चित्र अंकित किये हैं । उनके सयोग, वियोग, मान, उपालभ आदि का विस्तृत कथन किया गया है । सूरदास ने राधा के साथ कृष्ण का विवाह भी कराया है, अत: वह आरभ से अत तक स्वकीया नायिका के रूप मे चित्रित की गयी है ।

सूर-काव्य मे गोपियो का चरित्र भी बड़ा अद्भुत है । आरभ में वे नंद-यशोदा के नव जात शिशु के रूप में कृष्ण के प्रति आकर्षित होती हैं । कृष्ण की बाल-क्रीडाओ मे उनको अपूर्व सुख मिलता है । कृष्ण कुछ बडे होने पर उनके घरो मे जाने लगते हैं और अपनी चचल एव नटखट प्रकृति का परिचय भी देते है । धीरे-धीरे उनका नटखटपन बढ़ने लगता है । वे गोपियो के सूने घरों में घुस कर उनका माखन चुरा कर खा जाते हैं । उनके पात्रों को

तोड डालते है। पनघट पर, यमुना तट पर, यहाँ तक कि राह-बाट पर भी वे उनको परेशान करते है। इन परेशानियों के बीच मे भी गोपियाँ अपूर्व सुख का अनुभव करती है, बल्कि वे जान-बूझ कर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है कि उनका प्यारा कन्हैया उनको अधिकाधिक परेशान किया करे। वे यशोदा से कृष्ण की कभी-कभी शिकायत भी करती है, किंतु वहाँ से प्राय उनको निरुत्तर ही लौटना पडता है।

अकेले कृष्ण ब्रज की सहस्रों गोपियो के आकर्षण के केन्द्र बने हुए है। प्रौढा, युवती और किशोरी—सभी प्रकार की गोपियाँ अपने-अपने दृष्टिकोण से कृष्ण के प्रति अनुराग रखती है। धीरे-धीरे यह अनुराग सुदृढ प्रेम मे परिवर्तित हो जाता है। तब युवती गण श्रीकृष्ण से ऐन्द्रिय संबंध रखने की भी कामना करने लगती है। श्री कृष्ण के भुवन-मोहन रूप पर आसक्त होकर ब्रज की सहस्रों युवतियाँ रात-दिन उन्हीं के ध्यान मे मग्न रहती है। वे श्री कृष्ण के साथ आमोद-प्रमोद करने के लिए बन-विहार, जल-क्रीडा और रास-विलास के अवसरो की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करती रहती है। जब कभी ऐसे अवसर आते है, तब वे लोक-लाज, कुल-मर्यादा आदि को भूल कर उन्मत्त भाव से कृष्ण की ओर दौड पडती है। और कृष्ण बालक होते हुए भी प्रगल्भ प्रेमी नायक की भाँति उन सब के साथ केलि-क्रीडा करते हैं। गोपियाँ सहस्रों है, उनकी भावनाएँ भी पृथक्-पृथक् है, किंतु अकेले कृष्ण उन सब की मनोकामनाएँ पूर्ण करते है। यह बात कृष्ण के देवत्व को भली भाँति सिद्ध करती है। इसके साथ ही उनकी यह प्रतिज्ञा—"मुझे जो जिस भाव से भजता है, उसको मै उसी भाव से प्राप्त होता हूँ"—कदाचित गोपियो के संबंध में सब से अधिक चरितार्थ होती है।

जहाँ तक कृष्ण के प्रति आसक्ति और उनके साथ केलि-क्रीडा का संबंध है, वहाँ तक गोपियो और राधा मे कोई अंतर नही है। सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य और आत्म संबंध के नाते कृष्ण पर राधा का अधिकार सबसे अधिक है। गोपियाँ स्वयं राधा के गौरव और अधिकार को मानती है, किंतु उनमें पारस्परिक ईर्ष्या अथवा प्रेम-प्रतियोगिता की गंध भी नहीं है। हो भी कैसे, जब सब ही यह अनुभव करती हैं कि कृष्ण उनसे ही सर्वाधिक प्रेम करते है, और दिन-रात उनके ही साथ रहते है।

सहस्रों गोपियों का कथन करते हुए भी सूरदास ने रूप, रंग, आयु और परिस्थिति के अनुसार उनका कोई वर्गीकरण नहीं किया है। उन्होने ललिता,

विशाखा, चंद्रावली आदि कुछ गोपियों के अतिरिक्त औरों का नामोल्लेख भी नहीं किया है। सूरदास की समस्त गोपियाँ समान रूप से सुंदरी और कृष्ण के प्रति अनुरागिणी हैं। उनके इन गुणों में किसी प्रकार का भेद-भाव न रख कर सूरदास ने सामूहिक रूप से उनकी समस्त चेष्टाओं का कथन किया है।

जिस प्रकार राधा और गोपियों ने समान रूप से कृष्ण के संयोग सुख का अनुभव किया, उसी प्रकार उन्होंने उनके वियोग-दुख को भी सहा। किशोरावस्था की चंचल और वाचाल राधा विरहाग्नि में तप कर गंभीर और मूक हो गयी है। उसकी मौनाकृति में मूक वेदना के लक्षण स्पष्ट दिखलायी देते हैं। उद्धव के आगमन पर गोपियों के मध्य में राधा अवश्य होगी, किंतु सूरदास ने राधा को परोक्ष में रख कर केवल गोपियों की उक्तियों का ही कथन किया है। एक प्रकार से यह उचित भी था। गोपियाँ कृष्ण की प्रेमिका थीं और राधा उनकी पत्नी। ऐसी दशा में गोपियों की तरह राधा कृष्ण के प्रति कटूक्तियाँ कह भी कैसे सकती थी!

सूरदास ने कृष्ण-विरह से व्यथित राधा-गोपियों की जिस दयनीय दशा का वर्णन किया है, उससे कृष्ण के प्रति उनके उत्कट प्रेम का परिचय मिलता है। कृष्ण अपने बाल-जीवन के कुछ वर्षों तक उनके साथ रहे थे। इसके बाद वे उनसे पृथक हुए, तो फिर कभी लौट कर उनके पास नहीं गये, किंतु वे विरहणी ब्रजांगनाएँ जीवन भर उनके नाम की माला जपती रहीं। जीवन के अवसान-काल में कुछ क्षण के लिए उनको कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण के दर्शन प्राप्त हुए थे, किंतु इससे ही उन्होंने अपने को कृतार्थ मान लिया। सूरदास ने राधा और गोपियों के चरित्र-चित्रण में हर्ष और विषाद, अनुराग और विराग का अद्भुत मिश्रण किया है।

नंद-यशोदा—सूर-काव्य के नंद गोकुल के सम्भ्रांत व्यक्ति हैं और यशोदा उनकी धर्मपत्नी है। वयोवृद्ध होने के कारण वे "नंद बाबा" कहलाते हैं। वृद्धावस्था में कृष्ण-बलराम जैसे भुवन-भूषण पुत्रों की प्राप्ति के कारण उनके हर्ष का पारावार नहीं है। कृष्ण-बलराम भी अपनी बाल-क्रीडाओं द्वारा नंद-यशोदा को अहर्निश आनंदित करते रहते हैं।

सूरदास ने नंद-यशोदा का जैसा चित्रण किया है, उससे दम्पति के स्वभाव की उदारता, सरलता और निरभिमानता प्रकट होती है। पूतना जैसी दुष्टा नारी का सत्कार करना और निस्संकोच भाव से अपने पुत्र को उसे दे देना तथा अक्रूर के कुचक्र की छानबीन किये बिना ही उसके साथ अपने प्राण

प्यारे पुत्रों को सदा के लिए भेज देना आदि बातें यशोदा और नंद की निष्कपट सरल प्रकृति की परिचायक है ।

सूर काव्य मे नंद स्नेही पिता और यशोदा स्नेहमयी माता के रूप मे ही सर्वत्र दिखलायी देते है । उनके हृदय वात्सल्य रस मे परिपूर्ण हैं। अपने पुत्रों के अनिष्ट की काल्पनिक आशका से भी उनके कोमल हृदयों को भारी धक्का पहुँचता है । जब कभी कृष्ण-बलराम खेल-कूद मे घर से दूर चले जाते हैं, तब वे नाना प्रकार की शकाएँ करने लगते हैं।

कृष्ण की चचल प्रकृत्ति और उनके नटखट स्वभाव ने ब्रज की समस्त गोपियो को परेशान कर दिया था । वे उनके दधि-माखन की चोरी ही नही करते थे, वरन् उनके दधि-भाजनों को भी तोड़ डालते थे । गोपियाँ नदालय मे जाकर यशोदा से शिकायत करती थी, किंतु सरल प्रकृत्ति की स्नेहवती माता को यह विश्वास ही नही होता था कि उसका अबोध और भोला-भाला बालक इस प्रकार की दुर्घटनाएँ कैसे कर सकता है ! कई बार गोपियों ने कृष्ण के अपराध को प्रमाणित भी कर दिया, किंतु यशोदा ने गोपियों को समझा-बुझा कर टाल दिया । यशोदा की समझ में यह नही आता था कि उसके घर मे दही-माखन का अपार भडार होते हुए भी उसका कन्हैया दूसरों के घरों मे चोरी करने क्यों जाता है !

जब कृष्ण का नटखटपन सीमा से बाहर हो गया और यशोदा उनको समझा कर हार गयी, तब सहज क्षमाशील और स्वाभाविक स्नेहवती माता सहसा कुपित होगयी । उसने रोष पूर्वक कृष्ण के दोनो हाथो में रस्सी बाँध कर उन्हे ऊखल से बाँध दिया और आप हाथ मे "सांटी" लेकर उनको धमकाने लगी । बेचारे कृष्ण हिचकियाँ लेकर रोने लगे ।

यशोदा के इस अभूतपूर्व रौद्र रूप को देख कर गोपियाँ पश्चात्ताप करने लगी । उनको यह विश्वास नही था कि उनके साधारण उपालभ पर यशोदा उनके प्यारे कन्हैया को इस प्रकार का कष्ट देगी । गोपियों ने विनय पूर्वक यशोदा से कृष्ण के हाथ खोल देने को कहा; किंतु यशोदा ने उनको भी फटकार दिया ! जब इस घटना के फल स्वरूप यमलार्जुन के विशाल वृक्ष गिर पड़े और यशोदा ने अपने प्राणाधिक कृष्ण को बाल-बाल बचते हुए देखा तो उसका क्रोध सहसा शांत होगया । उसने दौड़ कर कृष्ण को छाती से लगा लिया और उक्त कृत्य के कारण अपने को धिक्कारने लगी । इसके बाद यशोदा ने फिर कभी कोप नही किया ।

जब कृष्ण-बलराम अक्रूर के साथ मथुरा चले गये और नंद उनको वापिस लाने में असमर्थ हुए, तो यशोदा का कोप एक बार फिर उमड पडा। अपने पुत्रों को मथुरा छोड आने के कारण वह नंद को धिक्कारने लगी और उनको जली-कटी सुनाने लगी। पुत्र-वियोग के कारण बेचारे नंद स्वयं दुखी थे, किंतु जब उन्होंने पत्नी की फटकार सुनी, तो उनको भी क्रोध चढ आया। उन्होंने यशोदा से कहा—"तुम्हारा हृदय अतिशय कठोर है। तुमने प्यारे गोपाल को रस्सी से बाँध कर दुखित किया था। अब उनके चले जाने पर क्यों हाय-हाय मचा रही हो!" सूरदास ने नंद-यशोदा के गृह-कलह के कथन का कृष्ण बलराम के प्रति उनके अपार वात्सल्य की व्यंजना की है।

सूरदास ने नंद-यशोदा के वियोग वात्सल्य विषयक अनेक करुण शब्द-चित्र अंकित किये हैं। जब यशोदा ने अपने प्रतिष्ठित पद को भूल कर देवकी के घर "धाय" बन कर रहने की कामना की थी, तब उसके पुत्र-स्नेह की तीव्रता और इसके कारण उसकी अधीरता एवं उसके आत्म-त्याग का परिचय मिलता है। जब उद्धव ब्रज से मथुरा वापिस जाने लगे, तब उन्होंने यशोदा से कृष्ण के लिए संदेशा देने को कहा। यशोदा ने शाब्दिक संदेश की अपेक्षा उद्धव द्वारा कृष्ण के पास उनकी मुरली भेज कर जो मूक वेदना व्यंजित की है, उसका अनुभव कर पाठक का हृदय फटने लगता है।

अनेक वर्षों के दुखद वियोग के अनंतर कुरुक्षेत्र में नंद यशोदा को अपने प्राण प्यारे पुत्रों से मिलने का अवसर प्राप्त होता है। उस समय उनके पुत्र गोकुल के ग्वाला नहीं थे, वरन् द्वारिका के प्रतापी नरेश थे। दीर्घ कालीन प्रतीक्षा के उपरांत इस क्षणिक भेंट का सूरदास ने अति संक्षिप्त कथन किया है। यद्यपि सूर-काव्य में उस समय नंद-यशोदा की मौनाकृति दिखलायी देती है, तथापि उनके नेत्रों से प्रेम-धारा प्रवाहित हो रही होगी और उनके हृदयों में वात्सल्य रस का सागर उमड रहा होगा!

बलराम और गोप बालक—बलराम रोहिणी के पुत्र और कृष्ण के बडे भाई हैं। कृष्ण की तरह इनका भी आरंभिक लालन-पालन नंद-यशोदा द्वारा गोकुल में हुआ है। वे गौर वर्ण के हृष्ट-पुष्ट बालक हैं। शारीरिक बल में सब से बढ़ कर होने के कारण वे खेल में समस्त गोप बालकों के नेता हैं। वे व्यंग वचन और वक्रोक्तियों से कभी-कभी कृष्ण को चिडाते भी हैं। उन्हीं के इशारे पर गोप बालक भी कृष्ण को तंग करते हैं, किंतु वैसे बलराम कृष्ण से हार्दिक प्रेम रखते हैं।

खेल, गोचारण और दुष्टों के दलन मे बलराम सदैव कृष्ण के साथ रहते है; किंतु राधा और गोपियो के साथ होने वाली कृष्ण की मधुर लीलाओ मे अन्य सखाओं के साथ बलराम दिखलायी नहीं देते है । इन लीलाओ से बलराम को दूर रख कर कृष्ण के शील की ही रक्षा की गयी है ।

ब्रज मे राक्षसो का संहार तथा मथुरा मे कस और उसके साथियो का वध करते समय कृष्ण को बलराम से महत्वपूर्ण सहायता मिलती है । इसके बाद भी जरासंध, शिशुपाल तथा अन्य दुष्ट राजाओं के साथ कृष्ण के युद्ध मे बलराम सबसे आगे रहते है । ब्रज मे एक वार जाने के बाद कृष्ण दुबारा वहाँ पर लौट कर नही गये, किंतु बलराम एक बार द्वारिका से भी ब्रज मे आते है । उस समय वे समस्त ब्रजवासियो से अत्यत प्रेम पूर्वक मिल कर उनको आश्वासन देते है कि कृष्ण शीघ्र उनसे मिलेंगे ।

कृष्ण के खेल-कूद, गोचारण और उनकी अतरग लीलाओं मे कुछ गोप-बालक सदैव उनके साथ रहते हैं । इन अतरगी सखाओ मे सुबल, श्रीदामा आदि मुख्य है । खेल मे श्रीदामा प्रायः कृष्ण का प्रतिद्वंदी रहता है । प्रातःकाल होते ही ये गोप-बालक कृष्ण-बलराम को आकर घेर लेते है और सायकाल तक छाया की तरह उनके साथ लगे रहते हैं । कृष्ण-बलराम को भी अपने सखाओ के साथ खेलने, बन जाने, गोचारण करने और 'छाक' खाने में अत्यत आनद मिलता है । कृष्ण बलराम के मथुरा जाने पर ये गोप-बालक भी मथुरा गये थे, किंतु नद के साथ उनको भी खाली लौटना पडा था । कृष्ण के वियोग मे ये गोप गण भी वर्षो तक कष्ट पाते रहे, अंत मे उनको भी कुरुक्षेत्र में कृष्ण के दर्शन हुए थे ।

बलराम का मुख्य शस्त्र हल है, इसलिए वे हलधर भी कहलाते हैं । कृष्ण की प्रकृति में सतोगुण और रजोगुण की प्रधानता है, किंतु बलराम की प्रकृति तमोगुण प्रधान है । सूरदास की धारणा के अनुसार कृष्ण परब्रह्म और बलराम ब्रह्म के एक अश है । सूर-काव्य में इसी दृष्टिकोण से उनके चरित्र का गायन किया गया है ।

अन्य चरित्र—उपर्युक्त प्रधान चरित्रो के अतिरिक्त सूर-काव्य में और भी अनेक चरित्रों का चित्रण हुआ है । इन चरित्रों मे उद्धव, अक्रूर, वसुदेव, कस, सुदामा आदि पुरुष पात्र और देवकी, रोहिणी, वृषभानु-पत्नी, रुक्मिणी, कुब्जा, चंद्रावली, ललिता आदि स्त्री पात्र विशेष उल्लेखनीय हैं । सूरदास मानव-स्वभाव और मनोविज्ञान के अपूर्व ज्ञाता थे । यही कारण है वे अपने सभी पात्रो का चरित्र-चित्रण ऐसी सफलता के साथ कर सके हैं ।

कवि की बहुज्ञता—

सूर-काव्य की अन्य विशेषताओं के साथ उसके कवि की बहुज्ञता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कवित्व शक्ति के साथ काव्यशास्त्र का ज्ञान होने पर भी यदि कवि में विविध विद्या, कला और सांसारिक अनुभव का अभाव है, तो उसका काव्य विशेष प्रभावोत्पादक नहीं हो सकता। सूरदास में जहाँ जन्म-जात कवित्व शक्ति, विलक्षण प्रतिभा और काव्यशास्त्र का अपार ज्ञान है, वहाँ उनमें विविध विद्याएँ, कलाएँ और लौकिक अनुभव भी पर्याप्त परिमाण में दिखलायी देते हैं। यही कारण है कि उनके काव्य का महत्व सर्वोपरि है। सूर-काव्य के पाठक अथवा श्रोता के मन पर सूरदास के इन गुणों की ऐसी गहरी छाप लगती है कि वह उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

सूरदास के जीवन-वृतांत से ज्ञात होता है कि उनको नियमित रूप से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। उनके जन्मांध होने के कारण भी उनको अध्ययन करने में असुविधा थी। फिर सत्संग और निजी अनुभव द्वारा ही ऐसा अपार ज्ञान प्राप्त करना वास्तव में बड़े आश्चर्य की बात है!

हम गत पृष्ठों में बतला चुके हैं कि सूरदास काव्यशास्त्र और संगीत-शास्त्र के अपूर्व पंडित थे। काव्यशास्त्र संबंधी सभी बातों के समावेश और संगीतशास्त्रोक्त अनेक राग-रागनियों के उपयोग के कारण उनका तद्विषयक ज्ञान स्वयंसिद्ध है। उन्होंने अपने काव्य में विविध वाद्य-यन्त्रों और राग-रागनियों का नामोल्लेख भी किया है*। उन्होंने अपने दृष्टकूट पदों में ऐसे अनेक शब्द रखे हैं, जो विभिन्न अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। उन्होंने अपने समस्त काव्य में विविध विषयों से संबंधित विस्तृत शब्दावली का प्रयोग किया है। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास शब्द-कोष के बड़े धनी थे।

उनको विविध अंगों के आभूषण और नाना प्रकार के व्यंजनों से भी परिचय था‡। श्रीनाथ जी की आठों समय की झाँकियों के श्रृंगार और राजभोग विषयक पदों में उन्होंने आभूषणों और व्यंजनों के नाम गिनाये हैं। उनको कृषि, वाणिज्य, ज्योतिष और शकुन विद्याओं का भी यथेष्ट ज्ञान था। उनकी ज्योतिष विषयक जानकारी के संबंध में 'साहित्य-लहरी' का तिथि सूचक पद तथा 'सूरसागर' के कतिपय पद उल्लेखनीय हैं†। उन्होंने रूप-वर्णन की उत्प्रेक्षाओं में भी अपने ज्योतिष ज्ञान का इस प्रकार परिचय दिया है—

* इसी ग्रंथ के पृष्ठ २४८ और ३१५ देखिए।

‡ „ „ „ २४६ देखिए।

† „ „ „ ३ और ११ देखिए।

नील-सेत और पीत-लाल मनि, लटकन भाल रुलाई।
सनि, गुरु-असुर, देव गुरु मिलि, मनु भौम सहित समुदाई ॥

जब कृष्ण गेंद खेलते हुए कालिन-दह में कूद गये, तब यशोदा और नंद को अनेक अपशकुन होने लगे थे। सूरदास के निम्न पदों में उनके तद्विषयक ज्ञान का इस प्रकार परिचय मिलता है—

(१) जसुमति चली रसोई भीतर, तबहिं, ग्वालि इक छींकी।
ठठकि रही द्वारे पर ठाढ़ी, बात नहीं कछु नीकी ॥
आइ अजिर निकसी नँदरानी, बहुरी दोष मिटाइ।
मंजारी आगैं ह्वै आई, पुनि फिरि आँगन आइ ॥
व्याकुल भई, निकसि गई बाहिर, कहँ धौं गए कन्हाई।
बाएँ काग, दाहिनैं खर-स्वर, व्याकुल घर फिरि आई ॥

(२) देखे नंद चले घर आवत।
पैठत पौरि छींक भई बाएँ, दहिनैं धाह सुनावत ॥
फरकत स्रवन स्वान द्वारे पर, गररी करति लराई।
माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ, कुसगुन बहुतक पाई ॥

सूर-काव्य का धार्मिक स्वरूप होने के कारण इसमें धर्म ग्रंथों के तत्व विशेष रूप से मिलते हैं। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास को रामायण, महाभारत, भागवत तथा पुराणोक्त कथानकों के अतिरिक्त गीता, वेदांत, योग तथा विविध दार्शनिक सिद्धांतों का भी पर्याप्त ज्ञान था। यद्यपि सूरदास गृहस्थ नहीं थे, तथापि गार्हस्थिक रीति-रिवाजों और सामाजिक प्रथाओं से वे पूर्णतया परिचित थे। श्री कृष्ण के जात-कर्म, नाम-करण, अन्नप्राशन वर्षगांठ, कर्ण छेदन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारों एवं विविध अवसरों पर आयोजित पूजा, व्रत, उत्सव तथा मनोरंजक प्रसंगों के सांगोपांग कथन करने से उनके तत्संबंधी ज्ञान का यथेष्ट परिचय मिलता है।

इनके अतिरिक्त सूरदास को अन्य विद्याओं और कलाओं का भी पर्याप्त ज्ञान था। सूर-काव्य में स्थान-स्थान पर ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिनसे उनकी विलक्षण बहुज्ञता और उनके प्रकांड पांडित्य का परिचय मिलता है।

सूर-काव्य की विशेषताएँ इतनी अधिक हैं कि उनके संक्षिप्त विवरण के लिए भी यहाँ पर पर्याप्त स्थान नहीं है। सूरदास वास्तव में हिंदी साहित्य-गगन के सूर्य हैं, जो पाठकों और श्रोताओं के मन-मंदिरों को चिर काल तक प्रकाशित करते रहेंगे।

॥ इति ॥

अनुक्रमणिका



१. पदानुक्रमणिका

[पुस्तक में आये हुए पदों की अकारादि क्रम से सूची]

स०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
१.	अति मलीन वृषभानु-कुमारी	२६१
२.	अद्भुत एक अनूपम बाग	३११
३.	अपने-अपने टोल कहत ब्रजवासियाँ ...	२३३
४.	अपुनपौ आपुन जरि मरि है ...	२६५
५.	अपुनपौ आपुनहिं बिसर्यौ . ..	२००
६.	अपुनपौ आपुन ही में पायौ . . .	२०१
७.	अब कै नाथ ! मोहि उधारि	३१०
८	अब तौ साँचौ कलियुग आयौ	२७६
९.	अब मै नाच्यौ बहुत गुपाल . ..	२११
१०.	अब ही जसोदा माखन लाई	२२३
११	अविगत गति कछु कहत न आवै ...	१८६
१२.	अहो मेरी प्रान पियारी	२३७
१३.	आँखिन मे बसै, जियरे मे बसै, हियरे मे बसै निस-दिन प्यारौ ..	२१३
१४	आँगन खेलै नंद के नंदा	३२०
१५.	आँगन स्याम नचावही, जसुमति नँदरानी	२८८
१६.	आज गृह नंद महिर कै बधाई	२३०
१७.	आज दसरथ कै आनद भीर	२४४
१८.	आज दिपत दिव्य दीप-मालिका . .	२४०
१९.	आज बने गिरिधारी दूलहै, चंदन कौ तन लेप किएँ ..	२५१
२०.	आज वृषभान कैं आनंद	२२०
२१.	आज हौं गाय चरावन जैहौं	२३६
२२	आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ .. .	२६१
२३	आजु बने नँदनंदन री नव, चंदन अंग अरगजा लाये ..	२८८
२४.	इहिं बिरियाँ बन तें ब्रज आवते	२८६

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
२५.	उठो इन नैनन अंजन देहु	२७३
२६.	ऊधौ कौ उपदेस सुनो किंनु कान दै	१५६
२७.	ऊधौ ! स्याम इहाँ लौ आवहु	२८५
२८.	एक हार मोहि कहा दिखावति	२५२
२९.	और सकल अंगन तें ऊधौ ! अँखियाँ बहुत दुखारी	२८६
३०.	कथा सुनि तजी मसूर की दाल	२५७
३१.	करति शृंगार मैया मन भावत	२२३
३२	करनी करुनासिंधु की कछु कहत न आवै	१८६
३३.	कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत	२६२
३४.	करुनानिधि ! तेरी गति लखि न परै	१८८
३५.	कहति नंद-घर मोहि बतावहु	२०७
३६.	कहा चाकरी अटकी जन की	२५८, २७५
३७.	कहावति ऐसे त्यागी दानि	७४
३८.	कहा भई धन बावरी, कहि तुमहिं सुनाऊँ	२६८
३९.	कहाँ लौं बरनौ सुंदरताई	३०७
४०.	कहूँ देख्यौ माई, श्री गोकुल कौ बासी	२७२
४१.	कहै न कोई परदेसी की बात	१५२
४२.	किन तेरौ गोविंद नाम धर्यौ	७४
४३.	कृष्ण-भक्ति करि कृष्णहिं पावै	१८६
४४.	कैसे कैसे आये हो पिय, ऐसी दुपहरी तपन में	२२८
४५.	कौन सुकृत इन ब्रजबासिन कौ बदत बिरंचि-सिव सेष	१८७
४६.	खेलत बसंत वर विट्ठलेश राय	६६
४७.	खंजन नैन रूप-रस माते	१०३, ३२५
४८.	गढ़ तें ग्वालिनि उतरी हो, सीस दही कौ माट	२३१
४९.	गयौ कूदि हनुमत जब सिंधु पार	२४०
५०.	गह्यौ कर स्याम भुज मल्ल अपने धाइ	२६०
५१.	ग्वालिन आपु तन देखि, मेरे लाल तन देखिऐ	२७४
५२.	ग्वालिन तैं मेरी गेंद चुराई	२४३
५३.	गागरि नागरि लिएँ पनघट तें चली घरहिं आवै	३०६
५४.	गिरिधरन सैन कीजै आय	२२६

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
५५.	गोकुलनाथ बिराजत डोल	२३६
५६.	गोपी-पद-रज-महिमा विधि भृगु सो कही ...	१६२
५७.	घोष-नागरी-मंडल मध्य नाँचत गिरिधारी लाल	२३३
५८.	चकई री ! चलि चरन-सरोवर, जहाँ नहिं प्रेम-वियोग ...	२७३
५९.	चक्र के धरनहार, गरुड के असवार, नंद के कुमार मेरौ .	२०४
६०.	चटकीलौ पट, लपटानौ कट, बंसीवट जमुना के तट नागर नट ..	३०४
६१.	चरन कमल बंदौं हरिराई	६४
६२.	चन्द्रावली स्याम-मग जोवति	२६६
६३.	छोटी-छोटी गोडियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी, नख ज्योती ...	३२१
६४	जनम सिरानौ अटकैं-अटकैं ...	२६४
६५.	जबहिं कह्यौ ये स्याम नहीं	२८७
६६.	जब संतोष हाकिम आवै, तब काया नगर सुख पावै ...	२५८
६७.	जरी कों जराइबे कों, तती तन ताइबे कों, कटी लौन लाइबे को...	२७८
६८.	जसुमति चली रसोई भीतर, तबहिं ग्वालि इक छोंकी ...	२३८
६९.	जसुमति लै पलिका पौढावति	२८७
७०.	जसोदा मैया काहैं न मंगल गावै	२२५
७१.	जाके हृदै हरि-धर्म नाहीं .	२५५
७२	जागिऐ गोपाल लाल, आनंद-निधि नंद बाल जसुमति कहै...	३०४
७३.	जागिऐ गोपाल लाल, प्रगट भई हंस-माल, मिट्यौ अंध-काल...	३०४
७४.	जानति हौं जैसे गुननि भरे हो .	३००
७५.	जै गोविंद माधौ मुकुंद हरि	२७०
७६.	जैंवत कान्ह नंद जू की कनियाँ ...	२२४
७७.	जो दस-बीस पचास मिलै, सत होय हजार, तौ लाख मँगैगी	२५८
७८.	जो सुख होत गोपालहिं गाये	१४८
७९	जौलौं सत्य स्वरूप न सूझत ८०,	२८०
८०.	झूलै माई गिरिधर सुरंग हिंडोरे	२३९
८१.	तब राधा इक भाव बतावति	२६८
८२.	तौलौं हौं बैकुंठ न जैहौं	२४४
८३.	थकित भए मोहन-मुख-नैन	२६७
८४.	थोरे जीवन भयौ तन भारौ	२६४

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ		पृष्ठ सं०
८५	द्वारे ठाढे है द्विज बामन		२४४
८६	देख री ! एक अद्भुत रूप		३०३
८७.	देखि नृप तमकि,हरि चमक तहाँई गए,दमकि लीन्हौ गिरह		२६०
८८	देखौ मैं लोचन चुअत अचेत ..		२६१
८९	देखे नंद चले घर आवत		३३८
९०	देखे री ! हरि नंगम नंगा		२६८
९१.	देखो अदभुत अविगतकी गति,कैसौ रूप धरयौ है ..	२४४	२६२
९२.	देखो माई ! रथ बैठे गिरिधारी		२२६
९३.	देखो माई ! रथ बैठे हरि आजु		२२६
९४.	देखो माई ! सुंदरता कौ सागर .		३०६
९५	दै मैया री ! दोहिनी दुहि लाऊँ गैया		२२४
९६	द्वै लोचन साबित नहीं तेऊ		६८
९७.	दोउ भैया माँगत मैया पै, दै री मैया ! दधि-माखन रोटी ..		२२३
९८.	दौरि-दौरि आवत,मोहि मनावत,दाम खरच कछु मोल लईरी		१५४
९९.	धरयौ सिर फेटा आज पचरगी		२५१
१००.	नटवर वेष काछे स्याम		३०७
१०१.	नर ! तै जनम पाइ कहा कीनौ		२६४
१०२.	नवल किसोर नवल नागरिया		२६७
१०३	नवल गुपाल, नवेली राधा, नये प्रेम रस पागे .. .		२६६
१०४.	नवल निकुंज, नवल नवला मिलि, नवल निकेतनि रुचिर .		२८४
१०५.	नाथ ! मोहि अब की बेर उबारौ		७६
१०६.	नाम—महिमा ऐसी जानौ		२६६
१०७.	नाहिंन रह्यौ मन मे ठौर		२७३
१०८.	निगम कल्पतरु सीतल छाया		२७६
१०९.	निर्गुन कौन देस कौ बासी ?		२६०
११०.	निपट छोटे कान्ह, सुनि जननी कहूँ बात ...		२७४
१११.	निसि-दिन बरसत नैन हमारे		२८४
११२	नंद जू ! दुःख गयौ, सुख आयौ, सबन दियौ पुत्र-फल ..		५८
११३.	नंद जू ! मेरे मन आनंद भयौ सुनि मथुरा ते आयौ ...		१४६
११४.	नंदनँदन मुख देखौ माई		३११

स०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
११५.	नंदनँदन हँसे नागरी हर्ष चंद्रावलि कंठ लाई	१५०, २१३
११६	पलक ओट नहि होत कन्हाई .	२०७, २६७
११७.	पवित्रा पहरन कौ दिन आयौ	२३०
११८	प्रथमहिं देउँ गिरिहि बहाइ	२६३
११९.	पाये हौ जू जान, लाल ! तुम पाये हौ जू जान .	२७८
१२०	प्यारी अंग शृंगार कियौ	२६६
१२१.	प्रेम में निसि-दिन बसत मुरारी . .	२१३
१२२.	फूलन कौ महल, फूलन की सिज्या, फूले कुंज बिहारी०	२३६
१२३.	बड़ौ निठुर विधना यह देख्यौ . .	२२५
१२४.	बनी मोतिन की माल मनोहर . .	२६८
१२५.	बनी सहज यह लूटि हरि केलि गोपिन के सपुने यह कृपा० .	२०६
१२६.	बरनौं बाल-भेष मुरारि	३०६
१२७.	बरनौं श्री वृषभानु-कुमारि . . .	३०८
१२८.	बलि-बलि चरित गोकुलराय ...	१८६
१२९.	बलि-बलि मदन गोपाल	२५१
१३०	बहुत फिरी तुम काज कन्हाई	२२४
१३१.	ब्रज घर-घर सब होत बधाए	३०४
१३२.	ब्रज बनिता रवि को कर जोरैं ...	२३६
१३३	ब्रजवासिन सो कह्यौ, सबन तें ब्रज-हित मेरे	३३०
१३४.	ब्रज-मंगल की मंगल आरती .. .	२२३
१३५.	ब्रज ही में बसै आपुनहि बिसरायौ .. .	२१२
१३६	बात बूझतहिं यों बहरावति	३२६
१३७	बिकानी हरि-मुख की मुसिकानि	५६
१३८.	बिछुरत श्री ब्रजराज आज सखि ! नैनन की परतीति गई	३००
१३९	बिन गोपाल बैरिन भई कुंजैं .	२८४
१४०	बिनती जन कासो करैं गुसाई ...	२५४
१४१.	बिप्र जी पावन पुन्य हमारे	१४६
१४२.	बिरह बिनु नाँहिन प्रीति की खोज . .	२७२
१४३	भजि सखि ! भाव-भाविक देव ...	६६, २०६
१४४.	भजौ गोपाल भूलि जिनि जावो .. .	२२०

सं०	पदो की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
१४५	भरोसौ दृढ इन चरननि केरौ ..	२१६
१४६.	झहरात झहरात दावानल आयौ ..	२६३
१४७.	भाव बिनु माल नफा नहिं पावै .	२१३
१४८	भोजन करत गोवर्धन धारी	६७
१४९	भोजन भयौ भाँवतौ मोहन . .	१००, २४६
१५०.	मधुकर ! ये नैना पै हारे . ..	२८५
१५१	मधुबन ! तुम कत रहत हरे . .	२८६
१५२.	माई री ! कृष्ण-नाम जब ते स्रवन सुन्यौरी, तब तें भूलीरी	१५४
१५३	माखन-रोटी लेउ कान्ह बारे .	२२६
१५४.	माधौ जू ! मन माया बस कीन्हौ . ..	२६४
१५५	मिलिवौ नेनन ही कौ नीकौ . ..	२७२
१५६	मिलौ गोपाल सोई दिन नीकौ ...	११, २७२
१५७	मुनि पुनि रसन कौ रस लेख .	३, १५२
१५८.	मुरली सुनत अचल चले	२६२
१५९.	मेघ दल प्रबल ब्रज-लोग सब देखे	२६३
१६०	मेरे आए मोर प्यारे, वाके सब निसि जागे .	२७८
१६१	मेरे आगे महरि यसोदा, मैया री ! तोहि गारी दीन्हीं	२८९
१६२	मेरें कुँवर कान्ह बिन सब कछु वैसैहि धरयौ रहै	२८९
१६३	मेरे जीय सु ऐसी आय बनी	५९
१६४	मेरे मन इतनी सूल रही	२८५
१६५	मेष सी अचल कहा बैठी वृषभानु लली, मिथुन के काजै० ...	१५५
१६६	मैया ! मैं नही माखन खायौ	२८९
१६७	मै योगी यस गाया रे बाला ! मै योगी यस गाया ..	२८२
१६८	मोर-मुकुट कटि काछनी, जननी पहरावै	२५०
१६९.	मोहन निरखि सिहाई अँखियाँ .	२५२
१७०.	यद्यपि मन समुझावत लोग	२८८
१७१.	यमुना-जल गिरिधर करत बिहार	२४३
१७२.	यसोमति जब ही कह्यौ न्हावन, रोय गंथ हरि लोटत री ..	२२३
१७३.	यह ऋतु रूसिवे की नाँहीं	२६३
१७४.	यह कहि मुख, मन सोचई, भई सौत हमारी	२६८

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
१७५	यह सुनि चकृत भई' ब्रज-बाला	२६६
१७६	यामै कहा घटैगौ तेरौ	२१८
१७७.	रसना जुगल रसनिधि बोल	३०७
१७८	रही जहाँ सो तहाँ सब ठाढी	२८७
१७९.	राखी बँधावत मगन भए	२४०
१८०.	राखो तैसे रहो जैसे, तुम राखो तैसे रहो	२५६
१८१,	राधा रचि-रचि सेज सँभारति	२९९
१८२.	राधिका-गेह हरि देह बासी	२१२
१८३	राधे ! तेरौ बदन बिराजत नीकौ	३०५
१८४.	रिझवति पिय ही बारबार	२३७
१८५.	रीझे परसपर नर-नारि	२३७
१८६	रुँधे रति-संग्राम खेत नीके	२९१
१८७.	रूप-रस पुंज बरनौं कहा चातुरी	२०८
१८८.	ललित लाज कौ सेहरौ, जगमग रह्यौ मेरी माई .	२५०
१८९	ललिता ललित बजाय रिझावत, मधुर बीन कर	२४८, ३१५
१९०	लाल कौ फेटा ऐंठा अमेठा बन्यौ, भ्रकुटी भाल पर ..	२५१
१९१.	लाल ! तेरी बंसी नैक बजाऊँ	२१४
१९२.	लालै नाँहि जगाय सकत, सुन जो बात सजनी ...	२२२
१९३	वह देखो नद कौ नंदन आवत	२२५
१९४	वा पट पीत की फहरानि	२२९
१९५	श्री कृष्ण-नाम रसना रटै, सोई धन्य कलि में	२६५
१९६.	श्री वल्लभ अब की बेर उबारो	२१६
१९७.	श्री बल्लभ भले-बुरे तोऊ तेरे .. .	२१६, २५४
१९८.	श्री भागवत सकल गुन-खानि	१२३
१९९.	श्री यमुना जी ! अपुनौ दरस मोहि दीजै	२६९
२००.	श्री यमुने ! पतित पावन करेउ	२६९
२०१	सखियन संग राधिका बींनत, सुमनन बन माँह	२३२
२०२.	सखीरी ! नदनंदन देखु	३०९
२०३.	सखी री ! सुन परदेसी की बात ...	१५१
२०४.	सखी री ! सुंदरता कौ रंग	३२४
२०५	सब दिन तुम ब्रज मे रहो हरि, होरी है, कबहु न मथुरा ..	२४१

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०
२०६	स्याम अचानक आय गये री	२६८
२०७.	स्याम भए राधा बस ऐसे .	३०५
२०८.	स्यामा जू ! होरी खेलन आई	२३६
२०९.	सिखवति चलन जसोदा मैया . .	२८७
२१०.	सिव सों विनय करति कुमारि	२२८
२११.	सुधा-सरोवर छिटकि अनूपम	३०५
२१२.	सुरभी कान्ह जगाय खरिक बल-मोहन बैठे राजत हटरी	२४१
२१३.	सुंदर बदन देख्यौ आज	२५०
२१४.	सुंदर स्याम सलौनौ ढोटा, डारि गयौ मोपै मदन ठगोरी . .	२५२
२१५.	सूर आयौ सीस पर,छाया आई पाँयन तर,पथी सब झुक रहे	१५५
२१६.	सो कहा जू मैं न कियौं,जो पै तुम सोई-सोई चित्त धरि हौं...	२६३
२१७.	सोवत नींद आय गई स्यामहिं .	२२६
२१८.	सोभित कर नवनीत लिएँ	२६८
२१९.	सँदेसौ देवकी सों कहियौ	२८८
२२०.	हमारे माई ! मोरउ बैर परे	२८६
२२१.	हमारैं सब रस गोविंद गीता	२७५
२२२.	हरि के जन की अति ठकुराई . .	२६४
२२३.	हरि जू की बाल-छबि कहौं बरनि . .	३१६
२२४.	हरिजू ! तुम तें कहा न होई	६४
२२५.	हरि परदेस बहुत दिन लाये	३००
२२६.	हरि बिन व्यथा कौन सों कहियै	२१४
२२७	हरि बिन सकट में को का कौ ..	७५
२२८.	हरि-भक्तन को गर्व न करनौ ...	२७७
२२९.	हरि ! मैं तुम सों कहा दुराऊँ	२५७ २५९
२३०.	हरि-हरि-हरि सुमिरन करो	२१७
२३१.	हरि ! हौं सब पतितनि कौ नायक . .	७६
२३२.	हरि ! हौं सब पतितनि कौ राजा	३१०
२३३	हा-हा, हो हरि नृत्य करो ..	२३३
२३४.	हस-सुता, जल-स्वरूप, पुष्टि-रूप, अति अनूप, करत स्नान .	२७६
२३५.	हौं पतित-सिरोमनि सरन परयौ	२६६

२. नामानुक्रमणिका

अ

अकबर—६ ५१, ५५ ७१ ८६, ६१, ६२, २८१

अलीखान—२०

आशकरण—२७

क

कबीर—२८०

कृष्णदास—६१, ८६, ८६, ६०, ६१, ६६, १७२

कृष्ण भट्ट—१६

काका वल्लभ—२३

कील्हदेव—२७

कुंभनदास—८६, ८८, ८६, ६०, ६२, ६६, १०२, १७१, १७०, २१०

ख

खुसरो—२८०

ग

गिरिधर जी—२६, ६२

गोकुलनाथ जी—१७, १६, २०, २२, २३, ३४, ७१, ६३, १५६

गोकुल भट्ट—१६

गोपीनाथ जी—८४, ८६, १३२

गोवर्धनदास—१६

गोविंदस्वामी—८६, १०२, १७२,

घ

घनानंद—२८०

च

चतुर्भुजदास—८६, १०२ १७२

चैतन्य महाप्रभु—२१०

चंडीदास—३१३, ३१४

छ

छीतस्वामी—८६, ११७२

ज

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—३३, ४०, ३२३

जमुनादास—३०

जयदेव—३१३, ३१४

त

तानसेन—५५, ६१

तुलसीदास—६३, १५६, ३१५, ३१६

द

द्वारिकेश—३२, ६०

दुर्गावती—६८

देव—२८०

ध

ध्रुवदास—२८

न

नागरीदास—२८,

नाभाजी—१६, २३, २६, २८, ५४, ७०

नामदेव—२८०

नंददास—८६, ६०, ६१, ६३, १२५, १५३, २८१, ३१६

प

परमानंददास—६९, ८६, ८८, ८९, ९०, ९९, १७२, २२८, २८१

पद्मनाभदास—२१०

पद्मावती जी—९८

प्राणनाथ—२१, ६०, ७०

प्रियादास—२३, २९

पूरनमल खत्री—८४

ब

बल्लभाचार्य जी—२, ५, १९, २३, ५१, ६५, ७१, ८१, ८३, १८५, २०८, २०९, २१०

बालकृष्ण—१६८

बिहारी—२८०

बीरबल—९८

म

मट्टू जी—३२

मतिराम—२८०

मानसिंह (कृष्णगढ नरेश)—३०

मियाँसिंह—२८, ७०, ७७

य

यदुनाथ जी—२५, ६०, ८४

र

रघुनाथ जी—९४

रघुराज सिंह—२८, ७०

रसखान—२८०, २८२

राधाकृष्ण दास—३३, ४०

रामदास—१०२

रामदास बाबा—५५

रुक्मिणी जी—९८

ल

लालचदास हलवाई—२८०

व

व्यासदेव—१८३

वाल्मीकि—३१३

विट्ठलनाथ जी—४, ५, ६, १९, २६, ८३, ८५, ८६, ८९, ९८, १०२, १०३, १०९, १४०, १७२, १७३, २०९, २२९

विट्ठलनाथ भट्ट—३०

विट्ठलेशराय—१९

विट्ठलविपुल—१८

विद्यापति—३१३, ३१४

विष्णुदास—९०

श

श्यामसुंदर दास—३७

श्रीनाथ भट्ट—२५, ६०, ७०

श्रीभट्ट—२१०, २११

ह

हरिदास स्वामी—१८, ९२

हरिराय जी – ६, २०, २२, २३, ५०, ५८, ६०, ७१, ७२, ७७, १०३, ११२

हरिश्चंद्र (भारतेन्दु)—४०, १८३

३. ग्रंथानुक्रमणिका

अ

अष्टछाप और बल्लभ-संप्रदाय—४५

अष्टछाप-परिचय—४५

अष्टसखामृत—१६, ४८, ७०

अष्टसखान की वार्ता—६, ११, ६६, १०३

आ

आईन-ए-अकबरी—२८ ५५ ८६

आचार्यजी महाप्रभु की प्रा० वार्ता—५३

ए

एकादशी माहात्म्य—१०६

क

कृष्ण गीतावली—६५

कृष्णाश्रय—२७६

ख

खट ऋतु की वार्ता—१०२

ग

गायत्री भाष्य—२०१

गीता—२७५

गीतावली—६५, ३१८, ३१६, ३२३

च

चौरासी वैष्णवन की वार्ता—५, ६, १६, २०, ३४, ६१, ७१, ७२, ७७, ८१, ८६, ६१, ६४

ज

जानकी मंगल—३१६

द

दशम स्कंध की अनुक्रमणिका—८३, ८८, १२१

दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता—२०, २६६

ध

धौल (जमुनादास)—३०

न

नल-दमयती—१०६

नागर समुच्चय—२८

निकुंज विलास—११०

निज वार्ता—१६, २२, ५२, ५३

प

परिवृढाष्टक—२०८

प्राचीन वार्ता रहस्य—६

पुरुषोत्तम सहस्रनाम—८३, ८८, १२१, १२२, १२४

पंचश्लोकी—२७७

ब

बल्लभ दिग्विजय—१, २०, २५, ८४, ८५

ब्रह्मवैवर्तपुराण—३३१

भ

भक्तनामावली—२८

भक्तमाल—१, १६, २३, २६, ५४, ६७, ६३

भक्तविनोद—२८, ३३, ४६, ७०, ७७

भक्तशिरोमणि महाकवि सूरदास—४१

भ्रमरगीतसार—३४

भागवत—१६, ६०, १२१, १२२, १५८, १६३, २७५, ३३१

भागवत भाषा—१२५

भावप्रकाश—२३, ५४, ७२, ७७

भाव संग्रह—३२, ५२, ५३

म

मुन्तखिबउत्तवारीख—२८, ५५
मुंशियात अबुलफजल—२८
मूल गोसाईं चरित—२८, ९३
मिश्रबंधु विनोद—३६, ३७
मधुराष्टक—२०८
यमुनाष्टक—२७६

र

रामचरितमानस—६३, ३१६
रामजन्म—१०६
रामरसिकावली—२८, ३३, ७०
रामलला नहछू—३१६
रामाज्ञा प्रश्न—३१६
रास-पंचाध्यायी—११९

व

वार्तामणिमाला—१, २५, ७०
विवेक धैर्याश्रय—२७७
वैराग्य संदीपनी—३१६
वैष्णवाह्निक पद—३२

श

शिवसिंह सरोज—३६
शिक्षापत्र—२३
श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता—८४
शृंगार रस मंडन—११०

स

साहित्य लहरी—१, २, ३४, ५४, ५६, ७७, १८३, १५३, ३०२
सिद्धांत-पंचाध्यायी—१११
सुबोधिनी—१६, ६६, ८३, २०१, २०८, २०६, २११, २७४, २७५, २७७
सूर : एक अध्ययन ४१
सूर : जीवनी और ग्रंथ—४३
सूरदास (जनार्दन मिश्र)—४१
सूरदास (ब्रजेश्वर वर्म्मा)—४६, १०८, १८३
सूरदास : एक अध्ययन—४६
सूरदास के पद—१६६
सूर पच्चीसी—६१, १५३, १६६
सूर पदावली—३८
सूरसागर—१, ७, ३३, १५३, १६०, ३०२, ३१६, ३२३
सूर-साठी—१५३, १६६
सूर-सारावली—१, ६, ८३, १०७, १५३, २४८
सूर-साहित्य—४१
सूर-साहित्य की भूमिका—४०
सूर-साहित्य-सुधा—३८
सूर-सुषमा—३६
सूर-सौरभ—४३
सूर-संग्रह—३४
सूर-संदर्भ—३४
सेवा फल—११०, १४०, १६६

ह

हरिवंश टीका—१५९
हिंदी नवरत्न—४१
हिंदी भाषा और उसके साहित्य का विकास—३६
हिंदी भाषा और साहित्य—३६, ३७
हिंदी साहित्य का इतिहास—३६, ३७
हिंदी साहित्य का इतिहास (रसाल)—३६
हिंदी साहित्य का आलो० इतिहास—३६

४. पदावली

(पुस्तक मे आये हुए कुछ महत्त्वपूर्ण अपूर्ण पदों की संकेत सहित पूर्ति)

आजु हौ एक एक करि टरि हौं।
मोहि कहा डरपावत हो प्रभु, अपने पूरे पर लरि हौ ॥
† हौ तो पतित सात पीढी कौ, जो जिय ऐसी धरि हौ।
हौं तो फिरि वैसौई ह्वै हौ, तुमहिं बिरद बिनु करि हौ ॥
अब तो तुम परतीत नसाई, क्यों मानें मेरौ हियरा।
'सूरदास" साँची तब थपि हौं, जो हँसि दैहौ बीरा ॥ १ ॥

प्रभु मै सब पतितन कौ राजा।
करि नहिं सकै बराबरि मेरो, पाप करन कों ताजा ॥
चारि चुगली के चँमर ढरत है, काम क्रोध दुल बाजा।
निंदा के मेरै छत्र फिरत हैं, तौऊ न उपजी लाजा ॥
‡चल्यौ सवेरौ आयौ अबेरौ, लेकर अपने साजा।
"सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलि है, देखत जम दल भाजा ॥ २ ॥

* मन रे तू भूल्यौ जनम गँवावै।
बेग ही चेत सकल सिर ऊपर, काल सदा मँडरावै ॥
खान पान अटक्यौ निसि बासर, जिभ्या लाड लडावै।
गृह सुख देखि फिरत है फूल्यौ, सुपने मन भटकावै ॥
कै तू छांडि जायगौ इनकों, कै तोहि यहैं छुडावै।
ज्यों तोता सेमर पर बैठ्यौ, हाथ कछू नहीं आवै ॥
मेरी मेरी करत बावरे, आयुष वृथा गँमावै।
हरि से हितू बिसारे वैसे, सुख विष्टा चित भावै ॥
गिरिधरलाल सकल सुखदाता, स्रुति पुरान सब गावै।
"सूरदास" वल्लभ उर अपने, चरन कमल चित लावै ॥ ३ ॥

§ मन रे तै आयुष वृथा गँवाई।
इंद्री वस्य परायन डोलत, उदर भरन के ताँई ॥

---

† पृष्ठ ७६ के आरंभ की अधूरी पंक्ति

‡ पृष्ठ ८० के अंत में अधूरा पद

* पृष्ठ ८२ पर अधूरा पद   § पृष्ठ ८२ पर अधूरा पद

सेव्यौ न लाल चरन गिरिधर के, बेर बेर चित लाई।
निसि दिन फिरत विषय रस माँतौ,सुत दारा को लडाई ।।
यह संसार रैन कौ सुपनो, मात पिता पति भाई।
बिनु ब्रजराज नहीं कोई तेरौ, वेद पुरानन गाई ॥
कहा भयौ संपति बहु बाढी, पाई बहुत बडाई।
दिवस चार में खेह उडैगी, यह सब सोंज पराई ।।
धन जोबन गृह देखि भुलानौ, कुबिद्धि कुबुध कमाई।
रंचक स्वाद जीभ के कारन, तोरी स्याम सगाई ।।
जन्म पाय जग मे कहा कीनो, कीनी कहा कमाई।
जा सुख को सुख मानि रहे हो, सो सुख है दुखदाई ।।
बहुत दिवस भटकत भये तोको,अजहू सुधि नहीं आई।
'कौडी मार, बिटौरा चूकत,' छार परी चतुराई ॥
अजहु चेत कृपाल सदा हरि, श्रीवल्लभ सुखदाई।
"सूरदास" सरनागति हरि की, और न कछू उपाई ।। ४ ॥

$ अजहू सावधान किन होहि ।
माया सुखहिं भुवंगन कौ विष,उतरयौ नाहिंन तोहि ।।
कृष्ण नाम सो मन्त्र सजीवनि, जिन जग मरत जिवायौ।
बार बार है स्रवन निकट, तोहि गुरु-गारुडी सुनायौ ।।
बहुत अध्यात्म देह अभिमानी, सो देखत इन खायौ।
कोउ कोउ उबरे साधु सँगति मिलि,स्याम धनंतर पायौ ।।
सलिल मोह नदी क्यों तरि सकि,बिना गीत ताके गाये।
"सूर" मिटै अज्ञान मूरछा, ज्ञान मूरि के खाये ।। ५ ।।

‡ श्री बल्लभ दीजै मोहि बधाई ।
श्री लछमन सुत द्विज के राजा, कीजे कहा बडाई ।।
बहुरि कृष्ण अवतार लियौ है, सदन तुम्हारे आई।
कोटि कोटि कलि जीव उद्धारन, प्रगटे श्री जदुराई ।।
चिरजीवो अक्काजी कौ सुत, श्री बिट्ठल सुखदाई।
गिरिधरलाल कौ ढाढ़ी कहावै, "सूरदास" बलि जाई ।। ६ ।।

$ पृष्ठ ८२ पर अधूरा पद
‡ पृष्ठ ८३ पर अधूरी पंक्ति

$नंद जू ! मेरे मन आनंद भयौ, सुनि गोवर्धन तें आयौ।
तुम्हारे पुत्र भयौ हौं सुनिकै, अति आतुर उठि धायौ॥
बंदीजन और भिक्षुक सुनि सुनि, देस देस ते आये।
एक पहले ही आसा लागी, बहुत दिनन के छाये॥
तुम दीने कंचन मनि मुक्ता, नाना बसन अनूप।
मोहि मिले मारग में, मानों जात कहूँ के भूप॥
दीजै मोहि कृपा करि सोई, जो हौं आयौ माँगन।
जसुमति सुत अपने पाँयन चलि, खेलन आवै आँगन॥
कोटि देहुँ तौ परचौ रहूँगौ, बिनु देखे नहिं जाऊँ।
नंदराय सुनि बिनती मेरी, तबहि बिदा भले पाऊँ॥
तुम तो परम उदार नंद जू, जो माँग्यौ सो दीनौ।
ऐसौ और कौन त्रिभुवन मे, तुम सरखौ को कीनौ॥
मदनमोहन मैया कहि बोलै, यह सुनि के घर जाऊं।
हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढी "सूरदास" मेरौ नाँऊ॥ ७॥

* है हरि मोहू ते अति पापी।
घातक कुटिल चवाई कपटी, मोह क्रोध सतापी॥
लपट धूत पूत दमरी कौ, विषम जाप नित जापी।
काम विवस,कामिनि ही के रस, हठ करि मनसा थापी॥
भक्ष अभक्ष अपथ पीवन कों, लोभ लालसा धापी।
मन क्रम बचन दुसह सबहिन सो, कटुकै वचन अलापी॥
जेते अधम उधारे प्रभु तुम, मै तिन की गति मापी।
सागर "सूर" विकार जल भरचौ, बधिक अजामिल बापी॥ ८॥

† तुम देखो सखी री आज नयन भरि, हरि जू के रथ की सोभा।
योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रत, कीजियत है जिहिं लोभा॥
चारु चक्रमनि खचित मनोहर, चंचल चँमर पातका।
स्वेत छत्र जनु ससी प्राचि दिसि, उदित भयौ निसि राका॥
स्याम सरीर सुकेस पीत पट, सीस मुकुट और माला।
मनों दामिनि घन रवि तारागन, उदित एक ही काला॥

$ पृष्ठ ८५ और ९७ * पृष्ठ ८८ † पृष्ठ ९७ के अंत मे

उपजत छबि कर अग्र संख ध्वनि, सुनियत सब्द प्रसंसा ।
मानहु अरुन कमल मडल मे, कूजत है कल हंसा ॥
आनंदित पितु भ्रात जननि सब, कृष्ण मिलन जिय भावै ।
"सूरदास" गोकुल के बासी, प्राननाथ वर पावै ॥ ९ ॥

रे मन चिंता ना कर पेट की ।
हलन चलन मे कछु नाहिन ह्वै, कलम लिखी जो ठेट की ॥
जीव जतु जेते जल थल के, तिन विधि कहा समेट की ।
समै पाय सबहिन को पहुँचे, कहा बाप कहा बेट की ॥
जाको जितनौ लिख्यो विधाता, ताको तितनौ पहुँचै तेटकी ।
"सूरदास" ताहिं क्यो नहिं सुमरै, जो तू है ऐसौ चेटकी ॥१०॥

$ गुरु बिन ऐसी कौन करे ।
माला तिलक मनोहर बानो, सिर पर छत्र धरे ॥
भवसागर तें बूडत राखे, दीपक हाथ धरे ।
"सूरस्याम" गुरु ऐसे समरथ, जिहि तें लै उधरें ॥११॥

* कृष्ण भक्ति करि कृष्णहिं पावै ।
कृष्णहिं ते यह जगत प्रगट है, हरि मे लय ह्वै जावै ॥
यह दृढ ज्ञान होय जासों ही, हरि लीला जग देखे ।
तौ तिहिं दुख सुख निकट न आवें, ब्रह्म रूप करि लेखे ॥
अज्ञानी मै-मेरौ करिकै, ममता बस दुख पावै ।
फिरि फिरि जोनि भ्रमै चौरासी, मद मत्सर करि आवै ॥
हरि हैं तिहूँलोक के नायक, सकल भली सो करि है ।
"सूरदास" यह ज्ञान होय जब, तब सुख सों नर तरि हैं ॥ १२ ॥

‡ हरिजन संग छिनक जो होई ।
कोटि स्वर्ग सुख, कोटि मुक्ति सुख, वा सम लहै न कोई ॥
महद् भाग्य पुन्य संचित फल, कृष्ण कृपा ह्वै जाके ।
"सूरदास" हरिजन पद महिमा, कहत भागवत ताके ॥ १३ ॥

† पृष्ठ १२०० $ पृष्ठ १९१ * पृष्ठ १८६
‡ पृष्ठ २५६